श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

अनुप्रेक्षा प्रवचन

४, ५, ६ भाग

प्रवक्ता :—
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:—
खेमचन्द जैन, सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ
(उत्तर प्रदेश)

प्रथम संस्करण
१०००]

सन् १९७१

[मूल्य

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ।

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

(३) वर्णीसंघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय, कानपुर।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावों की नामावली—

१	श्रीमान्	लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ,	सहारनपुर
२	,,	सेठ भवरीलाल जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
३	,,	कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,,	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	जगाधरी
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन,	ज्वालापुर
१३	,,	सेठ गैंदामल दगडू शाह जी जैन,	सनावद
१४	,,	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी,	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर	मेरठ
१७	,,	मंत्री जैन समाज,	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन, रईस	सहारनपुर
२०	,,	बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसादजी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलालजी जैन, संघ	जयपुर
२२	,,	मंत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	,,	सेठ सागरमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,,	बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी जैन,	गिरिडीह
२५	,,	बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	गिरिडीह
२६	,,	सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर
२७	,,	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ,	बड़ौत

२८	श्रीमान् गोकुलचंद हरकचद जी गोधा,	लालगोला
२९	,, दीपचद जी जैन ए० इजीनियर,	कानपुर
३०	,, मंत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मंडी,	आगरा
३१	,, सचालिका, दि० जैन महिलामंडल, नमककी मंडी,	आगरा
३२	,, नेमिचन्द जी जैन, रुड़की प्रेस,	रुड़की
३३	,, झब्बनलाल शिवप्रसादजी जैन, चिलकाना वाले,	सहारनपुर
३४	,, रोशनलाल के० सी० जैन,	सहारनपुर
३५	,, मोल्हड़मल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,, बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन,	शिमला
३७	,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर	मेरठ
३८	,, दिगम्बर जैनसमाज	गोटे गॉव
३९	,, माता जी धनवतीदेवी जैन राजागज	इटावा
४०	,, ब्र० गुलस्यारसिंह जी जैन, "नित्यानन्द"	रुड़की
४१	,, ❀ गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज	गया
४२	,, ❀ बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छावड़ा,	झूमरीतिलैया
४३	,, ❀ इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	कानपुर
४४	,, ❀ सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या,	जयपुर
४५	,, ❀ बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ. सदर	मेरठ
४६	,, ❀ ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन, सदर	मेरठ
४७	,, × ब्र० शकुन्तला देवी जैन, दरियागज	देहली
४८	,, × जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
४९	,, × जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोट:—जिन नामों के पहले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष आने हैं तथा जिस नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा हैं उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नहीं आया, सभी बाकी है।

[शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित]

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम।

मै वह हूँ जो है भगवान, जो मै हूँ वह है भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुःख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुःख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुँचूँ निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥५॥

[धर्मप्रेमी बंधुओ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरो पर निम्नाकित पद्धतियो में भारतमे अनेक स्थानोपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमे श्रोतावो द्वारा सामूहिक रूपमे।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमे।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समयमे छात्रो द्वारा।
४—सूर्योदयसे एक घटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला, पुरुषो द्वारा।
५—किसी विपत्तिके भी समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ, स्वरुचि के अनुसार किसी अर्ध, चौथाई या पूर्ण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा।

अनुप्रेक्षा प्रवचन चतुर्थ भाग

[प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज]

जीवा हवंति तिविहा बहिरप्पा तह य अंतरप्पा य ।
परमप्पा वि य दुविहा अरहंता तह व सिद्धा य ।।१९२।।

जीवके भेदोंका शान्तिमार्गदर्शक पद्धतिसे वर्णन—शान्तिके लिए एक प्रधान साधन है पदार्थका यथावत स्वरूप समझ लेना । जीवकी शान्तिका सम्बंध ज्ञानके साथ है, धन वैभव इज्जत और और भी बाहरी चीजे समागम कुटुम्ब इनके साथ नही है । ज्ञान सही होगा, अपना मन वश होगा, ज्ञान द्वारा अपने आपमे बसे हुए सहज भगवानके दर्शन किये जाते होगे तो वहाँ तृप्ति है, सन्तोष है, शान्ति है और जहाँ ज्ञान नही है वहाँ पूर्वकृत पुण्यके उदयसे चाहे कुछ वैभव मिल जाय, चाहे कितनी ही लौकिक प्रतिष्ठा हो जाय, किन्तु वहाँ शान्ति नही है । शान्तिके लिए किसी भी बाहरी कमी विघ्नरूप नही होती । अपना परिज्ञान हो तो वहाँ शान्ति नियमसे है । उस ही ज्ञानके प्रकरणमे लोकानुप्रेक्षामे ६ द्रव्योका किस-किस प्रकारसे स्वरूप है ? यह बतानेके लिए यहाँ दूसरी प्रकारसे जीवोका भेद प्रभेद बताया जा रहा है । जीव तीन प्रकारके होते है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा । जीवकी यह त्रिविधता सबने स्वीकार की है । कोई जीव, आत्मा, ब्रह्म, इस प्रकारसे तीन मानते है, कोई अज्ञानी, ज्ञानी और प्रभु ये तीन प्रकार कहते है । यह त्रिविधता सबको माननी पडेगी जो जीवतत्त्वमे आस्था रखते है ।

जीवकी सब पर्यायोंमें अवस्थित जीवके सहज स्वभावका सकेत—इस प्रसंगमे एक बात और जाननी है जीवमे सम्बधित, हमे चार तत्त्व परखने होगे—बहिरात्मापन, अन्तरात्मापन और परमात्मापन और सहज स्वभाव । इन चार बातोको कुछ दार्शनिकोने इन शब्दोमें कहा है–ब्रह्म जागृति स्वप्न और अंत प्रज्ञ । बहिरात्माका नाम जागृति रखा है, अन्तरात्माका नाम सुगुप्ति रखा है, परमात्माका नाम अन्त प्रज्ञ रखा है और सहजस्वभाव का नाम ब्रह्म रखा गया है । यद्यपि स्याद्वाद शासनमे बताये हुए इन चार तत्त्वोके स्वरूपमर्मकी तुलना यथार्थ नही बैठती, कारण कि वहाँ चार तत्त्व भिन्न भिन्न रूपसे माने गए और ब्रह्मको अपरिणामी स्वीकार किया गया है जब कि वास्तविकता यह है कि यह ब्रह्मस्वरूप, यह सहज ज्ञायकस्वरूप आत्मतत्त्व शाश्वत है और वह जिस प्रकार स्वत सिद्ध है

इसी प्रकार स्वत परिणामनशील है। जो भी सत् होता है वह स्वत सिद्ध और स्वत परिणामी होता है। तब इस परिणाममे बहिरात्मत्व, अन्तरात्मत्व और परमात्मत्व ये तीन अवस्थाये बनती है। अवस्थाकी दृष्टिसे यहाँ यह जानना है कि बहिरात्मापन तो हेय है, अन्तरात्मापन उपाय है और परमात्मापन उपादेय है। अन्तरात्मत्व ऐसा उपाय है कि जिससे बहिरात्मत्वका नाश और परमात्मत्वका अभ्युदय होता है। इन तीन अवस्थाओका वर्णन करके ही हम सहज ज्ञायक स्वभावकी पहिचान कर सकेगे। इस कारण सर्वप्रथम इन तीन अवस्थाओका वर्णन किया जा रहा है। समयसारमे भी जब यह सकल्प किया कि मै समय-प्राभृतको कहूगा तो समयका वर्णन करना चाहिये ना। समय मायने आत्मा। तो पूछा गया कि समय क्या है ? तो एक प्रारम्भमे उत्तर दिया गया कि दर्शन ज्ञान चारित्रमे स्थित रहे वह स्वसमय है। और जो पुद्गल कर्म व्यपदेशमे स्थित है वह परसमय है। पूछा तो गया कि समय क्या है ? और उत्तर दिया गया अवस्थाओका। यह पद्धति क्यो अपनाई ? इस लिए कि अवस्थाओका परिज्ञान करके समझा जायेगा कि जो एक पदार्थ दोनो अवस्थाओमे है वह है समय। तो यहाँ तीन अवस्थाओका वर्णन किया जा रहा है—बहिरात्मा, रहता अन्तरात्मा और परमात्मा।

बहिरात्मा व अन्तरात्माका स्वरूप—बहिरात्मा वह कहलाता है जो बाह्यद्रव्य विषयो मे शरीर पुत्र स्त्री आदिक चेतन अचेतन रूपोमे जिनकी आत्मा है वह बहिरात्मा है याने जिनका उपयोग बाह्यपदार्थोमे फसा हुआ है वे बहिरात्मा है। देह और जीवको जो एक मानते है, वे बहिरात्मा है। जहाँ इतने निकट देहको अपना माननेपर बहिरात्मत्व दिखाया है वहाँ प्रकट भिन्न परपदार्थोमे कोई आत्मा माने तो वह बहिरात्मा है, यह प्रकट ही सिद्ध है। अन्तरात्माका अर्थ है अन्त अन्तरङ्गमे जिसका आत्मा हो। शरीरादिकसे भिन्न प्रति-भासमान आत्मा जिसका अन्त हो उसे अन्तरात्मा कहते है याने जिसने अपने सहज अत-स्तत्त्वको आत्मारूपसे स्वीकार किया है वह अन्तरात्मा है। अन्तरात्मा होनेकी पहिचान दूसरा कोई न जान सकेगा, खुद समझ सकते है। अपनी रुचिको निरखे कि मेरी रुचि किस ओर है ? क्या जगतके सारे समागमोसे हटकर मेरी रुचि मेरे सहज ज्ञानस्वरूपके उपयोगके लिए है ? यदि है तो अन्तरात्मापन है, यदि नही है अत रुचि, परद्रव्योसे भिन्न अपने आपके स्वरूपमे रुचि नही है तो अन्तरात्मापन नही प्रकट हुआ।

स्वयंमे धर्मप्रयोग किये बिना धर्मात्मत्वके अभ्युदयका अभाव—देखिये--धर्मप्रचार के अर्थ अपनी अपनी सम्हाल करनेकी फिक्र कीजिए। जैसे कितने ही लोग चाहते है कि मैं धर्मका प्रचार करूँ, बहुतसे लोगोसे त्याग करा दूँ, बहुतसे लोगोको बात समझा दूँ, ये लोग कहने लगे कि यह धर्म अच्छा है तो इस फिक्रमे बडा परिश्रम करते है और अपने आपकी

कुछ सुध बुध भी नही है, अपने आपकी कोई कृपा ही नही है। फल यह होता है कि उनका प्रयत्न नि.सार होता है व लोग प्रभावित नही बन पाते। और, इस तरह अगर सभी लोग करने लगें कि दूसरोसे धर्म करावे, दूसरोको धर्म सिखावे, दूसरे लोग मानने लगे कि धर्म अच्छी चीज है, यदि सभी लोग ऐसा ही करे तो बताओ एक व्यक्तिने भी धर्म कर पाया क्या ? वहाँ एकने भी धर्म नही किया। और, कोई पुरुष ऐसा है जो अपने आपमे ज्ञान प्रकट करके अपने आपमे शान्तिका मार्ग अपना रहा है तो लो वह एक तो धर्मात्मा हुआ, और उसके सम्पर्कमे जो लोग होगे वे भी प्रभावित होकर स्वय धर्मात्मा बन सकेंगे। तो खुद पर धर्म प्रयोग करनेसे धर्मत्व आता है, दूसरो पर प्रयोग करने से नही आता। एक बार बीरवल और बादशाह (अकबर) से परस्परमे बात हुई, बादशाहने पूछा कि ऐ बीरबल सच बताओ कि अपने इस नगरमे सभी नागरिक मेरे सच्चे आज्ञाकारी है या ऊपरसे ही आज्ञा मानते है, भीतरमे मायाचार भरा है। तो बीरबलने उत्तर दिया कि हजूर इसके उत्तर दोनो है। आप जिसरूपमे लोगोको देखना चाहे देख सकते है। वस्तुत ये सभी आज्ञाकारी है भी और नही भी है। तो अकबर बादशाहने पूछा—बताओ किस तरह ये नागरिक हमारे सच्चे आज्ञाकारी नही है ? तो बीरबलने क्या किया कि रात्रिके ८–९ बजे ऐसा ऐलान करवा दिया नगरमे कि महाराजाने अपने आँगनमे एक बडा हौज बनवाया है। आज उन्हे कई मन दूधकी आवश्यकता है, सो सभी लोग अपने-अपने घरसे एक एक सेर दूध लाकर हौजमे डाल जावे। अब चूँकि रात्रिका समय था, सभी लोगोने अपने अपने मन मे सोच लिया कि और लोग तो दूध लावेगे ही, एक हम दूध न ले गए तो क्या हुआ ? सो एक सेर पानी भरकर डालने गए। ऐसा ही सभी ने सोचा और किया। जब सवेरा हुआ तो क्या देखा गया कि वहाँ दूधका नाम नही, सारा हौज पानीसे भरा था। बस बादशाह ने वास्तविकता समझ ली। तो यो ही समझ लो अगर सभी लोग ऐसा सोचने लगे कि ये सभी लोग धर्मात्मा बन जावे, एक हम न बन पाये तो क्या हुआ, तो भला बतलावो इस तरहसे कोई धर्मात्मा बन सकेगा क्या ? धर्म है आत्माकी क्षोभ मोहरहित परिणति। खुदको क्षोभ न जगे, मोह न हो, स्नेह न हो तो वहा धर्म प्रकट होता है और बाकी तो ज्ञानके अभावमे जितने धर्मके लिए श्रम किए जाते है वे दिलबहलावा है और मोहकी पुष्टि है। तो तथ्य समझना चाहिए और अपने आप पर अब कुछ दया करना चाहिए। अपनेको बहुत सता डाला, अनन्त भवोमे अपने आपको बरबाद करते चले आये और रात दिन बेसुधी, फिक्र, अशान्ति बोझसे लदे बने रहते आये। जरा मोहके बोझको उठाकर फेंको और जो वास्तविक परमार्थ स्वरूप है उसके दर्शन करो, आप पवित्र हो जायेंगे, धन्य हो जायेंगे।

अन्तःस्वभावकी अन्तःप्रकाशमानता—अपने अन्तस्वरूपको जिसने पहिचाना है, उसमे जिसका उपयोग गया है वह आत्मा अन्तरात्मा कहलाता है, अर्थात् परमसमाधिमे स्थिर होते हुए देहसे भिन्न ज्ञानमय परमात्माको जो जानते है उन्हे अन्तरात्मा कहते हे। अपना भगवान अपने आपमे बसा हुआ है। उसको निरखनेकी पद्धति निरखेगे तो दर्शन होगे। दो चार किलो कोई दूध लाये तो बतलाओ उसमे घी होता है कि नही होता है? होता है, मौजूद है, पर आँखो नही दिख सकता, उसे हाथसे नही उठा सकते और है उसके कण कणमे घी, पर पद्धति है उसको तपाकर, मथकर, बिलोरकर उसे क्लिश करके घी प्रकट होता है, यो ही अपने आपमे परमात्मा बसा हुआ है। पर यो ही नही प्रकट होता, यो व्यक्तरूप नही है, किन्तु अपने आपको मथकर चिन्तन करके बोलरकर, तपाकर अपने आपमे उस परमात्माके दर्शन किए जा सकते है। इस महान कार्यके लिए बहुत तपश्चरण की आवश्यकता है, बलिदानकी आवश्यकता है। बलिदान किसका? इच्छाओका। इच्छाओ को त्यागना, विकारोसे चित्त हटाना। और, जो बाह्य समागम परिकर मिले है उनसे उपयोग हटाना बहुत बडे तपश्चरणकी आवश्यकता है, तब हम पायेगे अपने आपमे अपने प्रभु के दर्शन। मोहीजनोको यह बात कहाँ रुचती है? उन्हे तो वही रुचता है जो भव-भवमे करते आये।

उच्छिष्ट भोगोंसे हटकर निज शरण सहज नाथकी उपासनामें कल्याणलाभ—संसार के ये पदार्थ जो आज भोगनेमे आ रहे है या जिनके लिए लोग तरसते है ये पदार्थ अनेक बार भोगे गए, अतएव इन्हे कह सकते कि ये सब झूठे पदार्थ है। लेकिन ये कातर, अज्ञानी, गरीब प्राणी इनको ही भोग करके सन्तुष्ट होना चाहते है। अरे जरा इनसे उपेक्षा करके यह मानकर कि मेरा यहाँ कोई सम्मान नही है, कोई इज्जत नही है, कोई मुझे जानता नही है, अरे नही जानती दुनिया तो न जाने, और हो जाय ऐसा कि मुझे कोई पहिचानने वाला न रहे, मै अपने आपमे खुद दिखता रहू, बस यही चाहता हू, और इसके आगे कुछ वाञ्छा नही है। भला आज मनुष्य न होते, कीडा मकौडा हुए होते तो इस नगरके, परिवारके, पडोसके लोग कुछ पहिचानते क्या? कुछ सम्बध था उनका? अरे आज मनुष्य हो गए तो समझो कि हम अब भी सबसे अपरिचित है और अपने आपमे अपनेको समझकर अपनी सतुष्टि उत्पन्न करे अपना शरण केवल एक अपना सहज नाथ सहज प्रभु ज्ञानस्वरूप ज्ञानस्वभाव है, उसके अतिरिक्त अन्य कोई साथ न निभायेगा। हमारा साथ निभा सकने वाला कोई है तो हमारे ही अन्त बसने वाला हमारा प्रभु निभा सकता है। बाकी जितने भी चेतन अचेतन पदार्थोका समागम है वे कोई भी वस्तु हमारा साथ नही निभा सकते। यह सब ज्ञान जिनके प्रकट हुआ है वे अन्तरात्मा कहलाते है।

परमात्माका स्वरूप और सहज स्वरूपका संकेत—परमात्मा कौन है जिसके अतरङ्ग और वहिरङ्ग लक्ष्मी उत्कृष्ट है, प्रकट प्रकृष्ट हुई है उन्हे कहते है परमात्मा। जो अनन्त-ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्तआनन्दसे सम्पन्न है, जिनके वाह्य समवशरण आदिक लक्ष्मी अलौकिक अद्भुत बनी हुई है, उस समवशरणके बीच गधकुटीपर विराजमान जिनका चारो ओरसे मुख दिख रहा है, जिनकी दिव्यध्वनिसे सभी जीव कल्याणलाभ कर रहे है, जो सशरीर परमात्मा है और अघातिया कर्मके नष्ट होनेके बाद शरीररहित सिद्ध भगवान निकल परमात्मा है ये प्रभु कहलाते है, और सहज परमात्मा सहजसिद्ध है। इन सब अवस्थाओमे रहने वाला वह सहजस्वरूप, जिसमे विकारका स्वभाव नही है, केवल ज्ञानस्वभाव है ऐसा जो स्वभावदृष्टि करके परखा गया अतरतत्त्व है वह है सहज प्रभु, सहज सिद्ध। इस सहजसिद्ध प्रभुका आलम्बन लेकर अन्तरात्मत्व प्रकट होता है और इस अन्तरात्मा होने के उपायसे परमात्मत्व प्रकट होता है। तो जीवकी अवस्थाये इन तीन प्रकारोमे विभक्त है।

मोहनिद्राको त्यागकर अन्तःजागरणका सन्देश— भैया! मोहमे कुछ सार नही है। बच्चा भी अगर सीख देवे तो उसे भी मान लेना चाहिये। बूढोको सीख देता ही रहता है बच्चा, मगर यह मोही बाज नही आता। छोटे वच्चे बूढोको खिलानेके लिए दिए जाते है, क्योकि बूढे लोग और कुछ तो कामकाज कर सकते नही। खेलते हुए वे वच्चे कहते है बाबा जी याने हे बाबा, आप अब वा बाजीके है, इस बाजीके अब तुम नही रहे। अब तो इस बाजीके हम बच्चे लोग है। इतनी शिक्षा वे बच्चे लोग देते है मगर वह बूढा उन्ही बच्चोमे मोह करता है। वह बूढा यही प्रदर्शित करता है कि हम वा वाजीके नही है हम तो जा वाजीके है। शिक्षा थोडेमे भी बहुत पायी जा सकती है, किन्तु जो जानबूझकर सोया हुआ हो उसका जगाना बहुत कठिन है, जो सचमुच सो गया हो उसका जगाना सरल है। और कोई यो ही आँखे मीचकर दूसरेको वतानेके लिए सोनेका रूपक वनाये हो तो उसे जगानेमे कौन समर्थ होगा? उसके सामने तो खूब वाजे भी बजाये जाये तो बेकार है, और जो सचमुच सो गया है वह जगाया जाने पर शीघ्र ही जग जाता है। तो यो ही सोचिये कि हम आपकी ऐसी कठिन अवस्था बन जाती है कि हम श्रेष्ठ कुल, श्रेष्ठ जाति, श्रेष्ठ धर्म, श्रेष्ठ समागम पा करके भी चेतते नही है। तो हमको जगा सकने वाला कौन होगा? इसलिए जो ज्ञान पाया है उसका सदुपयोग करे। अपने आपमे अपने अन्त स्वरूपके दर्शन करे।

जीवकी त्रिविधताका वर्णन—यहाँ यह वतलाया जा रहा कि जीव तीन प्रकारके है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जो देह जीवको एक मान रहे वे बहिरात्मा,

जो परद्रव्योसे भिन्न निज ज्ञानस्वरूपमे रुचि रखते हैं वे अन्तरात्मा, जिनके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्तआनन्द प्रकट हो गया है, जिनके अब कषायकलक कलमसताये नही रही है वे कहलाते है परमात्मा। परमात्मा दो प्रकारके है—सकलपरमात्मा और निकलपरमात्मा। कलके मायने शरीर। जब बडा तेज होहल्ला मच रहा हो तो लोग कहते है कि क्या कल-कल मचा रहे हो, कल कल मत करो। मायने शरीर शरीर मत करो। तो हो क्या रहा है ? शरीर शरीरसे भिड रहे है। जहाँ शरीरके बडे काम चल रहे हो सो कल कल है। कल मायने है शरीर। और कलसे जो सहित है उसका नाम है सकल। शरीर सहित परमात्माका नाम है सकलपरमात्मा। उनका कल अब कल कल वाला नही रहा, किन्तु परमौदारिक दिव्य देह हो गया, जिसके शरीरमे निगोद नही, जिसके शरीरमे हाड, मास, खून जैसी धातुवे नही, परमौदारिक दिव्य शरीर है, जिसकी अब छाया भी नही पडती, भगवानका शरीर ऐसा स्वच्छ है स्फटिक मणिकी तरह कि उनके शरीरकी छाया नही पडती। जैसे देखा हो स्फटिक पाषाण या कॉचकी छाया नही पडती, कहाँ जाय छाया ? ऐसे ही इतना स्वच्छ दिव्य देह है प्रभुका कि उनके शरीरकी छाया नही पडती। ऐसे परम अतिशयवान दिव्य देह करके सहित अरहत भगवान होते हैं। उनमे दो प्रकार है—एक तीर्थंकर अरहत, दूसरा सामान्य केवली अरहत। तीर्थंकर अरहत किसे कहते है और सामान्य केवली अरहत कौन कहलाते है ? इस विषयका अब वर्णन करेंगे।

मिच्छत्त-परिणदप्पा तिव्व-कसाएण सुट्ठु आविट्ठो।
जीव देह एक्क कण्णतो होदि बहिरप्पा ॥१९३॥

तीर्थंकर प्रभुके ४६ गुणोमें जन्मके दस अतिशयोंका वर्णन—तीर्थंकर अरहत वे कहलाते है जिनमे ४६ गुण पाये जाते है। ४६ गुणोमे चार तो मुख्य है—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्तआनन्द, और इस स्वाभाविक गुणविकासके अलावा शेष अन्य अतिशय है। उनमे जन्मके १० अतिशय है, तीर्थंकर भगवानका जन्म होता है तो जन्मसे ही उनके ये आश्चर्यकारी बाते रहती है। उनके देहका अतिशय रूप होता है, जिस सुन्दरता की सानीका अन्य कौन बताया जावे ? तीर्थंकरके शरीरमे जन्मसे ही यह अतिशय है कि सुगध आती है। सबके शरीरमे गध तो होती है पर भगवानके शरीरमे उत्तम गध होती है। उनके शरीरमे पसेव आदि नही उत्पन्न होते। दुर्गन्धका साधन तो मुख्यतया पसेव है, उनका शरीर पसेवसे रहित है, उनके वचन प्रिय और हितकारी होते है। वे जीव भी बडे भाग्यवान है जिन्होने उन तीर्थंकरदेवके बचपनमे, गृहस्थावस्थामे भी वचन सुने हो। जिनके शरीरमे अतुल्य बल पाया जाता है, हजारो लाखो करोडो सुभटोमे जो बल है उससे भी अधिक बल तीर्थंकरके देहमे होता है। जिनका रुधिर श्वेत वर्णका होता है। रुधिर सभीके श्वेत और

लाल दोनो होते है, पर मिले हुए होते है। उसमे यह पता नही पड पाता कि यह सफेद खून है, लेकिन सफेद खून विषैले कीटाणुका नाशक होता है, रोगनाशक होता है। किसीमे श्वेत कम है, लाल रक्त अधिक है। प्रभुके देहमे श्वेत खून है, जिनके शरीरमे १००८ लक्षण पाये जाते है। हथेलीमे पैरोंमे कुछ ऐसे लक्षण होते है शकुन शास्त्रके अनुसार कि जिनसे उनका महाभाग्यपना विदित होता है। शख, चक्र, धनुष, ध्वजा आदिक बहुतसे आकार है, और इनके अतिरिक्त तिल, मोर आदिक भी लक्षण होते है, जिनका संस्थान समचतुरश्र है। नाभिसे नीचे पैरो तक जितनी लम्बाई है, नाभिसे ऊपर सिर तक उतनी लम्वाई होती है समचतुरश्र संस्थानमे। हाथ पैरकी तुलनामे ठीक-ठीक प्रमाण रहना यह समचतुरश्र सस्थानमे होता है। जिनके बज्रवृषभनाराचसंहनन है, जिनकी हड्डियाँ वज्रकी तरह प्रबल है, जिनका शरीर ही बज्रकी तरह प्रबल है, इतनेपर भी सुकोमल शरीर रहता है।

तीर्थंकरके कल्याणक—जन्मके समय ही जिनके १० अतिशय प्रकट हुए है वे तीर्थंकर भगवान जब कुछ बडी उम्र पाकर विरक्त होते है, जिनके पञ्चकल्याणक मनाये जाते है, गर्भके समय भी कल्याणक होता, ६ माह पहिलेसे रत्नवर्षा उनके महलके आँगनमे हुआ करती है और कुबेर इन्द्रके द्वारा प्रबंध चलता है। गर्भके समय अनेक देवियाँ माताकी सेवा करती थी और जैसे भी उनका दिल बहले, जैसे भी वे प्रसन्न रहे, वे सव उपाय देवियाँ करती थी, वचन व्यवहार भी ऐसा कि काव्यअलकारकी चर्चा सहित वार्ता करके देवियाँ तीर्थंकरकी माताका मन प्रसन्न रखती थी। जन्मके समय तो बडे ठाठबाटसे इन्द्र पाण्डुशिला पर ले जाकर मेरुपर्वत पर उनका अभिषेक करते थे। फिर जब विरक्त होते है तब भी कल्याणक रचा गया. तप कल्याणकके समय लौकातिक देव आते है और भगवानके वैराग्यकी प्रशसा करके चले जाते है। ये लौकातिक देव अन्य समयमे नही आते, सिर्फ वैराग्यके समय मे आते है। उन्हे वैराग्य प्रिय है। लौकान्तिक देव एक भवावतारी होते है। एक मनुष्यभव पाकर मुक्त हो जाते है। उनके द्वारा की गई वैराग्यकी प्रशसासे यहाँ लोगोके वैराग्यकी ओर और भावना दृढ होती है।

तीर्थंकरके दीक्षाकल्याणकके समयका प्रभावक दृश्य—प्रभुके वैराग्य समय इन्द्र एक बडी सुसज्जित पालकी वनाता है, भगवानसे प्रार्थना करता है, अभी वे भगवान गृहस्थावस्था मे है, पालकीमे विराजनेके लिए प्रार्थना करता है। जब भगवान उस पालकीमे विराजमान होते है और इन्द्र उस पालकीको लेकर चलनेके लिए उद्यत होता है उस समय कवियोने अलंकारमे बताया है कि मनुष्य लोग उस इन्द्रको पालकी उठानेके लिए रोक देते है, दोनोमे विवाद होता है, उसका निर्णय अधिकार ४-५ विवेकी पुरुषोको दिया जाता है, तो वे विवेकी

पुरुष क्या निर्णय देते है कि देखिये—इस पालकीको उठानेका अधिकारी वह है जो इन भगवानके समान ही विरक्त होकर इन जैसा ही बन सके। सो मनुष्योको उस पालकीके उठानेका निर्णय दिया गया। उस समय मानो इन्द्र अपना माथा ठोकता हुआ कहता है—ऐ मनुष्यो, तुम हमारा सारा देवत्व ले लो, सारी इन्द्रत्वकी विभूति ले लो, पर अपना मनुष्यत्व मुझे दे दो। तो अब आप सोचिए इस मानवजीवनकी कितनी महत्ता है ? हम आप सब आज मनुष्य पर्यायमे है, इस दुर्लभ मानवजीवनको व्यर्थ न खोये, अपने उपयोगको कुछ बदले और कल्याणकी ओर चले तो हम आपको बडा जौहर प्राप्त होगा। अपने आपके आत्मामे उस सहज परमात्मतत्त्वके दर्शन होगे जिसकी प्रसन्नतामे ससारके समस्त सकट समाप्त हो जाते है। तप कल्याणक मनाया गया।

तीर्थंकर केवलज्ञानीके प्रति भक्ति विशेपता व अतिशय विशेपता—तीर्थंकर प्रभु जब से तपश्चरण ध्यान करते है तबसे मौन हो जाते है, और जब केवलज्ञान होता है तो दिव्यध्वनिके रूपमे उनकी वचनवर्गणाये खिरती है। भव्य जीवोके भाग्यसे और उनके वचन योगके निमित्तसे दिव्यध्वनि खिरती है, गणधरदेव उसका पूर्ण अर्थ समझते है, द्वादशागकी रचना करते है, उस परम्परासे आचार्यजन ग्रन्थ रचना करते है, उसी परम्परा से आज हम सबको महान ग्रन्थ प्राप्त है। जरा आचार्य सतोकी उस निधिका तो ध्यान करे, कितनी अपूर्व निधि है ? हम अपने आपके कल्याणके लिए उन्होने कैसे-कैसे ग्रन्थ रच दिये है, उन्हे हम आप आज अपने उपयोगमे नही लेते, उनसे कुछ फायदा नही उठाते तो यह अपनी ही मूर्खता है। तीर्थंकर भगवानके केवलज्ञानके समय और विहार आदिकके समय अनेक अतिशय प्रकट होते है, जिन्हे देव रचते है, उन्हे देवरचित अतिशय कहते है और जिनके इन्द्र ही पहरेदार बनकर उन अतिशयोको प्रकट करनेमे कारण बनते है वे प्रातिहार्य कहलाते है। देवरचित १४ अतिशय है—भगवानके अर्हमाल्ती भाषाका होना, सब जीवोमे मित्रताका व्यवहार होने लगना, दिशाये निर्मल, आकाश निर्मल छहो ऋतुओके समस्त फल फूल एक साथ फूलने फलने लगना, पृथ्वीका काँचके समान स्वच्छ हो जाना। जब विहार करते है प्रभु तो उनके चरणकमलके नीचे स्वर्णकमलकी रचना होती चली जाती है। आकाशसे जय जयकार की ध्वनि होने लगती है। सुगधित वायु चलती, मद मद सुगधकी वृद्धि होती, समस्त जीवोको हर्ष उत्पन्न होता, भूमिका निष्कण्टक हो जाना ऐसे अनेक अतिशय प्रकट होते है।

केवलज्ञान होनेपर होने वाले अतिशय—जहाँ भगवान बिराजे हो वहाँसे चारो ओर १००–१०० योजन तक सुभिक्ष हो जाता है, कही अकाल नही रहता, लोग दु खी नही रहते, कैसा पुण्योदय है कि जहाँ प्रभु विराजमान है उनके चारो ओर १००–१०० योजन,

तक दुर्भिक्ष, अकाल, पीडा नही रहती। प्रभुका आकाशमे गमन होता है, वे पृथ्वीपर विहार करते हुए नजर न आयेगे। जब वे सवमशरणमे गधकुटीमे विराजमान होते है तो चारो ओर सभाये रहती है। बारह सभाये गोल गोल रहती है। उसमे रहने वाले सभी जीवोंको प्रभुका मुख दिखता है। चारो ओर मुख दिखे ऐसा अतिशय प्रकट होता है, यह सब पुण्यकी रचनाकी बात है। ये कोई सी भी बाते कल्पित नही है, अनेक बाते तो वैज्ञानिकोने अभी सिद्ध करदी है, अनेक बाते तो बडी कलाओसे अब भी जानी जायेगी। प्रभुके ऊपर उपसर्ग नही होता। उनके किसी प्रकारका विकार अदयाका भाव नही होता। प्रभु अब कवलाहार भी नही करते। बिना आहार किए ही अरबो वर्षो तक वे अरहंत अवस्थामे रहकर भव्य जीवोको उपदेश देते रहते है। ध्यानकी अब उन्हे जरूरत नही है। मनका विचार अब उनके नही चलता। केवलज्ञानी हो गए, केवलज्ञान द्वारा समस्त लोकको एक साथ स्पष्ट जान लेते है। प्रभुके चारघातिया कर्मोको अब वहाँ स्थान नही है। पूर्ण नष्ट हो गए है वे घातिया कर्म, अब वे कभी पनप नही सकते। इसलिए सदा ज्ञान, दर्शन, सुख, शक्ति प्रकट रहती है, अभी अघातियाकर्म शेष है, इनमे सातावेदनीय भी उदयमे चल सकती है मगर उसका उदय निष्फल है। जैसे सातावेदनीयका उदय निष्फल है, उनका आनन्द तो आत्मामें उत्पन्न हुआ स्वाधीन आनन्द है। साता असाताके उदयके विपाक अब उनके नही रहे, क्षुधा, तृषा आदिक उपद्रवोका भी अब कोई काम नही है। समस्त विद्याओका ऐश्वर्य वही केवलज्ञानमे प्राप्त हुआ है। अब उनके केश और नख नही बढते। अरहत होनेके पश्चात् भी जब तक आयुकर्म शेष रहता है, करोडो अरबो वर्ष भी गुजर जाये पर प्रभुके नख व केश नही बढते। और न कभी कवलाहार उन्हे करना होता है। जिनके नेत्रसिकार नही रहती। नेत्र ज्योके त्यो स्थिर रहते है। अब उनके शरीरकी छाया नही पडती, स्फटिक मणिके समान उनका स्वच्छ देह हो जाता है। ऐसे केवलज्ञानके प्रकट होनेपर अतिशय प्रकट होते है। तो जहाँ ऐसा अतिशय प्रकट हो उन्हे तीर्थकर अरहत कहते है।

सकलपरमात्मा व निकलपरमात्माका वर्णन——उक्त अतिशयोमे से अनेक अतिशय सामान्य केवलीके भी प्रकट है, पर वहाँ यह नियम नही है कि समस्त अतिशय सामान्य केवलीके प्रकट हो जाये। जन्मके अतिशय तो जन्मसे सम्बन्धित है। तो तीर्थंकर परमदेव ४६ गुण करके युक्त है और सामान्य केवलीके यथासंभव अतिशय प्रकट है, परमूल अतिशय जो अनन्त चतुष्टय है, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्तआनन्द, वे बराबर प्रकट है। परमात्मा दो प्रकारके बताये गए है——सकलपरमात्मा और निकलपरमात्मा। उससे ही सम्बन्ध यह सब प्रकरण चल रहा है कि शरीरसहित परमात्माका नाम सशरीर परमात्मा है। सो तीर्थकर केवली व सामान्य केवली सब सकलपरमात्मा है। निकलपर-

मात्मा उन्हे कहते है जो सर्व अघातिया कर्मोसे भी निवृत्त हो गए है, केवल स्वात्मतत्त्व ही रहा। ये सकलपरमात्मा ही सब निकलपरमात्मा हो जाते है। अब वे अनन्तानन्त गुणोंसे विराजमान लोकके अग्रभाग पर स्थिरतासे विराजे हुए है। भगवान कहाँ रहते है ? इसके उत्तरमे कुछ लोग तो यह कहते है कि वे सर्वव्यापी हैं, सब जगह है और कुछ लोग कहते है कि वे ऊपर रहते है। प्रकृति भी लोगोकी ऐसी पड गई है कि जब भगवानका नाम लेगे तो ऊपरको थोडा मुख उठाकर नाम लेकर स्मरण करेगे। यह पद्धति इस बातको सिद्ध करती है कि भगवानका, सिद्धका निवास लोकके अग्रभाग पर है।

प्रभुकी सर्वव्यापकता--प्रभु सर्वव्यापक है, यह बात कई अपेक्षाओसे सिद्ध होती है। ज्ञानकी अपेक्षासे प्रभु सर्वव्यापक है, लोकमे ही क्या, अलोकमे भी व्यापक है। जब केवली समुद्घात होता है उस समय भी एक समयके लिए भगवान प्रदेशोसे समस्त लोकालोकमे व्यापक बन जाते है। अरहतदेवके चार अघातिया कर्म शेष रहते है, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र। तो जब आयुकर्म अन्तर्मुहूर्त रह गया और बाकी कर्म लाखो वर्षोकी स्थितिके है तो ऐसा तो होगा नही कि आयुकर्म नष्ट हो जाय और बाकी कर्म रहे आये। चारो अघातिया कर्म एक साथ नष्ट हुआ करते है। तो उस समय समुद्घात होता है। अरहत भगवान विराजे है तो उनके आत्माके प्रदेश दडाकार नीचेसे ऊपर तक फैल जाते हैं, इसे कहते है दडसमुद्घात। दडसमुद्घातके समयमे औदारिक काययोग होता है, शरीर परमाणु आते रहते है इस कारण वे आहारक कहलाते है और पर्याप्त होते हैं। इस एक समयके बाद प्रभुके प्रदेश अगल बगल फैलते है, जहाँ तक कि वातवलय नही आते। उसे बोलते है कपाटसमुद्घात। जैसे किवाडका आकार होता है फैला हुआ, उस तरहमे यहाँ प्रदेश फैले है। इस तरह कपाटसमुद्घात इनका नाम है। इस समय औदारिक मिश्रकाययोग हो गया अर्थात् औदारिक देह की वर्गणाओ और कार्माण वर्गणाओका मिश्रण करके योग चलता है उस समय आहारक रह रहे है, शरीर वर्गणाये आ रही है किन्तु अपर्याप्त हो जाते है। इसके पश्चात् दूसरे समयमे प्रतरसमुद्घात होता है। आगे पीछेके भी प्रदेश फैल जाते है। उस समय कार्माण काययोग होता है, प्रभु अनाहारक होते है, अपर्याप्त होते है, अर्थात् शरीर परमाणु अब ग्रहणमे नही आ रहे, इसके पश्चात् लोकपूरण समुद्घात होता है कि जो वातबलय थोडा रह गया था वहाँ भी प्रदेश फैल जाते है। इस एक समयमे लोकपूरण समुद्घातके समय लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर आत्माका एक-एक प्रदेश रह जाता है, इसके बाद फिर प्रदेश सिकुडते है, प्रतरसमुद्घातकी स्थितिमे आते है, फिर कपाटसमुद्घातकी स्थितिमे, फिर दडसमुद्घातकी स्थितिमे, इसके बाद देहमे उनका प्रवेश हो जाता है। इस क्रियाके समय वे सभी कर्म आयुके प्रमाण करीब अन्तर्मुहूर्तके हो जाते है, थोडा फर्क रहता है, सो वह फर्क भी

इसके बाद तत्काल निकल जाता है। जब सब घातिया कर्म अन्तर्मुहुर्तकी स्थितिमे हो गए तब पूर्णतया योगनिषेध हो चुकनेपर १४ वे गुणस्थानमे ये अरहत प्रभु पहुंचते है और उनके अन्तिम दो समयोमे सभी प्रकृतियोका नाश हो जाता है, और वे सिद्ध हो जाते है, तब वे निकलपरमात्मा कहलाते है।

निकलपरमात्माका परिचय—निकलपरमात्मा, अशरीर सिद्ध भगवान ऊर्द्धगतिसे लोकके अग्रभाग तक पहुच जाते है। अब वे सदाकाल अवस्थित है। सिद्ध भगवानकी स्तुति मे कहते है कि जो 'एक माहि एक राजे, एक माहि अनेकनो, एक अनेकन की नही संख्या, नमो सिद्ध निरञ्जनो"। ऐसा पढ तो जाते है पर अर्थ याद न होने से कुछसे कुछ भी पढ लेते हो, एक को जगह अनेक, अनेक की जगह एक। अब देखिये इसका अर्थ कितना मार्मिक है और प्रभुके अंत स्वरूपको बताने वाला है। ये सिद्ध भगवान निरञ्जन है, इनके अब अञ्जन नही रहा। जैसे कि अञ्जन खूब लिपटकर ही लग सकता है, दूर-दूर रहकर नही लगता, ऐसे ही ये शरीर द्रव्यकर्म ये आत्मासे लिपट कर रह रहे है इसलिए इन्हे अञ्जन कहते है। जहाँ शरीर, कर्म, विकार आदि कुछ नही है ऐसे प्रभुको निरञ्जन कहते हैं। ये एक माहि एक राजे है—अर्थात् प्रत्येक सिद्ध एकमे एक ही रह रहे है। जितने भी सिद्ध हुए है वे सभी अपने आपके प्रदेशमे ही केवल रागादिक रूप परिणाम रहे है। एकमे दूसरेका प्रवेश नही है, वहाँ परिणमनकी वात देखिये, अनुभवकी बात देखिये। प्रत्येक सिद्ध अपने आप के एकमे ही वह एक है, वे प्रत्येक सिद्ध एकमे एक ही बिराज रहे हैं। यद्यपि जिस क्षेत्रसे कोई एक सिद्ध हुआ है उसी क्षेत्रसे उसी जगहमे अनन्त सिद्ध हो गए और वे जाकर वहीं बिराजमान है जहा कि कोई एक हो, लेकिन एक ही जगहमे अनन्त सिद्ध रहने पर भी प्रत्येक सिद्ध अपने आपके स्वरूपमे अपने ज्ञानानन्दको भोग रहे है, किसीमे किसी दूसरेका परिणमन, प्रवेश नही है, अतएव प्रभु एकमे एक ही राज रहे है। और एकमे अनेक राज रहे है सिद्ध प्रभु। जहाँ एक सिद्ध प्रभु है वही अनन्त सिद्ध भगवान है। एकमे अनेक बिराज रहे है। और, वहाँ एक अनेककी कोई सख्या नही है, सख्यासे परे है ना, अनन्त है ना, अनेकमे कितने आये ? उसका काई उत्तर नही है। अन्तरहित, यो भी एक अनेककी संख्या नही है, और यदि सिद्धमे, भगवानमे अन्त स्वरूपका ध्यान किया जाय तो वह तो एक विशुद्ध चैतन्यमात्र है। और, यदि बडी तन्मयतासे सिद्ध प्रभुकी उपासना कर रहे हो तो उस उपयोगमे तो विशुद्ध चैतन्यभाव ही समाया हुआ है, उसकी सीमा नही, उसकी व्यक्ति नही। उसमे एक अनेककी गिनती नही। यो भी एक अनेककी सख्या अब नही रही।

कर्मक्षयसिद्ध व सहजसिद्ध प्रभुकी उपासनाका अनुरोध—ऐसे निरञ्जन सिद्ध भगवान

जिनका हम गुण गा रहे है, ऐसी शक्ति, ऐसा स्वभाव हम आप सबके अन्दर है, पर अपनी कदर नही किए हुए हैं । इसीसे ससारमे रुलना भटकना बन रहा है । जब भी अपने आपके इस सहज परमात्मतत्त्व पर दृष्टि होगी, अपनी महत्ता विदित होगी, इन भोगोसे, इन लगाओसे, इन व्यर्थकी करतूतोसे उपेक्षा बनेगी, अपने आपमे उपयोग रमेगा, सब कर्म-बन्धन झड जायेगे और यही पद, यही विकास जो परमात्माको प्राप्त है, हम आप सबको प्राप्त होगा । प्रोग्राम तो इसीका ही सच्चा है, बाकी जो जिन्दगीमे अनेक प्रोग्राम बनाये बैठे है, अमुक कार्य करना, अमुक बात सिद्ध करना वे सब बेकार है । यही प्रोग्राम सार्थक है कि मैं केवल रह जाऊँ । मैं अपने आपको केवल निरखूं, केवलमे ही अपना उपयोग जमाऊँ । केवल ही मुझे रहना है, क्योकि मै केवल हू । मैं केवल ही तो सत् हू । दो पदार्थ मिलकर मैं सत् नही बना, ऐसा जैसा मै सहज सत् हू, केवल हू, वही मात्र मुझे रहना है, ऐसा प्रोग्राम बनाये कोई तो उसका विवेकपूर्ण प्रोग्राम है और उसका मनुष्य जीवनका जीना भी सफल है, इसके लिए परमात्माकी भक्तिमे रहे और अपने आपमे बसे हुए सहज सिद्ध प्रभुकी भी याद कर रहे हो, इसमे हीं कल्याण है ।

बहिरात्माके स्वरूपके वर्णनमें बहिरात्माकी मिथ्यात्वसे अभिगृहीतता—तीन प्रकारके जीवोमे से बहिरात्माका स्वरूप कहा जा रहा है । जो आत्मा मिथ्यात्वसे परिणत है और तीव्रकषायसे युक्त है, जो देह और जीवको एक माने उसे बहिरात्मा कहते है । यहाँ मुख्य-तया मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीवकी चर्चा चल रही है । मिथ्यादृष्टि कहो, बहिरात्मा कहो, एक ही बात है । मिथ्यादृष्टि, मिथ्याका अर्थ है सयोग वाली बात । मिथ्याका लोग अर्थ करते है "उल्टा ।" मिथ्या मायने उल्टा लगाते है पर मिथ्याका सही अर्थ "उल्टा" नही है, किन्तु मिथ्या मिथ् धातुसे बना है । सम्बध इसका अर्थ है । परस्पर सम्बधके अर्थमे मिथ् धातु बनी है जिससे मैथुन मिथ्या मिथुन आदिक शब्द बनते है । जिसका अर्थ है— दूसरी चीजमे सश्लेष होना । परमैश्लेष दृष्टि होनेका नाम है मिथ्यादर्शन । जो आत्माका स्वरूप नही है ऐसे अन्य स्वरूपमे परभावमे श्रद्धा होनेका नाम "यह मैं हू" इसका नाम है मिथ्यादर्शन । मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वभावसे परिणत है । मिथ्यात्वभाव होता है मिथ्यात्व नाम दर्शन मोहनीय प्रकृतिके उदयसे । वहाँ अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया लोभ का भी उदय होता है । सम्यक्प्रकृति और सम्यक्मिथ्यात्वका उदय क्रमश क्षयोपशम (वेदक) सम्यक्त्वमे, व सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमे होता है पर मिथ्यात्वके उदयमे जीव मिथ्यादृष्टि कहलाता है । मिथ्यात्व कहते है उस कर्मको जिस कर्मके उदयमे जीवका दर्शन बिगड जाता है, श्रद्धा विप-रीत हो जाती है । जीवोका अपना स्वामी मानना, अपना कुटुम्बी समझना, देहको आपा मानना, जो अपनेमे भाव बनते है उन भावोमे लगाव रखना, क्रोध, मान, माया, लोभके

परिणाममे अपने आपकी श्रद्धा करना, मै ही तो कर रहा हू, मै दूसरेको पालता हू, सेवता हू, रक्षा करता हू आदिक कर्तृत्व बुद्धियाँ मिथ्यात्वमे हुआ करती है। मै अमुक विषयको भोगता हू, यो भोगनेकी बुद्धि मिथ्यात्वमे होती है। वस्तुत देखा जाय तो कोई पुरुष मिठाई खाकर मिठाईका रस नही भोग रहा, किन्तु मिठाईके रसका जो ज्ञान हो रहा है उससे सुख मान रहा है। मिठाईसे क्या सुख भोगेगा ? मिठाई तो पौद्गलिक चीज है। उसका भोगना क्या होगा ? तो अन्य वस्तुओके भोगनेको, करनेका भाव मिथ्यात्व गुणस्थानमे होता है।

बहिरात्माकी तीव्रकपायसे आविष्टता—यह जीव तीव्रकपायसे गृहीत रहता है। अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभके उदयमे इस जीवको अपने आत्माकी सुध नही रहती है। अनन्तानुबंधी क्रोध जिसका सस्कार भव भवमे साथ जाय, जैसे पुराणोमे चर्चा मिलती है कि कमठका जीव भव भवमे मरुभूतिके जीवको सताता रहा। अन्य कथाये भी ऐसी प्राप्त है जिनमे भव भवके संस्कार बताये गए। तो जिनका सस्कार ६ माहसे भी अधिक चले वे सब अनन्तानुबधी कषाय कहलाते है। धर्मके सम्बधमे क्रोध, मान, माया, लोभका प्रसग आये तो समझिये कि वह अनन्तानुबधी है। जैसे धर्म कर रहे, पूजा कर रहे, या अन्य कोई धार्मिक कार्य कर रहे और उसी प्रसगमे तीव्र क्रोध जग जाय तो यह क्या है ? यह अनन्तानुबधी क्रोधका रूप है। जिस धर्मका प्रसङ्ग शान्तिके लिए होता है उसका प्रसग इसके क्रोध का कारण बनता है। कुछ थोडा धर्म किया, घमडमे आ रहे, लोग जानेगे कि आज उपवास किए हुए है, मै ऐसी पूजा करता हू, यह सब क्या है ? यहाँ दूसरोको दृष्टिमे अपनेको धर्मात्मा जता देना यह अनन्तानुबधी मान है। मायाचार धर्मके प्रकरणमे रखना। मनमे और, वचनमे और, करे कुछ और, दिलमे तो दया नही, रूप बनाया गया बडे दयालुका, अथवा दिलमे तो धर्मकी रुचि नही, पर अपने हावभाव गानतान द्वारा यह बतलानेकी चेष्टा करना कि हम धर्मात्मा है यह क्या है ? यह अनन्तानुबधी माया है। जिस धर्मका प्रसग हमारे सब संकटोको दूर करनेके लिए था उसीको अपने दिलबहलावा कषायपूर्ति करनेका साधन बनाया, कभी अकेले दर्शन कर रहे है तो झट जल्दी बोलकर कर रहे है, मगर कोई दो चार आदमी आकर दर्शन करने लगे तो उनको देखकर खुद बडे सुरीले गान गाने लगते है। सामायिक जैसे चाहे कर रहे, मगर कोई दो चार आदमी आ गए तो अटेन्सनमे हो गए, यह क्या है ? यह अनन्तानुबधी मायाका स्वरूप है। धर्मके प्रसंगमे लोभ करना, घर गृहस्थी मोह मोहब्बतके काममे सब कुछ खर्च करनेको तैयार रहते है पर किसी पडोसी भाई पर कोई खर्च करनेकी जरूरत पड जाय तो उसमे बडा हिसाब लगाते है, अथवा कोई धार्मिक काममे कुछ खर्च करना पडे तो बहुत सोचा विचारी करते है, यह क्या है ? यह अनन्तानुबधी लोभ है। तो ऐसी तीव्र कषायोमे बहिरात्मा गृहीत हो जाता है। मिथ्यादृष्टि जीव देह

और आत्माको एक मानता है, इसका मुख्य लक्षण है—शरीरसे निराला मैं कुछ ज्ञानदः मय पदार्थ हू, यह अनुभव मिथ्यादृष्टिको न हो सकेगा ।

त्रिविध बहिरात्मा—बहिरात्मा तीन गुणस्थानवर्ती जीव कहलाते है । मिथ्यात सासादन सम्यक्त्व और सम्यक्‌मिथ्यात्व, लेकिन इनमे भी डटकर बहिरात्मा है पहिले गु स्थानमे, मध्यबहिरात्मा है दूसरे गुणस्थानमे और जघन्य बहिरात्मा है तीसरे गुणस्थानमे तीसरे गुणस्थानमे बहिरात्मत्व शिथिल हुआ क्योकि यहाँ सम्यक् मिथ्यात्व मिले हुए परि णाम रहते है । न केवल सम्यक्त्व रहा, न केवल मिथ्यात्व । जैसे दृष्टान्त समझ लीजि कि किसी पुरुषको वीतराग देव, वीतराग धर्म और वीतराग गुरुपर श्रद्धा हुई जो कि पहि सराग देव, सराग धर्म और सराग गुरुओको मानता था और सराग देवताओकी मूर्तिया अपने घरमे रखता था उसे कारण पाकर काललब्धिवश कुछ सच्चे देव, शास्त्र, गुरुकी श्रद्ध हुई है, जो रागद्वेप रहित हो, अपने शुद्ध ज्ञानप्रकाशमे हो वह हमारा देव है, ऐसी कु श्रद्धा तो जगी, मगर यह श्रद्धा इतनी दृढ नही हो सकी कि अपने घरमे स्थापित किए हु सरागी देवताओकी मूर्तियोको अलग कर सके तो अभी उसका भाव दोनो ओर लगा उसे न केवल सम्यक्त्व जैसी स्थिति कह सकेगे और न केवल मिथ्यात्व जैसी स्थिति कहेगे तो यहाँ मिथ्यात्व प्रवल न रहा । कुछ सत्य श्रद्धानके लिए भाव होता है ऐसे परिणामको यद्यपि सम्यक्त्व न कहेगे, बहिरात्मापन कहेगे, लेकिन यह है जघन्य बहिरात्माका परिणाम किसी जीवको सम्यक्त्व उत्पन्न हो गया हो उपशम सम्यक्त्व, तो उपशम सम्यक्त्व तो छूट जाय और मिथ्यात्वका उदय न आ पाये, ऐसी बीचकी स्थिति कि जहाँ सम्यक्त्वकी विराधना हो रही है उस परिणामको कहते सासादन सम्यक्त्व । अब यह जीव नियमसे मिथ्यात्व मे आयेगा और परिणाम विपरीत ही हो गया तो उसे कहेगे मध्यम बहिरात्मा और मिथ्यात्व गुणस्थानमे रहने वाला जीव यह है उत्कृष्ट बहिरात्मा । देखो जो मोही है ममतावान है, अज्ञानी है उसे कहते है उत्कृष्ट बहिरात्मा । उत्कृष्ट नाम लगा है ऐसा जानकर अज्ञानीजन फूल न जाये कि मुझे उत्कृष्ट कह दिया । उत्कृष्ट तो कहा गया, मगर कैसा उत्कृष्ट ? बहिरात्मा उत्कृष्ट । जैसे किसीको कहा जाय यह तो मूर्खोका बादशाह है, तो बादशाह शब्द सुनकर खुश न होना चाहिए, क्योकि वहाँ बादशाहका अर्थ महामूर्खसे है तो ऐसे ही बहिरात्मा कहा गया है मगर उसका अर्थ है कि वह महा बहिरात्मा है, मोही है । इसका प्रधान लक्षण यह जाने कि जो देह जीवको एक मान रहा है सो बहिरात्मा है याने जो बाह्य तत्त्वोको अपने रूपसे अनुभव कर रहा है उसका नाम बहिरात्मा है ।

भविष्यकी निर्भरता परिणामोंपर होनेसे परिणामोंकी सम्हालका अनुरोध—भैया ! भला बुरा भविष्य परिणामोकी निर्मलतापर निर्भर है । दिखावासे कुछ काम न चलेगा ।

कर्मवन्ध तो होता है भीतरके परिणामोका निमित्त पाकर । कोई ऊपरी ऊपरी धर्मक्रिया कर रहा हो इतनेसे वह कर्मवन्धसे वच जाय सो वात न होगी । हाँ भीतर का परिणाम अगर निर्मल है और वह कदाचित् वाह्य धर्मकार्यमे नही भी लग रहा है, लेकिन प्रतीति सच्ची होनेसे वह किसी भी जगह रहता हुआ अनेक कर्मोके वन्धसे छूटा हुआ है । इसलिए हम आपको अपने परिणामोकी संभाल करनेमे असावधानी न करना चाहिए । देखो केवल एक लक्ष्यकी वात है और वह ज्ञानकी वात है । जैसे ज्ञानमे आ गया कि यह घडी है तो इसके समझनेमे आपको कुछ कठिनाई हुई है क्या ? वस जान गए, इसमे कठिनाईकी क्या वात ? अव यह जो जान गए वह जानना मिट भी जायेगा क्या ? वस समझ लिया, हाँ यह है घडी । तो ऐसे ही यह आत्मा भी कोई वस्तु है, स्वय ज्ञानमात्र यह मैं भी तो कोई चीज हूँ, यदि मैं कुछ न होऊं तव तो वडी ही अच्छी वात है । ये दुःख सुख किसमे होते हैं ? होते तो है ना ? तो जव मैं कुछ हूँ और अपने आपका मुझे हो जाय ज्ञान तो इस ज्ञानमे कोई श्रम पडता है क्या ? और हो जाय एक वार ज्ञान तो हो गया, फिर उस का भूलना कैसा ? जान ही गए । तो किसी भी प्रकार यदि हम अपने सहजस्वरूपका ज्ञान कर लेते है तव सन्तोष करना चाहिए कि हमे जो कुछ करना था सो सव कुछ कर लिया, और एक निज ज्ञानस्वरूपका ज्ञान न कर सके तो चाहे धनपती वन जाये, प्रतिष्ठावान वन जायें, कैसी ही लौकिक ऊँची प्रतिष्ठाये पा ले लेकिन यह समझो कि मैने कुछ भी नही किया । वहिरात्मापन छूट गया तव तो है अपना उद्धार, और यदि उसी मोह ममतामे ही पगे हुए है तव तो फिर अपने उद्धारकी कोई सम्भावना नही है ।

जे जिण वयणे कुसला भेय जाणंति जीव देहाण ।
णिज्जिय–दुट्ठट्ठ–मया अतरप्पा य ते तिविहा ॥१९४॥

अन्तरात्माकी जिनवचनकुशलता—जो पुरुष जिनेन्द्र भगवानके वचनोमे कुशल हैं, तीर्थकर गणधरदेव आदिकके जो वचन है, द्वादशागमे अथवा वर्तमान उपलब्ध शास्त्र इनके ज्ञानमे जो दक्ष है, जो जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाका प्रतिपादन करने वाले हैं, जो देह और जीवके अन्तरको जानते है ऐसे पुरुष अन्तरात्मा कहलाते हैं, पर द्रव्यसे भिन्न अपने आत्म-स्वरूपमे जिनकी रुचि है उनका नाम है अन्तरात्मा । सम्यग्दृष्टि जीव अनेक विवादोसे परे रहते है । लोकमे वडा झझट है और वह अज्ञानसे वनाया हुआ है । पदपदपर अज्ञानीको झझट आ सकता है । ज्ञानी पुरुष सव रहस्यको जानता है कि यहाँ का प्राप्त समागम पुण्य पापका खेल जैसा है । उदय अनुकूल है तो लौकिक समागम मिलते है । पापका उदय है तो उस दुःखके अनुकूल समागम मिलते है । यहाँ थोडेसे धन पर मायाचार न करना, लोभ न करना ये सव वाते उसके ज्ञानमे स्पष्ट रहा करती है । इस कारण कितनी ही वडी

बडी बडी राशियोका मोह त्याग देते हे। यही देखा होगा, किन्ही दो भाइयोमे न्यारापन होता है तो कोई भाई इतना उदार रहता है कि कितना ही अधिक दूसरे भाईको मिल जाय फिर भी अपनेमे विषाद नही करता है, और प्राय देखा जाता है कि न्यारा होनेके बाद जिसने अन्यायसे अधिक भी रख लिया है तो कुछ समय वाद उसके पास नही रहता है। और एक भाई पुण्योदयमे उससे कई गुना अधिक धन सचय कर लेता है। तो है क्या ? ये सब उदयके अनुसार वाते चलती है। ज्ञानीका यह निर्णय रहता है कि मुझे कुछ भी वैभव मिले अथवा न मिले, इसपर कोई मेरा जीवन नही टिका है। तो मेरा जीवन तो जीवत्व भावसे है, मेरी चेतना शुद्ध रहेगी तो मेरा सच्चा जीवन है, जहा उपयोग अशुद्ध हो गया तो वह जीवन क्या जीव है, भावमरण है। मैं अपने भावोसे अपने आपको मारता रहता हू। ज्ञानी पुरुषोको बाह्यपदार्थोसे आसक्ति नही हुआ करती। जिनेन्द्र भगवानके वचनोमे वैराग्य और ज्ञानका उपदेश भरा हुआ है, जिस आज्ञाको ज्ञानी माननेका सकल्प बनाये हुए है ऐसा अन्तरात्मा पुरुष ८ प्रकारके मदोसे दूर रहता है।

अन्तरात्माके ज्ञानमद व पूजामदका अभाव—घमडके विषय ८ हुआ करते है। किसीको ज्ञानका घमंड रहता है, मै जानकार, मैं ज्ञानी हू, ये लोग कुछ नही समझते। मै इतना श्रेष्ठ हूँ, यह हुआ ज्ञानका मद, किन्तु ज्ञानी समझता है कि इस ज्ञानका क्या मद किया जाय ? क्या ज्ञान पाया है ? केवलज्ञानके सामने यह ज्ञान उसके कुछ अश भर ही कीमत नही रखता है। क्या जाना, सामनेकी बात जाना, थोडी बात जाना, कोई इस विद्या से ईश्वर नही बन जाया करता। सब विद्याओका ईश्वर तो केवली भगवान प्रभु है। हमारा यह कुछ भी ज्ञान नही, और जो ज्ञान पाया है यह तो एक आलम्बन है इसका सदुपयोग किया जाय, नम्र बनकर अपने आपकी ओर झुका जाय, अपने स्वरूपके दर्शन करके तृप्त रहा जाय तो यह केवलज्ञानका बीज बन जायगा। और, मदमे आकर परदृष्टि बनायी जायगी तो यह ससारमे रुलनेका बीज बन जायगा। तो इस ज्ञानका सदुपयोग करना चाहिए न कि घमड। अज्ञानीको पूजाका मद होता है। पूजा मायने आदर सत्कार। लोग आदर सत्कारमे भूल जाते है। बडे-बडे पुरुष जो कि लाखोका दान कर जाते है भरी सभा मे वे उसमे बुद्धि कितनी रखते है उनकी बात वे ही जाने, पर प्राय करके ऐसा होता है कि जो थोडेसे लोगोने प्रशसा की, कुछ विशेष सत्कार किया तो वह हर्षके मारे फूलकर लाखोका द्रव्यदान कर जाता है। वह दान तो नही है किन्तु अपनी प्रतिष्ठा बनानेके लिए खर्च कर जाता है। यह क्या है ? यह आदर सत्कारका मद है। जिस मदमे आकर लोग अपने सचित धनका भी उत्सर्ग करते है। बडे-बड़े सुभट लोग युद्धमे अपने प्राण गवा देते है तो यह क्या उनका आदरका मद नही है ?

मदसे अपनी बरबादी—घमंड तो एक ऐसी चीज है कि जिसके कारण अपनी कितनी ही बरबादी की जा सकती है। एक पुराना कथानक है कि टीकमगढकी एक सुनारिनने बडा हठ करके २०-२० तोलेके बखौरे अपने पतिसे कहकर बनवाये। वहाँ सारा तन ढाककर धोती पहिनने का रिवाज है सो उन बखौरोको किसीने देखा नही, वह बेचारी मन ही मन कुडती रही कि देखो हमने बडी हठ करके तो बखौरे बनवाये, पर कोई प्रशसाके दो शब्द नहीं कहता, सो मारे गुस्साके उसने अपने ही घरमे आग लगा दी। जब घर जलने लगा तो कुछ अकल ठिकाने आयी। वह पडोसियोको रोकर पुकारने लगी अरे भैया! बुझा आग, घर जला जा रहा, वह बाल्टी है, वह हुआ है, इतनेमे उसके हाथके बखौरे किसी स्त्रीको दिख गए। बोली—अरी बहन ये बखौरे कब बनवाये, ये तो वडे सोने है—तो वह गाली देकर कहती है अरी राड यही बात पहिले ही बोल देती तो मै घरमे आग क्यो लगाती? इस घमडका क्रोधसे ज्यादह सम्बन्ध है। जिसके मद रहता है उसके क्रोध भी भरा रहता है। आदरका मान लोग करते इसी लिए तो बरबाद हो रहे है, और आदरके लोभमे आकर शृङ्गारोका बढना, सात्विक रहन सहन न होना, अनेक फैशन बनाना ये सब बाते हो रही है। अब तो १० वर्षसे अधिक कोई फैशन नही टिकता। नये-नये फैशन बदलते रहते है। तो ये सब आदर सत्कारके मदमे लगी हुई चीजे है। तो आदर सत्कारका मद, पूजाका मद ज्ञानी जीवके नही रहता। उसे तो अपने आपके भीतर यह बात पडी हुई है कि यह मै ज्ञानस्वरूप आत्मा जो स्वभावसे आनन्दमय है इसकी उपासनासे मै चिगूँगा तो मेरी बरबादी है। वह यहाँ अपने आपमे अपनी इज्जत बढानेके लिए उत्सुक रहता है।

अन्तरात्माके कुलमद व जातिमदका अभाव—किन्ही को कुलका मद रहता है। मेरा बडा श्रेष्ठ कुल है। अरे श्रेष्ठ कुल है तो इसके लिए है कि हम धर्मपालनमे आगे बढे। अगर कुलका मद करके इस तरह अपनेको हीन कर देते कि आगे ऐसा कुल न मिले, नीच कुलमे, नीच योनियोमे जन्म लेना पडे, यह होता है कुलमदका प्रभाव। किन्ही को अपनी जातिका मद रहता है, अजी मै ऐसे घरानेका हू, मेरी माँ वडे घरानेकी है, कभी दरिद्रता आ जाय तो अपने कुलकी और जातिकी अपने पहिले हुए उन पुरुषोकी तारीफ करके अपने आपको श्रेष्ठ मनाना चाहते है। यह सब क्या है? ये सब कुल और जातिके मद है। ज्ञानी जीव जानता है कि मेरा कुल तो मेरा चैतन्य है, मेरी जाति तो मेरी चेतना है और यह बाहरी कर्मोदयवश पर्यायमे कुल और जातिका व्यवहार है। मै हू एक चैतन्य स्वरूप। मेरा वंश है चैतन्य। मेरा कुल चलाने वाला मै ही हू, लोग सतानसे यह आशा रखते है कि यह मेरा कुल चलायेगा, मेरा वश चलायेगा, लेकिन यह विदित है कि मेरा वश

तो केवल चैतन्यभाव हे, यही मेरा साथी रहेगा। जो अन्वयरूपसे हो वही तो वश हे। उस चैतन्य वशको पनित्र करने वाला मै ही मात्र तो हू, दूसरा कोई मेरे वशको पवित्र नही कर सकता। ज्ञानी जीवको कुल और जातिका मद नही रहता। ये अन्तरात्माके लक्षण वताये जा रहे हे कि वह कितना नम्र होता, कितना भक्त होता है और कैसा उसके अतरङ्ग मे अभिप्राय रहता है। जो अत स्वरूपको जानता है, अन्तस्वरूपको मै आत्मा हूँ, इस तरह मानता है उसे अन्तरात्मा कहते है।

अन्तरात्माके वल ऐश्वर्य तप व सुन्दरताके मदका अभाव—ज्ञानी अन्तरात्मा पुरुषके वलका मद नही रहता। शरीरमे जो वल है उसे ही लोग वल कहा करते है। यह वल विकृत वल है। वास्तविक बल तो आत्माका वल है केवल ज्ञाताद्रष्टा रहना, लेकिन अन्तराय कर्मके उदय क्षयोपशममे शारीरिक वल प्रकट होता है तो अज्ञानी जीव उस वलमे बडा घमड रखता है, मै बलिष्ठ हू, अन्य ये लोग निर्वल है, लेकिन ज्ञानी जीवके उस वलका मद नही है। वह जानता है कि यह वल पर्यायकी चीज है, मायामय है, इस बलमे पूर्णता नही है। अपेक्षाकृत वलकी महिमा गाई जाती है। ज्ञानी पुरुषके ऐश्वर्य मद नही है, जैसे बल प्रतिष्ठा आदिक होते है तो वे इस मदमे भूल जाते है कि मेरा भी वडा प्रताप है, ये सब मेरे हुकुममे चलते है, यह मद अज्ञानीके होता है। ज्ञानी पुरष जानता है कि मेरा ऐश्वर्य तो मेरा महज स्वरूप विकास है। उस ज्ञानी पुरुपमे जो अपने आपका सत्य अनुभव है वह उसका ऐश्वर्य है। ऐश्वर्यको भी वह मिथ्या समझता है। ज्ञानी पुरुषके ऐश्वर्यका मद नही होता। तपका भी मद ज्ञानी पुरुप नही करता। अज्ञानीमे ही यह बुद्धि जगती है कि मै तपस्वी हूँ, मै तपश्चरण करता हू, पर ज्ञानी यह जानता है कि मैं तो ज्ञानभावको कर पाता हू। ये तपश्चरण आदिक बीचके साधन आ रहे है ये भी मै अपने ही ज्ञानदर्शन भाव से करने वाला हू। उसे तपश्चरणका मद नही होता। ज्ञानी पुरुपको शरीरकी सुन्दरताका भी मद नही होता। शरीरकी सुन्दरता क्या? हाड, माँस, रुधिर आदिक महा अपवित्र चीजोका यह घर है, इससे अपवित्र चीज और क्या हो सकती है? यह सव शरीर ही अपवित्र है। उसमे सुन्दरता किस बात की? रागभाव जगता है तो इसका शरीर सुन्दर मालूम होता है। जब राग नही रहता है तो यह शरीर घृणित और असार जचने लगता है, तो शरीरकी सुन्दरता क्या? सुन्दरता तो हमारे आपके आत्माके अन्दर है। जैसे कहते है सत्य शिव सुन्दर। क्या चीज़ है, मेरा स्वरूप, मेरा स्वभाव, मेरा सहज सत्त्व वही मेरे लिए सुन्दर है, मै अपने सहजभावमे आऊँ तो मेरी सुन्दरता है। इसमे ही मेरी भलाई है और अपने सहज स्वरूपकी दृष्टिसे चिगकर कही बाहर दृष्टि लगाया, वहीं विडम्बनाये है। ज्ञानी जीवको शरीरमे मद नही रहता। जिसने आठो प्रकारके मदोपर विजय प्राप्त किया है वह

अन्तरात्मा कहलाता है। अन्तरात्मा तीन प्रकारके होते है जिनका कथन अब आगे करेगे।

पच-महव्वय-जुत्ता धम्मे सुक्के वि संठिदा गिच्च।
गिज्जिय-सयल-पमाया उक्किट्ठा अतरा होंति ॥१६५॥

उत्कृष्ट अन्तरात्माका स्वरूप—अन्तरात्मा ३ प्रकारके होते है—उत्कृष्ट अन्तरात्मा, मध्यम अन्तरात्मा और जघन्य अन्तरात्मा। उत्कृष्ट अन्तरात्मा वे कहलाते है जो अपने अन्त स्वरूपके ध्यानके दृढ अभ्यासी है। जो ५ महाव्रतोसे संयुक्त है, धर्मध्यान और शुक्लध्यानमे जो बने रहते है, जिन्होने समस्त प्रमादोको जीत लिया है ऐसे पुरुष उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहलाते है। ५ पाप होते है—हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, इन ५ पापोसे विरक्त होना यह है पञ्च महाव्रत। ये पाँचो पाप स्वय दु खरूप है। जो पुरुष इन पापोका परित्याग करते है वे अपने आपपर ही करुणा करते है निश्चयत। और व्यवहारत पापत्याग करनेपर दूसरे जीवोकी भी मेरे सम्बधसे भलाई होती है। पञ्च पापोका त्यागी स्व और पर दोनोका उपकारी है।

पापोकी हेयता—एक कथानक आया है किसी कन्याका। बताते है कि कोई मुनिराज किसी बनमे उपदेश कर रहे थे तो उस कन्याने पाँचो प्रकारके पापोके त्यागका व्रत मुनिराजसे ग्रहण कर लिया। जब वह कन्या घर आयी और उसने अपने पिताको सब हाल बताया तो पिता बडा क्रुद्ध हुआ, बोला कि बिना मेरी आज्ञाके तू ने व्रत क्यो लिया और उन मुनिराजने भी व्रत क्यो दिया ? तो उस कन्याने समझाया कि देखिये पिता जी हमने यह भला ही तो काम किया है, तो पिता बोला—नही बेटी तुम उस व्रतको छोड दो। तो वह कन्या बोली—पिता जी व्रत तो हम छोड देगी पर उन मुनिराजके पास चलो, वही छोड़ेगी। वे दोनो मुनिराजके पास चले। रास्तेमे कई घटनाये घटी। एक जगह देखा कि कोई व्यक्ति शूली पर लटकाया जा रहा था तो कन्याने पूछा पिता जी यह क्या हो रहा है ? तो पिता ने मालूम करके बताया कि किसी व्यक्ति ने किसीकी हत्या की है तो उसे फाँसी दी जा रही है। तो वह कन्या अपने पितासे कहती है—पिता जी मैने यदि दूसरे जीवोकी हत्या न करनेका नियम ले लिया तो क्या बुरा किया ? ''अच्छा बेटी एक यह नियम रखले— बाकी चार नियम तो छोड दे। कुछ और आगे बढे तो क्या देखा कि किसी व्यक्तिकी जिह्वा छेदी जा रही थी, कन्या ने पूछा कि पिता जी यह क्या हो रहा है ? तो बताया कि बेटी किसी ने झूठ बोला है, झूठी गवाही दी है इसलिए इसकी जिह्वा छेदी जा रही है, तो पिता जी यदि मैने झूठ बोलनेके पापको त्याग दिया तो क्या बुरा किया ? अच्छा बेटी इस नियमको भी रख ले, पर शेष तीन नियम तो छोड दे। कुछ और आगे बढे तो क्या देखा कि किसी पुरुषको सिपाही लोग हथकडियाँ लगाकर पकडे हुए लिए जा

रहे थे, उसे कोडोसे पीट भी रहे थे । उस कन्याने पूछा पिता जी ! यहाँ क्या हो रहा है ? तो बताया कि बेटी किसी पुरुषने चोरी की है इसलिए वह पीटा जा रहा है । तो पिताजी यदि मैंने चोरीके पापका त्याग कर दिया तो क्या बुरा किया ? ठीक है बेटी ये तीन नियम तू रख ले, पर दो नियम तो छोड दे । कुछ और आगे बढे तो क्या देखा कि किसी व्यक्तिके हाथ काटे जा रहे थे । जब उस कन्याने पूछा कि यह क्या हो रहा है तो बताया कि बेटी इस पुरुषने कुशील सेवन किया है इसलिए इसके हाथ काटे जा रहे है ? तो मैने कुशीलके पापका त्याग कर दिया तो क्या बुरा किया ? ठीक है बेटी तू इस नियमको भी रख ले, पर शेष एक नियमको तो छोड दे । कुछ और आगे बढे तो क्या देखा कि कोई व्यक्ति पीटा जा रहा था । वहाँ भी जब कन्या ने पूछा तो बताया कि किसी पुरुषने लालच करके, दूसरेको धोखा देकर धन हडप लिया है इसलिए वह पीटा जा रहा है ? तो यदि मैंने इस लालचका, परिग्रहका त्याग कर दिया तो क्या बुरा किया ? ठीक है बेटी तू ये सभी नियम रख ले, पर चल तो सही उस मुनिके पास, उसने बिना मेरी आज्ञाके तुझे क्यो व्रत दिया ? जब वे मुनिराजके पास पहुचे तो वह पुरुष मुनिराजसे बोलता है कि आपने हमारी बेटीको बिना मेरे आदेशके व्रत क्यो दिया ? तो मुनिराज बोले—यह बेटी मेरी है या तेरी ? वाह मेरी ही तो बेटी है, सभी लोग जानते है । आपकी कैसे ? इस विवादके समय वहाँ बडी भीड होई । तो मुनिराजने उस कन्याके शिरपर हाथ करके कहा कि बेटी ! जो तुझे पूर्वभवमे पढाया था सो सुना, सो पिछले भवमे जो सस्कृत व्याकरण आदिका अध्ययन किया थ। वह बोलने लगी । सभी लोग सुनकर दग रह गए । तो लोगोने बताया कि इसके असली पिता तो ये मुनिराज है, तुम तो केवल एक इस शरीरके पिता हो । जो आत्माकी रक्षा करे, जो आत्माको शिक्षित बनाये, वह है परमार्थत पिता ।

उत्कृष्ट अन्तरात्माकी अप्रमत्तता—यहाँ पापोके त्यागकी बात कह रहे थे । ये पाप परित्याग करने योग्य है और ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने ज्ञानकी साधनाके लिए कि जिसमे बीचमे विकल्प न आये, पाँचो पापोका परित्याग कर देते है तो जिसने पाँचो पापोका परित्याग किया और धर्मध्यान शुक्लध्यानमे ही निरन्तर चित्त लगाया, जहाँ आर्तध्यान, रौद्रध्यान आते ही नही है अगर आयेगे तो वह उत्कृष्ट अन्तरात्मा न रहेगा, वे उत्कृष्ट अन्तरात्मा है । ऐसे आत्मा ७ वे गुणस्थानसे लेकर १२ वे गुणस्थान तक माने जाते है । ७ वे गुणस्थानका नाम है अप्रमत्त विरत । इसके ऊपरके साधु सभी अप्रमत्त है । प्रमाद छठे गुणस्थान तक रहता है, और जहाँ प्रमाद है वहाँ आर्तध्यानकी सम्भावना है । इन उत्कृष्ट आत्माओने समस्त प्रमादोपर विजय प्राप्त किया है । अतएव ये उत्कृष्ट अन्तरात्मा होते है । प्रमादके मूलमे १५ भेद है । ४ प्रकारकी विकथा, स्त्रियोकी कथा करना, भोजनकी

कथा करना, देशकी चर्चा करना, राजा राजवैभव आदिककी चर्चा करना ये चार प्रकारकी विकथाये कषायवश की जाती है। कभी क्रोधसे, कभी मानसे, कभी मायासे और कभी लोभसे। और ऐसा पुरुष जो इन विकथाओमे लग रहा वह पञ्च इन्द्रियोके विषयोका रागी है और निद्रा या मोहमे व्यस्त रहता है। अब इन १५ भेदोको प्रत्येक विभागमे एक एक प्रकारका सयोग करने से याने इन्द्रियविषय, कषाय, विकथाके एक एक भेद व निद्रा मोहके परस्पर मिलानेसे ८० प्रमाद भङ्ग बन जाते है। तो जो ८० प्रकारके प्रमादोमे रत नही है, इनसे निवृत्त है और चार प्रकारके धर्मध्यान अथवा शुक्लध्यानमे जो निरत है वे उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहलाते है।

उत्कृष्ट अन्तरात्माके ध्यानोंका विवरण—भगवानकी आज्ञाको मुख्य करके तत्त्व-चिन्तनमे रहना आज्ञाविचय धर्मध्यान है। रागादिक भावोका कैसे विनाश हो, उसके विनाश का चिन्तन करना सो अपायविचय धर्मध्यान है। कर्मोके विपाकका चिन्तन करना विपाक विचयधर्मध्यान है और तीन लोक, तीन कालकी मुद्राका चिन्तन करना, कितना बडा लोक है, कितना वडा काल है, विशाल लोक व अनादि अनन्त कालकी विशालतापर जब उपयोग जाता है तो इसका रागसे द्वेषसे चित्त हट जाता है। रागद्वेष करनेका क्या काम है ? इस अनादि अनन्तकालके सामने यह थोडा सा १० या २० या ५० वर्षका जीवन कुछ गिनती भी रखता है क्या ? इसमे ही राग बसा लेनेसे जीवको कौनसा लाभ मिल जायेगा ? इतने बडे लोकमे यह १०, २० या ५० मीलकी जगह कौनसी कीमत रखती है ? यहाँ क्या मोह करना, उसके मोह हटता है, राग द्वेष दूर होता है, तो जो चार प्रकारके ध्यानोमे रत रहते है और पृथक्त्व वितर्कविचार, एकत्ववितर्क अविचार इन दो शुक्लध्यानोमे किसीमे रत रहते है, ये सब उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहलाते है। ७ वे गुणस्थानसे लेकर १२ वे गुण-स्थान तकके जीव उत्कृष्ट अन्तरात्मा है। ५ वे और छठवे गुणस्थानके जीव मध्यम अन्तरात्मा है और चतुर्थगुणस्थानके जीव जघन्य अन्तरात्मा कहलाते है। उत्कृष्ट अन्तरात्मा का वर्णन करके अब मध्यम अन्तरात्माकी बात कहते है।

सावय गुणेहि जुत्ता पमत्त—विरदा य मज्झिमा होंति।
जिण—वयणे अणुरत्ता उवसम सीला महासत्ता ।।१९६।।

मध्यम अन्तरात्माका स्वरूप—जो महात्मा श्रावकके गुणोसे युक्त है अथवा प्रमत्त विरत है वह मध्यम अन्तरात्मा कहलाता है। छहढालामे कहा गया है कि—"मध्यम अन्तर-आतम है जे देशव्रती अनगारी।" कुछ लोग आगारी पढा करते है, उनकी दृष्टिमे यह बात समाई होगी कि मुनि कैसे मध्यम होगे, वे तो उत्तम कहलाते है लेकिन मुनि जब तक प्रमादमे है तब तक वह मध्यम अन्तरात्मा है, उत्कृष्ट नही। तो श्रावक और प्रमत्तविरत ये दो मध्यम

अन्तरात्मा कहलाते है । ये प्रमादमे अवश्य है, किन्तु इनका प्रमाद अज्ञानी जनोकी भाँतिका नही है । स्वाध्याय करना, शिक्षा देना, चर्चा करना ऐसा प्रमाद उनके रहता है । जिसे हम आप कहते है कि यह अच्छी बात है और प्रमाद छोडकर स्वाध्याय करे, दूसरेको सुनाये, दूसरेको नियम दिलावे, शिक्षा, दीक्षा दे, जिसे हम कहते है प्रमादरहित होकर ऐसा करे वह सब प्रमादका काम है । आत्माकी अप्रमत्त अवस्था तो यह है कि जैसे यह आत्मा विशुद्ध ज्ञान दर्शनस्वरूप ज्ञाताद्रष्टा है उस प्रकारका उपयोग रहे तो है उसकी अप्रमत्त दशा और किन्ही व्यवहार धर्म कार्योमे लग रहा हो तो वह प्रमाद है, और लौकिक जन जिसे प्रमाद कहते है वह तो सारा अज्ञान है । प्रमाद तो वह कहलायेगा कि जहा थोडी असावधानी हो, वह तो पूरी ही असावधानीकी बात है । तो आत्महितकी दृष्टिसे यह बात कही जा रही है कि अपना जिसमे कल्याण है ऐसे भावमे प्रमाद हो तो उसे प्रमाद कहा गया है । तो मध्यम अन्तरात्मा देशव्रती श्रावक और प्रमत्तविरत मुनि है ।

देशविरत श्रावकके ग्यारह स्थान——देशविरतके ११ स्थान है, जिन्हे ११ प्रतिमाके नामसे कहा गया है । प्रथम प्रतिमामे सम्यग्दर्शनका निरतिचार धारण और अभक्ष्य अन्याय का परित्याग होता है । यो कहिये मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्यका त्याग होनेपर पहिली प्रतिमा मे प्रवेश कहलाता है । दूसरी प्रतिमामे ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत हो जाते है । इन व्रतोको विकल्प बढानेके लिए नही लिया जाता है, किन्तु उस त्यागकी स्थितिमे ज्ञानकी ओर उपयोग अधिक लगायेगा । यह प्रयत्न किया गया है अन्यथा कोई त्याग त्यागमे ही रहा करे यह चीज छोडो, इसे हटाओ, इसकी एवजमे यह चीज लावो ऐसी दृष्टि करे, हमको सोला रखना है, हमको ऐसा ही पवित्र बनना है, केवल बनने बनने की ओर ही विकल्प चले तो निश्चयत उसका अन्त व्रत न रहा, वह बाहरी विकल्पोमे ही रहा, जिसे कर्मनिर्जरामे हेतु कहा गया ऐसा परिणाम न रहा । तो यह ध्यानमे रखना चाहिए कि बाहरी जितने भी नियम है उन नियमोका उद्देश्य यही है कि मै बहुतसे विकल्पोसे छूटकर अपनेको ऐसा पात्र बनाये रहू कि अधिकाधिक समय हम ज्ञानप्रभाव की उपासनामे बिता सके, ध्येय उसका यह होता है और जिसका अपने ज्ञानकी उपासनाका ध्येय होता है उसके ये ५ पाप छूटते ही है । वह हिसा क्या करेगा ? वह छूट जायगा । कुशीलमे क्या रमेगा ? जिसकी धुन लग गई है अपने आत्माके श्रेयोलाभकी, उसका तो जीवन ही बदल जाता है । यह देशव्रती श्रावक दूसरी प्रतिमामे १२ व्रतोके धारी होता है । उन व्रतोकी उत्कृष्टताके लिए आगेकी प्रतिमाये चलती है । सामायिक प्रतिमामे सामायिक व्रतका निरतिचार पालन होता है । प्रोषधप्रतिमामे प्रोषधका निरतिचार पालन होता है । सचित्त त्याग प्रतिमामे सचित्तके भक्षणका त्याग होनेसे दयाका उदय विशेष होता है और अहिसाव्रत की उत्कृष्टता होती

है। रात्रिभोजन त्यागमे भी अहिंसाव्रतकी उत्कृष्टता है। ब्रह्मचर्य प्रतिमामे ब्रह्मचर्यकी पूर्णता, आरम्भ त्यागमे अहिंसाव्रतकी श्रेष्ठता है। उनका विकास और उत्कृष्ट बढता जाता है। यो परिग्रहत्याग प्रतिमा जब आती है तब यह जीव इतना निर्मल बन जाता है कि घरके, सम्बंधके, कुटुम्बके कोई मरे, जन्में तो उसे सूतक नही लगता है। केवल थोडे कपडे और भोजनके कुछ पात्रोके सिवाय और कुछ नही रख रहा है। परिग्रहत्याग प्रतिमा वाला १० वी प्रतिमामे अपने आहार आदिककी अनुमोदना भी नही करता और उद्दिष्ट त्याग प्रतिमामे उद्दृष्ट भोजन न करना। यदि उसे यह मालूम हो जाय कि यह भोजन सिर्फ मेरे लिए बनाया गया है तो उसे वह नही लेता।

उद्दिष्टताहारत्यागका तथ्य—उद्दिष्ट त्यागके विपयमे कुछ लोग भ्रान्त धारणाये बनाते है, सोचते है कि साधुका ख्याल करके ही तो लोग साधुका आहार बनाते है, तब दोष लगता होगा, लेकिन उद्दिष्ट दोषके सम्बधमे मुख्य बात यह जानना चाहिए कि यदि घरमे केवल साधुके लायक भोजन अलग बना लिया जाय और सबके लिए अशुद्ध भोजन बनाया जाय जैसा कि रोज-रोज भोजन बनता रहता है अलग चूल्हेपर, तो वहाँ उद्दिष्ट दोष आता है। यदि एक दिन भी और ऐसा सकल्प करके भी कि मै साधुको आहार दूगा और सभी लोग शुद्ध भोजन करे, किसी दूसरे चूल्हेपर अलगसे भोजन न बने तो उस भोजनमे उद्दिष्टका दोष नही आता। इतना सोच लेने पर भी कि मुझे आज साधुको भोजन कराना है, उद्दिष्ट दोष नही होता। अतिथि सम्विभाग व्रत जब दूसरी प्रतिमामे लिया गया है तो वहाँ सोचता ही है वह व्रती कि मै अतिथिको आहार देकर भोजन करूँगा तो क्या सोचने मात्रसे उद्दिष्ट दोष होता है? जिसने अतिथि सम्विभाग व्रत लिया वह रोज ही सोचता है, रोज ही सकल्प करता है वह तो उसका व्रत है। दोषकी बात होती तो व्रत क्यो कहलाता? तो उद्दिष्ट दोषका मूल साधन यह है कि वह केवल साधुको भोजन अलग से बनाये। और अपने लिए, परिजनोके लिये अलग बने तब उसके लिए बना हुआ भोउद्दिष्ट है। जिस भोजनको सब करेगे, लेकिन यह नियम न रखे कि यह चीज साधुको ही दी जायगी, वहाँ दोष नहीं है। वहाँ तो यह विचार है कि आज यह भोजन तो सभीके लिए है। हाँ आज इतनी विशेषता कर दी कि सारा भोजन शुद्ध बनेगा। तो ऐसा करनेमे उस श्रावकको दोष न आयगा। जो भोजन केवल साधुके लिए बनता है वह उद्दिष्ट दोषयुक्त भोजन है।

प्रमत्तविरत मध्यम अन्तरात्मा—जब वह व्रती और आगे बढता है तब फिर पच महाव्रतका धारण होता है, तो मुनि हुआ और यह मुनि जब तक प्रमत्त रहता है, प्रमत्त-विरत है और मध्यम अन्तरात्मा कहलाता है, ये मध्यम अन्तरात्मा जिनेन्द्र भगवानके वचनो

का बडा प्रेमी होता है। सर्वज्ञ देव द्वारा प्रणीत ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ९ पदार्थ, ७ तत्त्व इन सबकी चर्चामे इस सबके मर्ममे निश्चयनय व्यवहारनय स्याद्वाद सर्वविधियोसे इसके स्वरूपका विवेक करके इस तत्त्वज्ञानमे प्रसन्न रहा करते है ये मध्यम अन्तरात्मा है। ये श्रमशील है, क्षमाशील है, क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायोमे इनकी तीव्रता नही है इसलिए ये मध्यम अन्तरात्मा कहलाते है। ये बडे आन्तरिक बलको धारी है। उपसर्ग और परिग्रह आ जाये तब भी अपने व्रतका खण्डन नही करते। चूंकि ज्ञाताद्रष्टाकी विधिसे जरा वे अभी हटे हुए है अतएव इतने ऊँचे तपश्चरण करनेपर भी ये मध्यम अन्तरात्मा कहलाते है।

अविरय–सम्मादिट्ठी होंति जहण्णा जिणिंद–पय–भत्ता।
अप्पाणं णिंदता गुण–गहणे सुट्ठु अणुरत्ता ॥१९७॥

जघन्य अन्तरात्माका स्वरूप— जघन्य अन्तरात्माका स्वरूप इस गाथामे बता रहे है। जो जीव व्रतरहित है और सम्यग्दृष्टि है उन्हे जघन्य अन्तरात्मा कहते है। सम्यग्दृष्टि हुए विना अन्तरात्मत्व नही प्रकट होता इसलिए जघन्य अन्तरात्माका सम्यग्दृष्टि होना सर्व प्रथम आवश्यक है। और चूंकि उसके कोई व्रत नही है, यद्यपि अनेक आचरण उसके उचित ही हो रहे है, फिर भी व्रत न होनेके कारण, नियम सकल्प न करने के कारण उसे अविरत कहा गया है, इसलिए अविरत सम्यग्दृष्टि जीव जघन्य अन्तरात्मा कहलाते है। ये चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव होते है, ये चाहे उपशम सम्यग्दृष्टि हो अथवा वेदक सम्यग्दृष्टि हो या क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो, सब प्रकारके सम्यग्दृष्टि व्रतरहित अवस्थामे जघन्य अन्तरात्मा कहलाते है। अन्तरात्मत्व जिनके प्रकट हो जाता है वे वहिरात्मा सर्वज्ञ जिनेन्द्रके चरणकमल मे अनुरक्त हुआ करते है। जिसको अपने आपके कैवल्य प्रकट करनेकी उत्सुकता जगी है वे जो कैवल्य प्रकट कर चुके है। उनकी उपासनामे अनुरक्त हो जाते है। जिनको जिसकी चाह है वह वात जहाँ प्रकट होती है वहाँ उनका चित्त रमता है। तो जिनको अपने आपमे कैवल्य प्रकट करना है, अन्तरात्मा जीव अपने आपमे यह भावना रखते है कि वह कव क्षण हो जव देहसे, कर्मसे, विभावसे, विकल्पोसे निराला केवल ज्ञानमात्र जैसा कि मैं सहज सत् हू वैसा ही व्यक्त रूप बन जाऊँ, केवल यह ही भावना है और इस उत्सुकताके बलपर वह सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा बन गया है। तो ये अन्तरात्मा जिनेन्द्र चरण कमलमे अनुरक्त रहा करते है। इनको गुणोके ग्रहण करनेमे वडी उत्सुकता लगी रहती है, गुण क्या है जिसको गहण करना है? वह है केवल एक सहज शुद्ध ज्ञानानन्द मात्र जो आत्माका स्वभाव है उस स्वभावको दृष्टिमे लिए रहना। काम तो केवल एक यही करनेका है। मगर यह काम वने कैसे? जव कि यह जीव नाना प्रकारके विषय कषायोमे अनादिसे लग रहा है और

उसके संस्कारमे पल रहा है तो ऐसी स्थिति वाले जीव इस विशुद्ध गुणके ग्रहणमें कैसे लगे ? उसके लिए जो उपाय प्रयत्न रचेंगे वे प्रयत्न होंगे अणुव्रत महाव्रत रूप । पंच पापों का त्याग करना और और भी अनेक तपश्चरण करना । तो ये अन्तरात्मा व्रत तपश्चरण संयम इनके ग्रहणमे आसक्त रहते है ।

गुणग्रहणके अकृत्रिम स्नेही अन्तरात्मा—अन्तरात्माका उत्कृष्ट स्नेह होता है गुणके ग्रहण करनेमे याने जैसे अनेक लोग कृत्रिमतासे व्रत ग्रहण करते है, वैसा कृत्रिमतासे उनका व्रतग्रहण नही है । अन्तरात्मा जो व्रत ग्रहण करेंगे वे कृत्रिमतासे नही, उनका व्रत ग्रहण उत्कृष्ट सहज और सुगम होता है । जैसे कुछ लोग ऐसा सोचकर कोई व्रत ग्रहण करते है कि मैं मुनिव्रत ग्रहण करूँगा, मै इतने सब परिग्रहोका त्याग करूँगा, यथाजात लिङ्ग धारण करूँगा । इस तरहका विधि विधानका संकल्प करके मुनि होते और कोई ज्ञानी पुरुष चूँकि उसे आत्माकी उपासनाकी धुन लगी हुई है इस कारण वे बाह्यसंगको बाधा जानकर उनसे दूर होते है । जैसे वस्त्रसे बाधा आना, उसे धोना होगा, सुखाना होगा, सिलाना होगा, उसकी चिंता रखनी होगी, अथवा जो जो भी बाह्य संग है उन सबको बाधक जान कर उन बाधाओसे हट रहे है, बस यही उनके व्रतका रूप बन रहा है । ज्ञानी जीवके बाह्य विकल्पमय विधिविधानका संकल्प नही किन्तु किसी भी प्रकार बाधाओसे हटकर एक चैतन्य स्वरूपमे दृष्टिको दृढ करनेका भाव है । और उसी प्रयत्नमे उसकी दिगम्बर मुद्रा बनती है । तो यह ज्ञानी जीव व्रत संयम तपश्चरणको ग्रहण करनेमे अकृत्रिम स्नेह वाला होता है और इसको गुणोंमे और गुणीमे (दोनोमे) प्रमोद रहता है । जिनको अपने गुण-विकासमे प्रमोद है वे गुणविकास वाले दूसरे जीवोमे भी प्रमोद रखते है, ऐसे ये जघन्य अन्तरात्मा चतुर्थगुणस्थानमे होते है और ये गुणस्थानोमे बढ बढकर ऊँचे गुणविकासमे बढ कर अन्तमे ये क्षीण कषाय गुणस्थानमे उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहलाने लगते है ।

स-सरीरा अरहंता केवल-णाणेण मुणिय सयलत्था ।
णाण-सरीरा सिद्धा सव्वुत्तम सुक्ख-संपत्ता ॥१९८॥

परमात्माका स्वरूप—अब परमात्माका स्वरूप निरखिये । ये प्रभु दो प्रकारके होते है—अरहंत और सिद्ध । जो शरीरसहित परमात्मा है उनको अरहंत कहते है, जो शरीर-रहित परमात्मा है उनको सिद्ध कहते है । चाहे सिद्ध हो, अथवा अरहंत हो, केवलज्ञानके द्वारा समस्त विश्वका स्पष्ट ज्ञान सबके रहता है । और सर्वोत्तम जो आत्मीय आनन्द है उस आनन्दसे सम्पन्न सभी रहते है । ज्ञान और आनंदका विकास पूर्णतया अरहंतमे है और सिद्धमे है । अरहंत भी अघातिया कर्ममलोके दूर करनेपर सिद्ध ही तो होने वाले है । तो यो परमात्मा का अर्थ है ज्ञान और आनन्दका पूर्ण विकास ही तो परमात्मा है । यह जीव

ज्ञानानन्दभावस्वरूप है। ज्ञान और आनन्दके भावमे अपने आपको निरखनेसे अपना दर्शन होता है और उसमे भी आनन्दको नही किन्तु ज्ञानस्वरूपको एक ही ज्ञानमे लिया जाय तो आनन्द स्वयं व्यक्त होता है और आत्माका वहाँ अनुभव जगता है, तो प्रभु ज्ञानानन्दके परिपूर्ण स्वामी है। सर्वज्ञदेव, परमात्मा, सकलपरमात्मा अभी शरीरसहित है लेकिन उनका शरीर परमौदारिक कहलाता है। धातु और उपधातु दोषोसे रहित है। धातु कहलाते खून मास मज्जा आदिक और उपधातु कहलाते है मल मूत्रादिक। इन धातु उपधातुओसे वे रहित है। ३४ अतिशय एव ८ प्रातिहार्योसे सहित है और अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त-आनन्द, अनन्तशक्ति जिनके पूर्ण प्रकट हुई है ऐसे अरहतदेव जिन्होने मोहादिक सर्व दोषोका घात कर दिया है वे विशुद्ध आनन्दमय है। हम आप प्रभुकी भक्ति क्यो करते ? वे कोई हम आपके रिश्तेदार नही है, वे कोई हमारे लौकिक कामोमे साथ देने वाले नही है, वे तो अपने स्वरूपमे लीन है। हम आप भक्ति यो करते हैं कि यह स्वरूपलीनता ही तो पूर्ण वैभव है और उस ही स्थितिमे हमारी पूर्णता, हमारा उत्कृष्ट विकास है और सत्य आनन्द इसी पदमे है, यह बात हममे सम्भव हो सकती है। इस कारण हम प्रभुके अनुरक्त हुआ करते है और अपना तन, मन, धन, वचन सब कुछ न्योछावर करके भी हम प्रभुभक्तिका अपना कार्यक्रम बनाया करते है। ये प्रभु १३ वे गुणस्थानवर्ती जीव कहलाते है, सयोग-केवली जिनके केवलज्ञान हो गया, जो शरीरसहित है, और योग भी जिनके अभी विद्यमान है, जिससे उनका विहार, दिव्यध्वनि ये सब क्रियाये चलती है, कुछ केवली ऐसे भी होते है कि जिनकी दिव्यध्वनि न भी हो वे चाहे सामान्यकेवली अरहत हो, चाहे सिद्ध भगवान हो पर ज्ञान और आनन्दके विकासमे कही भी अन्तर नही रहता है, अन्य केवलज्ञानी जिन्होने समस्त अर्थोको जान लिया है वे सशरीर परमात्मा अरहत कहलाते है, और जब शरीरसे भी वियोग हो गया, केवल धर्मादिक द्रव्योकी तरह पूर्ण विशुद्धि प्रकट हो गई है और ज्ञाना नन्दके परिपूर्ण विकासमे तो थे ही, वे ज्ञानशरीरी सिद्ध भगवान कहलाते है। उनके शरीर मे ज्ञान ही ज्ञान रह गया, वाह्य शरीर भी उनके साथ नही रहा। ऐसे सर्वोत्तम आनन्दसे सहित सिद्ध भगवान, वह आत्माकी विशुद्धि की उत्कृष्ट अवस्था है।

अध्यात्मसाधनाका प्रयोजन—अध्यात्मसाधना या आत्मध्यान किसलिए किया जाता है, उसका फल है कभी न कभी ऐसी कैवल्य अवस्था प्रकट हो जाय। इसके लिए ही हमारे समस्त धर्मपालन हुआ करते है। हम आपकी उत्कृष्ट अवस्था सिद्ध अवस्था है, जो आज प्रकट नही हैं, मगर योग्यता है कि हम सिद्ध हो सकेंगे। वे जीव बडे भाग्यवान है जिनके चित्तमे यह बात आ जाती है कि मुझे तो सिद्ध होना है और मेरा कोई प्रोग्राम नही है। घरमे रहते हो अथवा गृह त्याग करके भी जो जीव अपने आपके इस सकल्पमे बने हुए है,

जिनकी एक ही धुन है उनका अन्त चारित्र उज्ज्वल रहता है। जितना भी जिनके चारित्र प्रकट हुआ वे उतने साफ है, वे अँधेरेमे नही है। उन्हे किसी गाँवसे देशसे कुछ प्रयोजन नहीं, शरीर तकसे भी कुछ प्रयोजन नही, उनका प्रयोजन तो सिर्फ उनके इष्टकी सिद्धि है। तो अपने आपके स्वरूपका विशुद्ध हो जाना, केवल रह जाना, इस कैवल्यकी प्राप्तिमे इस जीवका सदाके लिए सकट मिट जाता है। सकट है जन्म मरणका। हम अपने जीवनमे कितना राग द्वेष स्नेह बढाते है, लोगोको निरखकर अपनेमे कुछ अभिमान भी किया करते है। मैं क्या हूं? और नही तो इस पोजीशनका ख्याल तो सभी लोग करते है। मेरा पोजीशन कही खराब न हो जाय। चार आदमी यदि जान गए कि हमारा पोजीशन बिगड गया तो यह दुखी होता है। अरे अगर दूसरेकी अपेक्षा न करे, केवल आपको निरखकर ही सारे काम किया करे तो अनेक सकट तो उसके उसी समय मिट जाते है। अकेले की पोजीशन क्या बिगडती है? दूसरोकी दृष्टि रखते है तो उसमे पोजीशनका बनना सुधरना समझा जाता है। अकेलेको देखा तो उसमे ये विकल्प न रहेगे। तो यह मै केवल अकेला जैसा मैं हू सो ही होऊँ। मोहमे आ करके दूसरोसे सम्पर्क बनाकर मै एक अपनी अधेरी दुनियामे फिरता हुआ चक्र काटता रहा हू बस वह चक्कर मेरा मिट जाय और मै केवल अपने आप में ही रत रह सकूँ, ऐसी मुझमे योग्यता बने, ऐसी अनुभूति रहे तो इसमे ही परम कल्याण है, और किसी भी जगह कल्याण नही है।

कैवल्यसाधनामें तत्त्वज्ञानका सहयोग—कैवल्यकी साधनाके लिए चाहिए हमे तत्त्वज्ञान। पदार्थका ज्ञान शुरू होता है उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप समझनेसे। देखिये—यदि एक यह ही ज्ञान बन जाय कि प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यका स्वभाव रखता है, है ना कोई पदार्थ, जो है वह स्वभावसे उत्पन्न होता रहता है विलीन होता रहता है और बना रहता है। सभी सत् पदार्थोकी यही विशेषता है और इस स्वभावके कारण यह बात प्रकट ज्ञानमे आयगी कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपसे बन रहे है, बिगड रहे है और बने हुए है। लो अब उस पदार्थकी किसी भी बातके लिए दूसरेकी अपेक्षा क्या रही? यद्यपि विकार भाव परपदार्थका निमित्त पाकर होते है, हो, निमित्त मिल गया, इतनी बात बन गई, मगर परिणमनमे तो अपेक्षा नहीं रखते, क्योकि परिणमन होना वस्तुका स्वभाव है। और प्रत्येक पदार्थ अपने स्वभावसे परिणमता रहता है, परिणमनमे जो विशिष्टता आयी वह नैमित्तिक है, औपाधिक है, परभाव है, लेकिन कोई भी पदार्थ अपने परिणमनमे अपेक्षा नही किया करता। दूसरे पदार्थके सन्निधानमे हो गया, निमित्त मिल गया, यह बन गई अपेक्षा, पर इस स्थितिमे भी परिणमन उसकी परिणतिसे चल रहा है, परिणतिके लिए कोई किसी अन्यकी प्रतीक्षा नही करता। यहाँ हम आप समझाया करते है कि यह परिणमन सापेक्ष

है। मतलब उसका यह है कि ये विभाव परिणमनपर उपाधिसन्निधान बिना नही हो सकते। यह नियम अबाट्य हे, इसमे कोई दो बाते नही हे, इतने पर भी परिणमने वाले पदार्थ अपनी ओरसे स्वत अपनी परिणतिसे परिणम रहे है। हा सन्निधान ऐसा है कि वह इस तरह परिणम गया। प्रतीक्षा करनेकी बात नही रही। जैसे कोई बालक चल रहा है, गिर रहा हे, पड गया हे, उठ गया है, सब कुछ कर रहा है पर उन सब स्थितियोमे वह बालक ही अपनेमे कर रहा है। उसमे जैसी जब जमीन मिली ऊँची नीची जमीन मिली या कुछ भी कारण मिले उसके अनुसार वह गिर रहा, पड रहा, चल रहा, सब कुछ साधन बन रहे, तो निमित्त सन्निधान बीच-बीचमे आ रहे, मगर यहाँकी धारा तो देखो वह अपने आपका अपने रूपसे सब कुछ कर रहा है। तो जब वस्तुका उत्पादव्ययध्रौव्य समझमे आता है, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे उत्पन्न होता हे, विलीन होता हे और बना रहता है, तब एक पदार्थका दूसरा पदार्थ लगा क्या ? देखिये वस्तुका स्वातत्र्य इस लिए समझा जाता हे कि मोह हटे। और क्या प्रयोजन है ? देखिये—है वस्तु स्वातत्र्य तभी स्वातत्र्य समझा जाता है।

क्लेश और आनन्दका आधार मोहिता और निर्मोहता—मोह ही हम आपकी परेशानीका एक आधार है। मोह नही है तो कोई परेशानी नही है। मोह है तभी तो हम आप कितनी परेशानीमे हे ? धनिकोके बडे ऊँचे काम चल रहे है, देखनेमे तो बडे आराममे रहते हुए दिखते है लेकिन भीतरमे यदि मोह परिणाम है तो यहाँ सब बिगाड कर लिया। भीतरमे जो आत्माका विशुद्ध ज्ञान तत्त्व है वह तो बिगड गया। अब वहा शान्तिकी कहाँसे आशा हो ? और कोई पुरुष जगलमे रहता है, कपडे भी नही है, खानेकी भी कोई नियत व्यवस्था नही है, जहाँ कोई साथी मनुष्य भी नजर नही आता, वह ज्ञानी पुरुष है तो उसे हम पूज्य शब्दसे कहते है। ये साधु है, किन्तु स्थिति तो बन रही है बडी दरिद्रताकी, न कोई साथी है न कोई व्यवस्था है, जगलमे पडे है, कंटको पर पडे है, ककरीली जमीन पर पडे है, पासमे कोई चीज नही है लेकिन चित्तमे किसी भी परपदार्थका स्नेह नही है, मोह नही है। वे केवल अपने आपमे सहज अन्त प्रकाशमान प्रभुकी उपासनामे लगे रहते है। ऐसी धुन वाले वे पुरुष बडे सुखी है, बडा आनन्द पा रहे है, बडे तृप्त है, यह अन्तर मोह होने और न होनेका हे। मोह न हो इसके लिए यह आवश्यक है कि हम प्रत्येक पदार्थ को स्वतत्र जान ले। और, इसी धुनमें यद्यपि विकार परिणाम निमित्त पाकर होते है, यह वहाँ अपेक्षा पडी हुई है लेकिन परिणमने वाला पदार्थ तो अकेला है, केवल है। उसका तो परिणमनेका काम है। ऐसा अनुकूल निमित्त है उस रूप परिणम गया, जैसी व्यवस्था है उस रूप परिणम गया। उसे तो परिणमनेका व्रत है। विशिष्टता जो विकारोकी आती है

वह उपाधिके सन्निधानसे आती है। जब समझ लिया कि प्रत्येक पदार्थ स्वभावसे उत्पन्न होता है, विलीन होता है और शाश्वत रहा करता है, तब उसका किसी दूसरेसे क्या लेन देन, क्या सम्बध ? और, सम्बंध अगर मानते है तो यह सबसे बडा अधेरा है, अज्ञान है।

मोहमें अवगत घटनाकी स्वप्नवत् असत्यता—स्वप्नमे जो कुछ दिखता है क्या स्वप्न देखने वाला यह समझ रहा है कि यह झूठा है ? झूठ नही मालूम होता, और इसी कारण अगर सुखकी घटनाका स्वप्न आता है तो हर्षके मारे भीतर फूला रहता है और दुखमयी घटनाका स्वप्न आता है तो वह अन्दर रोता रहता है, यह उसकी स्थिति बराबर बनी हुई है। तो स्वप्नके समयमे जैसे कोई यह नही समझ सकता स्वप्न लेने वाला कि यह स्वप्न है, यह झूठ बात है, इसी प्रकार मोहकी नींदमे रहने वालेको यह प्रतीत नही होता कि यह तो झूठ है, व्यर्थ है। भले ही कभी झंझटोसे ऊबकर ऐसा कोई कह डाले कि ये सब व्यर्थ की बाते है, किसका भाई, किसका लडका, किसकी स्त्री, मगर यह द्वेषवश कहा जा रहा है। किसी अनुकूल बातको न पाकर गुस्सेमे कहा जा रहा है, वस्तुस्वरूपके ढगसे नही कहा जा रहा है। वस्तुस्वरूपकी पद्धतिसे यदि यह समझमे आये कि मेरा कही कोई नही है, तो उसका कल्याण अवश्य होगा। लेकिन मोहकी नीदमे तो यह बात दिखती है कि यह सब सच है, मेरा ही तो लडका है, मेरा ही तो भाई है, मेरा ही तो सब कुछ है। बस यही विपत्ति इस जीवपर है।

अन्तःकल्याणवृत्तिका साहस—इतना साहस बना ले यदि कोई कि आखिर फैसला तो होगा, मरणके बाद मेरा कुछ न रहेगा, मै अकेला ही यहाँसे चला जाऊँगा। अकेले ही सब कुछ भोगना होगा, तो जो बात १०-२० वर्ष बाद बीतनेको हो उस जैसी बात यदि अभीसे सोचने लगे तो यह थोडे समयके लिए तो कुछ किसी प्रकार रहा, मगर वह इतना फायदा पायगा कि सदाके लिए जन्म संकट उसके मिट जायेगे, ऐसा मार्ग पा लेगा। तो हम अपने अन्त कुछ ऐसा चिन्तन बनायें कि मेरा कही कुछ नही है, देह भी मेरा नही है। मै तो अकेला चैतन्यस्वरूप हूं, ज्ञानमात्र हूँ। यही मेरा प्रयत्न हो। मै हू और मेरा व्यापार पुरुषार्थ इतना ही हो रहा कि मै स्वभावसे उत्पन्न होता रहता हू, विलीन होता रहता हू और सदा बना रहता हू। इतना ही तो मेरा काम है, यही मेरा अस्तित्व है, यही मेरा घर है, जिन प्रदेशो मे मै रहता हू वही मेरा घर है, वही मेरी पूर्ण दुनिया है, ऐसे अपने आपके स्वरूपपर दृष्टि पहुचे तो मोह छूटेगा। मोह छूटेगा तो कल्याण होगा। मोह छूटेगा नही, तो जो अब तक संकट भोगते आये बस वही सकट रहा करेगे। मनुष्यभव व्यर्थ ही पा लिया। न पाते मनुष्यभव तो चलो एक सुविधा तो थी कि दो हजार सागर प्रमाण त्रस के भवोंमे मनुष्य भव पानेकी गिनती तो न वढती। मानो इस बीच २४ भव पाये जाते

और आज मनुष्य न होते, जैसे कि अधर्मकी स्थितिमे रह रहे तो कमसे कम यह रहता कि इतने २४ भव तक हो सकनेका हमे अधिकार है और मनुष्यभव पाया और व्यर्थ गया तो एक अधिकार तो एक नरभवका छूट गया। लाभ क्या मिला ? तो लाभ है ज्ञान बढाया जाय, वैराग्यका विकास किया जाय। मोह न रहे और अपने आपका जैसा केवल ज्ञान-स्वरूप है उस स्वरूपमे हमारी दृष्टि रहे तो इसमे हमारा कल्याण है और बाहरी बातोमे, चर्चामे, विवादमे, सम्पर्कमे, पोजीशनमे, किसी भी बातमे इस आत्माका कल्याण नही है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन चतुर्थ भाग

लोकानुप्रेक्षाके प्रकृत प्रकरणमें आत्मपदार्थकी चर्चा—लोकमे जितने पदार्थ है उनके वर्णनके प्रसङ्गमे आत्मपदार्थका वर्णन चल रहा है। आत्मा तीन प्रकारके होते है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। और, चौथी बात तत्त्वकी समझनेकी यह है कि इन तीन प्रकारकी पर्यायोमे रहने वाला जो एक सामान्य आत्मतत्त्व है अर्थात् जिस आत्मतत्त्वकी ये तीन प्रकारकी दशाये बनती है, वह आत्मतत्त्व स्वरूपत शाश्वत एकस्वरूप है, इस प्रकारकी चार बाते माने बिना किसी भी बुद्धिमान दार्शनिकका काम नही चल पाता। जिसको कुछ दार्शनिकोने जागृत दशा, सुषुप्ति दशा, अन्त प्रज्ञ और ब्रह्म इन चार रूपोमे कहा है। जागृत का अर्थ है जो जग रहा हो। व्यवहारमे–लौकिक कामोमे दुनियावी बातोमे जो जग रहा हो, वह उनका जागृत है अर्थात् बहिरात्म दशा। यद्यपि एकदम समझमे यह बात आती है कि जगने वालेकी दशा अच्छी दशा कहना चाहिए, पर उनके मतव्यमे इस आत्माका जगना, लगना, उपयोग करना ये सब निकृष्ट रूप है। तो जागृत दशा बहिरात्माकी दशा है। सुषुप्त दशा अन्तरात्माकी दशा है। जैसे कोई पुरुष सो गया तो अब वह व्यवहारके कामोमे नही लग रहा, इसी तरह जो व्यावहारिक बातोमे न लग रहा हो वह सुषुप्त अर्थात् ज्ञानी है। अन्त प्रज्ञ वह है जिसका ज्ञानबल भीतरमे बढ रहा हो। परमात्मदशा और ब्रह्म, जिसे चतुर्थपाद शब्दसे भी कहा गया है वह एक ब्रह्मस्वरूप। तो इसी तरह आत्माकी ये चार स्थितियाँ बतायी गई है जिनमे सामान्य स्थिति तो परिणति नही है किन्तु वस्तुका शाश्वत स्वरूप है। परिणतियाँ तीन है—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। अपने स्वरूपसे बाहर वाली बातमे आत्माको तक रहा हो, देहको आत्मा मान रहा हो वह बहिरात्मा है, मूढ है, मिथ्यादृष्टि है, मोही है। और जो अन्त की बातको अपने ही अन्त स्वरूपसे सहज शाश्वत स्वरूपको जो स्वीकार करता हो उसे कहते है अन्तरात्मा और जो परम आत्मा हुआ हो उसे कहते है परमात्मा।

परमात्मत्वस्थिति—परमात्मा शब्द दो शब्दोके मेलसे बना—परम व आत्मा। परम अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा। परमात्मा शब्द ही इस बातको बता देता है कि यह आत्मा

निकृष्ट दशामे था, उस निकृष्ट दशासे निकलकर जो उत्कृष्ट दशामे आया हो उसे परमात्मा कहते है। परमात्मा अरहत और सिद्ध दो प्रकारके है—सशरीर और अशरीर। कोई भी सिद्ध जब अपने आत्मामे आत्मस्वरूपको निरखनेका दृढतम अभ्यास बनाता है, अनुसधान करता है तो उसके इस दृढतम प्रयोगसे उपयोगकी एकता हो जाती है। अब ज्ञान ज्ञानमे समाया हुआ है ऐसी निर्विकल्प समाधि बनती है। यह समाधि जब उत्कृष्ट काल तक बन जाय तो वहा केवलज्ञान उत्पन्न होता है। केवलज्ञान होनेपर साधु तो वही है ना, अभी शरीर है, भले ही केवलज्ञान होनेसे अतिशय हो जाता है शरीरमे कि वह परमौदारिक शरीर हो गया अब धातु उपधातुकी अपवित्रता नही रही। उनका शरीर स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ हो जाता है। लेकिन वहाँ भी शरीर ही तो है। तो जब तक शरीरसहित अवस्था रहती है तब तक सशरीर परमात्मा कहलाते है। अब यह शरीर कब तक टिकेगा? कर्मबन्ध हो नही रहा। और कर्म, निर्जरा बराबर चल ही रही है तब कर्मका निकटकालमे ही अन्त आवेगा ही। तो जिस क्षण शेष बचे हुए अघातिया कर्मोका अन्त होगा उसके साथ ही शरीर समाप्त होगा। निष्कर्म दशा हो जानेसे अब नये शरीर न मिलेगे। सो अब वे अशरीर रह जाते है। अशरीर परमात्मा सिद्धको कहते है।

सांसारिक स्थितियोंमे उत्कृष्टताका अन्वेषण व आकांक्षण करनेकी व्यामोहमात्रता—जीवोके मनमे यह आकांक्षा रहती है कि मै सबसे ऊँचा बनूँ और जिस परिस्थितिमे जितना ऊँचा बन सकनेकी सम्भावना होती है उसको यह अपनी धुनमे लेता है कि मैं ऐसा होऊँ, मेरी इतनी बाधाये समाप्त हो जाये, ऐसी बात लोगोके चित्तमे रहती है। जितना जिसने अपनेको सम्भावनामे आया हुआ उत्कृष्ट समझा है वह उतना उत्कृष्ट बनना चाहता है, लेकिन सासारिक स्थितियोमे इन बाहरी लौकिक समागमोमे कौनसी स्थिति कौनसा समागम ऐसा है जिसे हम उत्कृष्ट कह सके? मान लो बहुत धनिक हो गए तो वह क्या उत्कृष्ट स्थिति है? उपयोगमे अशान्ति है। अनेक प्रकारकी बाधाये है, उतना ही काम बढ गया है, केवल ख्यालमात्रका इतना मौज है कि जब पटिलकमे पहुचे तो लोग उसका सम्मान करते है। मगर यह सम्मान झूठा मायारूप है, इस जीवको पतनमे ले जाने वाला है। ऐसे मायामयी, असार-कल्पित मौजको माननेके लिए इस जीवनको कितना सकटोमे डाल लेते है? तो विशेष धनिक बननेमे क्या सार? परिवार वाले बन गए, बहुत नाती पोते हो गए, परिजन बहुत बढ गए, उसमे भी क्या सार मिला? आकुलता, वेदना अधिक बढ़ गई। लोग तो यो सोचते है कि यह पुरुष बहुत वृद्ध हो गया है, इसने चार पाँच पीढी तकके लोगोको देख लिया है, यह बहुत ही भाग्यशाली है। और उस बूढेके मरने पर लोग सोने की सीढो बनवाते है यह सोचकर कि इसको स्वर्गमे चढने पर यह सीढी काम देगी, पर

उन्हे यह पता नही कि सीढी तो उतरनेके काम भी आती है। जिस बूढेने अपने चार पाँच पीढीके लोगोमे इतनी ममता रखी उसका क्या होगा ? वह तो नरक जानेका पात्र है। तो सम्भव है कि वह सोनेकी सीढी उसे नरकमे जानेमे काम दे। तो यहाँके इन सासारिक समागमोमे क्या सार रखा है।

संसर्गकी असारता—खूब ध्यानसे सोचो—ये पडोसके लोग या ये जानकर लोग मुझे अच्छा कह दे, इनकी दृष्टिमे मै भला जचूं ये सब विकल्प क्या है ? यह सब व्यामोह है, व्यर्थकी बाते है। ये लोग क्या कोई ईश्वर है या भाग्यके विधाता है ? अरे ये सब तो कर्मोके प्रेरे जन्म मरणका चक्कर लगाने वाले, स्वय अपना बोझ न सम्हाल सकने वाले है। और फिर कितनी बडी यह दुनिया, ३४३ घनराजू प्रमाण इस लोकमे यह परिचित क्षेत्र स्वयभूरमण समुद्रके एक बूंदकी तरह है। और, फिर कितनासा यह जीवनकाल है, उस अनन्तकालके सामने यह १००-५० वर्षका जीवन कुछ गिनती भी रखता है क्या ? तो इतनेसे समयके लिए क्या सोचना ? यह सारा समागम यह परिचय असार है। यह सब परिचय समाप्त हो, जैसे कि मुझे किसीने समझा ही न हो, परिचय ही कुछ न हो, हम जानते ही न हो। और वस्तुत हम जानते नही, दर्शनशास्त्रकी दृष्टिसे, वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे हम सदा अपने आपको जान रहे है। जो मुझमे ज्ञेयाकार आते है, जितने विकल्प बनते है हम उनको ही जानते है, किसी दूसरेको जानते नही है। और, इस तरह मान लो उपचार से भी दूसरोका जानना सही, किन्तु परका जानना तो कहलाया। तो वहाँ भी हम लोग पर्यायरूपमे जान रहे। जो इसका वास्तविक रूप है शाश्वतस्वरूप सहजभाव, उसका पारखी है यहाँ कौन ? और, यदि कोई पारखी हो तो वह इस दुनियाके परिचयसे अपरिचित हो जायगा। तो मेरा यहाँ कौन है ? किसको क्या दिखाना है ? मैं स्वयकी दृष्टिमे यदि ठीक बन गया, अपना शुद्ध शाश्वत केवल जैसा मेरा सहज स्वरूप है चैतन्यमात्र एक उसे अगर अपने उपयोगमे लिया तो उसका भला है, कल्याण है, उसका सन्मार्ग स्पष्ट है और इतनी बात यदि अपने लिए न कर पाया तब क्या है ? सब नौकरी ही है दूसरो की। जिन जिन जीवोके पुण्यका उदय है उनके पुण्यके उदयमे नौकरी करनी पड रही है, इसके आगे और कोई सारभूत बात कुछ नही है।

कैवल्यभावना, प्रभुभक्ति व प्रभुस्वरूप—जीवनमे सबसे बडा भारी करने योग्य काम यही है कि अपना ऐसा भाव बने कि सब झझट है, मुझे तो केवल बनना है। जो मैं हू वही रह जाऊँ और मै कुछ नही चाहता। यही प्रार्थना हो जिनेन्द्र भक्तिमे, यही भीतरमे भावना हो तत्त्वचिन्तनमे कि हे प्रभो जैसे आप जो थे सो ही हो गए, केवल रह गए, यही बात मैं भी चाहता हू। मैं केवल रह जाऊँ, मेरा स्वरूप मेरेमे है वही मात्र रहे, उसके आगे

मै और कोई सम्बध नही चाहता, ऐसी भावनासे जिसकी दृष्टि अन्त जगी है उसे कहते है अन्तरात्मा और अन्तरात्मा होनेका बल है ऐसा कि इस उपायसे वह परमात्मा बनेगा। परमात्माकी स्थिति कैसी होती है ? वह केवल है, शुद्ध है, उसका विकास अनर्गल है, निरवधि है, निरुपाधि है। ज्ञान है तो इतना महान है कि कोई ज्ञेय नही बचा ज्ञानमे आनेसे, क्योकि जो जिसका स्वभाव है उसका विरोधी अगर न रहे तो वह पूर्ण विकसित रहेगा। आनन्द है प्रभुमे तो ऐसा असीम है कि जिस आनन्दमे कोई सीमा नही है, अलौकिक आनन्द है, पूर्ण निराकुलता है, उपयोग अब जरा भी विचलित नही है पूर्ण विशुद्ध है। केवल जानन जाननका ही जहाँ काम हो रहा है। रागद्वेष इष्ट अनिष्टका जहाँ रच भी प्रसग नही है। आखिर एक हो गया, वहां किसीसे कुछ सम्बध नही रहा, ऐसी उत्कृष्ट स्थिति है परमात्मा की।

प्रभुभक्तिमें भी कैवल्यचिन्तनका प्रकाश—धन्य है वे पुरुष जिनमे भगवद्भक्ति और आत्माके कैवल्यचिन्तनकी बात जगती रहती है। ये दो ही तो काम करने है। उसमे मुख्य काम तो कैवल्यचिन्तन है। मै अपने स्वरूपमे केवल हूँ, अपनी सत्तासे जो हू सो ही हू, उसमे दूसरेका प्रवेश नही है। कोई भी सत् दो सतोसे मिलकर नही बनता। प्रत्येक सत् स्वतत्र है अर्थात् अपनी सत्तासे ही निष्पन्न है, किसी दूसरेकी सत्ता लेकर सत् नही हुआ करता। यदि मै सत् नही होऊँ तो बडी अच्छी बात। फिर संकट ही क्यो रहे ? असत्पर अभावपर सकट तो नही छाये जा सकते है। अगर मैं नही हू यह बात सही निकल आये तो यह तो बडी खुशीकी बात होगी, पर है कहा ऐसा ? और खुशी भी मनायेगा कौन ? मै नही हू, ऐसा जो ख्याल करते है, तो है वे, तभी तो ख्याल करते हैं। मै हू और मेरा सत्त्व कभी नष्ट नही हो सकता, मुझे अनन्तकाल तक रहना ही पडेगा। प्रत्येक सत् अनन्तकाल तक रहता ही है। तो मै रहूँ और ऐसी परिस्थितिमे रहूँ, कभी कीडा मकौडा बनूँ, पशु पक्षी बनूँ, स्थावर बनूँ, मनुष्य बनूँ, कुछ भी देही बनता ही चला जाऊँ, किसी न किसी पर्याय वाला ही रहा करूँ, यहा संसारकी बातोमे, तो ऐसा रहनेसे फायदा क्या ? बल्कि बरबादी ही है। अत हे प्रभो ! मेरी बस यह अन्तरङ्गमे आकाक्षा है कि वह काल आये, वह परिणति आये जहा मै केवल रह जाऊँ। मुझे इस देहसे भी प्रयोजन नही। देह मिलना यह तो संकटोसे भरा है। भूख प्यास, सर्दी गर्मी, चिन्ता शोक, इष्टवियोग अनिष्टसयोग सम्मान अपमान आदिकके संकट ये सब इस देहके बलपर होते रहते है। इस देहको भी मै नही चाहता।

नरदेहस्थ आत्माको शाश्वत देहविविक्त होनेका उपाय बनानेके लिये वर्तमान अपूर्व अवसर—यद्यपि आजकी ऐसी स्थिति है कि कोई कहे कि यदि देहको नही चाहते तो मर

जाओ, आत्मघात कर लो, छुटकारा हो जायगा, मगर इस तरहसे छुटकारा नही होता। मान लो इसी समय आप आत्मघात करके मर गए तो क्या अगले भवमे फिर देह न मिलेगा? अरे आगे फिर नये देहमे बँधना पडेगा और आज तो मनुष्य है, विवेक मिला है, बुद्धि मिली है, कुछ सोच समझ सकते है, तत्त्वचितन कर सकते है, कही मरण करके कीडा मकौडाके भवोमे पहुच गए तो क्या हाल होगा? तो यह मनुष्यभव कितना पवित्र भव है कि जहा हम इतना विवेक बना सकते कि सारे सकट मेट सकते है। हमारे ज्ञानमे वह बल है, हमारी दृष्टिमे वह सामर्थ्य है कि एक क्षणमे ही समस्त सकट मिट सकते है। अब लिए हुए है हग सस्कार वासना तो अब वह वासना जगती है, वह दृष्टि हमारी खतम हो जाती है, फिर वे ही सकट सामने आ जाते है, किन्तु सत्यदृष्टिमे जो चमत्कार है वह सामने आ ही जाता है। सत्य दृष्टि यही है कि जैसा म वास्तवमे हू सही अपने आप अपने ही सत्त्वके कारण, वैसा मेरा उपयोग रहे, ऐसा उपयोग होने पर एक भी सकट नही रहता। यह कला कितनी सरल है, ज्ञानसाध्य है। ज्ञान ज्ञानमे ही रहे रसमे कोई बाधा न आये, बाधा आये तो सत्वर दूर कर दी जाये, इसके लिए कुछ सयमकी आवश्यकता है जिससे कि हमारा वह ज्ञान ज्ञान बना रहे, ऐसे कामके लिए हमे इन्द्रिय और मनके विषयसे विरक्त होना होगा। अनेक इच्छाओका परिहार करके हमे अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि बनानी होगी। तो हमारी उस दृष्टिमे यह बल है कि हम सकटो को तुरन्त ही दूर कर ले। कितनी सुगम कला है, जानना है ज्ञानके द्वारा सही ढगसे, ईमानदारीसे, केवल गप्पोमे नही, किन्तु भीतरमे रुचि पूर्वक इस ज्ञानस्वरूपको समझना है। इतना सुगम ज्ञान और इतनी सुगम कला और सारे सकट समाप्त हो जाये इतना महान फल, उस कामके करनेके लिए उत्साह न जगे तो यह तो बहुत अज्ञान, मिथ्यात्व, महाआपत्ति समझ लीजिए, वास्तवमे जीवपर यही है सकट।

परपरिणतिको संकटरूप माननेकी मिथ्या मान्यता—मोही जीव मानता है कि कुछ धन कम हो गया संकट आ गया, अरे वह संकट है ही नही, झूठका ऊधम है। कोई मानता है कि मेरे परिजनका किसीका वियोग हो गया, या मेरा मित्र मेरेसे पृथक् हो गया, लोग अब मेरे अनुकूल नही चल रहे, मेरी बात नही मान रहे, मेरा यश नही गा रहे, इसे सकट समझते है। अरे यह सब झूठका ऊधम है, यह कोई सकट नही है। परपदार्थ है उनकी जो परिणति होती हो वह अपनेमे। कोई कुछ बोलता है, जो बोले सो बोले वह अपनेमे। कोई कुछ करता है करे वह अपनेमे। प्रत्येक पदार्थका परिणमन उसका उसके स्वयमे हो रहा है। हो उससे मेरेमे क्या है? मेरेमे संकट बाह्य पदार्थोकी परिणति वाला नही हे, किन्तु मेरेमे सकट अज्ञानका छाया हुआ है। जो हम अपने आपके स्वरूपको नही समझ रहे है, उसमे उपयोग नही दे रहे है, यह संकट हम पर छाया है, बाकी बातोको सकट न

माने। अगर अन्य स्थितियोको, सयोग वियोगको हम सकट समझने लगे तो हमारा उपयोग यही फंसा रहेगा, हम अपना कल्याण न कर पायेगे। इससे इन बातोको संकट जरा भी न माने। जिन्दगी है, घरमे रहते है इस वजहसे कुछ इसकी ओर चित्त देना पडता है तो दे मगर वहाँ यह हठ न बनाये कि इतने ही काम बने, ऐसा ही काम बने तो हम निश्चित हो सकेगे, अथवा हम धर्मके पात्र हो सकते है। अरे निश्चितता अभी ही आना चाहिये यही। कैसी ही स्थिति हो, अपने ज्ञानबल को सभाले, वस्तुके स्वरूपको निहारे, निश्चितता यही आना चाहिए। अगर यह निश्चितता नही आ सकती तो धर्मका पालन नही हो सकता। हम कैसी ही कठिन स्थितियोमे हो जिन स्थितियोको दुनियावी लोग बडी कठिन स्थितिया कहते है, पर कठिन स्थिति यहा कुछ नही है। जो बात बीते उसीमे यहा रहना पडता है। क्या अनेक दरिद्र लोगोका गुजारा नही चलता ? अनेक प्रकारके अपमानित लोग क्या अपना जीवन नही रखते ? सारी स्थितिया है, ये कोई सकट नही, यह कोई चिताकी बात नही। चिताकी बात यह बना लिया कि इस पर्यायके परिचयको सत्य मान लिया। ये सब मायामयी पर्याये है। इनका तो इस ढगका परिचय न होना ही भला था। इस परिचयसे हमने नफा कुछ न पाया। तो इन बाहरी बातोसे हम जरा भी संकट न माने, अपने आपमे हमारा ज्ञान जागृत रहे, मै अपने सत्य स्वरूपको समझता रहू, इसके लिए उत्साह जगना चाहिए।

वस्तुतः ज्ञानसाम्राज्यमें बाह्य संयोग वियोगकी अबाधकता--इस ज्ञानवार्ताको उत्पन्न होने देने मे बाहरी सयोग वियोग बाधा नही करते। अन्यथा बतलाओ, घोर उपसर्गोमे मुनियोको केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हुआ ? शेरनी प्राणघात कर रही है, स्याल खा रहे है, ईंधनमे मुनिराजको बद करके जला दिया गया, नदीमे बहा दिया गया, शस्त्रोसे छेदे जा रहे, आदि अनेक प्रकारके उपसर्ग किए जा रहे लेकिन उनका परम कल्याण हुआ। तो यहाका यह दुःख हमे धर्ममे लगनेसे रोकता है क्या ? यह प्राणी खुद ही मोहमे समझता है कि ऐसा सकट है, हम धर्म क्या करे ? अरे सकट तो धर्ममे और सहायक बन सकते है। बल्कि समागम या मौजके साधन हमारे धर्ममार्गमे सहायक नही बन सकते। तो इतना साहस जगाना चाहिए कि कुछ भी स्थितियाँ आये, ये सब परपदार्थकी परिणतिया है, जो कुछ भी हो रहा है उससे मेरेको कोई नुक्सान नही है। मैं उनके बारेमे जो अज्ञान भरा विचार बनाता हू, बस यही हमारी करतूत हमें दुःखी कर रही है। सकट है तो मुझपर यह है, यह संकट छूटे तो मेरा कल्याण है। बाहरी बातोमे सुधार बिगाड होने से मेरा कुछ कल्याण नही है। ऐसा जिसने अपने अन्त स्वरूपका निर्णय किया है वह पुरुष इस ज्ञानबल परमात्मा होता है। परमात्माका स्वरूप क्या है यह इस बातको "परम आत्मा" ये शब्द

ही बता रहे है। तो इन शब्दोकी व्युत्पत्ति पूछते हुए जिज्ञासु पूछ रहा है कि परमका अर्थ क्या और परका अर्थ क्या, मा का अर्थ क्या और परमात्माका अर्थ क्या ? इसके उत्तरमे कह रहे है।

णीसेस-कम्म-णासे अप्प-सहावेण जा समुप्पत्ती।
कम्मज-भाव-खए वि य सा वि य पत्ती परा होदि ॥१९९॥

परमात्मा शब्दमें प्रयुक्त परा शब्दके प्रकाशसे परमात्मस्वरूपका प्रकाश—परमात्मा के स्वरूपके सम्बन्धमे अनेक लोग नाना विवाद खडे करते है। कोई मानते है कि यह परमात्मा अनादिसे ही कर्मोसे मुक्त है, कोई कहते है कि यह सारे लोककी रचना किया करता है, कोई कहते है कि समय समयपर परमात्मा अवतार लेता है, कोई कहते है कि यह एक परमात्मा सर्वजीवोके घट घटमे बसा हुआ है। इस तरह नाना प्रकारकी कल्पनाये परमात्माके सम्बन्धमे होती है, लेकिन भली प्रकार शब्द पर ध्यान दिया जाय तो परमात्मा इस पदमे जितने शब्द है उनका जो अर्थ है सो यह शब्द ही सही सही बतला देता है। अर्थात् इन शब्दोके सहारेसे परमात्माका सही स्वरूप जान लिया जा सकता है। परमात्मा पदमे ३ शब्द है—पर मा आत्मा, पर मायने उत्कृष्ट, मा मायने लक्ष्मी और आत्मा मायने निरन्तर जाननहार पदार्थ। तो इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि उत्कृष्ट लक्ष्मी जहाँ प्रकट हुई है ऐसे जाननहार पदार्थको परमात्मा कहते है। तो इन शब्दोमे प्रथम पर शब्दकी उपपत्ति की जाती है। समस्त कर्मोका नाश होनेपर स्वभावसे जो समुपपत्ति होती है उसका नाम है परा। परमात्मा शब्दमे ३ शब्द बताये गए है—पर मा आत्मा, इनमे पर तो विशेषण है, मा विशेष्य है अतएव अलग अलग शब्द बनाते समय परा शब्द बोला जायगा क्योकि मा शब्द स्त्रीलिङ्ग है तो उसका विशेषण रूप पर शब्द स्त्रीलिङ्ग होगा। जिसका समास बनता है—परा मा विद्यते यस्य सा परम, अर्थात् उत्कृष्ट लक्ष्मी जहाँ विद्यमान हो उसे परम कहते है। लोग परम शब्दका अर्थ उत्कृष्ट करने लगे है, यह तो परम पदार्थ है, उत्कृष्ट है, अनोखा है आदि, किन्तु परम शब्दका अर्थ बन कैसे गया ? उसकी उपपत्ति इस प्रकार है कि जहाँ अधिक शोभा हो, अतिशय हो, लक्ष्मी हो उसे परम कहा करते है। वह परा लक्ष्मी क्या है ? जो समस्त कर्मोका नाश होनेपर अपने आपके स्वभावसे उपपत्ति हो उसको परा कहा करते है। यही बात प्रत्येक पदार्थमे घटित कर लीजिए। प्रत्येक पदार्थमे अन्य बाह्य सयोगका विनाश होनेपर जो अपने आपके स्वभावसे बनती है बात वह है परा। यहाँ आत्माकी बात चल रही है। आत्मामे जो उत्कृष्ट बात आत्माके स्वभावसे जगे, जो कि समस्त व्यापक कारणोके दूर होनेपर जग सकती है उस परिणतिको परा कहते है, अथवा कर्मजन्य भावोके क्षय होनेपर जो उपपत्ति होती है उसका नाम है परा। कर्मजन्य भाव है

रागद्वेष, मोह, विचार, विकार, इन सब भावोका विनाश होनेपर आत्मामे जो बात स्वय सहज बनती है उसका नाम है परा। ऐसी परा अर्थात् उत्कृष्ट अनुपम लक्ष्मी जहाँ हो उसे परम कहते है। ऐसा जो परम आत्मा है उसे परमात्मा कहते है।

परमात्मस्वरूपचिन्तनमे आत्मनिधिका प्रकाश—उक्त वर्णनसे जब हम अपने आपके स्वरूपपर दृष्टि देते है तो यहाँ कितना ही वैभव नजर आता है ? मेरेमे इस स्वभावसे ऐसी अपूर्व विधि है, ऐसा अपूर्व चमत्कार बसा हुआ है कि जिसमे रचमात्र भी आकुलता नही हो सकती। यदि हम इन सब बाहरी मायामयी विनश्वर असार अत्यन्त भिन्न पदार्थोका ससर्ग त्यागकर अपने उपयोगसे इन समस्त बातोको भूलकर एक गुप्तरीतिसे ही अपने स्वरूपका स्पर्श करने चलेगे, जहाँ पर अन्य कोई भी ख्याल न रहे, केवल अपने स्वरूपका अनुसहरण हो, स्मरण हो, उपयोगमे ज्ञानमात्र हो, केवल ज्ञानस्वरूप, केवल ज्योतिस्वरूप ऐसा अपने आपको मान मानकर अपने ज्ञानमे जब केवल ज्ञानमात्रस्वरूप ही बस गया हो उस समय जो अनुभूति होती है वह अनुभूति बहुतसे कर्मकलंकोका विनाश करती हुई उनका अपसंहार करती हुई प्रकट होती है। इसी कारण यदि इस अनुभूतिको काली महाकाली दुर्गा आदिक शब्दोसे कहा जाय तो यह कोई अर्थविरुद्ध बात न होगी। कालीका अर्थ है जो आत्माको हितकी प्रेरणा दे। कलयति प्रेरणाति आत्मान हिते इति काली, यह अनुभूति आत्महितमे प्रेरणा देती है, प्रयोगरूपसे लगा देती है, प्रयोगरूपसे लगा देती है, यही अनुभूति महाकाली है, कलयति भक्षयति शत्रून् इति काली। जो रागादिक दोषोको अथवा द्रव्यकर्मो को नष्ट कर दे उसे कहते है महाकाली। वह यह अनुभूति ही तो है जिसकी लोग शक्ति देवताके रूपमे आराधना किया करते है। वह शक्ति बाहरमे है कहाँ ? कहाँ उपयोगको बाहर मे घुमाया जा रहा है और कहाँ अनेक भुजाओ वाले देवताकी कल्पना करके चित्तको लगाया जा रहा है ? वह महाशक्ति अपने आपमे स्वयमे है, इस ज्ञानानुभूतिके प्रकट होते ही कितने ही कर्मकलक नष्ट हो जाते है। इसको यदि अनुयोग पद्धतिसे विचारा जाय तो यह कहा जाता है कि अनन्त ससार नष्ट हो गया। जो अनन्त जन्म मरणकी परम्पराको नष्ट करे ऐसी देवमयी शक्ति वह स्वानुभूति ही तो है। यही शक्ति बडी कठिनतासे प्राप्त होती है। जगतमे की जाने वाली ये सब बाते बडी सुगम लग रही है। परिजनोका समागम होना, नाना देहोका मिलना, आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदिक सज्ञाओका होना, पञ्चेन्द्रियके विषयोका साधन मिलना आदि ये सब कितने सुलभ हो रहे है, किन्तु कठिनाईसे प्राप्त की जा सकने वाली परिणति यह अनुभूति है स्वानुभूति ज्ञानानुभूति, आत्मानुभूति, इसीको ही दुर्गा कह सकते है। दुर्गाका अर्थ है—दु खेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा, जो बडी कठिनाईसे पाया जा सके उसका नाम दुर्गा है। कठिनतासे पायी जा सकने वाली चीज है यह अनुभूति।

काम भोग सम्पर्ककी असारता व मोहमें सुलभत्वमान्यता—ऋषिसंतोने बताया है कि काम भोग सम्बन्धी कथाये इस जीवने अनेक बार सुनी है, उनका परिचय अनेक बार हुआ है और उनकी अनुभूति भी अर्थात् आत्मस्वरूप रूपमे उनका अवगम भी अनेक बार किया है, सो सारा जगत इसी चक्रमे पडा हुआ है। और, कोल्हूके बैलकी तरह यह समझ रहा है कि मै सारा काम सीधा ही और नया-नया करता जा रहा हू। जैसे कोल्हूका बैल घूमता तो है उसी चक्रमे, यदि उस बैलको यह पता हो जाय कि मैं इसी गोल दायरेमे घूम रहा हूँ तो वह इसी ख्यालके बलसे चक्कर खाकर गिर पडेगा। मालिक उसकी आँखोमे पट्टी बाँध देता है और उस कोल्हूके बैलको चक्रसे घुमाया करता है। उस बैलको यह पता रहता है कि मै सीधा चल रहा हू और नई नई जगह जा रहा हू, इसी तरह इस जीवके ज्ञान नेत्र पर मोहकी पट्टी बँधी हुई है जिससे यह अंधा है। सो कर तो रहा है उन ६ विषयो का वही वही काम, जैसे—स्पर्शन इन्द्रियसे स्पर्शका विषय करना, रसना इन्द्रियसे रस का विषय करना, घ्राण इन्द्रियसे सुगध दुर्गन्धका विषय करना, चक्षु इन्द्रियसे अनेक प्रकार के रूपोका अवलोकन करना, कर्णइन्द्रियसे रागरागनीके मनोज्ञ अमनोज्ञ शब्द सुनना और मनके द्वारा यश अपयश, कीर्ति अकीर्ति, भोगोपभोग आदिके अनेक प्रकारके विचार बनाना आदि, सो ये सब काम यह कर तो रहा है अनादि कालसे, पर यह समझ रहा है कि मै ये काम रोज-रोज नये-नये कर रहा हू। ऋषि ज्ञानी संतोने तो इन भोगोको उच्छिष्ट कहा है क्योकि ये भोग बहुत-बहुत भोगे जा चुके है। जैसे कोई भोजन करे और उसे मुखसे उगल कर फिर करना चाहे तो वह भोजन उच्छिष्ट भोजन करना कहलाता है। इसी तरहसे ये इन समस्त भोगोको ऋषिजनोने उच्छिष्ट बताया है ये भोग भोगे जाने लायक नही है। लेकिन जब ज्ञाननेत्र पर व्यामोहकी पट्टी बँधी हुई है तो यह जीव समझता है कि मै आज कोई नया ही भोग भोग रहा हू कोई अपूर्व काम ही कर रहा हू। यो ये भोग अनादिकाल से इस जीवके लिए सुलभ हो रहे है। कर्मके योगसे ये सब साधन मिल जाया करते है, और मिल क्या जाया करते है, इन विषयोसे भरा आ ही तो यह संसार है। पुद्गल ही तो पडे हुए है, पुद्गलका ही रूप है। यह जीव जहा पहुचता है वही इसके भोगके साधन मौजूद है, अब इसमे पडा हुआ है अज्ञान तो उन भोग साधनोको यह भोगनेके रूपमे ग्रहण कर लेता है। यो जीवको ये सब काम भोग वाली कथाये सुलभ हो रही है, लेकिन अपने एकत्व विभक्त स्वरूपके दर्शनकी बात कठिन लग रही है और कठिन होनेका कारण यह है कि यह जीव कषाय भावोके कारण एकमेक बन रहा है, इसी कारण अपना स्वरूप तिरोहित हो गया। उसके दर्शन नही होते।

स्वभावपरभावविवेकसे सकल संकटोंका विध्वंस—यदि यह जीव एक इतना ही काम

करे, ऐसा निरखे कि मेरेमे जो इस समय भाव बन रहे है, कषाये जग रही है, रागद्वेषकी तरगे उठ रही है ये मेरे स्वरूप नही है, विकार है, परभाव है, औपाधिक है, मेरे स्वभावकी बात नही है, इतना ही विवेक यदि जग जाय तो इस विवेक कृत्यका इतना महान फल होगा कि इस जीवके समस्त संकट समाप्त हो सकते है। धर्मपालनके लिए क्या काम करना है? उसका एक छोटे रूपमे दिग्दर्शन कराया है कि विवेक करना है। विवेकके मायने है भेद विज्ञान। भेद कर देना यह मै ज्ञानमात्र हू और ये रागद्वेष विचार विकार आदिक भाव ये विभाव है, परभाव है, औपाधिक है, मेरेसे विपरीत है, अपवित्र है, विनश्वर है, इनसे मेरा पूरा न पड़ेगा, इनसे मेरा कल्याण नही है, बरबादी है। इतनी विवेक भरकी बात निरखना है, इसके फलमे फिर जो उत्साह जगेगा, प्रेरणामूलक सयम होगा वे सब अच्छेसे अच्छे कार्य इसके होने लगेगे। पर चाहिए इसको मूलमे विवेक। बतलाओ इसमे क्या कठिनाई है? जिस जगह बैठे है, जिस स्थितिमे पडे है, जहाँ कही भी है, आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, इसको तो कुछ न कुछ दृष्टिमे लेनेका स्वभाव पडा ही है। कुछ तो दृष्टिमे आयगा। यदि मायाको दृष्टिमे न ले और कुछ क्षण सत्य बातको ही दृष्टिमे ले तो कौन रोकता है? इसका क्या बिगाड है? इसपर कौन जबरदस्ती किए है? कोई शरीरपर जबरदस्ती भी करे, कोई मारे पीटे, बंधनमे बाँध ले, कहीसे कही पकडकर कोई ले जाय ऐसी स्थितिमे भी यदि यह जीव अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि करता है तो उस समय भी इसको दृष्टिसे कौन रोक सकता है? कारागारमे है, बधनसे बधे है, वहाँ भी यह स्वतन्त्रताका दर्शन करना चाहे तो वह अपने ज्ञान से स्वतंत्र है और उस समयमे स्वतन्त्रताकी दृष्टिका अमूर्त दृष्टिका वह लाभ ले रहा है।

दृष्टिके अनुकूल अनुभवन—भैया! बाह्य स्थिति कैसी ही कही हो, स्वाद तो दृष्टिके अनुसार आयगा। जैसे कोई किसी मैलेमे पडा हुआ है, पर मिश्रीकी डली मुखमे रखे हुए है तो वह तो मिश्रीका ही स्वाद ले रहा है, और कोई पुरुष बडी साफ जगहमे बैठा है, किन्तु कोई कडवी चीजको मुखमे रखे हुए है तो वह तो कडवा ही स्वाद ले रहा है। तो कितना सुगम और कितना पवित्र सारान प्रभुने बताया है कि भाई अपनी दृष्टिको निर्मल बनाओ। दृष्टि निर्मल बनानेमे कितना ही समय गुजर जाय, लगाइये समय कितने ही प्रयत्न करने पडे, करे प्रयत्न, और कितना ही बलिदान करना पडे, करते जाये बलिदान, यहाँ तक कि यदि प्राण भी गंवाने पडे तो गवा दे, पर एक इस निर्मल दृष्टिको प्राप्त कर लीजिए तो इस निर्मल दृष्टिको प्राप्त करनेका महत्त्व यह है कि ससारके सारे सकट इसके समाप्त हो जाते है। अपनेको निरखना है, अपनेको देखना है, कोई परतन्त्रता नही, किसीकी अपेक्षा नही इस काममे। जिसमे कि यह जीव अपनेको बडा स्वाधीन समझता है। इतना

वैभव हो जाय, तब ही हमे स्वतन्त्रता रहेगी, समझता है स्वतन्त्रता, मगर कितनी ही अपेक्षाये करनी पडती है, कितने ही लोगोका मुख तकना पडता है और कितने ही लोगोसे व्यवहार रखना पडता है। क्या उन परिस्थितियोमे इसको स्वतंत्रता है ? स्वतन्त्रताकी वात खुदमे खुदकी दृष्टिमे पडी हुई है। उसे तो यह जीव प्राप्त करता नही और वाहरी उपक्रमोमे इतने साधन बना ले तो स्वतंत्रता मिलेगी, ऐसा भ्रम रख करके वाहरी कामोमे पुरुषार्थ किया जा रहा है, प्रयत्न किये जा रहे है। सो भाई विवेक करना है और वह विवेक यही है कि यह समझ लेना है कि मै यह हू और ये सव मायारूप है। विवेक कर लेना कोई कठिन वात नही है।

आत्मस्वभाव व विभावमें विवेक उपपन्न करनेके लिये दर्पणके दृष्टान्तका प्रतिपादन— एक दर्पणमे हाथकी छाया पडी है तो जहाँ छाया पडी है वहाँ दर्पणमे अधेरा है, वहाँ अब दूसरी चीजका प्रतिभास नही हो सकता, क्योकि वहाँ तो अधकार छा गया, उसीका नाम छाया है। जहाँ अधकार छाया वही छाया है। तो अब दर्पणमे जो छाया है बतलावो क्या वह दर्पणका निजी स्वरूप है ? दर्पणमे दर्पणके स्वभावसे वह वात जगी है क्या ? यद्यपि उस छायाका आधार दर्पण है और दर्पणकी स्वच्छताका ही यह चमत्कार है कि किसी वाह्यपदार्थकी छाया आ जाय। भीत, दरी, चौकी चटाई आदिमे कहाँ उस तरहकी छाया पड रही है ? उनमे दर्पण जैसी स्वच्छता ही नही है। दर्पणमे कैसा ही प्रतिबिम्ब आया सो वह यद्यपि दर्पणकी स्वच्छतासे गुणका ही अभिनन्दन कर रहा है कि देखो दर्पणमे कैसी स्वच्छता है कि ऐसी छाया प्रकट हो जाती है। तो भले ही ऐसा कोई सूखा अभिनन्दन करे, लेकिन तथ्य यही समझना है कि दर्पणमे ऐसी छायाका हो जाना दर्पणका निजी स्वरूप नही है, स्वभाव नही है। यह छाया औपाधिक मायारूप है, विनश्वर है, नैमित्तिक है, इसकी जिन्दगी निमित्तके सद्भाव पर आलम्बित है, यह मेरे स्वरूपपर आलम्बित नही है। तो यो निरखनेपर क्या यह नही जाना जा सकता कि दर्पणमे छायाका आना दर्पणका स्वभाव नही है, किन्तु यह दर्पणमे मायारूप है।

आत्मस्वभाव व विभावमें विवेक व विवेकका महत्त्व— दर्पणमे छाया व स्वच्छताका तथ्य निरखनेकी भाति खुदमे भी निरखिये कि ये रागद्वेष मोहादिक विकार भाव जो प्रकट होते है तो यद्यपि कुछ थोडी स्वातन्त्र्यकी दृष्टिसे निरखने पर यह ज्ञान होता है कि इस आत्मामे देखो ऐसी समझ है, इसमे ऐसी जानकारीकी आदत है कि वहाँ रागद्वेष मोहादिक की तरगे प्रकट हो जाती है। ये रागद्वेष मोहकी तरगे इन दरी, चटाई आदिमे तो नही होती क्योकि उनमे चेतना नही है, समझ नही है, मगर यह सूखा ही अभिनन्दन है। भीतर

निरखे तो ये रागद्वेष मोहादिक विकार मेरे स्वरूप नही है, ये हममे है। इनका वर्तमानमे आधार यद्यपि मै हू, अन्य कोई अधिकरण नही है, मेरे परिणमन बन रहे है, लेकिन ये मेरे स्वरूप नही है, किसी भी वस्तुका स्वभाव उस वस्तुके विनाशके लिए नही हुआ करता। जो मेरा स्वभाव है वह मेरे विनाशके लिए न होगा, और ये विकार ये तो मेरी बरबादीके लिए हो रहे, ये मेरे स्वरूप नही, औपाधिक है, नैमित्तिक भाव है, इनसे निराला मै केवल चेतना मात्र हू, यह विवेक बने तो अनेक सकट, अनेक कलुषतायें, अनेक कर्म कलंक तुरन्त ही ध्वस्त हो जाते है, ऐसी अपने आपमे विभूतिका दर्शन परमात्मस्वभावमे प्रयुक्त परा शब्द की व्याख्याके अवसरमे अपने आपको प्राप्त होता है।

जइ पुण सुद्धसहावा सव्वे जीवा अणाइकालेवि।
तो तव चरणविहाण सव्वेसि विप्फल होदि ॥२००॥

परमात्माकी अन्तरङ्ग लक्ष्मीके वर्णनसे आत्माके शुद्ध स्वभावका स्मरण—परमात्मा शब्दका अर्थ किया जा रहा था, पर अर्थात् उत्कृष्ट लक्ष्मी जिसमे हो उसे परम कहते है। आत्माकी उत्कृष्ट लक्ष्मी बहिरङ्गमे तो समवशरण आदिक है, और अन्तरङ्गमे केवल ज्ञानादिक है। तो प्रभु अरहत जिनेन्द्रदेव बहिरङ्ग लक्ष्मीसे भी युक्त है और अन्तरङ्ग लक्ष्मी से भी युक्त है। समवशरणादिकको बहिरङ्ग लक्ष्मी यो कहा गया कि समवशरण जैसी शोभा और अमूल्य पदार्थोकी लक्ष्मी अन्यत्र नही हो सकती। और न किसी मनुष्यके द्वारा सम्भव है, वह देवकृत रचना है, अनोखे ढग की रचना है, ऐसी रचना भगवान जिनेन्द्रके सान्निध्यके कारण होती है। वे देवगण भी प्रभुके सान्निध्य विना ऐसी रचना नही किया करते। इस कारण इस शोभाको भगवान जिनेन्द्रदेवकी बहिरङ्ग लक्ष्मी कहा है। अन्तरङ्ग लक्ष्मी है केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति, ऐसी अन्तरंग और बहिरग लक्ष्मीसे शोभायमान परमात्मा होता है। परमात्मा शब्दकी व्युत्पत्तिमे यह सिद्ध होता है कि प्रभु उत्कृष्ट होते है, वे अन्य ससारी जीवोसे अपनी एक विशेषता रखते है, निरन्तर-ज्ञानमय और आनन्दमय अपनी अनुभूति करते रहते है। उनका यह शुद्ध परिणमन स्वयसे हुआ है। इससे शुद्ध स्वभावका परिचय मिलता है।

शुद्धस्वभाव वाले जीवोंको तपश्चरणादि करनेके उपदेशकी निष्फलताका प्रश्न—अब इस समय एक जिज्ञासु यह जानना चाहता है कि सभी जीव अनादिसे ही शुद्ध स्वभाव वाले है क्या ? मानना तो पडेगा कि सभी जीव ऐसा ही शुद्ध स्वभाव रखते है लेकिन शुद्ध स्व-भाव का एकान्त कर लेनेपर एक शका यह होती है कि जीव यदि ऐसा शुद्ध स्वभाव वाला है सो स्वभाव तो अनादिकालसे होता है अत इसका अर्थ है, कि जीव अनादिकाल से शुद्ध स्वभाव वाला है। तो जब जीव अनादिकालसे ही शुद्ध स्वभाव वाले सिद्ध हो गए

याने कर्ममलकलंक उनके नही है। शुद्ध बुद्ध एक ज्ञानदर्शन स्वभावमात्र है तो ऐसे शुद्ध स्वभाव वाले जीव जब अनादिसे ही है तब फिर आचरण तपश्चरण ध्यान अध्ययन परीषह-सहन आदिकका जो विधान बताया है शास्त्रोमे, फिर वह निष्फल हो जायगा। तपश्चरणमे क्या प्रयोजन ? जीव तो शुद्ध स्वभाव वाला है, कर्ममलकलंकसे रहित है। वर्णन भी तो शास्त्रोमे ऐसा किया गया है कि जीव कर्ममलकलकसे रहित है, परद्रव्यका इसमे प्रवेश नही है। यह स्वयं अपनी सत्तासे सत् है। तो इस वर्णनसे भी यह सिद्ध होता है कि जीव शुद्ध है। तब उस शुद्ध जीवको यह उपदेश क्यो दिया जाता है कि सयम करो, तपश्चरण करो, ध्यान करो, अध्ययन करो, दान आदिक करो। वह तो शुद्ध है ही। उसको कोई आपत्ति ही नही है, फिर कैसे आपत्ति आदिकको दूर करनेके लिए तपश्चरण आदिक बनाये जाते है ? एक यह जिज्ञासा हुई। इसी जिज्ञासासे सम्बधित आगेकी गाथामे द्वितीय प्रश्न चलेगा।

ता किहे गिण्हदि देह णाणाकम्माणि ता कह कुणदि।
सुहिदा वि य णाणारूपा कह होदि ॥२०१॥

शुद्ध स्वभाव वाले जीवोंके बन्धन, देहग्रहण व पर्यायवैचित्र्यकी असंभवताका प्रश्न— यदि यह जीव शुद्ध स्वभाव वाला है तब यह बतलाओ कि यह ऐसे अपवित्र शरीरको कैसे ग्रहण कर लेता कि यह औदारिक शरीर जहाँ मल मूत्र हड्डी खून आदिक घृणित पदार्थ है। इस घृणित पदार्थमय शरीरको ग्रहण कैसे कर ले ? क्यो ग्रहण करता है ? करना ही कैसे पडेगा ? शुद्ध होनेपर या माननेपर जीव इस शरीरको ग्रहण नही कर सकता। क्योकि जब जीवोका अनादिसे ही शुद्ध स्वभाव है तो उस स्वभावसे क्या शरीरग्रहण बन सकता है ? कभी नही बन सकता। और, भी सुनो—यदि सभी जीव कर्ममलकलकसे रहित है, शुद्ध है तो फिर ये नाना प्रकारकी जो क्रियाये दिखनेमे आती है, गमन हुआ, आना हुआ, सो गया, भोजन किया, बैठ गया या व्यापार लेखन आदिक जो क्रियाये देखी जाती है या ज्ञानावरण आदिक कर्मोका जो बधन बताया है वह इन सब बातोको कैसे कर सकेगा, क्योकि जीव शुद्ध है, इस शुद्ध स्वभावमे यह योग नही बनता कि वह किन्ही क्रियाओको कर सके या कर्मोको बाँध सके। और, यह भी शका होती है कि जीव यदि शुद्ध स्वभाव वाला है तो फिर इसके ये नानारूप कैसे बन गए ? कोई सुखी है दुखी है, कोई अमीर है गरीब है, कोई बडी सवारियोपर चलता, कोई नगे पैरो पैदल चलता, किसीको बडा सम्मान मिलता है किसीका बडा अपमान होता है आदिक नानारूप जो ये दिख रहे है ये रूप कैसे बन जायेगे ? जीव शुद्ध स्वभावी यदि है तो उसके ये सब रूप नही बन सकते, किन्तु देखा जा रहा है कि कोई जीव पशु है, पक्षी है, मनुष्य है, सुखी है, दुखी है, अनेक क्रियाये करते है तो ये सब

बाते कैसे सम्भव है ? ऐसा एक जिज्ञासुने प्रश्न किया । उसके उत्तरमे कहते है ।

सव्वे कम्मविबद्धा संसरमाणा अणाइकालम्हि ।
पच्छा तोडिय बंध सिद्धा सुद्धा धुवा होंति ॥२०२॥

अनादिसे कर्मनिबद्ध एवं संसरमाण जीवोंकी बंधध्वंस होनेपर सिद्धि और शुद्धिका प्रकाश—सर्व जीव अनादिकालसे कर्मनिबद्ध है, संसारमे घूम रहे हैं । बादमे कर्मोको तोड़कर बन्धनको तोडकर यह जीव शुद्ध, सिद्ध हुआ करता है । शुद्ध क्या कहलाता है ? इस सम्बन्ध मे दो दृष्टियोसे समझना है—द्रव्यदृष्टिसे और पर्यायदृष्टिसे । द्रव्यदृष्टिसे तो शुद्ध होनेका अर्थ यह है कि प्रत्येक द्रव्य अपने आपके स्वरूपसे सत् है । किसी दूसरे पदार्थसे मिलकर सत् नही बनता । उसमे किसी दूसरे पदार्थका संसर्ग नही है । प्रत्येक पदार्थ अपने ही सत्त्व से सत् है । द्रव्यदृष्टिका इतना अर्थ है । जैसे कि हम स्थूल रूपसे आँखो देखते है कि अनेक पदार्थ है और वे अत्यन्त भिन्न-भिन्न है, उनमे एक पदार्थका दूसरे पदार्थसे ससर्ग नही है यह मोटे रूपमे देखते है । वस्तुत यहा प्रत्येक अणु सत् है, किसी भी सत् पदार्थमे किसी अन्य सत् पदार्थका मेल नही है, तादात्म्य नही है, प्रवेश नही है । अपने ही सत्त्वसे प्रत्येक पदार्थ सत् है । तो यो परसे निराला और अपने आपके स्वरूपसे तन्मय निरखने को द्रव्य शुद्धि कहते है । पर्यायशुद्धिका अर्थ है कि पदार्थमे किसी प्रकारकी औपाधिक अशुद्धि न रहे । अशुद्धि सब औपाधिक हुआ करती है । जैसे जीवमे कर्मका बन्ध है, शरीरका ससर्ग है, सुख दुःख होते है, नाना क्रियाये होती है, अनेक भवोमे गमन होता है, ये सब अशुद्धियाँ है । इन परमाणुओमे स्कधरूप बन जाना, अनेक प्रकारके परिणमन होना ये अशुद्धियाँ है । ये पर्याये, ये अशुद्धिया न रहे, पदार्थ अपने स्वरूपसे स्वय जैसा है उसही प्रकारसे व्यक्त हो जाय उसे कहते है पर्यायसे शुद्ध । अब तीसरी बात यह समझिये कि पर्यायसे शुद्ध कोई पदार्थ हो जाता है तो वहा यह यह मानना पडेगा कि ऐसा शुद्ध होनेका स्वभाव उसमे पडा है । जिसको हम शुद्ध द्रव्यदृष्टिसे ज्ञात कर रहे है । उक्त विवरणसे यहा यह निर्णय करना है । तो यो द्रव्यशुद्धि और पर्यायशुद्धिकी बात कही है ।

द्रव्यशुद्धि, पर्यायशुद्धि व स्वभावशुद्धि—द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक ये दो नये विभाग है । अब हम जिस दृष्टिसे निरखेंगे उस दृष्टिका हमे उत्तर मिलेगा । पर्यायदृष्टिसे देखनेपर तो यह मै अशुद्ध आत्मा हू, पर द्रव्यदृष्टिसे यदि हम इसे निरखें तो द्रव्यदृष्टिकी शुद्धिका अर्थ यह है कि प्रत्येक पदार्थ परद्रव्यसे विविक्त व स्वद्रव्यमे अविभक्त है । तो द्रव्यदृष्टिसे जैसा शुद्ध देखा जाता है उस तरहका शुद्ध अब भी सब पदार्थ है । याने द्रव्यदृष्टिसे यह निरखना है कि किसी दूसरे सत्का मेल होकर सत् नहीं बना । और, यह त्रिकाल न्यायकी बात है कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही सत्से सत् है, दूसरे सत्से मिल करके सत् नही बना । अब उसमे

द्रव्यशुद्धि व पर्यायशुद्धिके अतिरिक्त स्वभावशुद्धि की बात सुनिये। स्वभावशुद्धि इन दो के बीचकी बात है। उस द्रव्यमे ऐसा सत् होनेका स्वभाव पडा हुआ है। तो स्वभाव स्वभावरूप हुआ करता है। जैसे गर्मजलमे भी अगर पूछा जाय कि इस जलमे ठढा होनेका स्वभाव है कि नही ? तो कहना पडेगा कि गर्म होनेपर भी आखिर जलमे जलका स्वभाव तो ठढा है, तो कोई कहे कि कहाँ व्यक्त है ठढापन ? तो स्वभाव स्वभावरूपमे व्यक्त रहा करे यह नियम नही है। इसीको पर्यायअशुद्धि कहते है--स्वभाव है जैसा वैसा प्रकट नही हो पाना, उस से भिन्न प्रकारसे प्रकट हो रहा तो यहा जीवको पर्यायदृष्टिसे निरखनेपर यह अनादिकालसे अशुद्ध है और स्वभावदृष्टिसे निरखे तो जीवमे स्वभाव शुद्धताका है, पर प्रकट नही है, और द्रव्यदृष्टिसे शुद्धको निरखते है तो उसका तो केवल इतना ही अर्थ है कि अन्य पदार्थो का मिलकर एक द्रव्य सत् नही हुआ है, किन्तु यह अपने स्वरूपसे ही सत् है दूसरेके स्वरूप से सत् नही है। जैसे कहते है स्वचतुष्टयसे सत् होना, पर चतुष्टयसे असत् होना बस इतना ही अर्थ द्रव्यशुद्धिका है। पर्यायशुद्धिका अर्थ है कि पर्याय उस प्रकारसे व्यक्त हो गई जैसे पदार्थका निरपेक्ष स्वरूप है। और, उसमे जो शक्ति स्वभाव है उस शक्ति स्वभावका अर्थ है कि इस द्रव्यमे अपने आपके सत् रूप बने रहनेकी शक्ति है और ऐसे ही यह व्यक्त बने, ऐसा इसमे स्वभाव है। तो फलित अर्थ यह है कि हम यद्यपि शुद्ध चैतन्य स्वभाववान है, लेकिन परिणति हमारी मलिन है, हम कर्मोसे बद्ध, ससारमे रुलते है और यहा कर्म-बन्धन है। जब कोई जीव अपने इस कर्मबन्धनको तोड देता है और इस कर्ममलकलकसे रहित होता है तो यह शुद्ध होता है। इस कारण यह जानना चाहिए कि जीवका स्वभाव शुद्धताका होनेपर भी परिणति अनादिसे ही इसकी मलिन चली आ रही है इस कारण तपश्चरण सयम आदिक उपायोसे इस जीवको शुद्ध होना चाहिए, तब ही सदाके लिए ससार सकटोसे यह जीव मुक्ति पा सकता है।

शुद्धस्वभाव होनेपर ही जीवकी अनादिबद्धता और विचित्रत—जितने जगतमे जीव है वे सब अपनेमे ऐसा तो जानते ही है कि मै हू। मैं जीव हू तो जो मे जीव हू उस जीव मे जीवका ही स्वरूप है। दूसरी चीजका स्वरूप नही है। जब जीवमे जीवका ही स्वरूप है तो इसके मायने यह है कि जीवका स्वभाव शुद्ध है। अगर जीवमे किसी अन्य चीजका स्वरूप आ जाय तो जीव न रहा। जीव है ज्ञानमय, जानता रहे, तो जाननका जिसका स्वभाव है ऐसा जीव अपने शुद्ध स्वभावमे रहता है, लेकिन आज देखो तो कोई जीव शुद्ध नही नजर आता। जीव पर्यायमे बधे है, शरीर से बँधे है, कर्मका बन्धन है। कोई सुखी है, कोई दुखी है। नाना प्रकारकी इन जीवोकी हालत हो रही है। और ये सब दुखी भी हो रहे है तो व्यर्थ ही कल्पनाये करके दुखी हो रहे है। कोई धनिक है तो वह भी चैनमे

नही, धन बढानेकी ही धुन बनी रहती है, शान्ति नही मिल पाती, परिणाम यह होता है कि वे धनिक भी आरामसे नही रह पाते, क्योकि तृष्णा लगी है। निर्धन भी इस बातको सोचकर दु खी रहता है कि मेरे पास धन नही है। वह निरन्तर परपदार्थोकी चाह बनाये रहता है इससे दु खी रहा करते है। ये परपदार्थ तो अत्यन्त भिन्न चीज है इनकी चाहसे इस जीवको कुछ लाभ भी नही है। पर इन परपदार्थोको चाह कर यह जीव अपने सिर पर दु ख लादे फिरता है। और इसीसे यह इतना बडा कर्मबन्धन बध गया है।

कर्मबंधनसे मुक्तिका उपाय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका लाभ—हम आप कोई ऐसा उपाय बनाये कि जिससे चलकर इस कर्मबन्धनसे छुटकारा प्राप्त हो जाय। तो मूल उपाय यह है कि पहिले यह जानले कि मै इतना जीव हू, यह देह मेरा नही है, यह वैभव मेरा नही है, मै सर्वसे निराला हू। आखिर वह समय भी तो आना है कि इस देहको छोडकर जाना पडेगा। यहां का सब कुछ छूट जायेगा। यदि यहा की कुछ भी चीज मेरी होती तो मेरे साथ जाती। मै तो केवल ज्ञानस्वरूप हू, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञान ही मेरा प्राण है, वही मेरा सर्वस्व है। इसके आगे मेरा कुछ नही है। यहा तो अज्ञानी जीवो ने बाह्यमे अपनी इज्जत मानकर अपनेको दु खमे डाल रखा है। यह जीव तो ऐसी भावना बनाये कि मैं तो इस देहसे भी निराला हू, देह भी मेरा स्वरूप नही है। जब ऐसे अकेले स्वरूपको देखा जायेगा तो कुछ ध्यान बनेगा, मनके विकल्प जो यहा वहा दौडते है वे समाप्त होगे। जब हम अपने स्वरूपको निहारे तो वह हुआ सम्यग्दर्शन और अपने स्वरूपको जानेगे तो वह हुआ सम्यग्ज्ञान और रागद्वेष न करके अपने स्वरूपको जानते रहेगे तो यही हुआ सम्यक्चारित्र। संकटोसे छूटनेका उपाय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र है। तो जब यह मनुष्य सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमे अपना कदम रखता है, तपश्चरण करता है, नि सगतामे तृप्त रहता है तो समस्त बंधोको तोडकर फिर यह जीव सिद्ध बनता है और वहाँ अनन्तकाल तक शुद्ध आनन्दमे रहता है। जन्म जरा मरण जो महान कठिन बाधाये है उनसे सदाके लिए मुक्त हो जाता है। अब सिद्ध भगवान जन्म न लेगे। जन्म लेते है ससारी मोही प्राणी अथवा कर्मबधनसे बँधे हुए प्राणी। सिद्ध भगवान कर्मोसे रहित है, वे जन्म जरा मरण आदि रोगोसे परे हो गए है। तो देखिये आनन्द कहाँ मिला है ? वह आनन्द मिला है केवल रहनेमे। यहाँ तो कोई अकेला रहना ही नही चाहता, लेकिन उस आनन्दको प्राप्त करनेके लिए वैसा ही अकेला बनना पडेगा। ऐसा अकेला कि अपने मे इन विचारोको, इन विकारोको साथ न रखकर केवल ज्योतिमात्र ज्ञानस्वरूप निरखना होगा। इसी उपायसे मुक्ति प्राप्त हो सकेगी अन्यथा ससारके जन्म मरण ही करने पडेगे। तो निर्णय इस गाथामे यह किया है कि सभी जीव अनादिकालसे कर्मबन्धनमे बधे है, जन्म

मरणकी परम्परामे पडे हुए घोर दु ख सह रहे है। सिद्ध भगवान भी ऐसे त्रिकट वन्धनको तोडकर सिद्ध हुए है और सदाके लिए शुद्ध अनुभूतिमे विराजमान हं। अव यह जिज्ञासा होती है कि वह वन्धन क्या कहलाता और मूलमे उसका वन्ध किस प्रकार है जिससे यह जीव बद्ध होता है।

जो अण्णोण्ण-पवेसो जीव-पएसाण कम्म खधाण।
सव्व-बधाण वि लओ सो बधो होदि जीवस्स ॥२०३॥

जीवके बन्धनका वर्णन——जीवके प्रदेशोका और कर्मस्कधोका जो परस्पर प्रवेश है उसका नाम बन्धन है। मूल बन्धन यही है कि ये जीव और कर्म (दोनो) परस्पर वध गए। यद्यपि स्वरूपको देखो तो कर्ममे कर्म है, जीवमे जीव है मगर परस्पर ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बध है कि वहाँ जीव बन्धनमे बद्ध है और परतत्र है। जैसे गायको गिरिमासे बाँध दिया जाता है तो गला और गिरमाका परस्परमे बन्धन नही है किन्तु गिरमाका एक छोरसे दूसरे छोरका बन्धन है। मगर ऐसा निमित्तनैमित्तक सम्बध है कि वह गाय उस गिरमासे ऐसा बध गई कि कही जा नही सकती। तो इसी तरह यहाँ यद्यपि यह जीव अनादिकालसे अपना ही स्वरूप रख रहा लेकिन ऐसा वद्ध चला आ रहा है कि जीव रागद्वेषादि परिणाम करता है तो उसके निमित्तसे कर्म बँधते है, कर्मोका उदय आता है, तव वह जीव रागद्वेषी होता है। यह जीव अमूर्त है और कर्म भी इतने सूक्ष्म है कि जिन्हे अमूर्तकी तरह समझ लीजिए। अमूर्त तो नही है, उनमे रूप, रस, गध, स्पर्श है, किन्तु इतने सूक्ष्म है कि प्रतिघातरहित है। उनका जो वन्धन होता है तो जीवके सर्वप्रदेशोमे उनका प्रवेश है वन्धन है, मगर स्वरूपमे प्रवेश नही है। एकक्षेत्रावगाह तो हो गए कि जीवके उन असख्यात प्रदेशोमे उन अनन्तानन्त कर्मपरमाणुओका प्रवेश है और वे कर्म कर्मरूपसे आये हुए है और उनका यही बन्धन है, पर इसको यदि वस्तुरूपसे देखे तो जीवमे किसी अन्यका प्रवेश नही, अन्यमे जीवका कुछ प्रवेश नही, एकक्षेत्रावगाहकी दृष्टिका प्रवेश है, मगर परके सत्त्वके बलका सत्त्व नही है, याने परपदार्थका उसमे सत्त्व मिलाकर जीवको सत् बताना यह मूढतापूर्ण प्रलाप है। जीव सत् है, अपने आपमे उसका सत्त्व है, पर अनादिसे ऐसा बन्धन है कि जीवके प्रदेश और कर्मपरमाणु इनका परस्पर प्रवेश है, एकक्षेत्रावगाह है और वहाँ जीवका बन्धन होता है।

प्रत्येक जीवके असंख्यात प्रदेश और उनमें अनन्त कार्माणवर्गणावोंका बन्धन——जीवके प्रदेश कितने है ? सूत्रजीमे बताया है कि असख्यात प्रदेश है। असख्यात प्रदेशका यह अर्थ है कि कदाचित् जीव फैल जाय सारे लोकमे तो फैल सकता है, और लोकमे है असख्यात प्रदेश। असख्याते प्रदेश असख्याते तरहके है, पर उत्कृष्ट प्रमाण जितने लोकाकाशके प्रदेश है उतने प्रदेश बराबर है। वैसे तो यदि एक अंगुल जगहको भी नापा जाय तो उसमे अस-

ख्याते प्रदेश कहे जायेगे । एक सूईके द्वारा कागजपर गढा बने तो जितनी जगहमे वह गढा बना है वहाँ भी असख्याते प्रदेश है, एक प्रदेशकी जगहको कोई नही निहार सकता सख्यात प्रदेशकी जगहको कोई बता नही सकता है । यह सारा भारत देश असख्यातप्रदेशी है । और सारा तीन लोक यह भी असख्यात प्रदेशमे है । जब अरहत भगवान आयुके अन्तसे पहिले समुद्धात करते है तो उनके जीव प्रदेश तीन लोकमे वातवलयोंमे सब जगह व्याप जाते है, तो जीवका परिमाण कितना वडा है ? यदि वह प्रदेशसे फैले तो लोकाकाशके बरावर है, लेकिन यह फैला हुआ नही है । अनादिसे ही यह देहप्रमाण है । जो शरीर मिला है उस शरीरके वरावर ही यह जीव है । जैसे आज जो मनुष्य शरीर है तो उतना जीव इस शरीर के बराबर है, न कम है न अधिक है, और मरण करके किसी अन्य गतिमे गया, वहाँ जो देह मिला उस देहके बराबर हो गया । जब यह मनुष्य पैदा हुआ था तब जो शरीर मिला उस ही प्रमाण था यह । जैसे ही इस जीवका शरीर बढा वैसे ही जीवके प्रदेशोका भी फैलाव हुआ । तो ससारमे सर्वजीवोके प्रदेश देहके बराबर विस्तृत है और जब यह मनुष्य मुक्त होता है तो जिस देहसे मुक्त होता है । मुक्त होनेपर इस जीवके प्रदेशके न तो फैलनेका कारण रहा, और न सकोचका कारण रहा, सकोच और विस्तार ये कर्मोदयका निमित्त पाकर होते थे, जब कर्म न रहे तो ऐसी स्थितिमे जीवने आयुके क्षयसे देहको तो छोड दिया, लेकिन जिस आकारमे रहते हुए इस देहको छोडा गया है उतना ही आकार उस सिद्धका रहता है । तो उतना आकार रहा । उसका कारण यह है कि जो था सो ही रहा । जीवके प्रदेश अधिक फैले तो ये कर्मके सम्बव बिना होगा, जीवके प्रदेश सिकुड जाये तो यह भी कर्मके सम्बध बिना न होगा, क्योकि संकोच और विस्तारका कारण कर्मोदय है । जैसे नोकर्म, जैसे कार्माण शरीर, जैसा जब उदय आता है उस प्रमाण इस जीवके प्रदेश हुआ करते है । तो अनन्त आत्माओमे प्रति एकात्माके सर्वप्रदेशोमे अनेक पुद्गल स्कंधोका प्रवेश है ।

अनन्त जीवोंमे प्रत्येक जीवमें अखण्डता और असंख्यातप्रदेशिताका कथन—कोई लोग मानते है कि केवल एक ही जीव है और वह सारी दुनियामे फैला है, पर ऐसा अनुभव नही बैठता । तो हम आपका जो अनुभव है वह यह बताता है कि हममे सुख होता है, उतने मे ही सुख होता है जितने कि देहमे हम वसे हुए है । यहा यह सुखका अनुभव है, यदि जीव एक होता तो जब सुखी होता तो सर्व जगह रहने वाला जो जीव है याने अन्य देहोमे रहने वाला जो जीव है उसे भी अब उसी सुखसे सुखी हो जाना चाहिए, क्योकि एक पदार्थमे यह भेद न बन पायेगा कि एक चीजका एक हिस्सा और भाति परिणमे और दूसरा हिस्सा और भाँति परिणमे । अगर ऐसा कही देखा जाता हो तो कहा जाना चाहिए कि वह एक चीज नही है । जैसे काठ एक तरफ जल रहा है बाकी तरफ नही जल रहा है तो

समझना चाहिए कि वह काठ एक नही है, अनन्त परमाणुओका स्कध है। एक पदार्थ उतना होता है कि जो भी परिणमन हो तो पूरेमे होना पडे, एकके आवेमे परिणमन हो या विरुद्ध परिणमन हो ऐसा नही होता। जो कुछ चीजे हम आपको दिखती है वे वास्तवमे एक नही है और तभी इसके टुकडे हो जाते। एकका कभी टुकडा नही होता। जैसे यहा काठके टुकडे हो जाते है, सींक वगैरह तोड दी जाती है, इनका भाग हो जाता है तो ये एक चीज नही है। उनमे अनेक स्कध है तो कोई अलग हो गया कोई कही पड गया। एक पदार्थ हो तो उसके हिस्से नही हो सकते। यदि जीवको माने एक और सर्वव्यापक तो वहाँ यह दोष आयेगा कि उस जीवके एक प्रदेशमे जो परिणमन हो तो वही परिणमन सब जीवोमे होना चाहिए। तो सभी जीव एक साथ एक सुखसे सुखी हो और एक साथ एक दु खसे दु खी हो, ऐसी बात वने तव तो माने कि एक जीव है, लेकिन ये भिन्न-भिन्न अनुभव हो रहे, इस कारणसे यह अनुभव होता है कि जीव एक नही है किन्तु अनन्त है। उन अनन्त जीवोमे से एक एक जीवकी चर्चा चल रही है कि प्रत्येक जीव अखण्ड और असख्यातप्रदेशी है।

कर्मोंमें प्रकृति स्थिति आदिका बन्ध—इस जीवमे कर्मका वन्ध है, कर्मवन्धन है, जब रागद्वेष मोहका परिणाम होता है तो यही पडा हुआ जो कार्माण स्कध है वह कर्मरूप वन जाता है। उनमे यह प्रकृतिका वध हो जाता कि इस प्रकृतिवाले कर्मके विपाकसे जीव अज्ञानी वन गया, इस प्रकृति वाले कर्मके उदयसे जीव सुखी दु खी वन गया। उनमे ऐसी स्थिति पड जाती है कि बँधे हुए ये कर्म वहुत नियत दिनो तक इस जीवके साथ रहेगे। और जब इनके खिरनेका समय होगा, स्थिति पूरी हो जायेगी तो अमुक प्रकारका फल देकर अर्थात् उनके उदयमे जीव इस प्रकार परिणाम जायेगा और वे कर्म खिर जायेगे। उनमे ऐसे अनुभाग पडते है। उनमे ऐसा बटवारा हो जाता कि अमुक प्रकृति वाले कर्म इतनी सख्या मे होगे और अमुक प्रकृति वाले कर्म इतनी सख्यामे होगे। यो चार प्रकारका वन्धन इस जीवके हो जाता है। जीव है अनन्त। यही देख लो किसी जगह अगर कीडी निकल आती है तो कितनी बडी संख्यामे निकलती है, या कभी मक्खी अथवा टिड्डियोको देखा होगा, कितनी बडी सख्यामे निकल पडती है, यह तो त्रस जीवोकी वात है। जब बडे-बडे जीवो की सख्या भी नही वतायी जा सकती तो फिर उन छोटे-छोटे जीवोकी तो बात ही क्या कहना? इस शरीरके अन्दर असख्याते जीव भरे है, और भी त्रस जीव है, जिन्हे रक्त अणु, मास-अणु आदिक कहते है, ऐसे भी बहुतसे जीव पाये जाते है, और निगोद जीव तो अनन्त है ही। ऐसे जीवोकी सख्या नही की जा सकती। इनमे प्रत्येक जीवके प्रदेश असख्यात है। और एक एक प्रदेशमे कर्मप्रदेश बहुतसे भरे हुए है।

जीवके अपने भावों पर अपने भविष्यकी निर्भरता—यहाँ इस बातका निर्णय करना

कि भविष्य हम अपना अपने आप बना लेते है। जैसे हम कर्म करते है वैसा हमको फल प्राप्त होता है। हम खोटे कर्म करे और उससे भले फलकी आशा रखे तो यह नही हो सकता। खोटे कर्म करेगे तो खोटा फल पायेंगे, अच्छे कर्म करेंगे तो अच्छा फल पायेंगे, यह व्यवस्था जीव और कर्मके सम्बन्धमे अपने आप वनी हुई है। ऐसा नही है कि कोई अलग जज हो और वह हमारा फैसला करे, हमको सुखी दु खी करे। इसमे तो वह गल्ती भी खा सकेगा, पर जहा ऐसा प्राकृतिक सम्बन्ध है कि हम जैसा भाव करते है वैसा ही कर्मबन्ध होता है और जैसे कर्मका उदय होता है वैसा ही जीवको सुखी अथवा दु खी होना पडता है। यह एक प्राकृतिक बात हो गई। यह एक निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध वाली बात हो गई। जैसे घडी ठीक है, चाबी भरी है तो उसे देखे अथवा न देखे वह चलती रहेगी, उसके चलनेमे कोई फर्क नही आता, वहा निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध ही ऐसा है, तो ऐसे ही समझिये कि यहाँ जीव और कर्मका ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्वन्ध है कि जब जीव रागद्वेष परिणाम करता है तब कर्मबन्ध होता है। जब कर्मोदय होता तो जीवमे रागद्वेषादिक होते। होते है प्रत्येक जीवमे, उनके अपने परिणमनसे, कर्ममे भी जो कुछ होना है होता है, मेरे परिणमनसे परपदार्थमे एक निमित्तनैमित्तिक भाव है, यह सब व्यवस्था प्रकृत्या बनी हुई है। तो इस तरह आत्मामे प्रवेश प्रदेशका बन्ध है और वह बन्ध घन है। जैसे कि लोहेका मुदगर या गोला हो तो वह अपनेमें घन है, बीचमे कोई जगह खाली नही रहती है इसी प्रकार इस जीव प्रदेशमे कर्मका वन्ध घन है, यहां कोई प्रदेश घिरा नही रहता, तो ऐसा दृढ जीवके साथ बन्धन लगा है, सर्वप्रदेशोमे अनन्तानन्त कर्म परमाणुओका बन्धन है, और यह बध परम्परा अनादिकालसे चली आ रही है।

हम आप पर वास्तविक संकट और उससे छूटनेके उपायके सम्बन्धमें विचार——हम आप पर कोई सकट है तो यही है कि कर्मबन्धन है, देहका बन्धन है, जन्म मरण करना पडता है, बस यही संकट है। ये कोई संकटकी बात नही है कि धन कम हो गया, कोई इज्जत नही है, कोई लोग अपमानजनक वचन बोल रहे है आदि, इन्हे तो विवेकपूर्वक सह लेना चाहिए। इनमे अधीर न होवे और उपाय ऐसा बनाये कि कर्मोसे हमारा छुटकारा हो, जन्म मरणका चक्र मिटे। अगर यह उपाय हम बना सके तो इतना उत्कृष्ट कुल पाना, मनुष्यभव पाना, श्रेष्ठ बनना आदि सब सार्थक हो जायेंगे, और एक कर्मबन्धनसे छूटनेका उपाय न बना सके तो कितने ही धनका ढेर हो जाय, यह क्या साथ दे देगा? कितने ही परिजन हो जायें तो क्या ये मददगार हो जायेगे? ये सब वैभव पर है, ये सब परिजन पर है, ये सब प्राप्त समागम पर है, इन समस्त परपदार्थोसे इस जीवका कुछ भि

प्रयोजन नही है। आत्माका प्रयोजन तो इसमे है कि सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र को पूर्ण बनाये, अपने आपको निहारे, अपने आपका स्वरूप समझे, अपनेमें गुप्त हो जाये, ऐसा उपाय बनाये। बाहरी पदार्थोमे हर्षविषाद न हो ऐसी उदारता आये तो इससे ही इस आत्माको शान्तिका मार्ग मिलेगा और जीवन सफल हो जायेगा। एक यही काम यदि न कर सके तो इस मानवजीवनके पानेका कुछ भी लाभ न उठाया जा सका।

उत्तम-गुणाण धाम सव्व-सव्वाण उत्तम दव्व।
तच्चाण परम तच्चं जीव जाणेह णिच्छयदे ॥२०४॥

जीवकी उत्तमगुणाधाररूपता—उत्तम गुणोका घर यह जीव है। पदार्थ अनेक है और प्रत्येक पदार्थमे अनन्त गुण होते है। जैसे पुद्गल है, जो दिख रहे है उनमे जो एक एक परमाणु है उनमे रूप रस गध स्पर्श आदिक अनेक गुण है किन्तु उन गुणोकी महिमा जीव-हितमे नही है और जीवमे ज्ञान दर्शन चारित्र आदिक अनन्त गुण है, तो इन गुणोकी बडी महिमा है। कारण यह है कि जीव जानने वाला है इसलिए लोकमे जितने भी पदार्थ है सभी पदार्थोमे प्रमुख द्रव्य जीव है। जीव न हो तो यह पता कैसे लगे कि लोकमे क्या-क्या है ? है जो कुछ है सो है। और देखिये यदि जीव न होता तो ये सब जो किवाड भीत, चौकी, दरी आदिक पदार्थ दिख रहे है ये भी न होते। जैसे यह जो काठ है तो आखिर पहिले वृक्ष था तभी तो यह काठ बना। यह वृक्षकी सकल कैसे वनी ? वहाँ जब जीव आया और जीव ने आहरण किया तो उसका रूप बना, वृक्ष वना। ये जो ईट भीट आदिक दिख रहे है ये पृथ्वी जीव ही तो थे। जो जो भी चीजे यहाँ दिख रही है वे सब इस जीवके सम्बन्धसे ही वनी है। यदि यह जीव न होता तो ये कोई भी चीजे न होती। सर्व जगत शून्य होता। तो सर्वजीवोमे जीव पदार्थकी इतनी वडी महिमा है, अन्त देखिये कि जितने भी लोग क्लेश मान रहे है वे सब इस अज्ञानसे है, तो ऐसी स्थितियाँ कि जिनको आजके लोग कहते है कि कैसे छोडा जाय, कच्ची गृहस्थी है, क्या करेंगे ये बच्चे लोग ? कैसे होगा घरका काम पर पुराने ऋषि सतोको देखो जव वे विरक्त हुए तो सब कुछ छोडकर चल दिए। सुकौशल स्वामीकी स्त्रीके पहिला ही गर्भ था, पर जव उन्हे वैराग्य हुआ तो छोड छाडकर चल दिए। लोगोने बहुत समझाया कि अभी कच्ची गृहस्थी है, सतान हो जाने दीजिए, उसका राज्य अभिषेक कर दीजिए, परन्तु उन्होने एक भी न सुनी। इस जीवको जब ज्ञानज्योति जगती है तो फिर वहाँ अदया नही कह सकते। दया और अदयाका प्रश्न तो वहाँ है जहा कषाय है, जहा केवलज्ञान है और यह जान भी लिया गया कि प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, वे अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे परिणमते रहते है, उनका कोई दूसरा रचने वाला नही है। तो जब यो सम्यक् ज्ञानका उदय आयेगा तो वहाँ अदयाका कोई क्षण अवसर नही। जान

लिया कि मै मै हू, पर पर है, मेरा भविष्य मेरे पर ही निर्भर है, सत्यज्ञान हो गया, विरक्त हो गए ।

बाह्य व्यवसायकी अनर्थकता—लोग तो सोचते है कि खूब धन कमाओ, किसलिए ? तो वहाँ दो उत्तर मिलते है एक तो यह कि इस लोकमे मेरी इज्जत बढेगी, जहाँ जायेगे समाजमे अग्रस्थान मिलेगा, मेरी पूछताछ होगी, दूसरा उत्तर यह होगा कि हमारे लडके लोग सुखपूर्वक रहेगे । दोनोके उत्तरकी बात सोचें कि जिन लोगोमे हम इज्जत चाहते है वे लोग है क्या ? ससारी प्राणी, जन्म मरणके प्रेरे, महादु खी लोग है और उनमे मैं अपने लिए कोई पोजीशन चाहू तो यह अज्ञान है । यहाँ किसकी पोजीशन रही ?

चक्रवर्ती जब छह खण्डपर विजय प्राप्त करके वृषभाचल पर्वतपर आता है अपना नाम खोदनेके लिए तो उसको जगह नही मिलती । उसे विवश होकर किसी नामको वहाँसे हटाकर उस जगह अपना नाम लिखना पडता है, ४०-५० कोशका वह विस्तार है पर कही अपना नाम खोदनेके लिए उस चक्रवर्तीको जगह नही मिलती । तो देखिये न जाने कितने ही चक्रवर्ती हो गए, पर सभीको यहाँका सब कुछ छोडकर जाना पडा । तो यह सासारिक इज्जत पोजीशन कुछ सारभूत चीज नही है । हम यदि अपने आत्माका सही स्वरूपका ज्ञानानुभव कर लेते है निर्विकल्प बुद्धिसे, गुप्त होकर, बाहरसे किसीमे भी कुछ अपनी बात न जतानेका भाव रखकर यदि भीतर वह अपने ज्ञानस्वरूपको देखकर उसमे मग्न होकर एक बार भी अनुभव कर ले, जिसे स्वानुभव कहते है, सम्यग्दर्शन कहते है, वह अनुभव अगर प्राप्त हो तो सच्चा मार्ग उसे मिलेगा और वह जानेगा कि आनन्दका उपाय यही अपने अन्दर है । बाहरमे आनन्दका उपाय नही है । जिन्होने यह जान लिया उनको मोह उत्पन्न नही होता । दूसरी बात—घरमे जितने भी कुटुम्बी जन है वे सब जीव ठीक उतने ही जुदे है जितने कि जगतके अनन्त जीव । खूब तर्क पूर्वक विचार लीजिए । जब सत्ता न्यारी-न्यारी है, प्रत्येक जीव अपने ही भाग्यसे जन्म मरण करता है, सुखी दु खी होता है, मेरी व्यवस्था मेरे ही साथ है, उसका सत्त्व उस ही मे है, उसका कोई गुण मेरेमे नही है । तो अपनेसे भिन्न जैसे जगतके अनन्त जीव है उसी प्रकार भिन्न ये घरमे बसे हुए जीव है । इनका उदय है । कोई चाहे कि हम इन बच्चोका ऐसा साधन बना जाये कि ये सदा सुखी रहे तो जीवनभर बडा श्रम करके अपना जीवन विताया, पर होगा वैसा जैसा कि उनका उदय है । तो आप कुछ भी काम कर लें, पर परिजनोका जैसा उदय है उसके अनुसार चीजे प्राप्त होगी । अगर परिजनोका उदय अनुकूल नही है तो चाहे आप कितना ही कुछ जोडकर धर जाये, सब निकल जायगा ।

सागारजीवनमे सही योजना—आपकी जो योजना अभी तक चल रही है वह कोई

सही योजना नही है। जैन धर्ममे यह बताया है कि गृहस्थजनोका कर्तव्य है कि वे न्याय-नीतिसे धनोपार्जन करे, उसमे उदयानुसार जो भी आय हो उसमे व्यवस्था बना ले। आय का कुछ भाग गृहस्थीके खर्चके लिए, कुछ भाग धार्मिक कार्योके लिए, कुछ भाग परोपकार के लिए, कुछ बचतके लिए, यो विभाग बनाकर धनका उपयोग करे। जब जैसी स्थिति हो उसी माफिक उसका विभाजन करके अपनी व्यवस्था बना ले। स्थिति कैसी भी आये उसमे घबडाये नही। कभी यह आकाक्षा न रखे कि हमारे पास इतना धन हो जाये तब हम स्वतत्र होकर धर्मपालनमे लग जायेगे। अरे इस धर्मपालनके कार्यको अभीसे करने लगना चाहिए, क्योकि जब आपकी पूर्वमे चाही हुई स्थिति आ भी जायेगी तो वहाँ आपके और ढगके विकल्प बन जायेगे, वहाँ भी आप अपनेको फसा हुआ अनुभव करेगे और धर्मपालनमे लगनेका काल और भी लम्बा होता जायगा। इस धर्मपालनके कार्यको फिर कभी कर भी न सकेगे। देखिये—अनेक घटनाये सुननेमे आती है कि चलते फिरते अचानक ही किसीका मरण हो गया। तो ऐसी स्थितिमे अपना कर्तव्य यह है कि अपने आत्माकी सुध ले। अपने आपकी सम्हाल करे, अपनी सम्हाल अगर बन जायगी तो बाहरी बाते अनायास बन जायेगी। जब तक ससारमे है तब तक स्थितियाँ अच्छी मिलेगी। एक अपने आपकी सम्हाल न हो पायी तो बाहरी स्थितियाँ भी ठीक न रहेगी और अपना भविष्य भी ठीक न रहेगा, इस कारण सम्यक्त्व लाभपर आचार्य सतोका प्रमुख अनुरोध रहा कि किसी भी प्रकार इस सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो।

सम्यक्त्वलाभका परिचय और महत्त्व—सम्यक्त्व प्राप्त हुआ या नही इसको यदि जानना है तो अपने अनुभवसे जान भी सकते है। हमको किसी भी समय क्या ऐसी स्थिति आयी, क्या कभी ऐसी ज्ञानानुभूति हुई कि जहाँ किसी भी परपदार्थका विकल्प न हो और ज्ञानमे ज्ञान समा गया हो ? केवल ज्ञान ज्योति ही ज्ञानमे आयी हो, ऐसी अनुभूति हुई हो कभी जो एक अनुपम आनन्दको उत्पन्न करता हुआ होती है, तो समझिये कि हमे सम्यक्त्व का लाभ हुआ है। अपने आपके ज्ञानस्वरूपकी अनुभूति पा लेना यह सबसे बडा भारी काम है। अनेक मुनिराज ऐसे हुए है जिनको उनके जमानेमे कोई जानने वाला भी न था, लेकिन वे भी सिद्ध हुए है और सिद्ध होने पर उनका ज्ञान, उनका आनन्द वैसा ही है जैसा कि बडे-बडे प्रसिद्ध पुरुष आदिनाथ जैसे तीर्थंकर सिद्ध हुए है, तो जगतमे कोई मुझे समझे, पूछे, जाने, ये सब विकल्प तो इस अज्ञानकी नीव पर होते है। पवित्र जैन शासनको पाकर असली कमाई यह करना है कि हम अपने आपमे एक बार भी बाहरी पदार्थोका ख्याल तजकर, निर्विकल्प रहकर ज्ञानस्वरूपकी अनुभूतिको प्राप्त करे। यह काम जतानेसे नही होता, यह काम दिखाने से नही होता। जहा भी हो, अपने आपपर यदि दया हुई हो कि

ये जन्ममरण तो ससारके झंझट है और हमे इस जन्म मरणसे छुटकारा बनानेके उपायमे ही लाभ है। यदि ऐसी करुणा और रुचि जगी हो तब तो सम्यक्त्वका उपाय बन सकता है अन्यथा नही। तो आप यह निर्णय करलें कि ये बाहरी समागम मेरे कब तक साथी है ? क्या अब भी साथी है ? क्या मेरे को सुख शान्तिके साधन है या आकुलताके साधन है या विकारके साधन है ? यह ही निर्णय करके देख लो। यदि यह बात सत्य समझमे आये कि सर्व जीव अजीव यहाँ तक कि यह देह भी मेरे स्वरूपसे अलग चीज है और इसके लगावमे मेरेको शान्ति नही सन्मार्ग नही है। यदि ऐसा निर्णय बने तो चाहे आप विशेष न कर सके पर कोई समय आप उपेक्षा करके अपनी उस निर्विकल्प ज्ञानस्वरूप अनुभूतिको पा सकते है। है। वह अनुभूति यदि मिले तब तो समझिये कि हमारा यह मनुष्यभव पाना सार्थक है। और वह अनुभूति अगर न मिली तो जैसे अनेक भव पाये, मरण किया, जन्म लिया, बस उसी परम्परामे यह भव भी पाया, जन्म लिया, मरण किया मगर हाथ कुछ न लगेगा। एक अपने इस जीवतत्त्वको देखे, अपने अन्त वैभवको देखे कि मेरेमे वास्तविक विभूति क्या बसी हुई है ? अनुपम प्रतिभासमात्र, ज्ञान ज्योति स्वरूप, जिसकी उपमा देने के लिए जगतमे कोई पदार्थ न मिलेगा। आप आकाशका उदाहरण दे सकेगे क्या ? यद्यपि आकाश अनन्तप्रदेशी है लेकिन वह अचेतन है। जितना यह आकाश है यह सब तो इस चेतनके एक कोनेमे पडा रहता है। जब ज्ञानका विकास होता है तो तीन लोक और तीन कालके सर्वपदार्थ इसके ज्ञानमे समाये रहते है।

जीवकी सर्वद्रव्योंमें साररूपता—यह जीव उत्तम गुणोका घर है। सर्वद्रव्योमे उत्कृष्ट यह जीवतत्त्व है। जहाँ समयसारकी व्याख्या की है तो वहा अर्थ बताया है कि समय नाम है सर्व पदार्थोका। समयमे दो शब्द है—सम और अय्। अय्के मायने है प्राप्त होना। जो अपने गुण पर्यायोको प्राप्त करे उसको समय कहते है। तो समय मायने चीज, वस्तु, पदार्थ। तो समय ६ प्रकारके है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। और, इन सब समयोमे मायने सर्वपदार्थोमे सारभूत पदार्थ है जीव। तो समय नाम जीवका भी है। जो एक साथ सर्व गुण पर्यायोको जाने उसे समय कहते है। तो इन सब पदार्थोमे श्रेष्ठ है जीव, और इस जीवमे भी सारभूत चीज क्या है ? तो जीवके रूप बहुत विस्तृत है। देव, नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय आदिक बहुत विस्तार है। और, भावो की दृष्टिमे अनेक प्रकारके क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अनेक विस्तार है जीवमे, लेकिन उन सब विस्तारोमे कुछ सार नही है। सारभूत तो एक वह ज्ञानमात्र स्वरूप है। उसका कितना विस्तार है, मूलमे तो कोई एक बात है, अनेक बाते तो आयी हुई होती है और मूल बात कोई एक होती है। तो जीवमे मूल बात एक चेतना है, फिर रागद्वेष मोह आदि

ये सब तो आयी हुई बातें है। तो जो स्वाभाविक है, सहजस्वरूप है ऐसा जो चेतना धर्म है चैतन्य, वही सार है। अपने आपको हर एक जीव किसी न किसी रूपमे श्रद्धान किए हुए है—मै अमुक चंद हू, अमुक प्रसाद हू, अमुक लाल हू, समझदार हू, कम समझदार हू आदि। मै क्या हू ? हर एकके चित्तमे इसका कोई न कोई उत्तर मिलता है। जब यह अत उत्तर आने लगे कि मै विशुद्ध चैतन्यमात्र आत्मतत्त्व हू तब समझिये कि हाँ अब मैने अपने आपको पहिचाना। पर अपने आपकी बात माने कैसे ? इसके लिये तत्त्वज्ञान का अभ्यास करके उसका दृढ श्रद्धान बनाइये। जब यह श्रद्धान बनता है कि मै चैतन्यमात्र हू तब समझिये कि हमने अब सारभूत चीज प्राप्त की।

जीवमें सार स्वरूपके लाभका उद्यम—जीवमे भी सारभूत बात ज्ञानसाधना है, उसकी प्राप्तिके लिए ही यह उपाय है कि देवदर्शन करे, भगवानकी रोज पूजा करे। उसमे हम क्या सीखते है ? वहाँ गुणोका स्मरण तो करते है, पढ करके, चरित्र बाँच करके हम प्रभुके गुणोका स्मरण करते है, क्यो करते है कि उनका स्मरण करनेसे हमे अपनी अनुभूतिकी खबर आ जाय कि मैं भी ऐसा एक श्रेष्ठ तत्त्व हूँ ज्ञानस्वरूप। इसे न मानकर और अन्य अन्य रूप अपनेको मानकर यह जगतमे भटकना बन रहा है। आज यहाँ है तो यहाँके प्राप्त समागमोको अपना मानते है, उन्हे ही अपना सर्वस्व समझते है, इस भवके पहिले जब किन्ही अन्य भवोमे थे तो वहाँके प्राप्त समागमोको अपना मान रहे थे, उनको ही अपना सर्वस्व समझ रहे थे, परन्तु जैसे पूर्वभवोके प्राप्त समागम आज अपने लिए कुछ नही है ऐसे ही आजके ये प्राप्त समागम भी सब विघट जायेगे। मेरे लिए ये कुछ भी न रहेगे। यह जीव इस ममताके कारण इन प्राप्त समागमोको नया और अपूर्वसा समझता है। जब तक यह ममता इस जीवके साथ रहेगी तब तक यह प्राप्त होने वाले समागमोको नई चीज और एक अपूर्व चीज मानता रहेगा। धन्य है वे जीव जो कि इस ममताकी धाराको तोड देते है। अपने सत्यस्वरूपके परिज्ञानसे यही फायदा मिलता है कि यह मोह टूट जाता है।

मोहसे निवृत्त होनेमें ही भलाई—इस मोहको मोही लोग बडे प्रशसाके रूपमे लेते है, जैसे इसको अपने घरसे बडा मोह है, यह अपने घरका बडा ख्याल रखता है आदि, पर ये स्वार्थीजन ही इसको प्रशसाके रूपमे लेते है। मोह टूट जानेमे कोई हानि नही है। मोहरहित होकर घरमे रहनेमे शान्तिका उदय है। मोह और रागमे अन्तर है। घरमे रहते हुए राग न करे यह बात न बन सकेगी। अगर राग नही कर रहा है तो वह घरमे रह नही सकता, स्थिति ही ऐसी है, पर मोह न रहे घरमे फिर भी वह घरमे रह सकता है, उसकी सीमा है। मोह और रागमे यह अन्तर है कि मोहमे तो भरा है अज्ञान। जैसे—यही लोग मेरे लिए सर्वस्व है, इनके विना मेरी जिन्दगी नही, इनको छोडकर अन्य कोई मेरे लिए शरण

नही, मेरा सर्वस्व प्राण ये ही है। मोहमे अपने आपके स्वरूपकी सुध नही रहती, पर राग रहते हुए भी अपने स्वरूपकी सुध रह सकती है, यदि मोह न हो। घरमे है, संहनन भी वैसा नही है, परिस्थिति ऐसी नही कि हम सर्वका परित्याग कर दे, रहना पडता है तो राग तो करना ही होगा, धनार्जन भी करना होगा, सबकी खबर लेना ही होगा, लेकिन उसको मोह नही है। उसे सत्य ज्ञान है कि ये जीव उतने ही जुदे है जितने कि जगतके अन्य जीव जुदे है, यह देह भी मेरा मेरेमे ऐसा जुदा है जैसा कि अनेक पुरुषोको मरणके बाद देखा भी है कि देह उनका वही पडा रह गया, बिछुड गया, जीव निकल गया, ये सब उदाहरण उसके सामने रहते है, तो उसके मोह नही रहता। मोह और रागमे अन्तर है। मोह और रागका अन्तर इस तरह भी जान सकते है कि जैसे कोई सेठ रोगी हो जाय तो उसके लिए घरमे आरामके वडे साधन बढा दिए जाते है, अच्छा कमरा, अच्छा पलग, दो चार नौकर, समयपर डाक्टर लोग दवा भी देते, दवा देनेमे जरा देर हो गई तो वह सेठ झुंझला भी जाता है, तो देखिये उस सेठको उस औषधिमे राग है, पर मोह नही है। मोहके मायने अंधेरा, वह रोगी सेठ नही चाहता कि मुझे आज जो आराम मिल रहा है वैसा आराम जिन्दगीभर मिले। यद्यपि उस सेठको उस औषधिसे राग है फिर भी उसके चित्तमे यह बात बसी हुई है कि कब यह औषधि छूटे और मै दो चार मील दौड प्रतिदिन लगा सकू। तो ऐसे ही समझिये—कि हम आप गृहस्थीके अन्दर रहकर भी ऐसा विवेक बना सकते है कि वहाँ राग तो रहे पर मोह न रहे। तो देखिये भीतरकी बात अपनी समझसे, अपने ज्ञानसे अपने आपमे घटित करके यदि एक इस अंधेरेको दूर कर दिया जाय तो घर वही है, परिजन वही है पर खुदका जीवन उजेलेमे आयगा। और, एक मोह न हटा तो जीवन उजेलेमे न रहा, जीवन अंधकार है, शान्तिका रास्ता नही पाया जा सकता।

ज्ञानोद्यमनकी अपूर्वता—जो ज्ञानी पुरुष है उनके बाह्यपदार्थोकी परिणतिमे कुछ उलझन नही है। बाह्यमे जो कुछ होता है उसके ज्ञाताद्रष्टा रहते है। धन कम हुआ तो क्या है, न कोई बाह्य पदार्थ मेरा कुछ था, न है, न होगा, उसके प्रति क्या दु खी होना ? कोई इष्ट वियोग हो गया तो क्या है ? जगतमे तो यह बात होती ही रहती है, जिसके आयुका क्षय जब होना था हो गया, उसके पीछे क्या दुःखी होना ? यो ज्ञानी पुरुष बाह्य परिणतियोसे अपनी कुछ हानि नही समझते है। बस यही फर्क रहता है निर्मोही और मोही गृहस्थमे। यदि तत्त्वज्ञान जगाकर एक इस मोहको दूर कर लिया जाय तो समझिये कि मैने अपने जीवनमे सब कुछ पा लिया। यहाँ आचार्यदेव कहते है कि देखो तो अपने स्वरूपको। यह उत्तम गुणोका घर है। सर्वद्रव्योमे उत्तम है और तत्त्वोमे यह परम तत्त्व है, एक अपने स्वरूपको निहारकर अपने आपमे वह घटित करता है कि मेरे लिए मै ही

सब कुछ हू, मेरी ही करतूत मुझे सुख दु ख देती है। जैसा मेरा ज्ञान होगा उसी प्रकारका मेरा भविष्य बनेगा। इस बन्धनसे मुक्त करनेके लिए भी कोई दूसरा न आयेगा, खुदको ही करना होगा। तो अपने आप पर कुछ दया करके इस जन्म मरणसे छुटकारा प्राप्त करनेका उपाय प्राप्त हो, ऐसा मनमे निर्णय करना और उसके अनुसार चलना, भगवानकी भक्ति करके, स्वाध्याय करके अपने आपको अकेला अनुभव करना है, जिस किसी भी प्रकारसे परका विकल्प छूटकर एक बार भी ज्ञानस्वरूपका अनुभव पा लेना यही अपने जीवनका एक प्रधान उद्यम होना चाहिए।

अतरतच्च जीवो वाहिरतच्व हवति सेसाणि।
णाणविहीण दव्वं हियाहिय णेव जाणादि ।२०५॥

सर्व पदार्थोंमें अन्तस्तत्त्व व बाह्यतत्त्वका विभाग और उसमे हित दर्शन——जगतमे जितने भी सब कुछ पदार्थ है इन सबका दो हिस्सोमे विभाग करना, अतस्तत्त्व और बाह्यतत्त्व। अतस्तत्त्व तो यह आत्मा है, जीव है और वाह्यतत्त्वमे सर्व पदार्थ आ जाते है, पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल, और इनमे भी विशेष भीतरी दृष्टि करके देखे तो मेरे लिए मेरा अन्तस्तत्त्व मेरा आत्मा है और मेरेको छोडकर बाकी सर्व जीव और समस्त पुद्गल आदिक पदार्थ ये सब बाह्यतत्त्व है। अन्तस्तत्त्वके मायने भीतरीस्वरूप और बाह्य तत्त्वके मायने बाहरीस्वरूप। दो भागोमे सर्व कुछ विभक्त हो गया (१) मैं और (२) मेरेसे अतिरिक्त सर्वपदार्थ अथवा (१) जीव और (२) जीवके अलावा अन्य सर्व पदार्थ। तो इसमे जीव तो है ज्ञानस्वरूप। वह तो हित और अहितको जानता है और जीवको छोडकर वाकी पदार्थ हित और अहितको नही जानते। यदि सर्व द्रव्योके स्वरूप पर दृष्टि दे तो जीव सर्व द्रव्योमे श्रेष्ठ, उत्तम जाना जाता है। अथवा कहो कि यह जीव ही राजा है, वाकी पुद्गल आदिक जो कुछ ढेर पडे हुए है सो ये ज्योके त्यो पडे है। इनमे ज्ञान नही है, व्यवस्थाका माद्दा नही है। जीव है ऐसा कि जिसमे ज्ञानस्वरूप है और सर्वपदार्थोको जानता है, हित अहितको जानता है।

वर्तमान साधनकी कल्याणका उपाय बनानेके लिये अनुकूलता——अब इस समयका मौका अगर सही दृष्टिसे देखो तो अपने आपको कितना सुन्दर मिला हुआ है। अगर चाहे तो सदाके लिए इन सकटोको मेट ले। और न चाहे तो बाहरी बातोमे फसकर अपना राग-द्वेष मोहमे जीवन बिताये और जैसे अन्य भव पाये वैसे ही यह भी भव बीत लेगा। अपने आत्माका उद्धार करनेके लिए यहाँ वहुत वडी तैयारी करनी होगी, हिम्मत वनानी होगी और हिम्मत भी क्या ? जब सर्व चीजे अपनेसे निराली है तो दृढतासे निराला समझ ले। कुछ कुछ जव समझमे आता है कि घर परिवार भी क्या, धन वैभव भी क्या ? सव कुछ

परवस्तु है, और यह सब पुण्य पापका संयोग है, और की तो बात क्या ? यह मेरा देह भी मेरा साथी नही है, यह भी मेरे लिए नि सार है, यह सर्व रोगोका घर है, सारी चिताओका यह साधन है। जब यह देह लगा है, हमारा आकार बना है, नाक कान आदिक रचनाये है तो एक आधार मिल गया ना यहाँ ही रमनेका। यह ही मै हू और इस मुझको सब लोग जानते है। जो नही जानते वे भी मुझको जान जाये ऐसी भीतरमे आकांक्षा जगती है, और है कोई नही समझने वाला, किसीसे कोई सम्बध नही। जैसे भाव करता है उसके अनुसार फल इस अकेलेको ही भोगना पडता है, बाहरी जो ठाठ है, जो घरमे जीव बस गए है वे सबके सब मुझसे अत्यन्त निराले है, तत्त्व निरखे और अपने आपमे जो सहज स्वरूप है। ज्ञानस्वरूप है उसकी दृष्टि करे तो केवल ऐसा अनुभव जगेगा कि जो इस कर्मबन्धनको तोड देगा। हम मात्र बाहरी मन वचन काय की चेष्टाओको करके हम चाहे कि इन कर्मकलकोको तोड दे तो केवल इन बाहरी चेष्टाओसे ये कर्म नही टूटते। इन कर्मोके फलसे जब वैराग्य जगेगा और अपने आपके सहजस्वरूपमे अपना ज्ञान जगेगा तो उस अलौकिक अनुभूतिसे कर्म कटते है।

धर्मपालनकी कर्मविच्छेदनप्रयोजकता— कर्मोके काटनेके लिए हमने ये साधन जुटाये है कि भाई रोज देवदर्शन करे। यहाँ आकर गुणस्मरण करे, अपने आपकी सुध भी होगी तो सीखना है यहाँ भेदविज्ञान। मै सबसे निराला हू, देहसे भी निराला हू, यह ज्ञान सीखना है मदिरमे पूजाये, दर्शनमे, धर्मके प्रसगमे, यह अनुभव करना है, यह अभ्यास बनाना है कि देह जड है, नष्ट होगा, जला दिया जायगा, यह दुर्गन्धित है, सारहीन है। मैं आत्मा एक चैतन्य भावरूप हू, पवित्र हूँ ऐसा यह मै ज्ञानपुञ्ज आत्मा इन सर्व समागमोसे निराला हू। मेरी कही भी हानि नही, कही अरक्षा नही। जब तक राग है तब तक अरक्षाका दिमाग बनता है। जब ज्ञान ज्ञानमे आ जाय, ज्ञानका सही स्वरूप समझ ले तो यह अनुभव करेगा कि मेरा कोई विनाश कर सकने वाला ही नही है। मेरा जो सहज ज्ञानस्वरूप है उसमे कोई बाधा डाल सकने वाला ही नही है। अपनेको निराकुल अनुभव करे। पर यहाँ भीतर की दृष्टि नही रहती है तो बाहरके उपयोगमे तो विडम्बना ही है। हम भगवानकी मुद्राको निरखकर उसकी उपासना करते है तो मुद्रामे हम सीखे क्या ? इनका ठाठ हमसे हजारों गुना था, तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे, करोड़ो गुना ठाठ था, पर वह ठाठ, वह सारा समागम उनकी शान्तिका कारण न बना, उसको असार जानकर सर्व कुछ त्यागकर सारभूत अपने आत्माके ध्यानमे लग गए। मुद्रा भी देख लो, पैर मे पैर फँसाकर बैठे है। जो आसन हमे दिखाता है कि अब हमे कही जानेका काम ही नहीं है। हाथपर हाथ धरे बैठे है प्रभु, जो हमे दिखाते है कि जगतमे अन्य कुछ कर्तव्य ही करने लायक नही है। श्रेष्ठतम कर्तव्य तो

एक आत्मसाधना है।

ज्ञानसाधनारुचिकी परमवैभवता—जिन जीवोको इस आत्मज्ञानकी साधनामे रुचि जगी है वे चाहे दरिद्र भी हों फिर भी वे अपनेमे तृप्त रहते, सतुष्ट रहते और अपनेको अमीर अनुभव करते है। दर्शनमे पढते है कि इस जिनधर्मको छोडकर मै चक्रवर्ती भी नही होना चाहता और जिनधर्मसे वासित होकर मै किसीका नौकर रहा जाऊँ, दरिद्र भी रहा आऊँ यह हमे मजूर है। इस बातको, इस भावको परखे कि मेरा ज्ञानस्वरूप आत्मा मेरे ज्ञानमे रहे और फिर मै चाहे दरिद्र भी रहू, किसीका सेवक भी रहू तो वह भली बात है क्योकि एक ज्ञानस्वरूप आत्माका दर्शन तो बनता रहता है और एक अपने आत्माकी सुध न हो सके मिथ्यात्वमय, हिंसामय, नीचकुलमे जन्म हो और वहा वे ही झगडे के विकल्प निरन्तर रहा करे और वहाँ चाहे श्रीमान बन जाये, लखपति बन जाये तो भी वहाँ सार कुछ नही है। जब जैसा जो मिलेगा वह सब छोडकर जाना है। चाहे कोई धनिक हो अथवा कोई साधारण स्थितिका हो, छोडकर जानेमे समानता है। सब कुछ छोडकर यहासे जाना होगा। अब यहाँसे छोडकर जाने वालेको आगे किस प्रकार क्या बीतेगा, यह तो उसके किए हुए कर्मोपर निर्भर है। एक जन्ममे किसी तरह दुनियाको अपना पोजीशन बता दिया, दुनियाको कुछ भी दिखा दिया, तो उससे दुनिया हमारी साथी न बन जायगी, वे सभी स्वार्थनिरत है। स्वरूप भी ऐसा ही है कि कोई किसी दूसरेका क्या करेगा ? तो यहाँ दूसरे के लिए हमे क्या करना ? स्वयके लिए ही कुछ करना है।

स्वयं ही स्वयंपर बिछाई हुई आपत्तिके न होनेपर सुविधाका सौगम्य—आज यदि समाजमे एक दहेज प्रथाकी आपत्ति न होती तो जैनदर्शनका पाने वाला यह समाज चाहे किसी भी परिस्थितिमे होता सुखी रहता। दरिद्रता हो तो कोई दुःखकी चीज नही, अथवा अपनी इज्जत न हो तो यह भी कोई दुःखकी चीज नही। कितनी बडी यह दुनिया है, उसमे थोडे क्षेत्रका हमारा निवास है, अनादि अनन्त समय है, उसमे ये १००–५० वर्ष क्या कीमत रखते है ? जो हो सो हो, सर्व बातोको सहन कर सकते है, पर विवेक हो तब ना, पर एक खुद ही खुदकी समाजने जो एक आपत्ति बिछा दी है इससे परेशानी है। अन्य बातोमे हम आप अपने मनको बहुत संभाल सकते है, जो भी स्थितिया आये उनमे गुजारा कर सकते है। कर्तव्य तो धनिक बननेका नही है जीवनमे। आखिर सब कुछ यहाँसे छोड कर जाना होगा। इज्जतवान, पोजीशनवान बनना भी हमारा कर्तव्य नही है जीवनमे, पोजीशन बनाकर मिलेगा क्या, आखिर सब कुछ छोडकर जाना होगा बस अपने आत्म-स्वरूपका अनुभव हो जाय यही काम जीवनमे करनेका है। यह काम नियमसे आगे बहुत बडी मदद देगा। बाकी और काम हमारा कुछ भी साथ न देंगे, बल्कि दुःखके ही साधन

बन रहे है।

अपनी अविनश्वरता व भावोंपर भविष्यकी निर्भरता जानकर आत्मकरुणामे भलाई– हम जीव है, हम अपनेको मिटा कहा सकते है ? अनादिसे है, अनन्त काल तक रहेगे, इस मुझका कभी विनाश हो नही सकता, तब यह किसी न किसी हालतमे रहेगा। जैसे मै आज इस मनुष्यकी पर्यायमे हू और जो जो परिस्थितिया बना रखी है उन परिस्थितिवोमे हू तो आगे भी किसी न किसी हालतमे रहूगा। यदि यह अपने स्वरूपका ज्ञान कर लेता है, एक बार अनुभव कर लेता है कि मै ज्ञानमात्र हू, केवल चैतन्यस्वरूप हू, सबसे निराला हू, मुझमे केवल मै ही हू, अखण्ड हू, सदा सुरक्षित हूँ, अविनाशी सत् हूँ। किसी दूसरेसे इसका रच भी सम्बन्ध नही है। केवल ज्ञानमात्र, अपनी सत्तामात्र अपनेको अनुभव कर लिया जाय तो उससे बढकर इस जगतमे कोई अमीर है क्या ? ये व्यर्थ की बुद्धिया जरा जरासे राग मोहमे हम बहुत बडी समस्याये मान करके हम अपने जीवनमे चिंतित हो जाते है। साहस यह बनाना चाहिए कि ये तो कोई समस्याये ही नही है। अपने घरके स्त्री पुत्रादिकको धर्मकी ये बाते सिखा देना चाहिए कि सब कुछ निराला है, किसी भी बातमे भय, चिन्ता न रखना चाहिए। अपने स्वरूपको देखो उसमे बडा वैभव भरा है, अपने स्वरूपके ध्यानके प्रतापसे ही अरहत हुए है, सिद्ध हुए है, जिनकी हम आप रोज उपासना करते है। बाहरमे कही कुछ नही रखा है। अपना सब कुछ अपने अन्दर ही पडा हुआ है, उसकी धुन बनाये, उसके लिए प्रेमी बने, यह बात यदि घरमे सबको सिखा दे तब सकट क्या रहा ? घरमे सभी लोग धर्मप्रेमी हो गये, अब बाहरी संकोच भी नही रहा। जो स्थितियाँ है वे सब झेली जा सकती है। स्वय सीख लो–अपने आपके ज्ञानमे ही शान्तिका मार्ग मिलेगा, बाहरी पदार्थोके सुधार विगाडमे शान्ति नहीं मिल सकती।

ज्ञानमय जीवद्रव्यमे हिताहित जाननेकी वृत्ति— मै हू, ज्ञानमय हू, अतस्तत्त्व हूँ, जाननहार हू, हित अहितका विवेक कर सकता हू, पर ज्ञानरहित जो बाहरी यह सारा विश्व है यह हित अहित नही जानता। आश्चर्यकी बात यह है कि स्वयं प्रभु होकर, स्वयं एक उत्तम द्रव्य होकर, एक ज्ञानमय पदार्थ होकर इन जड असार पदार्थोमे यह जीव रमना चाहता है और इनमे ही यह सन्तुष्ट रहना चाहता है, जो कभी भी सम्भव नही है, बस यह वृत्ति चल रही है। भगवत्भक्ति यथार्थ ढगसे की जाय तो यह सब ज्ञानप्रकाश सामने आता है। तो यह ज्ञान, यह अंतस्तत्त्व, यह जीव, इसके लिए यही सर्व कुछ है, इस कारण सर्व द्रव्योमे उत्तम द्रव्य जीवद्रव्य है, सर्व उत्तम गुणोका घर यह जीव है, तत्त्वोमे परमतत्त्व यह जीव है, उसका आदर करे। बाहरी पदार्थोका आदर जो चित्तमे समाया हुआ है यह विष-पान है, इसमे निरन्तर जलन है, आकुलता है और, अपने आपके ज्ञानस्वरूपपर जो अपना

उपयोग जाय, दृष्टि जाय, अपनेको पहिचाने कि मैं सिर्फ ज्ञानमय हू, ज्ञानके सिवाय अन्य कोई मेरे रूप नही है । मैं हर जगह इस ज्ञानको ही करता हू, इस ज्ञानको ही भोगता हूँ । यह तो उपचार कथन है कि मैं घरको करता हू, कुटुम्बका पालन करता हू आदि । मै तो सदा ही अपने विकल्पोको ही किया करता हू । अब दूसरे जीवोका पुण्यका उदय है तो आप निमित्त होगे, धनार्जन होगा, उनकी सेवा बनेगी तो आप यदि धनार्जन करते है तो समझो कि आप तो उन पुण्यवतोके नौकर बने हुए है । आपको तो रातदिन जुतना पडता है और घरके लोग आरामसे उस धनका उपभोग करते है तो तुम व्यर्थ ही विकल्प करते हो कि मै परिवारका पालन पोषण करता हू । आप तो अपने ज्ञानको ही करते हो, ज्ञानको ही भोगते हो । ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ नही करते । एक ऐसी अन्त दृष्टि तो बनाओ ।

भगवत्प्रज्ञप्त रत्नत्रयमार्गसे ही परमशान्तिकी संभवता--शान्तिका उपाय दुनियाके सभी लोग सभी प्रकारसे बताते है और यह भी उनका कहना बहुत अशोमे ठीक है कि सबसे पहिले तो घर गृहस्थीके व्यापार भोजनपान आदिकका सामर्थ्य होना चाहिए । तो ठीक है, पर पुण्यकर्मके उदयसे जब हम मनुष्य हुए है तो हमारा उदय इतना अवश्य है कि इतने साधन मिलते रहेगे, पर मुख्य काम तो ऐसा मार्ग ढूंढ लेनेका है कि जिससे नियमसे शान्ति ही प्राप्त हो, वहाँ कोई दूसरी ही बात नही, वह मार्ग है जिनेन्द्र देवके द्वारा बताया गया सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप । जब इन बाहरी विकल्पोको त्यागकर हम इस ओर आते हैं कि प्रभुने जो उपदेश दिया है और जिन प्रभुको हम आपने पूज्य माना है तो प्रभुके उपदेशमे बल अवश्य है, सार अवश्य है, और यही सारभूत काम आता है कि हम सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्राप्त करे । अपनेको जाने माने और अपनेमे रम जाये । ज्ञानी पुरुष बडा साहसी पुरुष होता है । जब धनजय सेठ भगवानकी पूजा कर रहे थे और उसी समय धनजयके बच्चेको साँपने डस लिया तो बच्चेकी माँ ने सेठके पास खबर भिजाया कि बच्चेको सर्पने डस लिया है, लेकिन वह प्रभुभक्तिमे इतना मग्न थे कि कुछ भी न सुना, दुबारा फिर खबर भिजाया पर धनजयने अनसुनी कर दी । तो गुस्सेमे आकर धनजयकी स्त्रीने उस अधमरे बच्चेको मदिरमे पहुचा दिया और यह कहकर कि बच्चा मरे चाहे जिए, तुम जानो, छोडकर चली गई । आखिर धनजय सेठ प्रभुभक्तिमे लीन रहे । आखिर उपयोग ही तो है । वही स्तवन भी रच डाला, और उनकी भक्तिका ऐसा माहात्म्य हुआ कि वह बच्चा स्वय निर्विष हो गया और खडा हो गया । तो यह बात तो पुण्योदयकी है, अलग बात है लेकिन ज्ञानीकी धुन तो देखिये—कितना महान साहस है कि कोई भय नही, कोई घबडाहट नही, कोई विकल्प नही, और एक अपने ज्ञानमार्गमे ही लगा हुआ है तो साहस बिना इस जीवका कोई साथी नही हो सकता है । यहाँ कौन मददगार

है ? हमारा ज्ञान विवेक भीतरी साहस यही हमारा साथी बनेगा, दूसरा कोई हमारा साथी नही। पवित्र भाव रखे।

हितार्थीका एक मात्र कर्तव्य—एक दृष्टिसे निहारने पर विदित होगा कि जो होना है वह होकर रहेगा। अवधिज्ञानीने, प्रभुने जो जान रखा है, हम जानते नही है, होगा विधिविधानपूर्वक, मगर होनेको कौन रोकेगा ? होकर रहेगा। तब हम उसके करने वाले क्या ? जिस जीवका जैसा उदय है उसके अनुसार उसे सर्व सामग्रिया प्राप्त होती है। मै कुछ भी करने वाला नही हूँ। मेरा तो वह स्वरूप है जैसा कि प्रभुका है। जैसे प्रभुमे ज्ञान-दर्शन आनन्द प्रकट है वैसे ही ज्ञान, दर्शन, आनन्द मुझमे शक्तिरूप है। जाति एक है, आत्मा ही तो प्रभु है, आत्मा ही हम है। जो स्वरूप प्रभुका है वही मेरा है। पर अन्तर यह हो गया कि प्रभुने तो ज्ञान वैराग्यका उपाय बनाकर कर्मोंका नाश किया, प्रभुता पायी और यहाँ हम ज्ञान वैराग्यका सहारा नही ले रहे, इसी कारण जन्म मरण करते है। आज मनुष्य है तो इतना ख्याल है, इतना परिचय है, कुछ विचार भी है और मनुष्य न रहे, मरकर पशु पक्षी कीट पतगा आदि हो गए तब तो समझिये कि हम क्या करे ? यह जीव जैसी स्थितिमे है उस ही मे यह बडा दुःख मानता है, मगर इससे भी करोडो गुना दुःखमयी स्थितिया है अनेक भवोमे। जीव तो भैसा, बैल आदिक भी है जो कि गाडीमे जोते जाते है, चलते नही बनता फिर भी पिटते जाते है। उनको पूछने वाला यहा कौन है ? जीव हम भी है, जीव जाति तो समान है। हम आज अच्छी स्थितिमे आकर भी अपने को दुःख मय अनुभव करते है। कोई भी हो बडेसे बडा, करोडपति भी यही अनुभव करते है कि अभी मेरी ऊँची स्थिति नही है इस कारण वे आकुलता मानते है पर उससे और नीची स्थिति हो किसी की तो क्या उसका जीवन नही चलता है तो अनेक दुःखमय स्थितिया है जगतमे। यहाके समागमोसे सुखकी आशा करना व्यर्थ है, शान्तिकी आशा करे तो सम्य-ग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे करे। मैं अपने स्वरूपको जान लूँ, पहिचान लूँ, वही रमकर रह जाऊँ, ऐसी धुन ऐसा विचार, ऐसा यत्न बनाये, इस ओर लक्ष्य दे कि करने योग्य काम केवल एक ही है, बाकी सब काम असार है। कुछ भी काम कर डालो उससे आप यह अनुभव न कर पायेगे कि जो कुछ हमे करना था वह सब कर चुके। किसी बाहरी दशामे बढकर देख लो। आपको यह सन्तोष न होगा कि जो कुछ मुझे करना था सब कर चुके, अब कुछ नही करना है, लेकिन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमे बहुत सतोष पायेगे। समझो कि जो कुछ हमे करना था वह सब कर लिया। अब मुझे कुछ करनेको बाकी नही है। तो इस अपने निरपेक्ष सहज ज्ञानमय स्वरूपको समझे और उसमे ही मग्न रहकर अपना कल्याण करे।

सव्वो लोयायासो पुग्गल–दव्वेहि सव्वदो भरिदो ।
सुहुमेहि वायरेहि य णाणा-विह-सत्ति-जुत्तेहि ॥२०६॥

जीव और पुद्‌गलके परिचयकी सुगमता—इस लोकमे जितने भी पदार्थ है वे सब ६ जातिके है– जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । इन ६ जातिके पदार्थोमे से दो जातिके पदार्थोका तो खूब परिचय है–जीव और पुद्‌गल । जीव खुद है सो अपने वारेमे अपना बोध रहता है कि मै हू सुख दु ख सभी कुछ इस पर आया करते है । उन्हे यह झेलता है, विचार करता है, कभी दु खी होता है, कभी मौज मानता है, कभी शान्तिका उपाय भी बनाता है तो अपने आपके स्वरूपकी याद होने से इस जीवको तो मानता है कि दुनियामे जीव है । और, पुद्‌गल ये सब चूँकि दिखाई देते है, इनको कैसे मना करेगे ? जिनमे रूप, रस, गध, स्पर्श हो वे सब पुद्‌गल है, तो पुद्‌गल को भी जल्दी ध्यानमे लाया जा सकता है । अब चार द्रव्य जो और है धर्म, अधर्म, आकाश और काल, इनकी बात कठिनाईसे समझमे आती है ।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य व कालद्रव्यका स्वरूप—धर्मद्रव्य इस सारे लोक मे फैला हुआ है जो आँखो नही दिखता, पर जिसके होनेसे हम आप और पुद्‌गल ये गमन कर जाते है जो हम आपके चलनेमे मददगार है वह धर्मद्रव्य है । आँखो नही दिखता इस कारण उस विषयमे जिज्ञासा रहती है कि कहाँ है धर्मद्रव्य, लेकिन धर्मद्रव्य न होता तो हम आप हाथ पैर भी न हिला सकते थे । कोई चीज है ऐसी, जैसे कुछ बताते है कि बाहरी कोई विशिष्ट वातावरण होता है वहाँ गमन होता है, न हो तो गमन नही होता, उससे भी सूक्ष्म चीज धर्मद्रव्य है । जो ऋषी सतोने बताया है, आधुनिक वैज्ञानिक लोग वहाँ तक नही पहुंचे है, और वह सारा एक ही पदार्थ है, इसी तरह एक अधर्मद्रव्य है जो सारे लोकमे भरा हुआ है । अधर्मद्रव्य चलते हुए जीव पुद्‌गलको ठहरानेमे सहकारी है । यद्यपि ये पदार्थ जबरदस्ती किसीको चलाते, ठहराते नही है मगर जब चले या ठहरे तो ये सहायक होते है । जैसे मछलीके चलनेमे जल सहायक है । पर जल मछलीको जबरदस्ती चलाता नही है, हा अगर मछली चलना चाहती है तो उसके चलनेमे वह जल सहायक बन जाता है । इसी प्रकार गर्मीके दिनोमे वृक्षकी छाया मुसाफिर को जबरदस्ती ठहराती नही है, किन्तु मुसाफिर ही स्वय यदि छायामे ठहरना चाहता है तो वह वृक्ष उसके ठहरानेमे सहायक बन जाता है । तो ऐसे ही धर्म और अधर्मद्रव्य चलने और ठहरनेमे सहायक है । ये बहुत सूक्ष्म द्रव्य है । इन दो द्रव्योका पता सुगमतया नही लगता । एक आकाशद्रव्य भी है । आकाश आकाश तो सभी लोग कहते है, यह जो पोल है, आसमान है, यह आकाश है, लेकिन आकाश कोई अवस्तु नही है । कुछ भी न हो, केवल अभाव का नाम आकाश नही

है किन्तु वह एक द्रव्य है, अनन्तप्रदेशी है। और, यहां हर एक क्षेत्रमे हर एक छोटी छोटी जगहपर एक एक कालद्रव्य पडा है, जिसके निमित्तसे वहाँकी चीजे बदलती रहती है। तो ये सब सूक्ष्म द्रव्य है।

जीव और पुद्गलमें विवेक भेदविज्ञान करनेकी आवश्यकता—खैर इनको अभी न विचार कर एक जीव और पुद्गगलके बारेमे ही विचार करे। इनका विचार करना यो आवश्यक है कि यह जीव जितना परेशान है केवल मोह और रागद्वेषसे परेशान है। जिनको सच्चा ज्ञान मिला वे योगी हुए, कर्मोको काटकर अरहंत सिद्ध हुए, जिनकी हम आप उपासना करते है उन्होने कोई उत्तम काम ही तो किया होगा। जो यहाँ ससारी मोही जीव घर मे रहकर घरकी व्यवस्था बना कर और कुछ कल्पित बढिया योग बनाकर ऐसा मौज मानते है कि मैंने करने योग्य सब कुछ कर लिया, हम बडे वैभववान है, मगर छह खण्डकी विभूति को त्यागकर चक्रवर्ती, तीर्थकर दिगम्बर होकर अपने आपमे आत्माका ध्यान करके ही उन्होने आनन्द समझा। तो जो बात सत्य है वह दृष्टिमे आ जाय तो समझ लीजिये कि हमारा यह मनुष्यभव पाना सफल है, हम कितना कर सकते या नही कर सकते, यह तो हमारी परिस्थिति पर निर्भर है लेकिन सही बातके जाननेमे प्रमाद क्यो किया जा रहा है? यह बात सत्य है कि नही कि मै जीव इस जगतमे सर्व बाहरी पदार्थोसे निराला हू, मै अपने स्वरूपसे बना रहता हूँ, ये बाहरी पदार्थ सब अपने स्वरूपसे बने रहते है, ये मेरेसे अत्यन्त पृथक् है। इतनी बात ज्ञानमे आ जाय तो इसमे कौनसी कठिनाई है? सही बात बात जान लेने पर सम्यग्दर्शनकी तैयारी होती है।

स्वजीवका अन्य जीवोंसे भेदका परिचय—जीवके बारेमे भी विचारे। मै भी एक जीव हू और मुझ जीवको छोडकर बाकी जो जीव है वे सब पूरेके पूरे स्वयं अन्य अन्य द्रव्य है। उनका सब कुछ उनमे है, उनसे कुछ भी मेरेमे नही आता। अब तक देख लो जिन्दगीमे जिन जिनसे प्रीतिकी, उनसे कुछ भी आपमे नही आया। उनका द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव सब कुछ उनमे ही है। उनके वियोग होने पर पता पडता है कि वह सब प्रीति तो एक भ्रमका खेल था। जिन बाबा दादोकी हम पर बडी प्रीति थी वे भी कहाँ रह सके। और, उनके समयमे भी वे मेरा कुछ न करते थे और मै उनका कुछ न करता था, सबका अपना अपना अलग-अलग भाग्य है। जो कुछ इष्ट अनिष्ट चीजे मिलती है वे सब सुकृत कर्म का फल है और इस कर्मफलमे क्या अधिक बुद्धि लगाना? ये उदयानुसार जैसे आना है आते है। प्राप्त सुविधामे ही अपनेको सन्तुष्ट रखे और उसमे ही अपनी व्यवस्था बनाले। विवेक तो यह है कि हम हर स्थितिमे अपनी व्यवस्था बनाते हुए धर्मका पालन करते रहे। आज हम मनुष्यभवमे है, कुछ ही समय इस पर्यायमे और रहना है, निकट ही समय है जब

कि यहाँसे विदा होना होगा । फिर यहाँके कोई भी समागम मेरे साथ न आयेंगे । फिर इन समागमोंमे क्या मोह करना ? तो बाहरी पदार्थोंका यथार्थस्वरूप जाननेसे ये सब बातें स्पष्टतया विदित हो जाती हैं । मैं जीव हू, मेरेको छोड़कर अन्य जितने भी जीव है और पुद्गल है वे सब मुझसे अत्यन्त निराले है, मेरा सब कुछ मेरेसे ही बना करता है, मेरा निर्माण मुझमे है, मेरा भविष्य मुझपर निर्भर है, ऐसा मैं सबसे निराला स्वतन्त्र पदार्थ हूं, यह बोध होवे त इस जीवका ऐसा अच्छा संस्कार बनता है कि इसको जब तक संसारमे रहना है तब तक अच्छी गति मिलती जायगी, और कभी ऐसा उपाय बना लेगा कि इसके जन्म मरण सब समाप्त हो जायेंगे । तो ये सब पहिचान करनेके लिए हमे जानना है कि मैं क्या हू और बाकी सब कुछ क्या है ?

लोककी पुद्गलद्रव्योंसे पूरितता—इस गाथामे पुद्गलद्रव्यका वर्णन है । यह जितना लोकाकाश है यह पुद्गलद्रव्योंसे ठसाठस भरा है । जहाँ हम पोल समझते है वहाँ भी ये पुद्गल द्रव्य भरे पडे है, और वे इतने सूक्ष्म है कि हमारे हाथसे छिडते नही और हमे पोल मालूम होती है । प्रथम तो यही बात देखिये कि लोकाकाशमे सभी जगह ठसाठस जीव भरे पडे है । जहाँ हम पोल समझते है वहाँ भी अनन्त जीव है, मगर वे सूक्ष्म जीव हे, वे अपनी मौतसे मरते है । जन्म लेते है सुखी दु खी होते है । उन्हे आग भी नही जलाता, पानी भी उनको गीला नही करता, सूक्ष्म शरीर है उनका, जिन्हे कहते हे सूक्ष्म निगोद जीव । और, ससारमे एक जीवके साथ अनन्त कार्माणवर्गणाये लगी है । अब समझिये कि कितने पुद्गल द्रव्य भरे पडे है । तो पुद्गलद्रव्यसे यह सारा लोक भरा है । इस जीवको है मोहकी आदत, और पुद्गलद्रव्य सभी जगह भरे पडे है । तो जहाँ भी यह जीव जन्म ले लेता है वहाँ ही इसे पुद्गलोका ढेर मिल जाता है । और उन पुद्गलोके ढेरमे मोह करके यह जीव कर्मोंका विकट बन्धन कर लेता है और संसारमे जन्म मरणकी विकट यातनायें सहन करता हे ।

किसी भी परद्रव्यको उपयोगमें न लेकर किसी क्षण निर्विकल्प अनुभूति पानेका अनुरोध—भैया ! साहस बनाकर किसी भी क्षण ऐसा अपना चित्त बना लें कि मुझे किसी भी परपदार्थको अपने चित्तमे नही बसाना है, इन परपदार्थोके सयोगसे अनेक दु ख भोगे, अनेक सहे, आपत्तियाँ सही, उनमे चित्त बसानेसे अभी तक लाभ कुछ नही मिला । इसलिए कुछ क्षण लिए मुझे किसी भी परपदार्थको अपने चित्तमे नही बसाना है । और उस समय जो भी बात चित्तमे आये उसीका झट विचार करने लगे कि यह चीज भी मेरा साथ न निभायेगी, इसमे दृष्टि होनेसे हमे आकुलता ही मिलेगी । तब एक बार किसी समय भी अपने आपपर दया करके अपना चित्त ऐसा तो बना लें कि जब यहाँ मेरा कही कुछ भी नही है तो किसी भी वस्तुको मै अपने चित्तमे स्थान न दूंगा, यह बात तुरन्त न बन पायगी, इसके

लिए रोज रोज वडा अभ्यास करना होगा। हम आप रोज जो सामायिक पाठ करते है, प्रभुके नामका १०८ बार जाप जपते है, उसका भी प्रयोजन यही है कि अपने चित्तको वहाँ पर हम ऐसा बनावे कि किसी भी परपदार्थको अपने उपयोगमे न टहरने दे। ऐसी अवस्था कभी क्षणभरको बन पायगी। उस एक क्षणकी झलक आपको एक अद्भुत आनन्द देगी और उसी समय अनेको भवोंके बाँधे हुए कर्म कट जायेंगे। यह है वास्तविक धर्मपालन। ऐसा उपाय बनाले यही हम आपका सही मददगार है। बाकी तो सब मायाजाल है। यहाँके ये सब समागम् कुछ दिनोके लिए मिलते है और बिछुडते है। इन समस्त पदार्थोसे अपनेको निराला सोचना है। एतदर्थ उन पदार्थोकी जानकारी तो करे कि ये बाहरी पदार्थ जो भरे पडे है ये कैसे है और किस जातिके है।

पुद्गलद्रव्योंकी स्थितियोका विचार—इस गाथामे बता रहे है कि ये पुद्गल अपने मे अपनी नाना शक्तियाँ रखते है और ये बादर और सूक्ष्म नाना प्रकारके भेदसे है। बादर मायने स्थूल और सूक्ष्म मायने सूक्ष्म। कौन स्कध स्थूल है और कौन सूक्ष्म है, इन सब दिखने वाली चीजोका ब्योरा चल रहा है। इनमे सर्वप्रथम बात यह जाने कि जो कुछ भी पदार्थ यहाँ दिखते है, भोगोपभोगमे आते है वे सब एक-एक पदार्थ नही है। जैसे यह एक ककड दिख रहा है तो यह एक चीज नही है, यह अनन्त परमाणुओका पिण्ड है, ऐसे ही जो कुछ भी नजर आता है वह सब स्कंध है, मायाजाल है, कभी बिघट जायेगा। ये सब पदार्थ इस रूप न रहेगे। खूब भली भाँति विचार करले क्योकि ये परमार्थ चीज नही है। जो एक परमाणु है वह द्रव्य है। दृश्यमान पदार्थ न सही एक परमाणु अनेक परमाणुओका पिण्डस्कध है लेकिन इस स्कधकी हालतमे वहाँ यह भेद नही डाल पा सकते है कि देखो इस मे यह एक परमाणु है, यह एक परमाणु है, इसलिए वे स्कंध एक एक पदार्थकी तरह लग रहे है। तो इन ही स्कंधोकी बात अब करेगे।

पुद्गल स्कन्धोंके ६ प्रकार—ये स्कध ६ प्रकारके है—स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मसूक्ष्म। सूक्ष्मका अर्थ है बहुत छोटा। जो किसी चीजसे भिड न सके। स्थूलका अर्थ है मोटा, जो कि किसी दूसरी चीजसे भिड सके। तो ये सब पुद्गल द्रव्य इन ६ ढगोमे है। स्थूलस्थूल वे कहलाते है कि जिनको छेदा भेदा जा सके, दूसरी जगह ले जाया जा सके। जैसे ये चौकी, पत्थर, आदि, और स्थूल वे कहलाते है जो छेदे भेदे न जा सके, पर दूसरी जगह ले जाये जा सकते है। जैसे पानीको छेदा भेदा नही जा सकता, पर उसे उठाकर कहीसे कही ले जाया जा सकता है, और स्थूलसूक्ष्म है छायाकी तरह। जैसे छायाको छेदा भेदा नही जा सकता, कही पकडकर ले नही जाया जा सकता, और है वह पुद्गल। और सूक्ष्मस्थूल है नेत्रइन्द्रियको छोडकर शेष चार इन्द्रियके विषय याने घ्राण

से गध जाना तो गधको कोई पकडकर दिखा तो नही सकता। सूक्ष्म वह कहलाता जो न छेदा भेदा जाय, न कही ले जाया सके, न आँखो भी दिखे। कर्म सूक्ष्म है, इन्हे अवधिज्ञानी जानते है। कोई विशेष अवधिज्ञानी मुनि है तो वे किसीके कर्मोको भी देख लेगे कि इस जीव के ऐसे ऐसे कर्म बँधे है। और सूक्ष्मसूक्ष्म वे कहलाते है जिनसे सूक्ष्म और कुछ नही है जैसे परमाणु। तो इस तरह ६ जातियोमे ये सब पदार्थ विभक्त हैं।

समस्त पुद्गलोंसे अन्तस्तत्त्वकी विविक्तता—अब यह बतलाओ कि उक्त छहों प्रकार के पदार्थोमे हम आपका साथी कौन है? कोई भी नही है। मेरा साथी तो है मात्र मेरा ज्ञान। ज्ञानके मायने आत्मा। उस आत्माका स्वरूप क्या है सो सोचिए। जैसे यह चौकी दिखती है कि यह इस तरहकी कठोर, लम्बी, चौडी, ऊँची, मोटी है उस तरहसे अपने आपके बारेमे भी विचार करे कि हम आप वास्तवमे कौन है? लोग कहते तो है कि मै हू लेकिन वे इस पुद्गल शरीरको ही मै समझते है। परन्तु मैं यह नही हूँ, मै हूँ एक जाननहार पदार्थ, जिसमे प्रतिभास है, ज्ञानदर्शन है वह है मै। तो उस मै से ये दिखने वाली सभी चीजे अत्यन्त न्यारी है। अब आप देखिये—जिस घरमे आप उत्पन्न हुए वहाँ यदि आप उत्पन्न हो गए होते तो वहाँके प्राप्त समागमोको आप अपना मान लेते कि नही? मान लेते। तो फिर कहाँ मेरापन ठीक रहा? क्योकि आज जिस घरमे आप पैदा हो गए है वहाँके प्राप्त समागमोको अपना मान बैठे है। इस जीवकी आदत ऐसी ही पडी है कि जहाँ यह पैदा हो जाता है वहाँके प्राप्त समागमोमे ही यह ममता करने लगता है। तो जिन पुद्गलो मे ममता की जा रही है वे क्या है, कितने ढगके है, किस स्वरूपके है यह चीज जानना जरूरी है। कोई सामान्य रूपसे जाने, कोई विशेष रूपसे। जैनशासनके परिज्ञानका प्रयोजन सिर्फ इतना ही है कि यह भेदविज्ञान कर लेवे कि जीव जुदा है और पुद्गल जुदा है, और भीतरमे कुछ ऐसा ज्ञानप्रकाश बढाये कि ये दिखने वाले समस्त बाह्यपदार्थ मेरेसे अत्यन्त भिन्न है। तो जिनमे हमे भेदविज्ञान करना है उन पदार्थोकी यहाँ चर्चा चल रही है कि ये पदार्थ कैसे है। कोई पदार्थ स्कध है, कोई देश है, कोई प्रदेश है, कोई परमाणु है। जो जो बडे पूरे है, वे स्कन्ध है। उनके आधे हो गए देश और आधे हो गए प्रदेश, किन्तु एक ही है। आधा तो कुछ पदार्थ होता ही नही है। बहुतसे पदार्थ मिले थे तो अब बिछुड गए, कुछ अलग हो गए उसीको लोग आधा कहते है। किसी काठ पिण्डके दो टुकडे हो गए तो लोग कहते है कि देखो, यह काठ पिण्ड आधा आधा दो भागोमे बट गया, पर ऐसी बात वहा नही है। एक पदार्थका टुकडा नही हुआ करता। वे टुकडे अनन्त परमाणुओके समूह है। मै जीव एक हू तो मेरे कभी टुकडे नही हो सकते। एक परमाणुका खण्ड नही है, वह सदा एक है। तो यहा यह बात निरखना है मै आत्मा इन सब बाह्य पुद्गलोसे अत्यन्त निराला हू।

सर्व परपदार्थों, परभावों व विकल्पोंसे विविक्त निरखनेमे ही आपत्तिसे छुटकारा—यह बडी विपत्ति है जो इस जीवकी यह बुद्धि जगती है कि दुनियामे मेरा नाम हो, मेरी पोजीशन हो, लोग मुझे अच्छा समझे, कुछ यद्यपि यह बात किसी दृष्टिसे ठीक है कि इज्जत बनी रहेगी तो वह व्यक्तिसे पापोसे डरेगा। कही मेरी निन्दा न होने पावे, मेरी पोजीशन बनी रहे। यद्यपि ऐसी बात भी एक दृष्टिसे भली है, लेकिन कोई इसपर ही उतारू हो जाय कि बस मेरा तो जीवनमे केवल एक ही काम है कि मै अपनी इज्जत बढाता रहू, दुनियाके लोग मान जाये कि यह भी कुछ है। यह सब विकल्प तो घोर अधकार है, अज्ञान है। दुनिया जान गई तो क्या है ? ये दुनियाके लोग तो कीडा मकोडोकी भाति जन्म मरण करने वाले प्राणी है। इन्होने कही स्वार्थवश कुछ कह दिया तो इससे इस जीवका क्या उत्थान हो गया ? और फिर जिस शरीरका मुद्राका यह उत्थान चाहता है, पोजीशन चाहता है वह तो एक मिथ्या चीज है। यह शरीर मै नही हू। मै तो सर्वपुद्गलोसे निराला सर्वजीवोसे निराला एक अपनी ही दुनियाको रचने वाला हूँ। मेरा भविष्य मुझपर ही निर्भर है। मै अपने को जानूं, अपनेको देखूं, अपनेमे रहूँ, ऐसी हमारी स्थिति बन सके तो उसमे हमारी सद्गति है, हम ससारके सर्व संकटोंसे छूट जायेगे। तो यह धुन बनाना है, अन्य बाते जैसी हो उसमे व्यवस्था बनाये और अपना जीवन निर्वाह करे। मनुष्य हुए है तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी आराधनाके लिए हुए है। इसीसे इस दुर्लभ नर-जीवनके पानेकी सार्थकता है।

पुद्गलद्रव्यकी विभावव्यञ्जन पर्यायें—पुद्गलद्रव्यमे उक्त सब भेद द्रव्यार्थिकनयके भेदरूप व्यवहारनयके अभिप्रायसे किए गए है। अब इसी भेदको पर्यायदृष्टिसे और द्रव्य प्रदेशोकी सीमामे भेद कर रहे है। पुद्गलद्रव्यकी पर्याये दो प्रकारकी है—स्वभावपर्याय और विभावपर्याय। गुणमे भी दो प्रकारके भेद है, और आकार अथवा व्यञ्जनके भी दो प्रकारके भेद है, उनमे स्वभाव व्यञ्जन पर्याय और स्वभाव गुणपर्याय तो सहज स्वाभाविक है, सुगम है। विभावव्यञ्जनपर्यायकी बात कहते है। विभाव व्यञ्जन पर्यायका अर्थ है कि प्रदेशके आकारमे ही बदल है, किन्तु वह बदल नैमित्तिक है, विकाररूप है, जिसको शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, सस्थान, भेद, अधकार, छाया, उद्योत और आताप इन १० प्रकारोमे बताया गया है। इनमे शब्द पर्यायका विवरण सुनो।

शब्दनामक पुद्गलद्रव्यकी विकारव्यञ्जन पर्याय—शब्द दो प्रकारके होते है—(१) भाषात्मक और (२) अभाषात्मक। उनमे से भाषात्मक शब्द दो प्रकारके है—(१) अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक याने किसी प्राणीने अपनी जिह्वा इन्द्रियसे वचन बोले तो वहा भाषा तो निकली, मगर किन्ही प्राणियोकी वह भाषा अक्षरात्मक है और किन्हीकी

अनक्षरात्मक है। अक्षरात्मक भाषा अनेक प्रकारकी होती है। जितनी प्रकारकी भाषाये है उतनी प्रकारके अक्षरात्मक भाषा शब्द है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदिक भाषाओके भेद है, जिन भेदोसे आर्य पुरुष और म्लेच्छ पुरुषोका व्यवहार चलता है। अनक्षरात्मक शब्द दो इन्द्रियसे लेकर पञ्चेन्द्रिय तकके तिर्यञ्च जीवोमे पाया जाता है और सर्वज्ञकी दिव्यध्वनिमे भी अनक्षरात्मक भाषा ही है। अभाषात्मक शब्द दो प्रकारके होते हैं—जिन शब्दोमे भाषा तो नही है, कोई अर्थकी बात ध्वनित नही होती, जो अभिप्रायपूर्वक कहा गया नही है, किसी प्राणीका शब्द नही है, किन्तु है शब्द तो ऐसे अभाषात्मक। शब्द दो प्रकारके होते है—प्रायोगिक और वैस्रसिक। प्रायोगिक का अर्थ है–जो किन्हीका संयोग वियोगका प्रकार करके शब्द बनाया जाय, किन्तु किन्हीका प्रयोग न किया, किसी जीवके निमित्तसे उनका सयोग वियोग न बनाया गया, किन्तु स्वभावसे ही उनमे से शब्द गर्जना बनती है वे वैस्रसिक शब्द कहलाते है। प्रायोगिक शब्द चार प्रकारके कहे गए है—तत, वितत, घन और सुषिर। अनेक प्रकारके बाजोकी ध्वनिमे जो शब्द निकलते है उन शब्दोकी चार जातिया होती है—एक तो तत—जो तारोकी वीणा आदिक द्वारा स्वर निकलते है, इनमे वीणा, सितार, सारगी, बेन्जो, बेलियन, गिटार, हारमोनियम आदिक सब गर्भित हो जाते है। वितत कहलाते है ढोल आदिकके शब्द। जितने भी प्रकारके ढोल तासा, ढपला, मृदंग, तबला आदिक है वे सब विततमे गर्भित होते है। घन कहलाते है कासा ताल आदिकके शब्द। जैसे कटोरी बजाना या चिमटा बजाना, कासा ठोकना, मजीरा, झाझ ये सब घन शब्दमे शामिल है और बासुरी आदिकके शब्द सुषिरके शब्द कहलाते है, ये सब प्रायोगिक शब्द है। इनके बजाने वाले अभ्यासी पुरुष होते है और उसके व्यापारसे इन शब्दोमे ध्वनि बनती है। वैस्रसिक शब्द उसे कहते है जो स्वभावसे होता है। जैसे बिजली-प्रपात, मेघोकी गर्जना, अथवा इन्द्रधनुष आदिकसे उत्पन्न होने वाला जो शब्द है, जो आवाज केवल स्कधोकी स्निग्धता, रूक्षता, आदिक गुणोके कारण होती है, ऐसे बहुत प्रकारके शब्द वैस्रसिक शब्द कहलाते है। ये सभी शब्द पुद्गलके विकार है, पुद्गलके सयोग वियोगकी प्रक्रियावोसे उत्पन्न होते है। ये पुद्गलकी व्यञ्जन पर्याये कहलाती है।

बन्धनात्मक विकारव्यञ्जनपर्याय—अब बधकी कथा सुनो। बध नाम है सम्बधका। जहा घन बध हो जाता है वह सब बध पर्याय कहलाती है। दो पदार्थोका परस्परमे बध हो तो वहा विकार आया किधर ? प्रदेश प्रदेश परस्पर बधनमे हो गए, परतत्र हो गए, जैसे मिट्टीके पिण्ड आदिक रूपसे और बहुत प्रकारसे बध होते है वे है पुद्गल बध, स्कध बध, सामान्य बध और जो कर्म शरीररूपसे बंध होता वह है जीव और पुद्गलके सयोग वाला बध। कर्मके परमाणु और जीवके प्रदेश इनका एकक्षेत्रावगाह रूप बन्धन होता है, यह

जीव पुद्गलके सयोगसे उत्पन्न हुआ बध । इसको द्रव्य बंध कहते है, और जीवमे जो राग-द्वेषादिक विकार उत्पन्न होते है वे भावबध है अर्थात् यहाँ केवल भावका बधन है । जीवके स्वभावमे इन रागादिक विकारोका बंधन होता है, यह भावबध कहलाता है ।

सूक्ष्म और स्थूलनामकी विभावव्यञ्जन पर्याय—अब सूक्ष्मको देखिये—सूक्ष्मके मायने है छोटा होना, यह सापेक्ष व निरपेक्ष दो प्रकारकी पर्याय है । जैसे वेलकी अपेक्षासे बेर सूक्ष्म होता है, तो सूक्ष्मता कही होती है सापेक्ष और कही है निरपेक्ष । जो सूक्ष्म कहा वही चीज और अधिक सूक्ष्म वस्तुके मुकाबलेमे स्थूल हो जाती है, पर जो निरपेक्ष सूक्ष्म है वह सदा सूक्ष्म है, तो इन स्कधोमे दृश्यमान पदार्थमे जो सूक्ष्मताका व्यवहार है वह है सापेक्ष व्यवहार, किन्तु परमाणुमे सूक्ष्मताकी बात कही जाती है वह है साक्षात् अथवा निरपेक्ष । अब स्थूलताकी बात सुनो । स्थूलता भी दो तरहसे देखी जाती है-(१) सापेक्षता से और (२) निरपेक्षतासे । जैसे बेरकी अपेक्षासे बेल स्थूल है तो यह सापेक्ष स्थूलका वर्णन है । बेलसे बढकर मोटा कोई पदार्थ हो तो उसकी अपेक्षा यह बेल सूक्ष्म कहलाने लगेगा । तो सापेक्ष स्थूल व्यवहारमे जो अभी स्थूल कहा जा रहा वह सर्वदा स्थूल ही रहे सो बात नही, यह है सापेक्षस्थूल । और साक्षात् स्थूलता या सर्वोत्कृष्ट स्थूल है जगत व्यापी महास्कध। तीनों लोकका समुदायरूप जो अभिप्रायमे एक पिण्ड स्वीकार किया वह है सर्वोत्कृष्ट स्थूल ।

संस्थाननामक विभावव्यञ्जनपर्याय—अब सस्थान नामक विभाव व्यञ्जन पर्याय की बात देखिये—जीवके जो ६ प्रकारके सस्थान बताये गये है—समचतुरस्र, निग्रोध, बाल्मीक, कुब्जक, वामन और हुडक, ये उस उस जातिके कर्मोंके उदयसे होते है इसलिए इन्हे जीवोमे बताया गया है, लेकिन साक्षात् है ये सब पुद्गलके ही सस्थान । शरीरादिक समान चतुरस्र हो गए, जितने लम्बे, चौडे, मोटे चाहिए उस उस प्रकारसे रचे गए, तो रचे कौन गए ? पुद्गल ही । यह आकार कहा है ? पुद्गलमे । अतएव ये सब सस्थान पुद्गलके सस्थान है, और इनके अतिरिक्त जो नाना प्रकारके अन्य संस्थान है, जीवका जहा सम्बन्ध नही याने जीवत्यक्त जो ये सब शरीर है, वे कभी छिदभिद कर या या अन्य-अन्य आकारो मे हो जाते है तो ये नाना आकार भी पुद्गलके ही सस्थान है, जैसे गोल हो जाना, तिकोना होना, चौडा होना, चौकोर होना, या मेघपटल आदिकमे नाना प्रकारके आकार होना ये सब भी पुद्गल ही है, तो ये सस्थान पुद्गलद्रव्यकी व्यञ्जन पर्याय है अर्थात् उन परमाणुओमे ही, प्रदेशोमे ही, आकारोमे ही उस प्रकारका फैलाव हुआ है ।

भेदनामक विभावव्यञ्जनपर्यायें—अब भेदनामक पुद्गल द्रव्यकी विकार व्यञ्जन पर्यायोको सुनो—भेद ६ प्रकारके होते है । भेदका अर्थ है टुकडा हो जाना । ये ६ प्रकारके है—उत्कर, चूर्ण, खण्ड, चूर्णिका, प्रतर, अणुचटन । उत्करका अर्थ है—जैसे काठ आदिक

को करोती आदिकसे टुकडे कर देते है अथवा वसूले आदिकसे छीलते है तो काठमे जो भाग बना दिया करते है वे भेद सव उत्कर कहलाते है। चूर्ण नाम उसका है जो गेहू, जौ आदिक अनाज पिसकर चूर्ण हो जाते है। खण्ड कहते है घट आदिकके टुकडे हो जानेको। जैसे घडे के टुकडे हो गए, खपरिया बन गई तो ये खण्ड कहलाते है। अथवा जैसे दाना शक्कर बनती है तो किसी तरह उस रसके उतने खण्ड-खण्ड बना दिए गए वह सब खण्ड नामका भेद है। चूर्णिका मूँग आदिककी दालोमे होता है, उनकी चुनी हो अथवा दो दालें हो गईं, यह सब चूर्णिका नामका भेद है। प्रतर भेद होता है मेघ पटल आदिकका। मेघ बहुत घने फैले हो और फैल करके भी अलग-अलग हो जाते है तो उनका वह फैलाव प्रतर भेदके ढगका होता है। अणुचटन फुलिगोके निकलनेको कहते है। जैसे तपते हुए लोहेके पिण्डपर घनकी चोट मारनेपर फुलिगे निकलते है वे अणुचटन कहलाते है। भेद ही तो हुआ, वहा वह सब कुछ एक लोहपिण्डमे था, उसका कोई वह अश ही तो है जो थोडे फुलिगो रूपमे अलग होता है। अथवा लकडीका कोयला जलता हो उसमे भी फुलिगे निकलते है। वे फुलिगे पहिले उसी मूलमे ही तो थे, अब किसी भी प्रकारसे वे फुलिगे रूपमे उचट गए तो वह कहलाता है अणुचटन। इस प्रकारके भेदनामक पुद्गलकी व्यञ्जन पर्यायें ६ प्रकारकी होती है।

अन्धकार, छाया, उद्योत व आतप नामकी विभावव्यञ्जन पर्यायें—अब अधकार नामक पुद्गलकी व्यञ्जनपर्याय देखिये——जो दृष्टिका प्रतिबध करने वाला हो उसको अधकार कहते है। यह अधकार उन उन द्रव्योकी व्यञ्जनपर्याय है जिनपर अधकार है। वह उसके ही प्रदेशका उस प्रकारका परिणमन है। वह है तम नामकी विकार व्यञ्जन पर्याय। छाया व्यञ्जनपर्याय होती है वह जो वृक्ष, मनुष्यादिकके सहारे। जो कुछ भी वर्ण आदिक मे विकार आया है, उसकी जो परिणति हुई है उसे छाया कहते है। जैसे वृक्षकी छाया धूप मे आ जाती है। पृथ्वीका वह प्रकाशरूप मिटकर कुछ उस प्रकारका रूप आया है। अधकार उसे यो नही कह सकते कि वह स्पष्ट दिख रहा है। इसी प्रकार दर्पण आदिकमे जो प्रतिबिम्ब पडता है उसे भी छाया कहते है। यह पृथ्वी और दर्पण आदिकके स्कधोका ही उस प्रकारका प्रदेश परिणमन है इस कारण यह व्यञ्जनपर्याय कहलाता है। उद्योत नामक विभाव व्यञ्जनपर्याय—चन्द्रके विमानमे या पटबीजन आदिक तिर्यञ्चोके शरीरमे होता है। जो प्रकाशमय है किन्तु ठडा है, उसमे गर्मी नही है, इस प्रकारका उद्योत पुद्गलकी विभाव व्यञ्जन पर्याय है और १० वी पर्याय है आतप-सूर्यके विमानमे। पृथ्वी कायोमे आतप नाम की विभाव व्यञ्जनपर्याय होती है। इस तरह नाना प्रकारकी व्यञ्जनपर्यायोमे ये पुद्गल द्रव्य पाये जाते है।

ज इदिएहि गिज्झ रूव-रस-गध-फास-परिणाम ।
त चिय पुग्गल-दव्वं अणंत-गुण जीव-रासीदो ॥२०७॥

पुद्गलद्रव्यका स्वरूप—जो रूप, रस, गध और स्पर्श परिणाम युक्त होनेके कारण इन इन्द्रियोके द्वारा ग्रहणमे आते है वे सब पुद्गलद्रव्य है। इस गाथामे पुद्गलद्रव्यका स्वरूप कहा गया है। यहा स्पष्टतया यह बताया है कि जहा रूप, रस, गध, स्पर्शका परिणाम होता है वे सब पुद्गलद्रव्य कहलाते है। तो जिनमे रूप, रस, गध, स्पर्श पाये जाये उनको पुद्गल द्रव्य कहते है, ऐसे पुद्गलद्रव्यकी संख्या जीवराशिसे अनन्तगुनी है। अनन्त गुनी क्यो है ? तो उसका स्पष्ट प्रमाण तो यह है कि एक जीव ने जो शरीर ग्रहण किया है उस शरीरमे अनन्त परमाणु है और जीवमे जो कर्म बँधे हुए है उनमे शरीरसे भी अनन्तगुणे परमाणु है। तब एक जीवके ही जुम्मे जो ससारमे बस रहे है अनन्तानन्त परमाणु पडे हुए है और ऐसे ससारी जीव है अनन्तानन्त। तो पुद्गल द्रव्य इस जीवकी संख्यासे भी अनन्तगुने हो गए। पुद्गल द्रव्य इन इन्द्रियोके द्वारा ग्रहणमे आते है क्योकि पुद्गलपर्याय रूप, रस, गध, स्पर्शमे परिणत हुई है। वह कितनी ही प्रकारोकी है।

पुद्गलद्रव्यके गुणोंकी पर्यायें—सिद्धान्तग्रन्थोमे बताया गया है कि स्पर्श ८ प्रकारके है—शीत, उष्ण, स्निग्ध, सूक्ष्म, कोमल, कठोर, भारी और हल्का। ये स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा जाने जाते है, स्पर्श किए जाते है, इस कारण ये स्पर्श है और ये सब स्पर्शन इन्द्रियके विषयभूत है। रस ५ प्रकारके है—तीखा, कडवा, कषायला, खट्टा, मीठा ये ५ प्रकारके रस रसनाइन्द्रियके द्वारा रसे जाते है। ये रसना इन्द्रियके विषयभूत है। गंध दो प्रकारके है—सुगंध और दुर्गन्ध। ये घ्राणइन्द्रियके विषयभूत है। वर्ण ५ तरहके है—सफेद, पीला, नीला, लाल और काला। ये वर्ण चक्षुइन्द्रियके द्वारा निरखे जाते है, इस कारण चक्षुइन्द्रिय के विषयभूत है। जो शब्द है वे सब कर्णेन्द्रियके विषयभूत है। ये सभीके सभी विषय पुद्गल द्रव्य कितने है ? तो सर्व जीव राशिसे अनन्तानन्त गुने है। बताया गया है सिद्धान्त ग्रन्थोमे कि जीवके द्वारा ग्रहण किए हुए पुद्गल अनन्त है और जीवत्यक्त भी पुद्गल अनन्त है, इस प्रकार ये अनन्तानन्त सभी पुद्गल द्रव्य जीवसे पृथक् है। ये अचेतन हैं, जीव चेतन है, इनसे निराला जो अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव करता है वह जीव अन्तरात्मा होता है और इस अन्तरात्मत्वके उपायसे अपने उस परमस्वरूपकी प्राप्ति कर लेता है।

जीवस्स बहु-पयारं उवयारं कुणदि पुग्गलं दव्व ।
देह च इदियाणि य वाणी उस्सास-णिस्सासं ॥२०८॥

जीवके पुद्गलद्रव्यकृत उपकारका वर्णन—लोक भावनामे समस्त द्रव्योका वर्णन किया गया है। जब पदार्थका यथार्थस्वरूप चित्तमे आता है तो उस समय मोह रागद्वेष न

होनेसे अथवा रागादिक मंद हो जानेसे आत्माको एक अपूर्ण शान्ति मिलती है। यह लोक कितना बडा है, उसके सामने आजके परिचयका क्षेत्र कितना है ? यहाँ राग मोह करके इस जीवको क्या लाभ मिलेगा ? छोडनेकी चीज है यह। इसी प्रकार इस लोकमे क्या-क्या रच ाये है, कहा कहा कैसे कैसे जीव रहते है ? अज्ञानके वश होकर कैसे-कैसे शरीरोको ग्रहण करना पडता है, जन्म मरण है, ये सब बाते यथार्थ ध्यानमे आने से जीवकी अशान्ति समाप्त हो जाती है। इस प्रकरणमे पुद्गल द्रव्यका वर्णन चल रहा है। जीव तत्त्वका वर्णन करनेके बाद पुद्गलद्रव्यका वर्णन इस कारण किया जा रहा है, जीवका पुद्गलके साथ कुछ निकट सम्बन्ध है, और दिख भी रहा है जीव शरीरमे बद्ध है। कर्मोका बन्धन होता है और यह जीव सम्बद्ध व असम्बद्ध उस पुद्गल द्रव्यसे कितना अपनेमे विकल्पसे काम लेना चाहता है और पुद्गल इस प्रसगमे जीवका क्या क्या उपकार करता है वह इस गाथामे बताया है। यहाँ उपकारका अर्थ भलाई से नही है किन्तु कुछ काम करने से है। चाहे जीव वहाँ सुख माने या दु ख। जीवके किसी भी प्रकारके परिणमनमे ये पुद्गल, कर्म, अजीव कुछ भी निमित्त होते हो तो वह पुद्गल द्रव्यका उपकार कहा जाता है। यह पुद्गल द्रव्य जीवका बहुत प्रकारसे उपकार करता है।

शरीर, इन्द्रिय, वाणी श्वासोच्छ्वास, सुख और दुःखकी पौद्गलिकता—शरीर इन्द्रिय वाणी और श्वासोच्छ्वास इनके होनेमे निमित्त पुद्गल ही तो है अथवा यह पुद्गलस्वरूप ही तो है। और, इसका जीवोसे सम्बध है इस कारण इसे जीवके प्रति पुद्गलका उपकार कहा गया है। सुख होना, जन्ममरण होना यह पुद्गल द्रव्यका उपकार है, क्योकि सुख दु ख पुद्गल द्रव्यके सम्बध बिना, उनका आश्रय किए बिना, कर्मका उदय आये बिना नही होता। यद्यपि सुख और दु ख जीवका स्वरूप नही है। जीव एक प्रतिभासात्मक पदार्थ है, जो आँखोसे दिखता नही, कानोसे सुना जाता नही, किसी भी इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमे नही आता, अमूर्त पदार्थ है और चैतन्य को लिए हुए है, ससारके समस्त पदार्थोमे एक विलक्षण पदार्थ है, जो सर्व कुछ जान लेता है। भला मै सत्‌रूप तो हू, मेरी सत्ता है, मै हू और जाननहार हू। मै कैसा हू और किस तरह जान लेता हू इसका चाहे हम विश्लेषण न कर सके, मगर अनुभवमे तो आता है कि मै हू कोई और जानने वाला हू। यदि ऐसा जानने का स्वभाव जिसका है उसके सम्यक्‌स्वरूपको सोचा जाय तो उस रागद्वेप मोह सुख दु ख दु ख तरग ये भी स्वभावत नही पाये जाते, किन्तु है जीवके ही परिणमन। इनमे निमित्त तो कर्मोका उदय है और आश्रयभूतपदार्थ है ये वाहरी विषयभूत पदार्थ। तो इस पुद्गलद्रव्यके आश्रय और निमित्तसे ये सुख दु ख आदिक हुए है, इस कारण इन्हे पुद्गल द्रव्यका उपकार कहते है। उपकारके मायने है कार्य। पुद्गल द्रव्यके निमित्तसे यह कार्य वना और चूकि इसका जीवसे सम्बध है अतएव ये जीवके प्रति उपकार कहलाते है।

जन्म और मरणकी पुद्गलकृत उपकाररूपता——जीवन भी पुद्गल द्रव्यका उपकार है और मरण भी पुद्गलका उपकार है, अर्थात् पुद्गलद्रव्यके काम है। आयुका उदय हुआ जीवन बन गया, आयुका क्षय हुआ मरण बन गया, यह कर्मोके निमित्तसे हुआ, इस कारण से ये पुद्गलके उपकार कहलाते है, उपकारका अर्थ भलाई नही। और भलाईकी बात सोचो तो यह जीव अपनी भलाई इसमे मानता है कि मै पैदा हो गया और खुशी मानता है, और मरणमे भी चाहे कोई भलाई न माने पर इस जीवकी भलाई जीवन की अपेक्षा मरणसे अधिक होती है। जीवनके बाद मरण तो निश्चित है, पर मरणके बाद जीवन होना ही पडे यह निश्चित नही है। यद्यपि संसारी जीवोको मरणके बाद जन्म लेना ही पडेगा, मगर कोई मरण ऐसा भी होता है कि जिसके बाद जन्म नही होता। ऐसे मरणको कहते है पडितपडितमरण अथवा निर्वाण।

अरहत भगवानके आयुका क्षय होता है तो आयुक्षयका ही तो नाम मरण है। उनका आयुक्षय होनेपर मरण नाम नही लेते क्योकि ऐसी रूढि है कि जिसके बाद जन्म हो उसको मरण कहा करते है। भगवानको कैसे कह दिया जाय कि लो अब अरहत भगवानका मरण हो गया, पर है तो आयुका क्षय ही, उसका नाम मरण कहा जायगा। लेकिन इसके बाद जन्म नही है, और उनका निर्वाण है इस कारण मरण शब्दसे नही कहा करते और कहेगे तो पडितपडितमरण कहेगे अथवा निर्वाण कहेगे। जो कोई ज्ञानी पुरुष मरणके समयमे समाधिभाव रखते है, समतापरिणाम रखते है उनका भी भला होता है, एक दृष्टिसे देखा जाय तो मरण बहुत ही अच्छा उपकार है।

पुद्गल द्वारा देहादिका निष्पादन और इनके विवेकमें जीवका उपकार——देह बनता है, औदारिक आदिक शरीर बनते है, इन्द्रियाँ होती है, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र इन सबका जो निष्पादन है वह सब पुद्गलका उपकार है। वाणी होती है भाषात्मक, अभाषात्मक आदिक, अक्षररूप, अनक्षर रूप, वह सब पुद्गलद्रव्यका उपकार है। श्वासोच्छ्वास लेना यह भी जीवका उपकार है, पुद्गल द्रव्यके द्वारा किया गया है। यो जीव और पुद्गलका ऐसा परस्पर कार्य कारण भाव है, एक दूसरेसे काम होता रहता है, किन्तु विवेकी पुरुष जिनको भेदविज्ञान प्रकट हुआ है वे सर्वत्र यह देख रहे है कि प्रत्येक सत् अपने आपके स्वरूप मे रहते हुए ही परिणमन करते है। देखिये जीव अगर अपने एकत्वस्वरूपका चिन्तन करे तो उसे कही भी दुःख नही है। यह जीव तो व्यर्थका मोह करके, अपनी ही इस मिथ्या करतूतसे दुःखी हो जाता है। तब इस जीवका अपने आपके स्वरूपके सिवाय कुछ है ही नही, तत्त्वतः विचार कीजिए। वास्तविकता यह है कि जीवका जीव स्वरूपके सिवाय कुछ भी नही है। तब अत्यन्त भिन्न पदार्थोमे राग होना, अपनायत होना यह सब व्यर्थका मोह

करना, अर्थात् कायदेमे तो मोह न होना चाहिए क्योकि मोहके विषयभूत ये भिन्न पदार्थ है, सभी अपने-अपने स्वरूपमे रह रहे है। ये अचेतन पदार्थ किसी भी चेतनमे कुछ अपना व्यापार नही करते, लेकिन यह जीव चूँकि उपयोगवान है, बाह्यपदार्थोमे उपयोग लगाये रहता है, न लगाये परमे उपयोग और स्वरूप यथार्थ जाने तो इसको कही भी कष्ट नही है। इस मोही जीवने विकल्प करके अपने कष्ट बनाया है। लोकमे मेरी इज्जत रहे, मेरी शान बनी रहे, ऐसी चाह इस जीवको पीडित करती है। जिनमे राग है, जिनसे प्रीति है उनसे प्रीति भरे वचन सुनना चाहते है। अपने आपका उत्पात परमे यदि होता है तो इस उत्पातका फल तो कष्ट ही है। यदि उत्पात न करे यह जीव, समतासे शान्तिसे जैसा है वैसा अपना विचार करे, परका विचार करे, ज्ञाताद्रष्टा रहे तो इसको कही कष्ट नही है। ज्ञानी पुरुषको इसीलिए निराकुल कहा गया है। भले ही किसी स्थितिमे कर्मप्रेरणासे इसको कुछ आपत्तिया आये, लेकिन यह अन्त तृप्त रहता है, भीतरमे व्याकुल नही होता है। सो जीवका स्वरूप यद्यपि सुख दु खका नही है लेकिन अनादि बन्धन होनेके कारण कर्मोदयमे यह जीव अपनेको सुखी दु खी अनुभव करता है। है यह सब पुद्गलके सम्बन्धसे, इस कारण जीवके इस तरहके परिणमन भी पुद्गल द्रव्यके उपकार कहे जाते है।

अण्ण पि एवमाई उवयार कुणदि जाव ससार।
मोह-अणाण-मय पि य परिणाम कुणदि जीवस्स ॥२०९॥

संसारपर्यन्त पुद्गलकृत उपकार——इसी प्रकार जब तक ससार है तब तक अन्य भी उपकार पुद्गलके द्वारा किए जाते है। उपकारके मायने यहाँ मौजकी बात नही, नही तो यह अर्थ हो जायगा कि देखो ससारमे जीवका उपकार करनेके लिए पुद्गल भी तुले हो जाते है। उपकार किसका है ? पुद्गलके सम्बधमे जो कुछ जीवका हो रहा है वह तो अपकार है, लेकिन यहा उपकार का अर्थ काम मात्र है, कार्य हो रहा है। जैसे शरीर मिलना, वचन होना, मन होना, श्वासोच्छ्वास होना यह पुद्गलका उपकार है। सुख दु ख जीवन मरण होना यह पुद्गलका उपकार है, इन सबकी रचनाके कारणभूत तो नियमसे पुद्गल ही है। कर्मके उदयमे ये सब रचनाये होती है।

कर्मोंकी पौद्गलिकताकी सिद्धि—यहा कोई शंका कर सकता है कि कर्म दिखते तो नही है। ये कही व्यवहारमे, छूनेमे आते नही है, तो ये कर्म पौद्गलिक न होना चाहिए। इन कर्मोका कोई आकार ही नही है। जैसे शरीरका आकार है तो शरीरको पौद्गलिक कह लो और दिखने वाले जो ये जीव व्यक्तकाय है चौकी आदिक इनका भी आकार है, इन्हे भी पौद्गलिक कह लो, पर कर्म तो निराकार है, उन्हे पौद्गलिक क्यो कहा गया ? इसके समाधानमे यह अनुमान प्रयोग कर लेना चाहिए कि कर्म भी पौद्गलिक है, क्योकि मूर्तद्रव्यके

सम्बधसे इनका विपाक होता है। एक हेतु दिया गया है कि जिसका विपाक, जिसका पकना पुद्गलद्रव्यके सम्बधसे हो वह पौद्गलिक कहलाता है। जैसे धान्यका विपाक। धान्यका पकना मिट्टी पानी आदिक पुद्गलके सम्बंधसे होता है, इस कारण धान्यको पौद्गलिक कहा गया है, यो देखा ही जाता है। तो इसी तरह इन कर्मोमे भी यह इतना निर्णय रखना चाहिए कि कर्मोका विपाक सुख दु ख आदि जब स्वादिष्ट भोजन आदिक द्वारा होता है तो ये कर्म पौद्गलिक है।

कर्मबन्धनका स्वरूप—ये कर्मपरिणमन कहलाते क्या है ? तो इसको दो दृष्टियोसे निरखा जाता है—भावदृष्टिसे और द्रव्यदृष्टिसे याने भावबधन और द्रव्य वन्धन। भाव बंधनके नाते तो बन्धन कहलाते है सुख दु ख रागद्वेषादिक सारे विकार। इनके भावोका उठाना यही कहलाता है भावबन्ध। जीवमे विभावोसे परतन्त्रता आयी हुई है और जीव अपने किसी स्वभावरूप ही है, वहाँ विभावोका बन्धन बन गया है। केवल सुख दु खके अनुभवका ही नाम बन्धन नही। वह भी बन्धन है और रागद्वेष आदिक किसी भी प्रकारके विकार उत्पन्न हो उसे भी बन्धन कहते है। तो भावदृष्टिसे तो रागद्वेष सुख दु खके बन्धनका नाम बन्धन है और द्रव्यदृष्टिसे अथवा द्रव्यबन्धनकी निगाहसे जीवके प्रदेशमे पौद्गलिक कर्म का बन्धन होनेका नाम कर्मबन्धन है। दोनो ही इसके समाधान है। बंध दो प्रकारका बताया गया है—भावबध और द्रव्यबध, द्रव्यबध है या नही, इसकी जानकारीके लिए यह समझना चाहिए कि कोई भी पदार्थ स्वय अपने मे अकेला होता है, तो वह न तो अशुद्ध होता है और न उसमे परतन्त्रता आती है। एक यह नियम है। अकेलेमे परतन्त्रता क्या और विकार क्या ? कोई भी पदार्थ केवल अकेला ही हो, उसमे किसी भी दूसरे पदार्थका सम्बध न हो तो वहा न विकार आयगा और न परतन्त्रता आयगी। खूब भली प्रकार सर्वत्र निहार लो। एक मोटी बात समझ लो कि जैसे कोई एक पुरुष है, साधु मुनि है वह अपने को अकेला अनुभव करके अकेलेका उपयोग रखता है तो उसको बहुतसे वन्धन नही है और विकार भी नही है। यह एक स्थूल दृष्टान्त कह रहे है) तो कोई भी पदार्थ खाली अकेला हो, उसके साथ किसी दूसरेका बन्धन न हो, सम्बध न हो तो वहा विकार भी न बनेगा और परतन्त्रता भी न बनेगी, लेकिन यहा हम अपने आपमे तक रहे है कि परतन्त्रता भी है और विकार भी जगते है तो इससे सिद्ध है कि हममे किसी दूसरे पदार्थका सम्बध है।

कर्मोंकी विजातीयता व सूक्ष्मता—इस प्रसङ्ग तक इतना तो निश्चित हो ही गया है कि मुझमे दूसरे पदार्थका सम्बध है। अब इसके आगे बात और देखिये कि अपनेसे विजातीय, अपनेसे विपरीत स्वरूप वाला कोई पदार्थ सम्बधमे हो तो विकार जगता है। मै हू चैतन्य ज्ञानस्वरूप और मुझमे जो विपरिणमन हो रहा है, विकार जग रहा है तो समझना चाहिए कि मुझसे विपरीत चीज कोई मेरे साथ लगी है। जैसे मै चेतन हू ऐसे ही चैतन्य-

मात्र दूसरे सत् मुझसे चिपका हो तो वहा न बन्धन बनेगा, न विकार अर्थात् किसी भी चैतन्यपदार्थके सम्बधसे विकार नही जगता, किन्तु कोई अचेतन पदार्थ ही बन्धनमे है तब विकार जग रहा है। यहा तक दो बाते सिद्ध हो गई। जीवके साथ किसी दूसरे पदार्थका बन्धन है तभी इसमे विकार है और पारतन्त्र्य है, और वह बन्धन भी है विजातीय पदार्थ का, तो मै चेतन हू तो दूसरा जो कुछ बँधा है वह अचेतन है। अब तीसरी बात सोचिये—जीव है एक अमूर्त पदार्थ। इस अमूर्त पदार्थके साथ किसी मूर्तिकका बन्धन कहा ? एक यह प्रश्न हो सकता है। उत्तर तो यह है कि अनुभव ही बता रहा है कि बन्धन है तब वहा इसका यो निर्णय करना होगा कि वह मूर्तिक पदार्थ भी अतीव सूक्ष्म पदार्थ है और इसी कारण कर्मसे अधिक सूक्ष्म परमाणुको माना है और किसीको नही माना है। जहा पुद्गल स्कधके ६ भेद किए गए है वहा सूक्ष्म-सूक्ष्म तो पुद्गल परमाणु कहे गए है और सूक्ष्म कर्म कहे गए है, तो इससे सूक्ष्म और कुछ नही होता। ऐसे सूक्ष्म पुद्गल स्कधोका अजीव पदार्थोका उसके साथ बन्धन है। अब जिन कर्मोका बन्धन है वे कर्म जीवके साथ एकक्षेत्रावगाहरूप से पडे हुए है।

मरणके पश्चात् भी जन्मके लिये गये जीवके साथ कर्मोका गमन—जब यह जीव एक भवको छोडकर दूसरे भवमे जाता है तो यह स्थूल शरीर यही रह जाता है, जिसे लोग जला देते है, पर जीवके साथ वे कर्म पुद्गल बध साथ नही छोडते। वे साथ ही जाते है और अगले भवके शरीर निष्पन्न होनेके वे कारण बनते हैं, इसी कारण अनेक दार्शनिकोने दो प्रकारके शरीर माने है—स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। जैन सिद्धान्तके अनुसार ये जो औदारिक आदिक शरीर है ये है स्थूल शरीर और जो कर्म एव तैजस शरीर है वह है सूक्ष्म शरीर। जैसे परमागममे बताया है कि तैजस और कार्माण शरीर अनादि कालसे जीवके साथ सम्बन्ध लिए हुए है और वे प्रतिघातरहित है। जीवमरण करके जब दूसरे भवमे जाता है तो रास्तेमे पहाड भी होते है वज्र भी पडे हो तो उनसे भी यह जीव छिडता नही है और जीवके साथ बँधे हुए कर्म भी छिडते नही है। सो कर्मको अप्रतिघात बताया है, और अनादिकालसे इनका सम्बन्ध है। अनादिकालसे लेकर अब तक भी यह सम्बन्ध दूर नही हो सका। जिस समय कर्मका बन्ध थोडी देरको हट गया हो तो फिर सदाके लिए यह कर्मबन्ध दूर हो जायेगा। अर्थात् जिनका निर्वाण होता है उनको यह अवस्था प्राप्त होती है कि कर्मकी बन्ध परम्परा वहाँ खतम होती है। तो इस जीवके साथ कोई दूसरी चीज लगी है वह दूसरी चीज जीवसे विपरीत स्वभाव वाली है और वह है सूक्ष्म, और उसका है जीवमे एकक्षेत्रावगाह बन्धन। जीव जब मरण करता है तब उसके साथ ये कर्म जाते है और ये कर्म औदारिक आदिक शरीरकी निष्पत्तिमे कारण पडते है। तो कर्मोके उदयका

निमित्त पाकर ये सब कार्य होते है, इस कारण इन सबको पुद्गलका उपकार कहा गया है। इन कार्योमे जीव चाहे मौज माने या कष्ट माने, पर यह पुद्गलका विकार है। पुद्गलके सम्बन्ध बिना ये कार्य नही हो सकते, इस कारण इन्हे पुद्गलका उपकार कहा गया है। यहाँ जो विवेक करेगा वह आकुलता न पायेगा और जो इनमे अविवेकसे लगेगा वह अशान्त होगा। इस कारण हमारा कर्तव्य है कि हम भेदविज्ञान करे और अपने अन्त स्वरूपके अनुभवसे तृप्त रहा करे।

भाववचन व द्रव्यवचनकी पौद्गलिकता—अब यहाँ बताया जा रहा है कि दुनियामें अपने को जितने व्यवहारके प्रसग मिल रहे है वे सब इस पुद्गलके उपकार है अर्थात् पुद्गल के कार्य है। अज्ञानी जन यह समझते है कि मैं बोलता हू, मै अमुक काम करता हू, श्वास लेता हू ऐसी इन पुद्गलकी बातोको अपनी करतूत मानते है लेकिन इनमे अपनी करतूत नही है। ये सब पुद्गलकी करतूत है। पुद्गल मिल गए, उनकी जैसी योग्यता है उस प्रकार उनकी वृत्ति बन जाती है। हाँ इतनी बात अवश्य है कि जीवका सम्बन्ध है तब ये वचन बोले जाते है। श्वासोच्छ्वास चलती है, दैहिकी क्रिया होती है। वचन एक भाषा वर्गणा जातिके पुद्गलका परिणमन है, जैसे जीभ हिलाया तो इसके हिलनेसे यही भरे पडे हुए जो भाषावर्गणा जातिके सूक्ष्म पुद्गल है वे उस वचनरूप परिणम जाते है। इनको करने वाला मै आत्मा नही हू। मै आत्मा तो सिर्फ भाव बनाता हू और अपने आपमे उस तरहका योग किया करता हू, हिलता डुलता हू। यो योग उपयोग तो उसके परिणमन है, फिर इसके बाद वचन जो निकलते है सो निमित्तनैमित्तिक भावपूर्वक ये स्वयं निकलते है। तो ये वचन भी पुद्गलद्रव्यकी क्रिया है। वचन दो प्रकारके है—द्रव्यवचन और भाववचन। द्रव्यवचनके मायने जो शब्द सुनाई देते है वे द्रव्यवचन कहलाते है और उन द्रव्यवचनोको सुनकर भीतरमे जो गुनगुनाहट होती है या भीतरमे जिन शब्दोके डोलते हुएमे ज्ञान करते है वह भाववचन है। तो भाववचन कैसे होता है कि जब वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम हो, मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम हो और अङ्गोपाङ्ग नाम कर्मका उदय हो तो ये भाववचन हुआ करते है, इस कारण भीतरका जो अन्तर्जल्प है वह भाववचन भी पौद्गलिक है और उस सामर्थ्य करके सहित क्रियावान आत्माके द्वारा प्रेरित होकर जो ये पुद्गल वचन रूप बन जाया करते है वे द्रव्यवचन है, ये दोनो पुद्गलके उपकार है, ये जीवके स्वय के परिणमन नही है।

मनकी पौद्गलिकता—मन भी जिसको अज्ञानी भी बहुत अपनाते है, मन राजी होता है वह मन भी पौद्गलिक है, मेरा खुदका स्वरूप नही है, पर इस मनमे इस आत्माने ऐसा लगाव बनाया है कि मनके सिवाय और कुछ अपनेको मान ही नही पाता। वह मन दो

प्रकारका है—भावमन और द्रव्यमन। कर्मोका क्षयोपशम होनेपर जो ऐसी योग्यता बनी कि हम किसी वस्तुका विचार कर सकते है वह तो भावमन है, ऐसा भावमन भी पुद्गलके सहारे बनता है इस कारण पौद्गलिक है। द्रव्यमन साक्षात् पौद्गलिक है। ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेपर, अतरायका क्षयोपशम होनेपर और अगोपाङ्गका उदय होनेपर, गुण और दोषके विचार करनेका सामर्थ्य आता है या गुण दोष विचार करनेमें जो सावधान हुआ है ऐसे पुरुषको यह मन विचार करनेका आलम्बन बनता है। जैसे कहते है कि भीतर हृदयपर जो अष्टकमलके आकार एक पुद्गल रचना है वह द्रव्यमन कहलाता है। यह सब पौद्गलिक है।

प्राणापानादि वायु, सुख, दुःख आदिकी पौद्गलिकता—जो वायु निकलती है, प्राण, अपान, आदि यह वायु भी पौद्गलिक है, क्योकि कर्मके उदयसे और जैसा क्षयोपशम है उसके अनुसार यह वायु निकलती है। तो श्वासके बाहर फेकनेको तो उच्छ्वास कहते है और श्वासके लेनेको नि श्वास कहते है। तो श्वासका लेना और बाहर निकालना यह जो जीवनका कारण है यह सब मूर्तिमान है। मूर्तिमान है इसका प्रमाण यह है कि जब कोई भयकी बात आती है वज्र गिर गया, बिजली तडकी, किसीने अचानक चीख दिया तो मन दुखता है। इससे सिद्ध है कि मन मूर्तिक है। किसी प्रकार अगर श्वासकी नलीमे कफ अटक गया तो श्वास रुक जाती है अथवा घृणा वाली चीज देखकर कोई नाक दाबता है तो वायु रुक जाती है। इससे सिद्ध है कि यह श्वास मूर्तिमान है। यह यह अमूर्त होती तो नाकके दाबनेपर रुक न सकती थी। इसी प्रकार सुख दुख भी पुद्गलके उपकार है। यहाँ उपकारके मायने भलाई न लेना किन्तु कार्य लेना। ये सब पुद्गलके काम है। साता असाताका उदय हो और बाह्यद्रव्य अनुकूल मिल जाय तो वहाँ प्रीतिका परिणाम होता है, चित्त राजी होता है उसे सुख कहते है और असाता वेदनीयका उदय होनेपर बाह्यद्रव्योका प्रतिकूल परिणमन दिखता है जिससे भीतरमे यह रज मानता है और दुखी होता है। ये भी पुद्गलके ही काम है।

तत्त्वज्ञानियोकी पावनता—कोई जीव यदि भीतर दृष्टि देकर एक यह निर्णय कर ले कि मैं तो केवल चैतन्यस्वरूप हू। विशुद्ध जो जानना है वह मेरा कार्य है और जो कुछ विकल्प तरंग आदिक काम होते रहते है ये सब पुद्गलके उपकार है। ये पुद्गलके कारणसे बनते है। मै स्वय इनका करने वाला नही हू। मेरा स्वरूप तो शुद्ध जानना देखना है। वे भव्य जीव बहुत ही महाभाग है, बहुत ही पुण्यवान पुरुष है कि जिनको बाह्यपदार्थोमे मोह नही रहता और अपने आपकी स्वरूपदृष्टिमे प्रीति उत्पन्न होती है, यह बात कठिन नही है। जानकारी होनेपर फिर उस जानकारीको कौन मेट सकता है ? जान लिया ठीक है।

अब कोई कितना ही कहे कि तुम ठीक नही जान रहे, क्या होता बहकानेसे। जो कुछ जान लिया वह तो जाननेमे आ ही गया। जब कोई चीज ज्ञानमे आ गयी तो उसके विपरीत कोई कैसे मान लेगा? इसी तरह जब भीतरी पुरुषार्थके बलसे अपने आपके स्वरूपका परिज्ञान हो गया, मै ज्ञानमात्र हू ऐसा अनुभव हो गया तब उसे कोई नही बहका सकता है? उसकी प्रीति अपने स्वरूपमे टिकेगी, बाह्यपदार्थोमे मोह नही हो सकता। पर होना चाहिए ऐसे आत्माका अनुभूतिपूर्वक परिचय। एक तो सामान्यनया ज्ञान हो जाना, शास्त्रोमे लिखे अनुसार ज्ञान कर लेना और एक उसका साक्षात्कार होकर, अनुभव होकर उपयोगमे वह ज्ञानस्वरूप आ जाय इस विधिसे परिचय होवे तो वह अनुभूतिपूर्वक परिचय होना है। अनुभवपूर्वक जो परिचय है वह दृढ परिचय है। जैसे रूस, अमेरिका आदिक बहुतसे देशोका ज्ञान नक्शों द्वारा कर लिया तो वहाँकी पूरी रचनाका ज्ञान हो जाता है, उसे भली-भाँति दूसरो को समझा बता भी देते है। तो एक तो इस प्रकारका ज्ञान हुआ, और इस प्रकारका ज्ञान होना कि वहाँ जाकर सब कुछ देखकर ज्ञान कर लिया, यह परिचय है अनुभव वाला परिचय। तो अनुभव वाले परिचयमे जो दृढता है वह पढकर जाननेमे नही है, इसी प्रकार आत्माका जो परिज्ञान किया जा रहा है वह ऊपरी परिज्ञान है, भीतर तैयारी करके वह परिचय नही किया जा रहा है।

परसे असहयोग व सत्यका आग्रह करके आत्मपरिचय पानेकी आवश्यकता—अपने परिचयकी भीतरी तैयारीका अर्थ है कि असहयोग और सत्याग्रह करके करना है अपना परिचय। किसी भी प्रोग्राममे पूरी तैयारीके साथ कोई लगता है तो उसकी दो स्थितयाँ हो जाती है—असहयोग और सत्याग्रह। असहयोग तो करना था हमे इन बाह्यपदार्थोका, जिनका सहयोग करनेसे, जिनका लगाव रखनेसे हमने दुःख पाया है। यहाके संयोग वियोग होना, धन वैभवका मिलना न मिलना आदि सभी स्थितयाँ दुःखके ही कारण बन रहे है। यहाँ कोईकी ऐसी स्थिति नही दिखती जो वास्तविक शान्तिका कारण बन सके। ऐसा जानकर इन बाह्यपदार्थोका पूरा असहयोग ठान लिया जाय। जब कोई भी परपदार्थ मेरे लिए हितकारी नही है तो मै व्यर्थमे क्यो किसी परपदार्थको अपने चित्तमे रखू? एक बार अपने चित्तको ऐसा बनाये कि अब तो मुझे किसी भी परपदार्थको अपने चित्तमे नही बसाना है। सर्व बाह्यपदार्थ मेरेसे अत्यन्त भिन्न है, सर्व पदार्थ दुःखके ही हेतुभूत है। यो सर्व बाह्यपदार्थोका असहयोग कर दे और भीतरमे एक ऐसा सत्याग्रह कर ले कि मै तो ज्ञानमात्र हू, अन्य रूप नही हू, मैं ज्ञानको ही करता हू, ज्ञानको ही भोगता हू, ज्ञान ही मेरा सर्वस्व है, ज्ञानके सिवाय अन्य कुछ नही है, मै ज्ञानमात्र हू, ऐसा एक सत्य आग्रह कर लिया जाये तो जीवको अपने आत्माका अनुभवपूर्वक परिचय हो सकेगा, ऐसा परिचय अगर उस जीवको

हो जाय तो वही वास्तविक अमीर है, महान है। आज पुण्ययोगसे यदि उत्तम साधन पाया है, आजीविका भी ठीक है, किसी भी प्रकारकी असुविधा नही है, कोई शारीरिक आपत्तियाँ नही है, कुल भी श्रेष्ठ मिला है, जहा आचार विचार अच्छा चलता है, जैनशासन मिला है, तत्त्वज्ञानकी योग्यता मिली है तो ऐसे सुन्दर अवसरको पाकर एक ऐसी तैयारी कर लेना चाहिए कि जिस किसी भी प्रकार हो, मुझे अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपका परिचय कर लेना है, इसके अतिरिक्त अन्य सब कार्य असार है, और अनुभव भी बताता होगा कि बहुत काल से बाह्यपदार्थोमें लगे रहे, कितनी ही कमाई किया, कितने ही लोगोसे परिचय किया, कितने ही ददफद किए फिर भी अतमे हाथ कुछ न लगा। तो ये सर्व समागम असार है। तो सबको भूलकर एक ज्ञानस्वरूपके भावनाकी धुन बनाना चाहिए। ऐसा करनेसे ही आजका जो महान समागम पाया है वह सफल हो जायगा। बाकी ये सब पुद्गलके काम है, पुद्गलके उपकार है।

पुद्गलकृत कार्योमें प्रीति न करनेका निश्चय—इस प्रकरणको सुनकर हमे इस निर्णयमे आना चाहिए कि जो जो पुद्गलके उपकार है उनमे मेरेको प्रीति नही करना है। जीवन और मरण भी पुद्गलके उपकार बताये गए थे, उस ही से सम्बधित यहाँ मरणकी बात कह रहे है कि मरण नाम है किसका ? प्राणापान जो क्रिया चल रही है, श्वास लेने और फेकने की जो क्रिया चल रही है इस क्रिया विशेषका विच्छेद हो जाय, यह क्रिया समाप्त हो जाय तो इसीका नाम मरण है। जीवने आयुके उदयसे भव पाया था। अब उस आयुके क्षयसे सम्बधित यह प्राणापान क्रियाका विच्छेद हो जाना वही मरण है। तो ये सुख दुःख जीवन मरण आदिक सब पौद्गलिक है, क्योकि मूर्तिमान कारणके प्राप्त होनेपर ही ये चीजे उत्पन्न होती है।

विविध पुद्गलों द्वारा जीवका सांसारिक उपकार--जीवके उपकारक पुद्गल केवल शरीरादिककी ही रचनाके कारणभूत हो यही बात नही है किन्तु इस जीवका उपकार उनसे तो हुआ है लेकिन जो अन्य चीज है, जल है, भस्म है, अग्नि है, धातुवे है, इन सबसे उपकार देखा जा रहा है। यहाँ जीवके उपकारका अर्थ है कि ससार अवस्थामे जीव जिन-जिन बातोमे पडा हुआ है वे सब पुद्गलके सम्बधसे हो रहे है। अभी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इन पाँचोमेसे किसी एकसे काम न ले तो यहाँका सब व्यवहार रुक जाय। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इनके बिना किसीका गुजारा नही चलता। पचमकालका अन्त होनेके बाद छठा काल आयगा, उस छठे कालमे अग्निका भी लोप हो जायगा, तब फिर भोजन बनानेके कुछ भी साधन न रहेगे। तो फिर वहाँ मनुष्य सभी बनचर पशुओकी भाँति माँस-भक्षी हो जायेगे। और जब छठे कालका अन्त होता तो प्रलय होता है। इसके बाद फिर

छठा काल शुरू होता है। छठे कालके वाद फिर छठा काल आया तो जो वृत्ति पहिले छठे कालमे थी वही वृत्ति दूसरे छठे कालमे होगी, लेकिन फर्क इतना है कि पहिले छठे कालमे खोटी वृत्तियाँ बढती हुई चल रही थी और दूसरे छठे कालमे घटती हुई खोटी वृत्तियाँ चलेगी। फिर पञ्चम काल आयगा। बादमे चतुर्थ काल आयगा। वहाँ फिर तीर्थंकर जन्मेगे, धर्मका प्रसार होगा। तो बात यहाँ यह वतला रहे थे कि अग्नि न होवे तो यह गडबडी हो जायगी। यहाँका जो उपकार है वह सब पुद्गलके सम्बधसे है। इस तरह ये सब शरीर मन आदि पुद्गलके द्वारा रचे गए है। अजीवके उपकारको बताकर अब यह बतलाते है कि जीव जीव भी परस्पर एक दूसरेका कुछ उपकार (काम) करते हुए पाये जाते है।

जीवा वि दु जीवाण उवयार कुणदि सव्व-पच्चक्खं।
तत्थ वि पहाण-हेऊ पुण्णं पावं च णियमेणं ॥२१०॥

जीवोंका परस्पर उपकार व उस उपकारमें पुण्य पापकी प्रधानहेतुता—जीव एक दूसरेका उपकार करता है इस बातको सभी लोग प्रत्यक्षसे जान रहे है, लेकिन वहा भी प्रधान कारण है पुण्य और पाप। यदि पिता पुत्रकी पूछ करता है और पुत्र पिताकी पूछ करता है तो वहा उनके पुण्योदयका फल है। शिष्य और गुरुका जो परस्परका सम्बध है, शिष्य गुरुका उपकार करता है और गुरु शिष्यका उपकार करता है, तो इन सबमे भी कारण पुण्य पाप है। सभी लोगोको प्रत्यक्ष हो रहा है कि जीव जीवका उपकार करता है। सूत्र जी मे बताया है कि 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' यह जीव एक दूसरेका उपकार करता है। यहा भी उपकार का अर्थ भलाई नही है किन्तु उन्हे किसी काममे लगाये रहना है, उनकी रुचि करना है अथवा उनके प्रतिकूल चलकर उन्हे विकल्प पैदा करना है। किसी भी प्रकार हो, जीव भी दूसरे जीवके भले बुरे होनेमे कारण हो जाया करते हैं। जैसे स्वामी सेवकको धन देकर उपकार करता है, सेवक स्वामीको कुछ हितोपदेश देकर उपकार करता है, सेवक स्वामीकी कुछ सेवा करके स्वामीका उपकार करता है। आचार्य शिष्यको उपदेश देकर उपकार करता है तो शिष्य आचार्यके अनुकूल चलकर आचार्यको राजी रखता है तो इसी प्रकार पिता पुत्रका परस्पर उपकार, स्त्री पतिका परस्पर उपकार, मित्र-मित्रका परस्पर उपकार पाया जाता है। उपकार भी होता है और इसके द्वारा एक दूसरेका अनुपकार भी होता है। कैसे-कैसे द्वेषभावमे आकर जीव दूसरोका बिगाड करता है, और दिखता भी है कि इस राग और द्वेषके कारण एक जीव दूसरे जीवकी परिणति कराता रहता है। कोई मित्र अपने मित्रका यदि विषय पदार्थोका सम्बंध बनाकर उपकार करता है तो कहा तो जाता है उपकार, मगर बनाया क्या गया ? अपकारका समागम।

पुण्य पापानुसार अन्य जीवोंकी सुख दुःखके साधनोंमें निमित्तता होनेका वृत्त जान-

पर अपने भावोंके सुधारकी आवश्यकता—किसी कविकी दृष्टिमे यह कथन युक्त ही है कि किसीका यदि विरोध करना है, किसीसे बदला लेना है तो बजाय लडाई करनेके तृष्णाका कोई ऐसा संयोग मिला दिया जाय तो यह उसका बहुत बडा बदला होगा। जैसे एक कहानी है कि किसी सेठके पडोसमे कोई एक बढई रहता था। बढई गरीब था, लेकिन जो भी दो तीन रुपये रोज कमाता उनसे खूब अच्छा अच्छा खाता पीता था, और सेठके यहा सीधा सादा भोजन प्रतिदिन बनता था। सेठानी रोज रोज कहा करती थी कि देखो अपना पडोसी बढई गरीब होनेपर भी कितना अच्छा अच्छा खाता पीता और मौजमे रहता है, पर आप सेठ होकर भी सीधा सादा खानपान रखते है। तो सेठने अपनी इस रोज रोजकी परेशानी को मिटानेके लिए क्या किया कि एक दिन शामको बढईके घरकी आगनमें एक ९९ रुपयेकी थैली फेंक दी। सुबह जब बढईने पाया तो बडा खुश हुआ। उस दिन बढईने १) बचाकर थैलीके १००) पूरे कर दिए, अब उसे तृष्णा बढी। शतपतिसे हजारपति बननेकी इच्छा हुई। सो प्रतिदिन रूखा सूखा खाकर धन कमाने और जोडनेके चक्करमे पड गया। तो देखिये–सेठने कैसा तृष्णाका सयोग मिलाकर बढईको हैरानीमे डाल दिया। लोकमे बान्धव मित्र लोग विषयकषायोके साधन जुटाकर कितना परेशानीमे डाल रहे है। लेकिन उन्हे परेशानीमे डालने वाले लोगोको ही ये मोही प्राणी अपना हितू समझते है। यहाँ बाह्यपदार्थो के विपयोमे किसीको लगा देना, वही उसके लिए दु खका कारण है। ये ज्ञानी संतजन इन कुटुम्बीजनोसे बढकर कुटुम्बी है। ये रागद्वेष अज्ञान मोहको त्यागनेका उपदेश करते है, शान्तिकी विधि बताते है, जिससे रागद्वेष हटते है, ज्ञानप्रकाश मिलता है, और यह जीव अपनेमे शान्तिका अनुभव करता है। तो उपकारका अर्थ इस प्रकरणमे भलाई न लेना किन्तु कुछ भी काम कर देना, किसी भी काममे लगा देना इतना ही परस्परमे जीवोका उपकार है। सो होता है यह सब, लेकिन इसमे प्रधान कारण अपने अपने ही पुण्य पापकर्म है। पुण्योदय होगा तो कुटुम्बके लोग भी पूछ करेंगे और यदि पुण्योदय नही है, पापकर्मका उदय है तो कुटुम्बके लोग भी किनारा कर जायेगे। इससे पुण्य पापको अपने आधारपर जानकर अपने परिणाम अच्छे रखे ताकि पापका बध न हो और कभी इस परम्परामे ऐसा अवसर पाये कि धर्मध्यान बने, आत्मध्यान बने और कर्मबन्धनसे व सासारिक दु खोसे सदाके लिए छुटकारा प्राप्त हो।

का वि अउव्वा दीसदि पुग्गल-दव्वस्स एरिसी सत्ती।
केवल-णाण-सहाओ विणासिदो जाइ जीवस्स ॥२११॥

पुद्गलके स्वरूप और सामर्थ्यका वर्णन—यहाँ पुद्गलका वर्णन चल रहा है कि पुद्गल द्रव्य कैसे होते है, कितने भेद वाले है? जगतमे जो कुछ दिख रहा है ये सब पुद्गल

है, और ऐसे भी पुद्गल है जो आँखो दिखते नही। जिनमे रूप, रस, गंध स्पर्श पाया जाय उसे पुद्गल कहते है। उनमे कोई पुद्गल दिखते है कोई पुद्गल आँखो नही दिखते। जैसे कर्म ये भी पुद्गल है। कर्मोकी बात सभी लोग कहते है, कर्म, तकदीर, भाग्य, दैव आदि, किन्तु कर्मका क्या स्वरूप होता है, इस बातका वर्णन अन्यत्र नही मिलता। कर्म पौद्गलिक है, उनमे रूप, रस, गध, स्पर्श पाया जाता है, ऐसे कर्म कैसी शक्ति रखते है और ये दिखने वाले पदार्थ कैसी शक्ति रखते है उस बातका इस गाथामे वर्णन है। कहते है कि पुद्गल द्रव्य की कोई अपूर्व ऐसी शक्ति मालूम होती है कि जिसके कारण जीवका केवल ज्ञानस्वभाव नष्ट हो गया है। जीवमे ज्ञानका स्वभाव है और स्वभावके कारण ज्ञानमे इतना विशाल स्वभाव पडा है कि जगतमे जो कुछ भी था, है, और होगा वह सब कुछ ज्ञान जान लेता है। तो इतने समस्त पदार्थोको जाननेका स्वभाव होनेपर भी आज जीवमे यह ज्ञानस्वभाव प्रकट नही देखा जा रहा है। केवलज्ञान यदि होता तो कोई झगड़ा न था। यह मोह इस कम ज्ञानमे ही तो बनता है। कम ज्ञान है, समझमे नही आता, स्वरूपका बोध नही, कुछ आगे पीछेकी मालूम नही, तो विकल्प करते है, परसे लगाव रखते है, केवलज्ञान होता है तब जब रागद्वेष मिट जाये, और केवल ज्ञान होनेपर तीनो काल, तीनो लोकके सर्व पदार्थ स्पष्ट ज्ञान मे आते है, उनके अज्ञान ही नही है, विकल्पोका वहाँ किसी भी प्रकार मौका नही है, ऐसा ज्ञान हम आपके आज तो नही है।

आत्मस्वभावको विपरिणत कर देनेमे पुद्गलद्रव्यकी विलक्षण शक्तिका विवरण— सकलज्ञान हम आपके क्यो नही है? कोई दूसरी चीज हम आपमे साथ ऐसी लगी है कि जिसका निमित्त पाकर हम आप शुद्ध ज्ञानमे नही है। तो ऐसा अन्तरङ्ग निमित्त है कर्म। कर्मका उदय होनेसे, ज्ञानावरण कर्मके उदयका निमित्त पाकर जीवका ज्ञानस्वभाव ढक गया है, और दिखने वाले जो ये पदार्थ है, सोना, रत्न, हीरा माणिक, धन, धान्य, शरीर, स्त्री, पुरुष, चेतन, अचेतन पदार्थ, इनमे भी ऐसी अपूर्व शक्ति है कि जिसका आश्रय लेनेसे ज्ञान-स्वभाव हमारा ढक गया है। जीव जब रागद्वेष करता है तो इसे जो वस्तु अच्छी लगती है उसमे राग करता है, क्यो अच्छी लगती है कि इसको अपने ज्ञानस्वभावका पता नही है और न आत्माका शुद्ध स्वभाव क्या है, इसकी वास्तविक करनी क्या है, न इसका भान है, तो बाहरी पदार्थोमे लग रहा है, कही तो रमेगा यह जीव। जब खुदका धाम इसको रमनेके लिए न मिले तो यह बाह्य पदार्थोमे रमता है। इष्ट वस्तुमे राग और अनिष्ट वस्तुमे द्वेष करनेसे कर्मका बध होता है और उस कर्मबन्धके कारण उनका उदय आनेपर नये-नये कर्म बाँधता रहता है, नये-नये जन्म और मरण करता रहता है। मरणमे शरीर मिलता है, शरीरमे इन्द्रियाँ होती है। इन्द्रियोके द्वारा फिर इन विषयोका उपभोग करता, उससे फिर

इसे इष्ट वस्तुमे राग और अनिष्ट वस्तुमे द्वेष होता है, बस रागद्वेपसे कर्मबन्ध, कर्मोदयसे रागद्वेष यह परम्परा अनादिकालसे चली आयी है। इससे इस जीवका जो वैभव है वह सब विकृत हो गया है।

विकल्प करके स्वयंके द्वारा शान्तिका विघात—आज यह स्थिति है कि शान्ति नही है, इस जीवको शान्ति नही है सो अशान्ति कोई दूसरी चीज नही पैदा कर रही, यह खुद ही कल्पनाये बनाता है और अशान्त हो जाता है। पडोसके लोग, बिरादरीके लोग, देशके लोग हमे कुछ समझे, हमारी इज्जत करे, इनमे मेरी पोजीशन रहे आदि ये सब व्यर्थके ख्याल बनाये जाते है। अरे इस जीवतत्त्वको समझने वाला यहाँ है कौन ? मुझको समझने वाला यहाँ कोई नही है। और मान लो आज मनुष्य न होते, अन्य किसी भवमे होते, जैसे कि ये कीडा, मकौडा, वृक्ष, पृथ्वी आदिक, तो फिर ये कौन मनुष्य मुझे समझता ? तो आज मनुष्य होनेपर भी जो मेरा अन्त स्वरूप है उसको समझने वाला यहाँ कोई नही है, बाहरी नाक, आँख, कान आदिकको देखकर ही लोग नाम रखते है। तो यहाँ कोई हमारा जानने समझने वाला नही है। किसको क्या पोजीशन दिखाना, किसको क्या करना ? परिग्रह परिमाण व्रतमे बताया है कि दूसरे विशेष पुण्यवानोका वैभव देखकर अपनेमे पोजीशन बढानेकी भावना करना और ऐश आरामके साधन जुटानेकी अभिलाषा करना इसको पाप बताया है। इससे अशान्ति मिलती है। यह अधर्म है।

परका व्यामोह छोड़कर अपनी सम्हाल करनेका अनुरोध—जैनशासनका उपदेश है कि गृहस्थजन न्यायवृत्तिसे काम करे और पुण्यानुसार जो उन्हे लाभ होता है उसके ही अन्दर अपनी व्यवस्था बनाये, लोकलाजको छोड दे कि लोग क्या कहेगे ये बडे गरीब है, इनकी पोजीशन साधारण है। अरे कहने वाले है, उनका मुख है, उनका भाव है, उनसे मेरेमे क्या बिगड होता है ? यदि अपने धर्मसे हम डिग गए, स्वभावसे हम चिग गए तो इसका फल यहाँ कोई दूसरा भोगेगा क्या ? पाप करनेका बुरा फल होगा, जिनके लिए पाप किया जा रहा है अथवा जिनका लक्ष्य करके पाप किया जा रहा है वे कोई मददगार नही हो सकते। अपनी बात अपनेको सम्हालनी है। अगर सत्य बोध हो तो अशान्तिका कोई कारण नही। अशान्त होता है यह जीव परिग्रहके सम्बन्धसे। और, परिग्रहका सम्बध जुटाया है इस जीवने पर्यायबुद्धिसे। पर्यायसे भिन्न अपने आत्माके स्वरूपको निरख लिया जाय तो वहाँ अशान्ति नही है। दुनियामे कही कुछ भी हो, कैसे ही परिणमन हो, वैभव आये अथवा जाये, कुछ भी बाह्य बात हो, उस परिणमनसे मेरा क्या सुधार बिगाड है, क्या सम्बध है ? ऐसा अपने आपके स्वरूपकी ओर दृढ तो रहे, उसे अशान्ति नही हो सकती। तो यह ज्ञान नही है, रागद्वेषकी बुद्धि है उससे ये सब विडम्बनाये लग गई है, जो कठिन बन गई

है, शरीरमे बँधे है, राग होता है, मरण होता है, जन्म लेना पडता है, नई-नई विपत्तियाँ आती रहती है, ये सब विडम्बनाये अज्ञानके कारण ही तो हमने बनायी । उस अज्ञानको नही मिटाना चाहते । उपादान दृष्टिसे तो जीव स्वय अपने अपराधसे अज्ञानी बना है, लेकिन निमित्त दृष्टिसे यही बात निर्णीत है कि कर्मोदयसे यह जीव ज्ञानस्वभावको प्रकट नही कर पा रहा । तो पुद्गल द्रव्यमे ऐसी कैसी अपूर्व शक्ति है कि जिसके कारण जीवका ज्ञानस्वभाव नष्ट किया गया है । अर्थात् केवल ज्ञानावरण कर्मके उदयसे जीव अज्ञानी बना है । तो इस पुद्गलमे कैसी अपूर्व शक्ति है । यहाँ तक पुद्गल द्रव्यका वर्णन किया । द्रव्यकी ६ जातियाँ बतायी गई है--जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । तो पूर्वके दो द्रव्योका वर्णन करके अब धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यका वर्णन करते है ।

धम्ममधम्मं दव्व गमण-ट्ठाणाण कारण कमसो ।
जीवाण पुग्गलाण विण्णि वि लोग-प्पमाणाणि ॥२१२॥

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यका स्वरूप—धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ये पदार्थ है—पुण्य पाप का यहाँ नाम नही है । जैसे पुद्गल कोई पदार्थ है ऐसे ही एक धर्मद्रव्य नामका भी पदार्थ है और अधर्मद्रव्य नामका भी पदार्थ है । ये पदार्थ बहुत सूक्ष्म है, इनका वर्णन करना बहुत कठिन है । यह स्वय मै नही हू इस कारण अनुभवसे भी इसे नही जान सकते । और यह अमूर्त है इस कारण इसे नही जान सकते । तब उपकार और कार्य निमित्तकी बात कहकर धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यका स्वरूप बताया जाता है । धर्मद्रव्य उसे कहते है जो जीव पुद्गल के गमनमे सहकारी हो । अधर्मद्रव्य उसे कहते है जो जीव पुद्गलके ठहरनेमे सहकारी हो, अर्थात् धर्मद्रव्यका उपकार है कि यह गमन और स्थितिमे कारण होता है । धर्मद्रव्य एक है और उतना बडा है जितना कि लोकाकाश है, लोकाकाशमे सर्व प्रदेशोमे एक एक प्रदेश व्यापकर धर्मद्रव्य फैला हुआ है । इसी प्रकार अधर्मद्रव्य भी उतना बडा है, बस यह उदासीन रूपसे अपना सत्त्व रखता है और अपनी सत्तासे है, अपनेमे उत्पादव्ययध्रौव्य करता रहता है । अब उनका निमित्त पाकर जीव पुद्गल चलते है और ठहरते है । तो इस जीव पुद्गलके चलने और ठहरनेके निमित्तसे उत्पादव्ययका ज्ञान कराया जाता और वस्तुत उनमे द्रव्य होनेके नाते स्वयं ही उत्पादव्यय है । प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है, जैसे जीव है, मनुष्य है, आज तो मनुष्य रूपमे है और मरण करके देव हो गए तो मनुष्य रूपका तो विनाश हो गया और देवरूपका उत्पाद हो गया, फिर भी जीव वही रहा । तो ऐसे ही जो भी पदार्थ है, सबका स्वरूप है, वह अपनेमे नई अवस्था बनाता है पुरानी अवस्था विलीन करता है और दोनो अवस्थाओमे भी ध्रुव रहता है । ऐसे ही धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य है ।

धर्मद्रव्यकी गतिहेतुता—धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलके गमनमे सहकारी कारण होता है। जैसे—मछलियोके चलनेमे जल सहकारी कारण है लेकिन जल मछलीको जबरदस्ती नही चलाता। मछली अगर ठहरे तो जल जबरदस्ती ढकेलता नही है कि तू ठहरी क्यो है ? मै तो तेरे चलनेमे कारण यहाँ मौजूद हूँ। इससे मालूम होता है कि जल उदासीन कारण है, प्रेरक नही, मगर जलके बिना मछली चल नही सकती। इस कारण उसे कारण कहा है। तो ऐसे ही धर्मद्रव्य जीव पुद्गलको जबरदस्ती चलाता नही है कि तेरे गमनका कारणभूत मैं यहा मौजूद हू, तू चलती क्यो नही है ? लेकिन धर्मद्रव्यके अभावमे जीव पुद्गल चल नही सकता। अलोकाकाशमे धर्मद्रव्य नही है तो वहाँ जीव पुद्गल नही जा पाया है। इसी प्रकार एक अलौकिक दृष्टान्त भी सुनो कि जैसे भव्य जीवोको सिद्ध गति प्राप्त करनेके लिए भगवानका स्मरण कारण है, सिद्धगति कोई गतिका भेद नही है, किन्तु चारो गतियोसे रहित जो अवस्था है उसको सिद्धगति कह लीजिए। निश्चयनयसे तो जो निर्विकल्प समाधिमे परिणत हुये जीव है, अर्थात् अपने उपादान कारणमे आये हुए जो जीव है उनको सिद्ध अवस्था प्राप्त होती है, फिर भी व्यवहारसे देखा जाय तो जब वे सिद्ध भक्ति कर रहे है, सिद्ध प्रभुका स्मरण कर रहे है उस सिद्धके समान अनत ज्ञानादिक गुण स्वरूप हू यह भावना भी तो निरर्थक नही जाती, परम्परासे यही भावना शुद्ध अवस्थाका कारण बनती है, तो जैसे सिद्ध भगवान अमूर्त है, वे मुझसे क्रिया नही कराते, मेरेको प्रेरणा नही देते, पर मै सिद्धगतिके योग्य परिणति करूँ तो मेरी उस सिद्ध अवस्थाकी प्राप्तिमे, सिद्ध गतिमे वह सहकारी कारण बनता है, इसी प्रकार यह धर्मद्रव्य निष्क्रिय है, अमूर्त है, प्रेरणा नही करता, फिर यह जीव पुद्गल अपने ही उपादान कारणसे चले तो उनकी गतिमे सहकारी कारण होता है।

अधर्मद्रव्यकी स्थितिहेतुता—धर्मद्रव्यकी तरह अधर्मद्रव्य भी लोकाकाशमे व्याप्त है और वह जीव पुद्गलके ठहरनेमे सहकारी कारण है। जैसे मुसाफिरके ठहरनेमे वृक्षकी छाया सहकारी कारण है। गर्मीके दिन हैं तेज धूप है, गर्मी खूब सता रही है, मुसाफिर चलते हुएमे यह इच्छा करता है कि कही मुझे छायादार पेड दिखे तो मै उसके नीचे पहुच कर आराम करूँ। कोई छायादार वृक्ष मिलता है, तो उसके नीचे वह ठहर जाता है। अब उस मुसाफिरको वृक्षने जबरदस्ती नही ठहराया कि मै तेरे ठहरनेका कारण यहाँ मौजूद हू, तुझे ठहरना पडेगा, किन्तु उस मुसाफिरको स्वय ही ठहरनेकी इच्छा थी तो उस मुसाफिरके ठहरनेमे वह वृक्ष कारण बन गया। ऐसे ही अधर्मद्रव्य जीव पुद्गलको जबरदस्ती ठहराता नही है कि तू चल क्यो रहा है, तेरे ठहरनेका कारण मै यहा मौजूद हू, तुझे ठहरना पडेगा, किन्तु जो जीव पुद्गल चलते हुए ठहरना चाहते है, ठहर रहे

है उनके ठहरनेमें सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है। अथवा एक अलौकिक दृष्टान्त सुनो— वास्तविक स्वास्थ्य, वास्तविक कल्याण तो अपने स्वरूपमे ठहरनेमे है। यह जीव यदि अपने स्वरूपमे ठहर जाय तो इसके सारे सकट समाप्त हो जाये। कोई विकार न रहे, कोई इच्छा न रहे, फिर कोई अशाति नही, घबडाहट नही। किसी भी परद्रव्यको अपने चित्तमे बसाना योग्य नही, अपने ही स्वरूपमे ठहरना चाहिए। तो यह जीव अपने स्वरूपमे ठहरे उसका कारण है स्वसम्वेदन ज्ञानसे उत्पन्न हुए आनन्दका अनुभव। मै सिद्धसमान शक्तिसे शुद्ध हू, सिद्ध हू, अनन्तज्ञान आदिकसे समृद्ध हू, इस तरहका जो सिद्ध प्रभुका ध्यान है वह भव्य जीवोको अपने स्वरूपमे ठहरनेका कारण बनता है। तो वे सिद्ध प्रभु प्रेरक नही है। जबर-दस्ती नही करते, वे स्वय चलकर ठहरने वाले नही है लेकिन भव्य जीवोको अपने स्वरूपमे ठहरनेके लिए सिद्धस्मरण सहकारी कारण है, ऐसे ही समझिये—अधर्मद्रव्य ठहरते हुए जीव पुद्गलके ठहरानेमे सहकारी कारण है। ठहर तो रहे है अपने ही उपादान कारणसे, अगर अधर्मद्रव्य न हो तो ये ठहर नही सकते। जैसे कि अलोकाकाशमे अधर्मद्रव्य नही है तो वहाँ यह जीव पुद्गलकी स्थिति भी नही पायी जाती।

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यका ऋषि संतोकी वाणीमें प्रामाणिक वर्णन—ये दोनो द्रव्य, (धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य) अमूर्त है। लोकाकाशके प्रदेशके बराबर है, असख्यातप्रदेशी है। ऐसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्यका लोगोने ज्ञान तो नही किया, वैज्ञानिक भी स्पष्ट नही बता पा रहे है, हाँ गतिक्रियामे हेतुभूत किसी ईथर मेटरका अनुमान करते है, किन्तु वीतराग सर्वज्ञदेवके ज्ञानसे कुछ भी चीज बाहर नही। उनके उपदेश परम्परासे आचार्यसंतोने बताया है कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य इस लोकमे है और वे जीव पुद्गलके गमन करानेमे और ठहरानेमे सहकारी कारण होते है। यहाँ तक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म इन चार द्रव्योका स्वरूप कहा। अब आकाशद्रव्यका स्वरूप कहते है।

सहलाण दव्वाण ज दादु सक्कदे हि अवगास।
त आयास दुविह लोयालोयाण भेएण ॥२१३॥

आकाशद्रव्यका स्वरूप—आकाशद्रव्य उसे कहते है जो समस्त द्रव्योको अवगाह दे, स्थान दे। सभी चीजे कहा भरी रहती है? आकाशमे। आकाशमे यह सामर्थ्य है कि यहा पदार्थ आते जाये। कही कही तो पदार्थमे पदार्थ भी समा जाते है। तो इसमे मूल कारण तो आकाश है ही। पर उन पदार्थोमे ऐसी विशेषता है कि वे पदार्थ दूसरे पदार्थ का प्रतिघात नही करते। जो सर्व द्रव्योको अवगाह देनेमे समर्थ है उसे आकाश कहते है। वह आकाश दो प्रकारका है—लोकाकाश और अलोकाकाश। आकाशके स्वयं दो भेद नही है, आकाश तो अखण्ड एक द्रव्य है। कोई आकाशके टुकडे कर सकता है क्या? वह अखण्ड

चीज है, पर उसमे यह विभाग बनाया है कि जितनी जगहमे छहो द्रव्य है उतने को लोकाकाश कहते है, और जहाँ केवल आकाश ही है, अन्य कोई द्रव्य नही है उसको अलोकाकाश कहते है।

सर्वद्रव्योमे अवगाहनशक्ति होने व न होनेकी एक जिज्ञासा—अब यहा एक शंका की जा सकती है कि बतलाओ सर्वद्रव्योमे अवगाहना शक्ति है या नही ? जैसे राखमे पानी समा जाता है और उसमे सूई समा जाती है, तो एक पदार्थमे दूसरा पदार्थ समा जाता है यह दिखनेमे आ रहा है तो उस ही का लक्ष्य करके या आकाशके स्वरूपके वर्णनके विरोध मे शका की जा रही है कि इन पदार्थोमे खुदमे अवगाहन शक्ति है या नही। अगर कहो कि अवगाहन शक्ति नही है तो कौन किसको अवगाह देता है सो बताओ ? और यदि है तो उसकी उपपत्ति बताना चाहिए। देखिये—छहो द्रव्य अपना-अपना स्वरूप लिए हुए है और उनमे यह देखा जा रहा है कि जहाँ जीव है वहाँ पुद्गल भी समाये है, वही धर्मद्रव्य भी है। प्रत्येक प्रदेश पर छहो द्रव्य है, उनका अवगाह तो सिद्ध हो रहा है, तो यह अवगाह हो रहा है उसका कारण क्या है ? बताया गया है कि केवलज्ञानमे सारा लोकालोक समाया हुआ है। आकाश द्रव्य तो अनन्तप्रदेशी है, वह केवलज्ञानमे समा गया है। आकाशके ठीक मध्यमे असख्यातप्रदेशी लोक है और असख्यातप्रदेशी लोकमे अनन्त जीव समाये है। तो देखिये—एक द्रव्यमे अनेक द्रव्य समाये हुए है ना ! जीवमे जीव समाये है, जीवमे पुद्गल समाये है, और उन जीवोसे अनन्त गुने पुद्गल हैं। एक द्रव्यमे कितने ही दूसरे द्रव्योका अवगाह सिद्ध होता है। तो ऐसा अवगाह होनेमे कारण क्या है ? उस अवगाहकी उपपत्ति बताने के लिए अब आकाश द्रव्यकी विशेषतया स्वरूप विश्लेषणा की जायेगी और बताया जायेगा कि किस तरहसे पदार्थका परस्परमे अवगाह है और परस्परमे अवगाह होकर भी सर्व वस्तुओका एक आकाशमे ही अवगाह है। तो जो सर्व पदार्थोको अवगाहित करे, ठहराये उसे आकाश कहते है।

सव्वाण दव्वाण अवगाहण-सत्ति अत्थि परमत्थ।
जह भसम पाणियाण जीव-पएसाण बहुयाण ॥२१४॥

वस्तुतः आकाशमें व अप्रतीघातरूपसे सर्व द्रव्योंमें अवगाहनशक्तिका वर्णन—यहाँ आकाशद्रव्यका लक्षण बता रहे है। आकाश उसे कहते है जहाँ सब द्रव्य समा सके, जो दूसरोको अवगाह देवे उसे आकाशद्रव्य कहते है। यहाँ यह बात विचारना है कि अन्य द्रव्यों मे अवगाहन शक्ति है या नही, तो इसके समाधानमे कहते है कि सर्वद्रव्योमे अवगाहन शक्ति है। एक द्रव्यमे दूसरा द्रव्य समा जाय ऐसी अवगाहन शक्ति है वास्तवमे। जैसे कि राख और पानीमे जहाँ पानी है वहाँ ही राख डालनेपर पानीमे राख समा जाती है अथवा जहा

राख है उसमे पानी डालनेपर पानी समा जाता है तो इसी प्रकार एक द्रव्यमे दूसरे द्रव्योंके अवगाहनेकी शक्ति है। निश्चयसे सभी द्रव्योमे अवगाह शक्ति है। जैसे जल और भस्ममे, इसी प्रकार बहुतसे जीवोका आकाशमे अवगाह जाने। जहा एक जीव है वहा अनेक जीव भी समाये हुए है, और सिद्ध स्थानमे तो जहा एक सिद्ध भगवान विराजमान है उस ही जगह अनेक सिद्ध विराजमान है। इस ढाई द्वीपके अन्दर ऐसी कोई जगह नही बची जहासे कोई मोक्ष न गया हो। प्रत्येक प्रदेशसे अनेक जीव मोक्ष गए। जिस स्थानसे एक जीव मोक्ष गया उसी जगहसे अनेक जीव मोक्ष गए। और, सिद्ध होने पर उनकी गति सीधी होती है। तो जहा एक भगवान ऊपर बिराजे है वहां ही अनेक भगवान बिराजे है। तभी तो कहते है कि एक माँहि एक राजे एक माहि अनेकनो। स्वरूप दृष्टिसे देखो तो एक भगवान मे एक ही रह रहा है दूसरा नही। जो भगवान केवलज्ञानके द्वारा लोकालोक को जानते है वे अपने ज्ञानसे ही जानते है, एक भगवान दूसरे भगवानके ज्ञानसे नही जानते। आनन्द भी सबका अपने आपमे है। तो एकमे एक ही है, पर व्यवहार दृष्टिसे, प्रदेशदृष्टिसे देखा जाय तो जहा एक भगवान है वहा ही अनेक भगवान है, तो वहा तो यह बात स्पष्ट है। यहा भी ससार अवस्थामे जहा एक जीव है वहा अनेक जीव भी समाये हुए रहते है। एक निगोद शरीरमे अनन्त जीव रहते है। तो प्रदेश वही है और वहा अनेक जीव रह रहे है तो एक स्थानमे अनेकका रहना सम्भव है। क्योकि उनमे अवगाहकी शक्ति है। जैसे आकाशमे घट है, घटमे भस्म है, भस्ममे जल समा गया और उसही मे सूई डाला तो वह भी समा जाती है। तो ऐसे ही समझिये कि सभी द्रव्य लोकाकाशमे परस्पर अवगाह रूपसे समा जाते है। जहा एक दीपका प्रकाश है वहा १०–५० दीप रख दिए जाये तो उनका भी प्रकाश समा जाता है तो इसी तरह समझिये कि सभी द्रव्योमे परस्पर अवगाहनकी शक्ति है, लोकाकाश मे जितने प्रदेश है सभी प्रदेशोपर छहो जातिके द्रव्य है। ये सब द्रव्य है तो वे प्रतिघात नही करते, इस कारणसे उनमे समानेकी बात कही है। वस्तुत तो यह गुण आकाश का है। आकाशमे सभी पदार्थ समा जाते है।

जदि ण हवदि सा सत्ती सहाव-भूदा हि सव्व-दव्वाणं।
एक्केक्कास-पएसे कह ता सव्वाणि वट्टंति ॥२१५॥

असंख्यातप्रदेश वाले लोकमें अनन्तानन्त पदार्थोंके समा जानेका कारण—यदि सभी पदार्थोमे परस्पर समा जानेकी शक्ति न हो तो एक आकाश प्रदेशपर इतने द्रव्य कैसे समा जायेगे? मूल प्रश्न यह था कि लोकाकाशके प्रदेश तो असख्यात है, अनन्त नही है और इस लोकाकाशमे अनन्त तो जीव समाये हुए है। प्रदेश है अनगिनते, मायने जिनकी हद है और जीव इतने है जिनकी हद नही है और एक-एक जीवके साथ अनन्त कार्माणवर्गणायें

लगी है, अनन्त शरीरवर्गणायें लगी है और वे सब अनन्तगुणी है, तो इतने प्रदेश थोडेसे प्रदेशमे समा कैसे गए ? सो उसका उत्तर यह है कि उन सब पदार्थोंमे एक दूसरेमे समा जानेकी शक्ति है। प्रदेशका लक्षण बताया है कि एक परमाणु जितनी जगहको घेरे उसे एक प्रदेश कहते है। एक क्षेत्रका छोटासे छोटा माप है प्रदेश। जैसे एक हाथमे २४ अगुल होते है, एक अगुलमे कई सूत होते है, तो ऐसे ही कमसे कमका माप है प्रदेश। एक परमाणु जितनी जगह घेर सकता है उसे एक प्रदेश कहते है। एक प्रदेशमे कई परमाणु रह सकते, पर एक परमाणु दो प्रदेशोपर नही रह सकता। तो इतने छोटे स्थानका नाम है प्रदेश। अब अदाज कीजिए कि सूईकी नोक यदि कागजपर गडा दी जाय तो कितना छोटा गढा होता है, उस गढेमे भी असख्यात प्रदेश होते है। तब समझिये कि एक प्रदेश कितना छोटा होता है, और उससे अदाज लगाइये कि एक परमाणु कितना छोटा कहलाया। परमाणुको सूक्ष्म-सूक्ष्म कहा है।

परमार्थस्वरूपकी सुध न होनेसे अज्ञानीजनोका मायाजलमें व्यामोह--ये जो आँखो दिखते है ये सब स्कध है, इन्हे माया कहते है। माया नाम उसका है जो सदा नही रहता। जो विकार है, विभाव है, नष्ट हो जायगा, सकल बदल जायगी वह सब माया कहलाती है। तो अज्ञानी जनोकी प्रीति मायामे हो रही है वास्तविक वस्तुमे नही। वास्तविक पदार्थ तो इस पुद्गलका है परमाणु। एक परमाणुसे किसको मोह है ? एक परमाणुका तो लोगोको पता भी नही है। लोगोको जो कुछ यहा दिख रहे है सो मायारूप स्कध दिख रहे है। वास्तविक वस्तुमे कोई मोह राग नही कर रहा। इस मायाजालसे ही जीवको मोह राग उत्पन्न हो रहा है। यदि इन पदार्थोमे परमार्थ परमाणुको कोई तकने लगे तो उसकी दृष्टि मे यह माया हट जायगी, उसे फिर मोह न रहेगा। तो समझिये कि परमाणु कितना छोटा होता है ? इसी तरह आगे आयगा कालद्रव्यका वर्णन तो उसमे एक समय कितना छोटा कहलाता है यह बताया जायगा। आखके पलक जितना जल्दी जितने क्षणमे उठते गिरते है, एक पलकके गिरनेमे जितना समय लगता है उसमे अनगिनते समय हुआ करते है, तो ऐसे जो सूक्ष्म पदार्थ है उन पदार्थोकी इन अज्ञानियोको सुध नही है।

अब जीवमे भी देखा कि वास्तविक जीव क्या है ? जिसका परिचय है, यह मनुष्य है, गाय है, घोडा है आदि जितने व्यवहार करते है, जितने परिचय रखते है वे सब जीवके सत्य स्वरूप नही है। जीव वास्तवमे क्या है, कितना है ? तो जीवको समझनेका आधार है ज्ञान, याने ज्ञानरूपमे यदि जीवको सोचा जाय तो जीवका परिचय मिलता है। अन्य उपायोसे जीवका परिचय नही मिलता है। इन देहोको देखनेसे जीवका परिचय नही मिलता और क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह रागादिक भावो पर ध्यान देनेसे भी जीवका परिचय

नही मिलता। जीव उतना बडा है जितना कि शरीर। उस शरीरके माफिक जीवका विस्तार निरखा जाय उससे भी जीवका अच्छा परिचय नही मिलता, जिस परिचयके बाद अनुभव हो जायेगा ऐसा परिचय अन्य उपायोसे नही मिलता। एक इस अपनेको, जीवको ज्ञानमात्र रूपसे सोचिये—केवल मैं ज्ञानस्वरूप हू, जाननहार हू, चैतन्य हू, बस इतना ही मेरा काम है, यही मेरा अनुभवन है। यदि ज्ञानमात्र अपने ,आपको विचारा जाय तो उसमे जीवका परिचय मिलता है। तब जाने कि जीवके नाते हमने पहिले कुछ समझा कि यह जीव है पर उन सबमे वह जीवतत्व नही दीखा। जीव इतना सूक्ष्म है कि वह केवल प्रतिभासमात्र, चैतन्यमात्र है। तो बतला यह रहे है कि इन मोहियोको जिससे प्रीति उत्पन्न होती है वह सब मायाजाल है। यह शरीर, ये मनुष्य, ये पशुपक्षी आदि सब मायारूप है, शाश्वत रूप नही है। तो क्षेत्रकी बात यहा कह रहे है कि आकाशमे सबसे छोटा माप है प्रदेश। प्रदेश है उतनी जगह का नाम जितनी जगहको एक परमाणु रोके, उसको प्रदेश कहते है। ऐसे ऐसे अनन्त प्रदेशात्मक यह आकाश है। यहा तक इस लोक भावनामे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाशका वर्णन किया। अब कालद्रव्यका वर्णन करते है।

सव्वाण दव्वाण परिणाम जो करेदि सो कालो।
एवकेक्कास–पएसे सो वट्टदि एक्कको चेव ॥२१६॥

कालद्रव्यका स्वरूप—समस्त द्रव्योके परिणमनको जो करे उसे काल कहते है। वह काल लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक एक कालद्रव्य ठहरा हुआ है। सभी लोग ऐसा अनुभव करते है कि समय व्यतीत होता है तो पदार्थकी अवस्थामे भी परिणमन होता है। कोई पुरुष जन्मा, अभी वह शिशु है, समय बीता बालक बन गया, समय बीता जवान बन गया, समय बीता वृद्ध बन गया, समय बीता उसका क्षय हो गया। जैसे-जैसे समय गुजरता है वैसे ही वैसे वस्तुका परिणमन होता रहता है। वस्तुके परिणमनका निमित्त है काल। समय न गुजरे तो ये अवस्थाये नही बदल सकती है। सभी द्रव्योमे परिणमन है। कोई द्रव्य परिणमनरहित नही है। होता ही वही सत् है जो प्रतिसमय परिणमन करे। जैनशासनमे वस्तुस्वरूपके ज्ञानपर बहुत जोर दिया गया है कि यदि अपना कल्याण करना है, तो पदार्थोका सही स्वरूप जाने। पदार्थका सही स्वरूप जाननेसे प्रभाव यह होता कि मोह अधकार नही रहता। जीवको जितना भी क्लेश है वह सब मोहका है, अन्य कुछ क्लेश नही। सब पदार्थ है, परिणमनशील है, अपने परिणमनसे परिणमते है। तो दूसरोमे मुझमे क्या आपत्ति आयी? मै स्वयमे अज्ञान बसाये हू, विकल्प किए हू, वही मुझपर आपत्ति है। अब यह एक सिद्धान्तकी बात है कि मुझमे मोह हुआ कैसे? उसमे कर्मोदय निमित्त है, कर्म और विभावका निमित्तनैमित्तिक सम्बध है, परवस्तुके स्वरूपपर दृष्टि दे

तो यह विदित होगा कि पदार्थ प्रतिसमय परिणमनशील है और अपने इस स्वभावके कारण परिणमता रहता है। तो प्रत्येक द्रव्यमे परिणमन निरन्तर है, उसका कारण है कालद्रव्य। जीव और पुद्गल आदिककी जो पर्याये होती है, नई हो, जीर्ण हो, विलीन हो या जो उनमे उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है सो उन अवस्थाओंका कारण है कालद्रव्य। जीवमे स्वभावपर्याय है, विभावपर्याय है, नारकी होता, कभी तिर्यञ्च होता, कभी मनुष्य होता, कभी देव होता, कभी क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक विभाव पर्यायोरूप बना, कभी छोटे बडे स्कधोरूप बना, आदि, निमित्तदृष्टिसे इन सबको करने वाला कालद्रव्य कहा है। कालद्रव्यका ही अपर-नाम कालाणु है एक-एक प्रदेशपर एक एक कालाणु है और वह भी परिणमनशील है, उसमे प्रति समय नवीन नवीन पर्याये बनती रहती है और उन समयोका जो समूह है वह व्यवहारकाल है। जिसे कहते है मिनट, घटा, दिन, वर्ष आदि यह व्यवहारकाल है। वास्तव मे तो एक पर्याय समय है और अनेक समयोको जोड करके उसे व्यवहारकाल कहा है। यो कालद्रव्यके निमित्तसे सर्वद्रव्योका परिणमन होता है।

धर्मादिक द्रव्योंमें परिणमन व उन परिणमनोंमे भी कालद्रव्यकी हेतुता—अब यहाँ विचार यह करना है कि जीव और पुद्गलका परिणमन तो समझमे आता है। जीवका परि-णमन इस समय समझमे आ जाता कि हम जीव है, हमपर परिणमन गुजरते है। उसका अनुभव होता है तो बुद्धि ठिकाने होती है, समझते हैं कि हममे बडे विचित्र परिणमन है, क्योकि सुखी दुखी हो रहे है और समझ रहे है कि हम विकल्प करते है, विषयकषायके भाव करते है, उससे हम सुखी है, तो अपने पर गुजर रही है ये बाते इस कारण अपना परिणमन समझमे आ जाता है। पुद्गलका परिणमन यो समझमे आता है कि ये स्थूल है, इनका परिणमन आँखो द्वारा देख रहे है, इन्द्रियोसे हम जान रहे है, तो यहाँ कोई यह आशका कर सकता है कि हमे तो केवल जीव और पुद्गलका परिणमन समझमे आ रहा है, उनमे ही कालद्रव्यका उपकार बताये, पर धर्म अधर्म आदिक जो अमूर्तद्रव्य है उनमे परिणमन कैसे होगा ? सो इसके समाधानमे सुनो कि यद्यपि ये सब अमूर्तद्रव्य है किन्तु यह नियम है कि जो है वह नियमसे प्रति समय परिणमन करता रहेगा। तो धर्मादिक द्रव्य भी सत् है, उनमे स्वभावसे षड्गुण हानि वृद्धि होती है और जैसा अरहत भगवानने बताया है है कि प्रति समय वह अगुरुलघुत्व गुणके कारण परिणमता रहता है। तो उन सब परिण-मनोका कारण है समय और समय पर्याय है कालद्रव्यकी, ऐसा यह कालद्रव्य लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक ठहरा है, तो यह एक प्रदेशी है, असख्याते काल है। कालद्रव्य की वजहसे ये सब परिणमन होते है। इस गाथामे यह ध्वनित समझिये कि कालद्रव्यमे भी स्वय परिणनेमी शक्ति है और सर्वद्रव्योके परिणमनका वह कारण बनता है। लेकिन यहा

यह जानना होगा कि प्रत्येक पदार्थमे परिरामनेकी स्वयकी शक्ति है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपसे परिरामता है, उस परिरामामान पदार्थमे सहकारी निमित्त कारण कालद्रव्य है।

णिय-णिय-परिणामाणं णिय-णिय-दव्वं पि कारणं होदि ।
अण्णं बाहिर-दव्वं णिमित्त-मित्त वियाणेह ॥२१७॥

अपने अपने परिरामनमें अपनी अपनी अन्तःकारणता व अन्य बाह्यद्रव्योंकी निमित्तरूपता—प्रत्येक पदार्थोके अपने-अपने परिरामनका कारण खुद खुद द्रव्य है, अन्य पदार्थ तो केवल बाह्यनिमित्त है। जैसे हम दु.खी होते है तो अपने अज्ञान मोहसे दु खी होते है। हमारे दु ख परिरामनमे हम ही कारण है। अब इस दु ख परिरामनमे जो बाह्यद्रव्योका प्रसग वना, जिस आश्रयसे यह दु खपर्याय उत्पन्न हुई है, ऐसे कुटुम्बीजन अथवा अन्य पुरुष या वैभव आदिक या शत्रु आदिक ये सब वाह्यद्रव्य निमित्तमात्र है। वही पुरुष जो इन बाह्यपदार्थोंकी कल्पना करता है, दु खी हो रहा है। वह कल्पनाको त्याग दे तो उसका दु ख व्‌ी शान्त हो सकता है। जैसे एक कथानक है कि कोई राजा किसी दूसरे राजापर चढाई करने जा रहा था तो रास्तेमे उसे एक जंगलमे कोई साधु महाराज दिखे। वह साधु महाराजके पास बैठ गया। साधु कुछ उपदेश देने लगे। कुछ देरमे शत्रुकी सेनाके शब्द सुनाई पडे तो राजा कुछ सावधान-सा हो गया, कुछ देरमे और भी शत्रुके शब्द सुनाई दिए तो राजाने अपनी तलवार पर हाथ रखा, कुछ और शत्रुके शब्द सुनाई दिए तो राजाको और भी अधिक रोष उत्पन्न हुआ, वीरताकी मुद्रा उत्पन्न हुई, तो साधुने पूछा—राजन् ! यह क्या कर रहे हो ? तो राजा बोला—महाराज, मेरे निकट ज्यो ज्यो शत्रु बढता आ रहा है त्यों त्यो मेरा रोष और भी बढता जा रहा है। तो साधु बोले—राजन् ठीक ही कर रहे हो। शत्रुका नाश करना ही चाहिए, पर सबसे पहिले अपने अति निकट बैठे हुए उस शत्रुका नाश करो जो आपके अन्दर किसीको शत्रु माननेका भाव बना रहा है। राजाने कुछ विचार किया और आत्मचितन करके वही विरक्त हो गया। अब तो शत्रु सेना उसके पास आती है तो उस विरक्त ‍्तवो नमस्कार करके वापिस लौट जाती है। तो ये बाह्यपदार्थ हमारे सुख दु खके कारण होते है, सो मात्र वे निमित्त है, पर हमारी परिणतिमे वास्तविक उपादान कारण हम ही है। क्रोध, मान, माया, लोभादिक पर्याये होना, या नर नारकादिक पर्याये होना, उनका कारण मै हू। और पुद्गलमे शरीरकी रचना वने या स्कधोकी रचना बने उनका कारण उनका निज-निज द्रव्य है। कालद्रव्य तो एक बहिरङ्ग निमित्त कारण है। उपादान कारण तो प्रत्येक पदार्थके परिरामनमे उनका ही स्वय स्वयंका द्रव्य है, सो वह काल अपने गुणोके द्वारा अन्य द्रव्यको नही परिरामाता, परद्रव्यके गुणोको अपनेमे नही परिणमाता, किन्तु उनमे परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्वध है। हाँ कालद्रव्यमे यह गुण है

कि पदार्थोंके परिणमनमे वह कारण होता है ।

अनेक कारणोंके प्रसङ्गमें विभाव क्लेश होनेपर भी अपने क्लेशमें अपने अपराधके अन्वेषणका विवेक—देखिये परिणमनमात्रमे कारण है कालद्रव्य, पर परिणमन विशेष होने मे अन्य पदार्थ भी निमित्त होते है । जैसे हम आप रागद्वेपमे चलते है तो उसमे साधारण कारण तो कालद्रव्य है, लेकिन चेतन अचेतन पदार्थ, ये परिग्रह उसमे वहिरङ्ग आश्रयभूत है, और कर्मोका उदय अन्तरङ्ग निमित्त कारण है । तो यो अनेक कारणोके प्रसगमे उस प्रकारके परिणमने की शक्ति रखने वाला पदार्थ स्वय उस रूप परिणम जाता है । इस सम्बन्धमे हमे यह शिक्षा लेना है कि हम समझे जव कभी भी हम दु खी होते है तो उस दु खमे हमारा ही अपराध कारण है । हम दूसरेके अपराधसे दु खी नही होते, जैसे कि लोग सोचने लगते कि अमुकने इस तरहका काम नही किया, मुझे वडा दु खी कर दिया, यो जितने व्यवहार चलते है, मुझे ये बडा हैरान करते है । अरे कोई दूसरा पदार्थ मेरी हैरानी मे कारण नही है, हमारा ही अपराध हमारी हैरानीमे कारण है । हमारा अपराध क्या है ? हम रागद्वेष मोह करते है, यही हमारा अपराध है । अपराधका अर्थ ही यह है कि जहाँ आत्मसाधना न हो । हम राग करते है इससे दु खी होते है । राग अपराधको छोड दे तो हमारा दु ख दूर हो जाय । दूसरी बात यह है कि ऐसा कर्मोदय आया क्यो हम पर कि जिससे हमको दु खी होना पड रहा ? तो पूर्वकालमे हमने ऐसा ही रागद्वेप किया था जिसका निमित्त पाकर ऐसा कर्मवध हुआ था कि जिससे आज दु खी होना पड रहा । तो मेरे दु खमे अपराध कारण है, अन्य पदार्थ मेरा ही मेरे दु खी होनेमे कारण नही है ।

सत्त्वविनिश्चय—हम क्या है और जगतके ये दिखने वाले पदार्थ क्या है तथा इनका बर्ताव किस प्रकारसे है याने ये किस तरह परिणमन किया करते है, इन सब विधियो का यथार्थ ज्ञान हो जाय तो उससे जो ज्ञानप्रकाश होता है उससे आत्माकी उन्नति होती है, इसीलिए लोकानुप्रेक्षामे सब द्रव्योका वर्णन किया गया है, और इस समय कालद्रव्यके प्रकरणमे परिणमन विधि बतायी जा रही है । सबसे पहिले तो यह मानना ही होगा कि यह सब पदार्थ है, इनका सत्त्व है । कोई दार्शनिक तो ऐसे है कि जो यह कहते है कि पदार्थ कुछ है ही नही, सब शून्य है, जो कुछ दिखता है यह मिथ्या है । कल्पनावश सोच लिया है, जगतमे कही कुछ नही है । उनका सिद्धान्त इस बात पर आधारित हो सकता है- जैसे जो दिखता है यह सब माया स्वरूप है, इसमे परमार्थतत्त्व नही है, जो आकार है, जो आँखो दिखते है मनुष्य पशुपक्षी आदिक रूप ये सब मायारूप है, परमार्थ वस्तु नही है, इसी सकलमे रहने वाले नही है । इस पर जब विचार करते है कि इसमे परमार्थवस्तु है क्या ? जो दिखता है उसमे परमार्थ तो है एक-एक परमाणु, जो द्रव्य है, जिसका विनाश

नही होता, इन सकलोका विनाश हो जाता है। तो जब ये सकल आकार यो नही रहते तो अवकाश मिला कहनेका कि यह सब झूठ है? जब और भीतर चले तो परमाणुके निरश स्वरूपका या जीवके चैतन्यस्वरूप का जब वर्णन किया जाता है तो वह इतना सूक्ष्म वर्णन है कि जिसको सुनकर सहसा यह लग सकता है कि वात है केवल, कुछ चीज नही है, जो विकल्पमे आये, व्यवहारमे आये, तो ऐसे धीरे धीरे चलकर एक इस दार्शनिकको ऐसा लगा कि कुछ नही है, शून्य है, लेकिन शून्य नही है। कुछ भी न हो तो उसका माया रूप भी नही बन सकता। जो पर्याय है, विनश्वर है। जो बात भी हो, यदि मूलमे कुछ सत नही है तो उसका यह मायारूप भी नही बनता।

पदार्थोंके विपरिणमनकी विधि——सब है, हम है, शरीर है, अन्य चीज हैं। अब इसकी विधि क्या है और परिणमते किस तरह है सो यह मानना ही होगा कि प्रत्येक पदार्थमे परिणमने की शक्ति है क्योंकि परिणमते तो वे ही पदार्थ है। जैसे जीव क्रोध करता, मान करता तो भले ही कर्मके उदयमे करता है लेकिन करता तो जीव ही है ना। परिणमना तो जीवको ही पड रहा है ना? तो जीवमे उस प्रकारके परिणमने की शक्ति है, न हो तो परिणमन न होगा। तो सभी पदार्थोमे यह मानना चाहिए कि उनमे परिणमने की शक्ति है। नई अवस्था उसके स्वयंमे बनती है, पुरानी अवस्था उनमे विलीन हो जाती है और वे परिणमने वाले पदार्थ सदा बने रहते है। चाहे किसी पर्यायरूपमे चले, पर रहेंगे शाश्वत, क्योकि सत् है। जो सत् है वह कभी मूलसे नष्ट नही होता। उसकी अवस्थाये वदलती है। तो मै भी सत् हू और मै कभी नष्ट होने वाला नही हू, अपनी अवस्थायें बदलता रहता हू। पदार्थमे यह स्वभाव ही पडा है कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य हुआ करे। अब विशेष रूपका जो उत्पाद है, जैसे रागद्वेष हुआ तो इस विशेषतामे कारण अन्य कुछ भी है, अन्य निमित्तके विना ये समस्याये नही आ सकती। तो प्रत्येक पदार्थ स्वय परिणमनकी शक्ति रखता है और उन सब पदार्थोमे जीव और पुद्गल ये दो जातिके पदार्थ ऐसे है जो विकाररूप परिणमने की शक्ति रखते है। इनमे विभाव शक्ति है। जैसे आकाशद्रव्य है वह क्या विकार करेगा अपनेमे? आकाशमे क्या बिगाड़ होगा? कालद्रव्य है। कालमे स्वयमे क्या बिगाड होगा? यह तो उपचारसे कहते है कि समय खराब हो गया, पर समय अच्छा व खराब नही हुआ करता। जिस समयमे पदार्थ बुरे परिणमते है, अवनति होती है, अधर्म छा जाता है उसको कहते है कि काल खराब आ गया। आजकल बडी गडबडिया चल रही है तो ये गडबडिया समयमे नही है, किन्तु चीजोमे है। प्रत्येक पदार्थ अपने परिणमनकी शक्ति रखता है, जब वह विकार रूप बनता है तो इसके विकार परिणमनमे बाह्य चीजे कारण बन जाती है। जैसे जीवका रागद्वेष बनता है तो रागद्वेष प्रकृतिका उदय तो है।

निमित्त कारण और बाहरी पदार्थोंका संग है आश्रयभूत कारण और परिणमनेकी शक्ति इस जीवमे स्वयं है, यह है उपादान कारण। तो जब उपादान कारण योग्य है, काल लब्धि प्राप्त है, बहिरङ्ग कारण मौजूद है तब सब बाते समर्थ है, और इसे कहते है समर्थ कारण। इस स्थितिमे उस पदार्थको उस प्रकार परिणमना पडता है। उसके परिणमन को रोकनेमे कोई समर्थ नही। जब इस तरह हम प्रत्येक पदार्थका स्वरूप जानते है, परिणमन समझते है तो बतलाओ कि कौनसी गुन्जाइश है ऐसी जिससे यह कहा जाय कि इसका यह पदार्थ है।

मोहवश क्लेशका लगाव—मनुष्य मोहसे ही तो दुःखी है। है बिल्कुल भिन्न सब पदार्थ। मेरे आत्माका तो केवल मै ही आत्मा हू, अन्य कुछ नही है मुझमे, लेकिन मान यह रहे कि यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, यह मेरी इतने लोगोमे इज्जत है। तो ऐसा जो बाह्य पदार्थोमे ममत्व है, राग है, यह है अपनी कल्पना। तो अपनी कल्पनासे हम दुःखी हो रहे है, बाहरी चीजोसे दुःखी नही हुआ करते। इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग ये वडे बिढगे दुःख है और प्रायः करके इष्ट वियोग और अनिष्ट सयोगका क्लेश पुण्यवान पुरुषोको ज्यादह हुआ करता है, क्योकि ठाठ उनको ही मिलते है, समागम उनको ही मिलते है, अब समागम मिले तो हर्ष किया। अब यह न्यायकी बात है कि उन समागमोका वियोग होने पर दुःखी होना पडेगा। जिन्हे वियोगका दुःख इष्ट न हो उन्हे चाहिए कि प्राप्त समागमोमे हर्ष न माने, बल्कि अपना ज्ञान बनाये। यदि समागमो मे हर्ष मानते है तो यह नियम है कि वियोगमे उसको उस ही ढगका उतने ही गुना दुःख होगा। तो ये बाह्य पदार्थ जब मेरे कुछ है नही तो उनको अपनाना यह तो अधकार है, अज्ञान है और इस अज्ञानसे हम आप दुःखी है। हम आपको दुःखी करने वाला यहाँ कोई दूसरा पदार्थ नहीं है।

अपने स्वहितकी कामना—अब कुछ अपने आप पर अपनी बात घटित करिये। सभी लोग अपनी-अपनी ऐसी स्थितियाँ समझ रहे है कि कैसे रागसे छूटा जाय? इतना वैभव है, ऐसा घर है, लोगोमे इज्जत है, रिश्तेदार, मित्रजन, समाजके लोग साधर्मीजन सभी लोग हमारा परिचय पाये हुए है। ऐसी स्थितिमे इन सबसे कैसे विरक्त हुआ जाय? तो भाई ज्ञानप्रकाश जिनके जगता है उनके लिए सारा परिचय अपरिचय बन जाता है। जिसे समझा कि लोग मुझे जानते है, यहाँ मेरी बडी इज्जत है, हमारे ऐसा वैभव है, हमारे ऐसे साधन है आदि, वे सब ज्ञानप्रकाशके होने पर मिथ्या बाते प्रतीत होती है। मेरा यहाँ अन्य कुछ नही है, यह मै आनन्दको लिये हुए हू और अनन्तकाल तक यही बात रहेगी, जब ऐसा बोध करता है जीव तो उसके लिए ये सब परिचय अपरिचय हो

हुए परमात्मस्वरूपका दर्शन हो, इसके सरल उपाय दो है—जिन विधियोको करके हम आप इस जीवनमे उस परमात्मतत्त्वके दर्शन कर सकते है। दर्शन आँखोसे न होगा। दर्शनके मायने अनुभव। वे उपाय क्या है? उन उपायोके करनेसे पहिले इतना ज्ञान तो कर लेना जरूरी होगा कि इस मेरे आत्माका दुनियामे कोई साथी नही है। यदि रुचिपूर्वक इसका ज्ञान किया जा रहा है तो विदित होगा कि कोई भी मेरा साथी नही है। जितने यहाँ परिचित दिखते है वे सब स्वार्थके साथी है। मित्र हो, रिश्तेदार हो, परिजन हो, जहाँ जिसका स्वार्थ है वहाँ वे कुटुम्बी या रिश्तेदार उसे मानते है और जहाँ स्वार्थमे विघात होता है उसी समय वह इस दृष्टिसे देखने लगता कि जैसी दृष्टिसे गैरोको भी नही देखता। हर एक घटनामे यही बात जान ले कि आत्माका साथी कोई दूसरा नही है। जब कोई यहाँ मेरा साथी नही और मुझ आत्माको सब कुछ अकेले ही भोगना पडता है तो ऐसा साहस जगाये, अपने दिलको ऐसा आराममे ले जाये कि ऐसा अन्त यत्न करे कि कोई भी पदार्थ दिलमे न आ पाये। इसपर तो अपना कुछ वश चल सकता है। अगर किसीका ख्याल आता है तो झट यह ध्यानमे आये कि यह सब तो व्यर्थका विकल्प है, ये कोई भी मेरे साथी नही है। यों आने वाले उस ख्यालको चित्तसे हटा देना होगा। उस समय यह ध्यानमे लाये कि ये व्यर्थके विकल्प तो मेरी बरबादीके ही कारण है, ससारमे जन्म मरणकी परम्परा बढाने मे कारण है, किसी भी परपदार्थको मैं अपने चित्तमे न बसाऊँ, ऐसा अन्त प्रयत्न करना होगा। यद्यपि इस प्रयत्नके करनेमे कुछ कठिनाईसी लग रही होगी, लेकिन इसे कोई करने पर उतारू हो जाय तो इस उपायको वह कर सकता है। लोग अपने चित्तमे बसाये रहते है, अरे कभी किसी क्षण ऐसा ध्यान तो बनाये कि अब तो किसी भी परपदार्थको मुझे अपने चित्तमे नही बसाना है। यदि किसीने ऐसा अन्त पुरुषार्थ करके सर्व प्रकारके बाह्य विकल्पो को कुछ क्षणके लिए अपने चित्तसे हटा दिया तो वह एक बहुत बडी बात है।

सत्यके आग्रहके उपायसे आत्मसाम्राज्यके अधिकारित्वका निर्णय—एक तो भैया! परसे असहयोगका अन्त प्रयत्न होना चाहिए, और दूसरा प्रयत्न जो बतावेगे वह भी इसी का सहयोगी है, वे एक दूसरेके परस्पर सहयोगी है। दूसरी बात यह है कि अपने ज्ञानको अपने भीतर निरखनेके लिए पहुचाइये। जिस ज्ञानके द्वारा हम बाहरकी चीजे जाननेका यत्न करते है। क्या है, पदार्थ किसी ढगका है, जिसे बाहरमे हम जाननेका प्रयत्न करते है, अब वह यत्न न करके कुछ भीतर जाननेका यत्न करे कि मै हू क्या? अब उसे सोचिए केवलज्ञान ज्ञान, केवलजानन, ज्ञानज्योति और जाननमात्र है, बस वही मै हू। वह जानन क्या? प्रतिभास। केवल जाननमात्र। अभ्यासकी आवश्यकता है, यह सब बात एक दिनमे

नही होती । रोज-रोज इसका अभ्यास हो तो कोई समय ऐसा आयगा कि हम अपने उस जाननस्वरूपको अपने ज्ञानमे ले सकेगे । मै ज्ञानमय पदार्थ हूँ, केवल जाननमात्र हू, अन्य रूप मै नही हू, बस एक यही धुन बने । अग्रवाल, जायसवाल, खण्डेलवाल, मनुष्य, स्त्री, पुरुष आदिक ये मै नही । मै तो एक वह सत् हू जो चैतन्यस्वरूप है, केवल चैतन्यप्रकाशमात्र है । देखिये उस परमार्थकी बात कही जा रही है, अन्य सब बातोका वहाँ निषेध करना है । मै सिर्फ ज्ञानमात्र हू, जाननरूप हू बस यही धुन वनाये और अपनेको जाननरूपमे निरखनेका भीतरमे यत्न बनाये, ये दो उपाय ऐसे सरल है कि आप मनमे ठान ले तो अभीसे करना शुरू कर सकते है । लोकमे कितने द्रव्य है, कैसी रचना है, ये बातें नही बतायी जा रही है, उनके अध्ययनमे तो वडा समय लगता है, अगर थोडासा ही विवेक हो और इन दोनो उपायोको कर ले तो अपनेमे अपनी अनुभूतिको पा सकते है ।

उपाय द्वारा स्वानुभूतिकी साध्यता—पशुवोमे हाथी, शेर, नेवला, बदर आदि भी जब सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेते है, स्वानुभूति कर लेते है, तो हम आप विशिष्ट मन वाले स्वानुभूति न कर सकेंगे क्या ? स्वानुभूति हुए विना सम्यक्त्व नही होता । जव भी सम्यक्त्व होता है स्वानुभूतिपूर्वक होता है । सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका समय स्वानुभवको लिए हुए रहता है, इसके बादमे फिर स्वकी अनुभूति रहे या न रहे, सम्यक्त्व रहेगा, प्रतीति रहेगी । तो जब इन पशु पक्षियोको भी स्वानुभूति हो जाती है, जिन्होने न कोई अक्षर ज्ञान किया, न कोई पदवाक्य जानते है, कोई भाषा इनकी नही है, न कभी ग्रन्थोका अध्ययन करते है, वे बेचारे कुछ वोल भी नही सकते, जिह्वा भी उनकी ऐसी नही है कि जिससे अक्षरात्मक भाषा बन सके, फिर भी मन है, भीतर ही भीतर ज्ञान है, वे पशुपक्षी विवेक कर सकते और स्वानुभूति कर सकते है, तब मनुष्यजन स्वकी अनुभूति न कर सके यह बात क्यो सोची जाय ? हम आपके स्वानुभव हो सकता है, उसके उपायमे लगे । अन्य उपायोमे तो जीवकी वरबादी ही है, क्योकि इष्ट समागम मिल गया जो चाहता है वे पदार्थ मिल गए, उनमे फिर तृष्णा बढेगी, उन प्राप्त समागमोका फिर बिछोह होगा, विलगाव होगा तो उसमे दुख माना जायगा । तो यहाँका संयोग भी दुखका कारण हैं और वियोग भी दुखका कारण है । इन बाह्य पदार्थोका ख्याल ही अपनेको दुखका कारण है । इन वाह्य पदार्थोमे अपनेको रमाना प्रकट क्लेश है । अत इनमे रमना योग्य नही । इन दोनो उपायोको अगर सुसस्कृत भाषामे कहा जाय तो यो कहा जायगा—असहयोग और सत्याग्रह, समस्त बाह्य पदार्थोका तो असहयोग हो और अपने आपका जो चेतन्य स्वरूप है, अपनी ही सत्ताके कारण जो अपनेमे स्वरूप है उसका किया आग्रह मै ज्ञानरूप ही हू । तो इन दो उपायोसे आत्माकी अनुभूति प्राप्त होगी और ऐसा उपाय प्राप्त होगा

कि जिस आनन्दमे वह सामर्थ्य है कि भव-भवके बाँधे हुए कर्मोको दूर किया जा सकता है।

पुण्य और पापके फलोंसे उपेक्षा करके स्वानुभूतिका लाभ लेनेका सन्देश—पुण्य और पाप ये दो ही इस जीवकी अशान्तिके हेतु है, क्योकि इनमे शान्तिका माद्दा नही पडा हुआ है। पापका उदय भी देखिये किसी मुनिके ऊपर उपसर्ग आ रहे है, शेर भख रहे, स्यालिनी भख रहे, शत्रु छेद रहे, इसमे उनका पापोदय ही तो कहा जायगा। ये कोई पुण्योदयके काम तो नही है, लेकिन ऐसे पापके उदय होने पर भी यदि वह मुनि अपने धर्मभाव को सभाले हुए है तो वह कैवल्य प्राप्त कर लेता है और पुण्यके समागम—कितने ही आराम के साधन मिले हो जैसे अनेक चक्रवर्ती उनके विषयके साधनोकी बात क्या कहना। कितना ही वैभव था उनके पास, कितनी बडी इज्जत थी, जिनका वदन बडे-बडे राजा लोग करते थे, जिनके पास हजारो रानियाँ थी, सब प्रकारके सुखके (मौजके) साधन थे, लेकिन अन्तमे देखिये उन चक्रवर्तियोकी क्या गति हुई ? मरकर नरक गये। तो पुण्य पाप फलोकी उपेक्षा करके एक भीतरमे अपने ज्ञानस्वरूपका ज्ञान बनाये, उसका आग्रह करे बाह्य वस्तुओको अपने चित्तसे हटाये तो वहाँ स्वानुभूति उत्पन्न होगी और उससे ही शान्ति प्राप्त होगी। शान्तिका उपाय सिवाय आत्मप्रबोधके अन्य कुछ हो ही नही सकता, अत स्वाध्याय, अध्ययन, मनन, तत्त्वचर्चा आदि पौरुष करके आत्मतत्त्वका परिज्ञान करे और आत्मतत्त्व की दृष्टि दृढ करके स्वानुभूतिका परमलाभ ले।

सव्वाण दव्वाण जो उवयारो हवेइ अण्णोण्ण।
सो चिय कारण-भावो हवदि हु सहयारि-भावेण ॥२१८॥

अन्योन्य उपकारमें अन्यकी बाह्य सहकारीकारणता— जगत्मे यह देखा जा रहा है कि एक द्रव्यके निमित्तसे दूसरे द्रव्यके काम बन जाते है, तो यहाँ जो समस्त द्रव्योका परस्पर उपकार होता है सो वह सहकारी भावसे कारण भाव है उपादानसे नही। वस्तु के निज स्वरूपपर दृष्टि दे तब तो वहा सिर्फ इतना ही विदित होगा कि वस्तु है और उसमे परिणमनेका स्वभाव है सो अपनी योग्यतासे अपनेमे परिणमन करता चला जाता है। कोई इस बीच यदि ऐसा प्रश्न कर दे तो फिर दूसरे पदार्थकी कोई बात न रही तो इस दृष्टिमे जबकि केवल एक वस्तु पर ही दृष्टि रखकर कहा जा रहा और कोई जरा छेड दे तो उस समयकी दृष्टिकी धाराके कारण यह उत्तर होगा कि उस समय बाहरके जो द्रव्योका सम्बध है वह निमित्त मात्र है। अब दूसरी दृष्टिमे आकर देखे कि किस तरहसे ये सब कारण कार्य विधान चल रहे है, तो यह सब प्रतिनियत व्यवस्था विदित होती है। केवल इतने मात्रसे उत्तर नही बनता कि परिणमते हुए पदार्थके सामने जो चीज हो उसे निमित्तमात्र कहते है। केवल इस विधिसे बात न बनेगी, क्योकि यहाँ प्रतिनियत व्यवस्था देखी जा रही

है ऐसे ही पदार्थ निमित्त हो तब यहाँ ऐसा ही कार्य होता है। यदि इसमे अव्यवस्था होती कि कभी उस पदार्थके कारण और तरहका कार्य बने कभी और तरहका कार्य बने तब तो यह कहा जाता कि जो सामने था उसे निमित्त कह दे, अथवा इतना भी कहनेकी जरूरत क्या है? लेकिन जब प्रतिनियत व्यवस्था लोकमे देखी जा रही है तो कारण और कार्य का सयुक्तिक निर्णय करना पडेगा और वह सयुक्तिक निर्णय यही है कि परिणमने वाले पदार्थकी जैसी शक्ति है उस योग्यताके अनुसार अनुकूल बाह्य निमित्त मिल जाये तो वहाँ परिणमन हो जाता है। यह बात हर जगह घटाते जाइये।

कारणकार्यविधिके कुछ उदाहरण—गुरुने शिष्यका उपकार किया, उपदेश दिया, और शिष्यमे ज्ञान उत्पन्न करनेमे वह कारण बना, तो वहाँ जो ज्ञान बना ऐसी जो शिष्य मे योग्यता थी उस तरहका ज्ञानप्रकाश करनेकी पात्रता थी तो अन्तरङ्ग कारण तो शिष्य का ही सामर्थ्य रहा। उसके ही कारण उसका ज्ञान बना, पर बहिरङ्ग कारण गुरुका उपदेश आदिक प्रयत्न रहा, क्योकि वहाँ विकासकी योग्यता तो उसके थी और गुरुने समझाया तो उस प्रसंगमे आकर उसने अपनी सामर्थ्यका विकास किया। तो यह प्रतिनियत व्यवस्था है। जैसे घडा बना मिट्टीमे ही, उस मिट्टीमे योग्यता थी तो योग्य मिट्टी, कुम्हारका प्रयत्न और उस समय जल आदिकका संयोग या उन साधनोके बीचका प्रसग पाकर मिट्टीमे घडा पर्याय बनी। अब उस मिट्टीमे घडा बननेका सामर्थ्य था तब ही तो बना। रेतमे अथवा अन्य पथरीली मिट्टीमे तो घडा नही बन जाता, जिस मिट्टीमे घडा बनने की योग्यता थी उसीमे बना। तो अन्तरङ्ग कारण तो उस मिट्टीकी योग्यता कही जायगी, जिन-जिन प्रसंगो मे बना, वे प्रसग प्रतिनियत व्यवस्था रखते है। कुम्हार प्रतिदिन नि शंक होकर उसी विधिसे घडा बनाता है, इससे सिद्ध है कि वे सब बहिरङ्ग कारण है और नियमित है तो वह मिट्टी अपनी योग्यतासे घटरूप बन गई। सर्वत्र ऐसा ही कार्य कारण विधान है। जीवमे जो राग-द्वेषादिक भाव होते है, जितने भी विकल्प होते है सो इस जीवमे उन विकल्पोके करनेका सामर्थ्य है तभी तो विकल्प हुए।

ये रागद्वेष मोह विकल्प आदि सभी प्रकारके इन विभावोको रच सकनेका इस जीवमे सामर्थ्य है। तो अन्तरङ्ग कारण तो जीवका उपादान कहलाया। पर कर्मोदयके बिना ये बाते नही होती। उस प्रकारका कर्मोदय हो तो जीवमे राग होता, द्वेष होता। तो वहाँ कर्मोदय निमित्त कारण हुआ। और, कर्मोदय निमित्त है, पर कर्मके फलको पानेके लिए बाह्य नोकर्म भी हुआ करते है। अगर बाह्य नोकर्म बिल्कुल न रहे तो वह उदय अन्य रूपो मे फल देकर चला जाता है। तो इसका नोकर्म है बाह्यपदार्थ अर्थात् बहिरंग सहकारी कारण है वे। इसी तरह मित्र, स्त्री, पुत्रादिक, वैभवादिक चेतन अचेतन पदार्थ बाह्य आश्रयभूत कारण है। हम लोगोके जो राग हुआ करते है उनमे उपादान कारण तो हम

खुद है, निमित्त कारण कर्मका उदय है और आश्रयभूत कारण वहिरग सहकारी कारणमात्र है ये चेतन अचेतन पदार्थ ।

अपने क्लेशोंमें अपने अपराधकी निरख—उक्त समस्त विवेचनोसे यह निर्णय करना कि ये समस्त रागादिक विभाव हमारे दु खके कारण है, इन दु.खोमे अपराध तो हमारा ही मुख्य है । हम चेतते नही, असावधान है, या पहिलेसे हमने ऐसा ही खोटा सस्कार रचा है कि हमे दु खी होना पडता है । बडेसे बडे पुण्यवान जीव भी रागद्वेषसे दु खी हुए । श्री रामचन्द्र जी, जिनकी अलौकिक महिमा थी, जो आज भी पुरुषोके द्वारा स्मरण किए जाते है उनको भी कर्मका उदय आनेपर सीताका वियोग, लक्ष्मणका वियोग आदि अनेक घटनाये जीवनमे आयी । तो बडे-बडे पुरुषोके भी ये स्थितियाँ बन जाती है । तव यहाँके इन प्रसगो मे सुखकी क्या आशा करना ? ये सब सुख स्वप्नवत् विदित हो जाते है जब काल गुजरता है । जैसे अबसे पहिले वर्षोके ही समागम विषय भोग, सुख, मौज ये सब आज स्वप्नवत् लग रहे है ना । क्या था, कुछ न था, भ्रम था । तो इसी तरह समझिये कि आज जो कुछ समागम मिल रहे है वे सब असार है, स्वप्नवत् है । भीतरमे आत्माके ऐसा ज्ञानप्रकाश है कि यदि वह अपने भीतर सम्हाल करे और ज्ञानभावका स्पर्श कर ले, अनुभव कर ले तो इस जीवको अलौकिक अद्भुत आनन्द प्राप्त होता है । वाहरमे इस जीवका क्या रखा है ? सब धोखा है, छल है, भ्रम, वरबादी है । तो ये जितने विभाव होते है, ये हमारे बाह्य कारणोके बीच होते है तब तो ये मायाजाल है, भ्रम है, विनश्वर है, असार है ।

निर्विकल्प परिणमनका आदर—केवल कालद्रव्यका निमित्त पाकर अन्य कोई कारण न आये, अपने आपमे जो स्वानुभवका आनन्द प्रकट होता है वही सारभूत है । लोग तो विशेपके लिए ललचाते है, यह पुरुष विशेष है, यह काम विशेष हुआ । विशेष विशेषकी तृष्णा रखते है, पर ऋषि सतजन कहते है कि उस विशेषका व्यामोह छोडो, अपने आपका जो अपनी ज्ञानज्योतिका अनुभव है, जो इन विकल्पोकी अपेक्षासे सामान्यस्वरूप है उसका आदर करो । अज्ञानी जनोको इस आत्मस्वरूपका परिचय नही है और इसी कारण जो मुद्रासहित पदार्थ है उनमे ही इसकी रुचि बनती है । यह अन्तस्तत्त्व कैसे आये अनुभवमे, यह शब्दमय तो है नही कानोसे सुन लिया जाय, कुछ भीतर आवाज समझ ली जाय कि कैसा आत्मा है । आत्माका रूप तो है नही जो आँखोसे परख लिया जाय कि आत्माका काला, पीला आदिक कैसा रूप है ? आत्मा गधवान पदार्थ भी नही है जो नासिका द्वारा जाना जा सके । आत्मामे रस भी नही है जो रसनाइन्द्रिय द्वारा परखा जा सके, और स्पर्शइन्द्रियके द्वारा भी यह आत्मा छूनेमे नही आता । आत्मामे स्निग्ध रूक्ष आदिक भी नही है । तो इन्द्रियाँ असफल है इस आत्मतत्त्वके समझनेमे । मन एक भीतरी इन्द्रिय है तो यह मन

बहुत कुछ आत्मतत्त्वके समझनेमे सफल तो होता है, पर जिसको कहा गया है आत्माका साक्षात् दर्शन अनुभव, स्वानुभव, उस समय इस मनका व्यापार नही है। यह मन इस आत्मानुभूतिके अर्थ बहुत कुछ काम कर लेता है, पर ऐन टाइम जब कि आत्माका अनुभव हो रहा हो उस समय यह मन छुट्टी पा लेता है, एक अद्भुत अनुभव है आत्माके ज्ञानस्वरूपका अनुभव करना, मनने बहुत कुछ कार्य किया, स्वपर विवेक बनाया। इस भावमनके द्वारा हमने वस्तुस्वरूपको समझा, जाना, और इसमे तर्क वितर्क भी किया, स्वलक्षणकी पहिचान भी किया, मगर जिसे कहते है ज्ञानानुभव, ज्ञानमे केवल ज्ञानस्वरूपका समा जाना यह है निर्विकल्प अनुभव। मनका काम विकल्प करनेका है, उस समय मन किस स्थितिमे आ जाता है और किस स्थितिमे रहकर वह अपना अस्तित्व बनाये रहता है, वह एक बडे रहस्यकी चीज है। वहाँ स्वानुभूतिके समयमे आत्माको केवल उस ज्ञानके सत्यस्वरूपका परिचय हो रहा है। तो ऐसे परिणमनके अनुभवनमे कालद्रव्य निमित्त हो रहा है, और यह बात तो है किसी थोडे क्षणकी बात। सिद्ध भगवान जो शाश्वत शुद्ध है, उनका जो परिणमन है वह धर्मादिक द्रव्योमे जैसे कालमात्र कारण है इसी प्रकार वहाँ कालमात्र कारण है। तो समस्त द्रव्योमे परस्पर जो कार्य कारणभाव है वह सहकारी कारणपनेसे है, दूसरा कही उपादान कारण नही बन जाया करता है। यहाँ परखना है अपनेको यह कि मुझे अपने आपका निर्णय करना चाहिए और यहाँ ही कोई काम करना है जिससे कि हमारा उद्धार होगा, शान्ति प्राप्त होगी। तो इस प्रसंगमे बताया जा रहा कि लौकिक अलौकिक आदि जो सभी तरहके कार्य हो रहे है उनमे अन्य द्रव्यका परस्पर सहकारी कारणभाव है।

कालाइ–लद्धि–जुत्ता णाणा–सत्तीहि संजुदा अत्था।
परिणममाणा हि सय ण सक्कदे को वि वारेदु ॥२१९॥

समर्थ कारणके होनेपर कार्यकी अवश्यंभाविता—अब इस गाथामे बताते है कि यह कारण कार्य विधान प्रतिनियत है कि जिसके बलपर ये समस्त कार्य हो रहे है। कार्य होनेमे एक तो काललब्धि चाहिए। काललब्धि कोई अलग वस्तु नही। जिस कालमे वे समस्त कारण जुट जाते है, जिसे समर्थ कारण कहते हैं तो उसको काललब्धि कहते है। अर्थात् अतरङ्ग कारण सही हो, बाह्य निमित्त कारण मिले और जितने सहकारी कारण चाहिएँ वे उपलब्ध हो तो ऐसी स्थितिमे कार्य नियमसे होता है, इसी बातको इस विधिमे बताया जा रहा है। समर्थ कारण होने पर कार्य होता ही है। उसे इन्द्र, चक्रवर्ती, धरणेन्द्र आदिक कोई मेटनेमे समर्थ नही। जैसे चावलोमे पकनेकी शक्ति है, ऐसे ही चावल, जो पक सकते है उन चावलोको जलते हुए चूल्हे पर रखी हुई बटलोही मे पानी भरकर रख दिया,

गया, नीचे अग्नि जल रही है, उसको रोकनेका प्रतिबधक कारण भी कुछ नही है तो ऐसी स्थितिमे अब उन चावलोको पकनेसे रोक कौन सकता है ? इसी श्रद्धाके बलपर तो प्रतिदिन लोग चावल बटलोहीमे भरकर चूल्हे पर रख देते है और नीचे आग जला देते है। उनके कानमे कभी ऐसा विचार नही आता कि आज भात बन भी पायेगा या नही, क्योकि उन को पूर्ण श्रद्धा रहती है कि ये चावल पक अवश्य जायेगे। हॉ यदि नीचे अग्नि न जलाई जाय या उस बटलोहीमे चावलकी जगह पर ककड भर दिये जाये तो वे न पक सकेगे। पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चारोके होने पर, जिन बहिरङ्ग सहकारी कारणके होने पर योग्य चावल पक जाया करते है, वे सब हो तो वहॉ वह कार्य होता है। वहॉ उसे रोकनेमे कोई समर्थ नही है। कोई यदि यह कहे कि बीचमे ही बटलोही उठा लें तो कैसे वे चावल पक सकेगे ? तो भाई बता तो रहे है कि सर्व कारण मिले हुए हो तो वहाँ कार्य को रोकनेमे कोई समर्थ नही। हॉ यदि सभी योग्य कारण न मिले तो उस कार्यका होना रुक जायेगा। तो जैसे सर्व कारणोके बीचमे योग्य परिणाम सकने वाला उपादान अपनेमे परिणमन करता है यो ही हम आप सब रागी जीव, उदय भी कर्मोका चल रहा है और बहिरग कारण आश्रय भी जुट जाये तो वहॉ राग करते है।

धर्ममार्गमें प्रगति करनेका अपना कर्तव्य—कर्तव्य यह है कि अपना ज्ञान सही बनाये, क्षयोपशम भी तो ज्ञानावरणका चल रहा है। कुछ मदकषायकी बात भी तो चल रही है, वैसी योग्यता भी तो है। हम उस योग्यता को अपने कार्यमे ले, अध्ययन द्वारा ज्ञानोपयोग हमारा बने। हम यथार्थ बात समझे, मै मैं हू, बाकी परपदार्थ पर है, परसे मै अत्यन्त निराला हू, ऐसा दर्शन करनेका पौरुष बनाये तो यह रागभाव मद हो जायेगा, और कभी यह रागभाव सम्पूर्ण मेट सकनेमे समर्थ हो सकेगे। जैसे कोई चीटी जब किसी भीत पर चढती है तो बीसो बार चढ चढ कर गिरती रहती है, पर उसके अन्दर कुछ ऐसा ही आग्रह है कि उसी भीत पर वह फिर चढने लगती है और कभी वह चढ ही जाती है, तो इसी तरह हम इस ससारमे अनेक बार धर्मके लिए अपना उत्साह बनाते है, कुछ चढते है फिर गिरना पडता है, फिर कुछ चढते है फिर गिरना पडता है। पर इस चढनेके आग्रहमे (धर्मपालनके आग्रहमे) अपनी हिम्मत न तोडे, अपने धैर्यको न खोवे, कितनी ही असफलताये मिले, पर अपना कदम पीछे न हटाये, अपने धर्मपालनके कदमको आगे ही बढाते जाये तो निश्चय ही वह समय आयेगा कि हम पूर्णरूपेण धर्मपालनके पात्र बन जायेगे। वह धर्म है क्या चीज ? वह एक ज्ञानसाध्य बात है। यह एक दृढतासे समझनेकी बात है। और उसही ज्ञानबलसे एक ऐसा बल प्राप्त होता है कि हम बाहर बातोको पूर्णरूपेण सहन कर सकनेमे समर्थ हो सकते है। तो अनेक शक्तियोसे संयुक्त यह जीव उस उस प्रकार

की कारण सामग्रीमे अपना परिणमन बनाता है ।

विकासके समर्थ कारणोंमें विकासकी अवश्यंभाविता- एक भव्यत्वशक्ति भी है, उससे युक्त जो जीव है वे उस तरहका साधन बनाये तो अपनेमे उस धर्मभावको प्रकट कर सकते है । तो यह समझना चाहिए कि हम अपने अन्त पौरुषमे बढ सके, ऐसे साधन जुटाये, सत्संग अधिकाधिक समय तक रखे, जिस संगमे हम रहते है, योग्यता हममे नाना तरहके परिणमनकी है, हम उसका प्रभाव अपनेमे बना लेते है, सत्सग बहुत काल तक रहे, स्वाध्याय, ज्ञानोपयोग बहुत काल तक रहे, संस्कार इसीमे आत्माके बनते है, इसको सस्कृत किया जाय, उस ही ज्ञानधारामे इस उपयोगको लगाया जाय तो हमारा सस्कार ज्ञान और धर्म का बन सकेगा, और उसके बलपर हम अशान्तिसे दूर हो जायेंगे, शान्ति प्राप्त कर लेगे । कितना सुगम तो मार्ग है, केवल एक व्यामोहको हटाकर अपने आपमे भीतर परखनेकी बात है । हम यदि यह दृढ निर्णय करके रह जाये मेरा कही कुछ नही है, किसीसे कुछ प्रयोजन नही है, मै अपनेमे बसे हुए उस सहज परमात्मतत्त्वके दर्शन करके तृप्त रहूगा, अब मुझे अन्य बातोसे कुछ प्रयोजन नही है । मेरा केवल एक यही काम है, सर्वसे मै निरपेक्ष होकर मै एक इस सहज परमात्वके दर्शनमे ही आसक्त होऊँगा, ऐसा दृढ संकल्प करके भीतरमे इसकी धुन बनाये तो फिर ज्ञानानुभूतिके अनेक क्षण आयेगे, और इस ज्ञानानुभवमे ही वह बल है कि भव-भवके सञ्चित कर्मोंकी निर्जरा करनेमे कारण बनता है, इस पौरुषमे हमे आगे बढना चाहिये और आजके पाये हुए जो पुण्य समागम है श्रेष्ठ कुल, जैनदर्शनकी प्राप्ति और जानने समझनेकी योग्यता और यथावसर सत्सगका मिलना, ये सब हमारे सफल हो जायेगे जब कि हम अपने आपके उस सहज परमात्मतत्त्वके दर्शन करनेमे अपना उपयोग लगायेगे ।

जीवाण पुग्गलाण जे सुहुमा बादरा य पज्जाया ।
तीदाणागद भूदा सो ववहारो हवे कालो ॥२२०॥

व्यवहारकालका विश्लेषण— लोक भावनामे यह प्रकरण चल रहा है कालद्रव्यके स्वरूपका । कालद्रव्य क्या चीज है ? जो निश्चयकाल है, जो वास्तविक कालद्रव्य है वह अतिसूक्ष्म है और बताया गया है कि आकाशके, लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक-एक कालद्रव्य है । जैसे कि एक परमाणु कितना सूक्ष्म पदार्थ है । एक छोटासे छोटा ककड होवे तो उसमे भी अनन्त परमाणु पडे हुए है । अब बतलाओ जिसको हम छोटा नही कर सकते इतने सूक्ष्म कण है और उसमे भरे है अनन्त परमाणु । अब उसमे एक परमाणु कितना कहलाता है यह हम आप इन इन्द्रियो द्वारा न जान सकेगे । इसे तो सर्वज्ञदेव ही साक्षात्कार कर सकते है, तो जैसे एक परमाणु अतिसूक्ष्म है ऐसे ही एक प्रदेश भी सूक्ष्म है । एक सूई

की नोक किसी कागज पर गडा दी जाय तो उसमे जो गढा बन गया उसमे अनगिनते प्रदेश है। उनमे से कोई एक प्रदेश कितना छोटा होता होगा, आप स्वय इसका अदाज कर लीजिए। यो ही समझिये एक कालद्रव्य लोकाकाशके एक प्रदेश पर ही जो ठहरा हुआ है वह अतिसूक्ष्म है, अब उसके सम्बन्धमे जो हमको ज्ञानविशेष बनता है वह उसकी पर्यायके होने पर बनता है। उस कालद्रव्यकी पर्याय है एक समय। यह एक समय भी अतिसूक्ष्म है, एक सेकेण्डका करोडवा हिस्सा भी असख्याते समयोसे भरा हुआ है। उसमे से एक समय भी कितनी सूक्ष्म चीज है। पर वे समय जब बहुत हुए तो उनको हम व्यवहारकाल द्वारा परखा करते है। अब सेकेण्ड हुआ, मिनट हुआ, दिन हुआ, वर्ष हुआ आदि। अब व्यवहार कालमे हम फिर व्यवहार करते है कि भाई समय गुजरता है, तो ऐसे परिणमन होते ही है। तो वह है समय नामका वास्तविक एक पर्यायार्थिक दृष्टिकाल, व्यवहारकाल। किन्तु इस गाथामे इस ढगसे व्यवहारकालका वर्णन कर रहे है कि पदार्थोमे जो परिणमन होता है वह है व्यवहारकाल। जैसे हमने समझा कि १२ घटे व्यतीत हो गए, यह कैसे समझा कि सूर्य पूर्वसे चलकर पश्चिम तक पहुच गया। उदय हुआ था, निकला था तब दर्शन था, अब अस्त हो रहा है तो अतिम दर्शन हो रहा है, तो सूर्यका जो इतना काम हुआ उससे ही तो समझा कि १२ घंटे व्यतीत हो गए। यह व्यवहार काल जो कि कालद्रव्यके परिणमनसे सम्बधित है, वह है इस पुद्गलके परिणमनसे सम्बधित। तो इसका परिणमन व्यवहारकाल है इस ढगसे यह वर्णन किया जा रहा है। जीव और पुद्गल का जो सूक्ष्म और बादर पर्याय है, अतीत भविष्य वर्तमानरूप जो कुछ परिणमन है वह व्यवहारकाल कहा गया है।

दो पद्धतियोंमें व्यवहारकालका वर्णन—कालके सम्बधमे कुछ न कुछ कल्पनाये सभी को जगती है। समय गुजरे उसको काल कहते है, या जो बात होनेको होती है उसको काल कहते है अथवा कोई लोग वस्तुके विनाश करने वाले किसीको काल कहते है, और काल का वास्तविक अर्थ क्या है, काल क्या चीज है ? स्याद्वाद शासनमे इस प्रकार बताया है कि जैसे परमाणु पदार्थ होता है इसी प्रकार कालद्रव्य नामके भी पदार्थ होते है। ये अमूर्त है और लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक कालद्रव्य अवस्थित है। उन कालद्रव्योकी प्रतिक्षण परिणति होती है और वह परिणति समयके रूपमे है। तो समय है परमार्थपर्याय और कालद्रव्य है परमार्थद्रव्य। अब व्यवहारकाल क्या कहलाता है, उसका वर्णन इस गाथामे किया गया है। उस परमार्थ समयका व्यवहार नही हो सकता, और कालद्रव्य भी व्यवहार नही होता। व्यवहार जिस समयका, जिस कालका हो सकता है उसका वर्णन यहाँ कर रहे है। यद्यपि कालद्रव्यका या समय पर्यायका व्यवहार नहीं होता, लेकिन व्यवहारकालके बनने

मे समय पर्याय कारण है और समय पर्यायके होनेमे कालद्रव्य कारण है। तो व्यवहारकाल को यहाँ दो तरीकोमे वतला रहे है। एक तो समयसे बढकर जो समयका समूह रूप समय है उसे व्यवहारकाल कहा है। दूसरे सभी पदार्थोमे और विशेषतया जीव पुद्गलमे जो परिणमन दृष्टिगोचर होते है उन परिणमनोको व्यवहारकाल कहते है। तो पहिले समयसीमा मे व्यवहारकालका वर्णन किया जा रहा है।

सवसे छोटा कालपर्याय है समय। एक परमाणु एक ओरसे गमन करे और दूसरा परमाणु दूसरी ओरसे विरुद्ध गमन करे तो गमन करते हुए दो परमाणुओका जहाँ मेल होकर अतिक्रमण हो तो उन परमाणुओके अतिक्रमणमे जो क्षण लगे उसे समय कहते है। इस प्रकार भी समयका लक्षण कहा है। और मंदगतिसे चलते हुए परमाणु एक प्रदेशका उल्लघन करे जितने क्षणमे उसे समय कहते है। इसको मोटे रूपमे यह समझिये कि एक चुटकी बजानेमे जितना काल लगता है उतने कालमे अनगिनते समय हो जाते है। उनमे से जो एक समय है वह कालकी जघन्यपर्याय है। असंख्यात समयोकी राशिको आवली कहते है। ऐसे ऐसे अ.गिनते समय गुजर जाये उसे आवली और असख्याते आवली गुजर जायें उसे उच्छ्वास कहते है। उच्छ्वासका स्थूल अर्थ है कि निरोग पुरुषकी जो नाडी चलती है उसका जो एक उचकना है, एक नाडी जितने समयमे चले उसे कहते है उच्छ्वास। ७ उच्छ्वासोका एक स्तोक होता है। ७ स्तोको का एक लव होता है। ३८॥ लवोकी एक नाली (घडी) होती है, दो घडीका एक मुहूर्त होता है। अब घडीसे खूब अच्छी तरह व्यवहार चलने लगा। २४ मिनटकी घडी होती है और ४८ मिनटका मुहूर्त होता है। उस मुहूर्तमे १ समय कम करके बाकी जो समय है उसे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहते है और एक समय अधिक आवलीको जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते है। और, इसके बीच उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तकके मध्यमे असंख्याते प्रकारके और अन्तर्मुहूर्त है वे मध्यम अन्तर्मुहूर्त कहलाते है। यह है समयकी मापकी वात।

अब २४ घटेका दिन होता अथवा कहो ६० घडीका एक दिन होता। दिनके मायने दिन और रात। दूसरा दिन जब तक न आये तब तक एक दिन सज्ञा की गई है। १५ दिन का पक्ष, दो पक्षका महीना, दो महीनेकी ऋतु, ३ ऋतुओका अयन, दो अयनका वर्ष और १२ वर्षको एक युग कहते है। युग शब्दका अर्थ भिन्न भिन्न प्रकरणमे भिन्न-भिन्न किया गया है, किन्तु जहाँ एक साधारण समयका माप वताया जाता है वहाँ १२ वर्षको युग कहते है और देखा जाता है कि १२ वर्षके वाद वहुतसा परिवर्तन हो जाता है। घरमे, देशमे, समाजमे १२ वर्षके वाद कोई नई-नई वात दिखनेसी लगती है। फिर उसके वाद उपमा प्रमाण है, पल्य है, सागर है, कल्प आदिक है। पहिले जितना व्यवहारकाल वताया गया

उसमे जो सख्यात वर्षो जितनी बात है, वह तो श्रुतज्ञानका विषय है, असख्यात अवधिज्ञान का विषय है, और अनन्त केवलज्ञानका विषय है। ये सब व्यवहारकाल कहलाते है। समय के अनुसार कालकी माप बतायी गई है।

परिणमनपद्धतिमें प्रयुक्त व्यवहारकालका कथन—अब जीव और पुद्गलके जो परिणमन है उन परिणमनोको भी व्यवहारकाल कहते है, इस ढगसे अब व्यवहारकालको बतला रहे है। जीव और पुद्गलमे दो प्रकारके परिणमन है—सूक्ष्म और बादर। कोई हालत तो एकदम ज्ञानमे आ जाती है, कोई हालत सूक्ष्म होती है। जैसे पुद्गलमे अनन्त परमाणुओके ये स्कध तो आँखो दिख रहे है, किन्तु दो, तीन, चार अणु वाले स्कध और अनेक परमाणु वाले अनेक स्कध होते है असख्याते परमाणुओं वाले तक आँखो नही दिखते। अनेको अनन्ताणु स्कध भी आँखो नही दिखते। ये सब सूक्ष्म पर्यायें है। जीवोमे स्थूल पर्याय है मनुष्य तिर्यञ्च आदिक अथवा उसके क्रोध, मान, माया, लोभादिक। सूक्ष्म पर्याय तो केवलज्ञान, केवलदर्शन आदिक है, जिनका समझना बहुत परिश्रमसाध्य बात है। लोग परमात्मापर इसी कारण विश्वास नही करते कि कौन है परमात्मा। और भगवानके है क्या? कितने ही मनचले लोग परमात्मस्वरूपका यो तिरस्कार करते है कि क्या रखा है वहाँ? खाना पीना भी नही, शरीर भी नही, कोई मौजके साधन भी नही, किन्तु मोही जीवोको उस परमात्मतत्त्वकी क्या खबर हो सकती है?

परमात्मतत्त्वका निश्चयन—परमात्मतत्त्व अपने आपमे ही विराजमान है। उसके देखनेकी पद्धति होनी चाहिए। जैसे एक किलो दूध रखा हो, उसके बारेमे पूछा जाय कि बताओ इसमे घी है या नही? तो घी आँखो दिखता तो नही, पर पारखी लोग बता देते है कि इसमे एक छटाक घी है, इसमे आधी छटाक घी है। उन्होने विवेक बुद्धिसे समझा और जान लिया, किन्तु उसके व्यक्त होनेका उपाय दूसरा ही है। मशीनसे उसका मथन किया जाय तो वहाँ घी प्रकट होता है। तो यह प्रकट होनेका उपाय है लेकिन घी का अस्तित्व उस दूधमे है अप्रकट रूपसे, शक्तिरूपसे है, इसी प्रकार हम आपकी जो आज हालत है सो यह कोई परमात्मस्वरूपकी बात नही है। नारकी, पशु, पक्षी मनुष्य आदिक कितनी ही तरहकी दुखमयी स्थितियाँ है उनको लादे फिरना यह कोई परमात्मस्वरूपकी बात नही है, लेकिन हम आप जो दुखी हो रहे है, परतत्र हो रहे है, जन्ममरण कर रहे है उतने विकल्प मचा रहे है, जीव हम वही है जिसमे कि वह परमात्मस्वरूप बना हुआ है। वह शक्तिरूप है। न हो तो यह बात भी नही हो सकती है लेकिन उस परमात्मस्वरूपके दर्शनका और उसके विकासका उपाय होना चाहिए। परमात्मस्वरूपका दर्शनका उपाय यही है कि कोई प्रकारके विकल्प न हो, तब वहाँ उस स्वरूपका दर्शन होगा। परमात्माके दर्शनमे बाधा देने

वाले तो विकल्प है। जहा परवस्तुके सम्बंधमे कोई ख्याल बनाया, विकल्प बनाया, बस वे विकल्प ही उस स्वरूपको प्रकट नही होने देते, उसके दर्शन नही होने देते। यदि वे विकल्प न हो तो परमात्मस्वरूपका दर्शन होगा।

निर्विकल्पताके आनन्दकी अलौकिकता—अब विकल्प न हो इसका उपाय बनाना है। उसका उपाय यही है कि जहाँ हमारा दिल जाता है, जिनका आश्रय करनेसे विकल्प बनते है उनका स्वरूप समझें। वे चीजे मेरेसे भिन्न है, पर है, मेरा तो मेरेमे ही सर्वस्व है, किसी परपदार्थसे मुझमे कुछ आता नही है, ये सभी पदार्थ मेरे से अत्यन्त निराले है। इनमे उपयोग लगाने से तो मेरी बरबादी ही है। जन्म मरणके संकट सहने पड़ते है। ये समस्त ही परपदार्थ चित्तमे बसाने योग्य नही है। इस तरहका एक निर्णय करते जाइये और चित्तमे उठने वाले नाना प्रकारके विकल्पोको हटाते जाइये, तो किसी क्षण एक ऐसी स्थिति बनेगी कि यथायोग्य उस परमात्मतत्त्व की झाँकी हो जायेगी और तब मालूम पडेगा कि परमात्माका आनन्द किस जातिका है। परमात्माके अनन्त आनन्द है, और यहा ही अनुभूति करने वाले पुरुषको उस जातिका थोडा आनन्द आया है। जैसे कोई धनिक सेठ एक किलो मिठाई खरीद कर छक कर खाता है और कोई गरीब आदमी उसी मिठाईको एक छटाक ही खरीदकर खाता है तो स्वाद तो दोनोने एक जैसा ही पाया। हाँ अन्तर इतना है कि सेठने तो छक कर खाया और गरीब छक कर नही खा पाया, एक उसकी जानकारीभर कर पायी, यो ही समझिये कि परमात्माके आनन्दमे और एक सम्यग्दृष्टि पुरुषके आनन्दमे ऐसा ही अन्तर है। परमात्मा तो अनन्त आनन्द वाला है जिस आनन्दसे अब कभी वह विचलित न हो सकेगा और सम्यग्दृष्टि पुरुषको आनन्द तो उसी जातिका है पर थोडा है और थोडे समयके लिए है। मगर वह सम्यग्दृष्टि पुरुष समझ जायगा कि परमात्माका आनन्द इस तरहका है।

शान्तिके लिये तनुकूल अन्तः पौरुषकी आवश्यकता—हम आप सभी शान्त व सुखी होना चाहते है, पर शान्त और सुखी होनेका जो उपाय है उसमे कषायवश लग नही पाते। इस जीवने भव-भवमे कषाये की और उन कषायोसे खोटे ही फल पाये। तो जैसे कोई तेज लालमिर्च खाने वाला पुरुष लालमिर्च खाकर दु खी होता जाता है, आँखोसे अश्रु भी बहाता जाता है, सी सी भी करता जाता है मगर कहता है कि लालमिर्च थोडी और दे दो, ठीक ऐसे ही समझो कि राग कर करके हम आप दु खी होते जाते है पर उस दु खके मेटनेका उपाय राग करना ही समझते है। पर राग कर करके दु ख मिट सके यह बात कभी हो नही सकती। जैसे खूनका दाग खूनसे धोया जाय तो वह खूनका दाग मिट नही सकता, ऐसे ही राग कर करके रागसे उत्पन्न हुआ दु ख मेटा नही जा सकता। उस दु खको

मेटनेके लिए सही जानकारी बनानी होगी, परद्रव्योसे एकदम उपेक्षा करनी होगी, कषाय-भाव मेटने होगे ।

पर्यायोंकी व्यवहारकालरूपता——यहां बादर और सूक्ष्म पर्यायोकी बात चल रही है कि जीवमे जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, विशुद्ध आनन्द आदिक पर्याये हो रही है वे सूक्ष्म पर्याये है । वे एकदमसे समझमे नही आ सकती । ये सब पर्याये व्यवहारकाल कहलाती है । जहा वस्तुके स्वरूपका वर्णन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षामे किया जाता है वहा भी कालका यही अर्थ है—वस्तुका परिणमन । किसी पदार्थको जानना हो तो वहा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ज्ञानमे आयगा । जैसे मान लो एक इस पैन (कलम) को ही समझा तो इसका जो स्कध है, द्रव्य है वह ज्ञानमे आया । यह कितनी जगह घेर रही है, कितनी बडी है, उसका आकार भी ज्ञानमे आया और यह कमजोर है, मजबूत है, आदिक किस पर्यायमे है, किस रगका है, यह भी ज्ञानमे आया और इसमे कैसी शक्ति है यह भी ज्ञानमे आया । तो ये चार चीजे ज्ञानमे आयी उस विधिसे ही वस्तुका परिचय होता है । तो यहा कालका अर्थ परिणमन किया गया है । अब विचार करे——ये सब परिणमन कितने है ? तो उसको कहा न जा सकेगा क्योकि जितने कालके समय है प्रत्येक समयोमे भिन्न-भिन्न परिणमन चलते रहते है । तो जितने कालके समय है उतनी ही पर्याये कहना चाहिए । और इस सामान्य दृष्टिमे छहो द्रव्योका अवस्थान समान है । प्रत्येक द्रव्य अनादिसे है, अनन्तकाल तक रहता है । कोई नया द्रव्य बनता नही और कोई द्रव्य कभी मिटता नही । जितने (अनन्त) जीव है वे सब रहेगे, जितने (अनन्त) पुद्गल है वे सब रहेगे । जो सत् है उसका विनाश नही । जो कुछ भी नही है उपादान न मिलनेसे उनकी उत्पत्ति कल्पनामे आ नही सकती ।

व्यवहारकालके स्वरूपको जानकर अपनी समझ बनानेकी सत्यदिशाका निर्देश——इस अनादि अनन्त काल परिणमनको जानकर अपने आपके बारेमे भी कुछ समझना है । मैं अनादिसे हूँ, अब तक हूँ अनन्तकाल तक रहूँगा । तो अब तककी जो हमारी स्थितिया गुजरी है वे सब खोटी गुजरी है । जन्म मरण किया है । मरण किया, जन्म लिया, सारी जिन्दगी मोहमे, कषायोमे बितायी, फिर मरण किया । मोहमे जन्मे, मोहमे जिये और मोहमे ही मरे, ऐसी स्थिति जीवोकी अब तक चली आयी है । लाभ कुछ नही मिला । अब अप ा कर्तव्य यह है कि अपनी स्थितिको अब बदले, कुछ सत्य ज्ञानकी ओर आये । अब तक जो हुआ सो हुआ उसका खेद क्या करें । जो होना था हुआ, अब जान लीजिए कि जो कुछ भी अभी तक हुआ वह सब मिथ्या था, मायारूप था । तो यह जानकारी हमारे हितके लिए है । अब आगेकी कुछ सुध ले, बीती हुई बातोको मायारूप समझे, इन लौकिक समागमोमे हर्ष विषाद न माने । यह तो ससार है, यहा पुण्य तथा पापके फल मिलते है तो पुण्यके

फलमे हर्ष न मानना और पापके फलमे विषाद न मानना । उस पुण्य पाप फलोके ज्ञाता-द्रष्टा रहे और अपने आपमे ऐसा निर्णय बनाये कि मै तो इन सबसे निराला एक विशुद्ध चैतन्यमात्र हू । ये जो व्यवहारकाल बताये जा रहे है, इनसे निराला अपने आपको एक शुद्ध स्वरूपमे निरखना यही हम आपका आगे बढनेका उपाय है । अब अतीत भविष्य और वर्तमान पर्यायकी सख्याका प्रतिपादन करते है ।

तेसु अतीदा णंता अणंत-गुणिदा य भावि-पज्जाया ।
एक्को वि वट्टमाणो एत्तिय-मेत्तो वि सो कालो ॥२२१॥

पर्यायोंकी अनन्तता—उन जीव पुद्गल आदिक पदार्थोमे अतीत पर्याये अनन्त है और उनसे अनन्तगुनी भविष्यकी पर्याये है और वर्तमान की पर्याय एक है, उन सब पर्यायोमात्र यह काल है अथवा यह एक पर्याय है । चेतनकी पर्याये कितनी गुजर गई है ? तो उसे कहेगे कि जितने अतीतकाल गुजरे है उतनी पर्याये गुजरी है । अतीतकाल कितना गुजरा है ? इसका अनुमान एक शुद्ध जीवराशिकी मापसे कहा जाता है । ६०८ जीव ६ महीना ८ समय मे मुक्त होते है—ऐसा एक साधारण नियम है । तब जितने आज तक सिद्ध हुए है उनमे ६ महीना ८ समयके मापसे संख्यात आवलियोंका गुणा कर दिया जाय तो अतीतकालका प्रमाण निकल आयगा । कितना है यह सब समझनेके लिए कहा जा रहा है । कही वह अतीतकाल गिनतीमे न आ जायगा । अनन्त समय गुजर गया, और भविष्यकाल कितना होगा । तो इससे भी अनन्तगुना समय होगा । यद्यपि अतीतकालका भी अन्त नही है और भविष्यकालका भी अन्त नही है इस दृष्टिसे दोनो ही समान है, लेकिन एक यह दृष्टि रखी गई है कि इस जीवमे पर्याये सदा होती रहेगी उसपर बल देनेसे लिए कह रहे है । भावी पर्याये उससे अनन्तगुनी है और वर्तमान पर्याय एक है । यो इतना मात्र अर्थात् समस्त पर्याये मात्र ये पदार्थ कहलाते है । ये सब पर्याये जैसे अनन्त जीवमे है, अनन्त पुद्गलमे है ऐसे ही अनन्त पर्याये अन्य द्रव्यमे भी हुई और होगी । अधर्म, आकाश, कालमे भी ऐसी ही अनन्त पर्याये हुई है, और अनन्त पर्याये होगी । ये द्रव्य सूक्ष्म है और इनसे इस जीवका व्यवहार भी नही चलता आया है अतएव यह सूक्ष्म विषय है । जीवका व्यवहार तो जीव और पुद्गलके परिणमनसे बीच चलता रहता है । जीव जीवसे व्यवहार करता है । जीव पुद्गलसे व्यवहार करता है । जीवके निमित्तसे दूसरे जीवका कुछ उपकार विकल्प होता और पुद्गल के निमित्तसे भी जीवका उपकार विकल्प होता ।

भेदविज्ञान द्वारा झमेलेसे छुटकारा—हम आपका जो झमेला है वह सब जीव पुद्गलके बीचका है । हमे भेदविज्ञानका उपयोग इस जीव और पुद्गलपर विशेपतया करना है । मेरेसे अतिरिक्त जितने भी जीव है वे अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते है । अपने आपमे उनमे

स्वत परिणमन होता है मेरेसे नही और मेरेमे परिणमन मेरा स्वत. होता है, किसी अन्य जीवसे निकलकर नही होता । इस प्रकार सर्व पुद्गल द्रव्य अणु-अणुमात्र देह भी और कुछ भीतर कर्म अणु मनके अणु जो कुछ भी है सब पुद्गल द्रव्य मुझसे अत्यन्त भिन्न है, क्योकि प्रत्येक पदार्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्यका स्वरूप रख रहे है । तो मैं अपने स्वरूपसे चल रहा हू, दूसरेके स्वरूपसे नही चलता । इस वस्तु स्वरूपका दृढ विश्वास करके जो समस्त परवस्तुओ से उपेक्षा कर सकेगा वह अपने आपमे अन्त.प्रकाशमान भगवत् तत्त्वके दर्शन कर पायेगा और जो इन बाहरी पदार्थोके विकल्पोमे ही उलझा रहेगा वह खुद भगवत्स्वरूप होकर भी खुदका दर्शन नही कर सकता है और न उस अनुपम आनन्दका लाभ प्राप्त कर सकता है । हमारा कर्तव्य है कि हम भेदविज्ञानमे अपनी बुद्धि अधिकाधिक लगायें, मै सबसे निराला हू ऐसा अनुभव करनेका यत्न करें तो इस पौरषसे हम आपके समस्त संसार सकट टल सकेंगे ।

पुव्व-परिणाम-जुत्त कारण-भावेण वट्टदे दव्व ।
उत्तर-परिणाम-जुदं तं चिय कज्ज हवे णियमा ।।२२२।।

अन्तरङ्गका कारण कार्यका स्वरूप—इस गाथामे द्रव्योका कार्य कारण परिणाम बताया गया है । पूर्वपर्यायसे युक्त द्रव्य कारणरूपसे रहता है और उत्तर पर्यायसहित द्रव्य कार्यरूप हुआ करता है । कारण कार्य विधानके समय न केवल द्रव्यका वर्णन ठीक बैठता है, न केवल पर्यायका वर्णन ठीक बैठता है । क्या केवल पर्याय ही कारण होता है अथवा कार्य होता है ? सो केवल पर्याय कोई वस्तु नही और मात्र कोई पर्याय जो द्रव्यसे रहित है किसीका कारण बने या किसीका कार्य बने ये दोनो बाते ही सम्भव नही है, इसी प्रकार कारणकार्यविधानमे केवल द्रव्यकी बात ग्रहण न करे । खाली वह शाश्वत वस्तु जो त्रिकाल अन्वयी है, एक इतना ही अशमात्र न किसीका कारण है, न किसीका कार्य है । इसी कारण इस गाथामे इस तरहका वर्णन किया गया कि पूर्वपर्यायसे युक्त द्रव्य कारण होता है और उत्तर पर्यायसे सहित द्रव्य कार्य होता है, पूर्व पर्याय सहित द्रव्य कारण होता है इसका अर्थ है उपादान कारण होता है, क्योकि वही द्रव्य जो पूर्व पर्यायमे है उत्तर क्षणमे नवीन पर्यायमे आयेगा सो नवीन पर्यायमे आया उसका उपादान कौन है ? पूर्व पर्यायसहित द्रव्य अर्थात् वही द्रव्य उत्तर पर्यायरूप प्रकट हुआ है और पूर्व पर्यायसहित द्रव्यमे अनन्तर ही तो पर्याय हुई है, इस कारण पूर्व पर्यायसहित द्रव्य कार्यका उपादान कारण कहलाता है । वही द्रव्य जो उत्तर पर्यायसे युक्त है वह कार्यभूत है, अर्थात् पूर्वपर्यायसंयुक्त द्रव्य जिसमे विवक्षित उत्तर पर्यायकी योग्यता है, योग्य कारण सन्निधान मिलने पर वहाँ वह पर्याय प्रकट होता ही है ।

उपादानकारणकी योग्यता—कदाचित् यह कह सकते है कि योग्यता तो उसमे अनेक पर्यायोरूप बननेकी है और कारण न मिला उस रूपका जो विवक्षित पर्याय बनी है तो वह कैसे प्रकट होगी ? तो भाई विवक्षित पर्याय वही है जो अनुकूल कारण सन्निधान होनेपर प्रकट होती है। कुछ लोग ऐसी कल्पना करते है कि पूर्व पर्याय सहित द्रव्यमे जो उत्तरपर्याय होती है केवल उस ही एक पर्यायरूप होनेकी योग्यता है, लेकिन जब युक्तिसे भी नजर आ रहा है कि कुम्हारने चाकपर सनी हुई मिट्टीका पिण्ड रखा है और उस पिण्डमे सब योग्यताये समझमे आ सकती है कि इसमे घडा भी बन सकता, दीपक भी बन सकता, ढक्कन भी बन सकता, सकोरा भी बन सकता, तो उसमे योग्यताये अनेक पर्यायोरूप हो सकती है किन्तु जैसे अनुकूल साधन मिलते है कुम्हारका हाथ जिस ढगका व्यापार करता है उस अनुकूल कारणको पाकर वहाँ उस प्रकारकी पर्याय बनती है। अब इस ही तत्त्वको वस्तु दृष्टिसे निरख करके कहा जा सकता है ऐसा कि चूकि प्रत्येक पदार्थमे अनन्त पर्यायें होती है, और जब जो होना है तब वह होता है अन्यथा सर्वज्ञ अवधिज्ञानी ये सब निष्फल हो जायेगे। अवधिज्ञानसे जाना तो है कि अमुक समयमे अमुक परिणमन होना है तो कैसे जाना ? होना है तब तो जाना है। तो केवल इस होनेकी दृष्टिको रखकर कोई यहाँ निरखे कि जब जो होना है सो होना है, तो प्रत्येक पर्यायके समय एक ही उत्तर नवीन पर्यायकी योग्यता है, क्योकि वही होगा, किन्तु इस प्रसगमे यह भी जानना चाहिए कि बात यद्यपि यह सही है कि जो जाना प्रभुने जो जाना अवधिज्ञानियोने वह होगा, मगर जाना उन्होने तब ही है जब वह होनेको है और उसका होना है कार्यकारणविधानपूर्वक। जैसा कि दर्शन-शास्त्रमे वर्णित है, उपादान हो, बहिरङ्ग अनुकूल कारण हो, प्रतिबंधक कारणका अभावहो तब वहाँ वह कार्य बनता है, तो इस कार्यकारणविधानपूर्वक जो कुछ होगा उसको जान लिया है। तो जानने मात्रसे कार्यकारणविधानका तिरस्कार नही हो सकता। वह जिस विधि-पूर्वक होता रहता है, होता था, होता रहेगा, अब उसको ज्ञानियो ने जान लिया तो यह कोई अपराध तो नही किया।

कार्यके अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग हेतु--यहाँ बताया जा रहा है कि पहिली अवस्थामे रहने वाला पदार्थ अगली अवस्थाका उपादान कारण होता है। जैसे मिट्टीका पिण्ड घडा बननेका उपादान कारण है। उसके बाद वहाँ घडा बना ना, खपरियोका उपादान कारण वह घडा है। क्योकि घडा फूटकर ही खपरियाँ बनी। तो उत्तरोत्तर जो पर्याय होती रहती है उन कार्योका अन्तरङ्ग कारण उपादान कारण पहिली-पहिली अवस्थामे रहता हो वही द्रव्य है। इस बातको अपने आप पर घटित करो कि हममे जो रागादिक भावोकी संतानें चलती रहती है, राग हुआ, विकल्प हुआ, कुछ और विचार हुए, कभी कुछ सोचते है

कभी कुछ, तो यो जो मलिन पर्यायोकी सतति चल रही है, यह धारा नही टूट रही है तो इस धारामे कौन कारण है ? तो अन्तरङ्ग कारण तो यह स्वय है। क्योकि इसीमे ही यह धारा बन रही है और ऐसे सस्कार है, अज्ञानभरा भाव है इस योग्यतासे यहाँ यह रागद्वेषकी धारा चल रही है, पर बहिरग कारण पर, निमित्त कारण पर दृष्टि देते है तो कोई अन्य पदार्थ वहाँ निमित्त अवश्य है अन्यथा अर्थात् बाह्यको निमित्त न मानने पर केवल अपने ही उपादानसे अपनेमे ये मलिनताये बनी, ऐसी स्वीकृति कर लेने पर तो इन पर्यायोका अन्त न आ सकेगा। कैसे अन्त आये ? जब अपनी सत्ता मात्रसे ही ये रागादिक हो रहे है तो ये विनष्ट कैसे हो ? तो बताया गया है कि कर्मोदय निमित्त कारण है, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन वैभव आदिक ये सब बहिरग आश्रय कारण है और हमारी अज्ञानता, हमारा उस प्रकारका सस्कार यह हमारा अन्तरग कारण है। इस तरह कार्य कारण विधान होता है।

परसे उपेक्षा करके स्वयंमें अन्तःप्रकाशमान परमात्मतत्त्वके दर्शनका कर्तव्य—इस प्रसगमे हमको उस तत्त्वपर दृष्टि देना चाहिए कि जहाँ दृष्टि जाने पर यह विदित होता कि मै न कार्य हू न कारण हू, वह दृष्टि है अनादि अनन्त अहेतुक ज्ञान स्वभावकी दृष्टि। मैं अपने आप अपने सत्त्वसे क्या हूँ ? निरपेक्षरूपसे अपने सत्त्वका बोध किया जाय तो वह चैतन्यमात्र अनुभव होगा। इस मेरेका किसी अन्य पदार्थसे कोई सम्बन्ध नही है। पूर्वभवमे कोई परिवार मिला होगा, कोई समागम तो था ही कही तो जन्म था ही। वहाँसे मरण करके यहाँ आये तो इस समय हमारे लिए क्या रहा वहाँका ? न उसका कुछ ख्याल है, न व्यवहार है, न सम्बन्ध है। तो जैसे पूर्वभवकी छूटी हुई चीजे प्रकट मालूम हो रही है कि वे मेरी कुछ न थी। तो भाई जो बात पूर्व (बीते हुए) भवकी हो सकती है वही बात आगामी (आगे होने वाले) भवके लिए भी हो सकती है। आज जो ये समागम प्राप्त है यहाँसे मरण करके जानेके बाद फिर ये अपने कुछ न रहेगे। ये सब छूट जायेगे। देखिये-इस सत्य ज्ञानका क्षणभरके लिए भी छूना बन जायेगा तो एक अलौकिक आनन्दकी प्राप्ति होगी। अपने आपके सत्य वैभवका दर्शन होगा। परमात्मस्वरूपका दर्शन न तो शरीरके परिश्रमसे होगा और न धन वैभवके द्वारा होगा। न किसी प्रकारके मौजमे रहनेसे होगा। न कोई क्लेश करनेसे होगा। परमात्मस्वरूपका दर्शन विकल्पोका परित्याग करने से होगा। इस प्रभुस्वरूपके दर्शनमे बाधा हमारे ही खुदके विकल्पोसे आ रही है। हम बाहरमे अपने उपयोग को किए हुए हो तो अन्तरगकी बातको नही समझ सकते है। जब बाहरसे अपने इस उपयोगको हटाकर कुछ अपने अन्त मे ले जायेगे तो वहाँ अपने अन्दर पडी हुई उस अमूल्य निधिका दर्शन होगा। तो हमारे ये विकल्प ही हमारी उन्नतिमे बाधक है, इन

विकल्पोके ही कारण हम दु खी रहा करते है और इस ससारमे रुलते रहते है।

अपनी असहायता स्वसहायता—हमे अब चेतना चाहिए और कमसे कम इतना निर्णय सदा रखना चाहिये कि मेरे किए हुए कर्मोका फल मुझे अकेले ही भोगना होगा। मेरे किए हुए कर्मोका फल भोगनेके लिए यहाँ कोई दूसरा हमारा साथी न होगा। अगर कदाचित् शिरदर्द हो जाय तो उसके दर्दको ये परिजन, ये मित्रजन कोई भी बाँट न सकेगे, उस दर्दको तो खुदको ही भोगना पडेगा, हाँ वे दूसरे लोग मनपसंद बाते करके चित्तको रमाते है, पर हम ही यदि उनकी बातोमे राग करते है तो उनमे हमारा चित्त रम जाता है, पर वे कोई भी लोग मेरे किसी भी प्रकारके परिणमनको कर सकनेमे समर्थ नही है। ऐसा असहाय यह मै हूँ इस जगतमे। असहायका अर्थ है—खुदका सहाय होना, अन्य किसीका सहाय न होना। प्रभुका केवलज्ञान असहाय है, मायने प्रभुको किसी दूसरेकी सहाय नही है। वे खुद ही खुदके लिए सहाय हो गए है। यहाँ दो दृष्टियोसे देखना है—सासारिक दृष्टि से भी कोई किसीका सहाय नही है। हाँ अगर कोई लोग किसीकी पूछ करते है तो समझ लीजिए कि उस व्यक्तिका ऐसा पुण्योदय ही है कि जिसकी वजहसे वे लोग पूछ कर रहे है। अगर खुदका पुण्योदय उस ढगका न हो तो फिर कौन उसकी पूछ करते ? अगर कोई सोचे कि देखो ये लोग कितना हमारे लिए प्रिय बन रहे है, ये लोग कितना प्रेमका व्यवहार मेरे प्रति कर रहे है तो उसका यह सोचना गलत है। अगर आपकी ही कुछ करतूत न हो, आपमे ही कोई कला न हो तो फिर कौन आपकी पूछ करेगा ? हा आपका स्वयंका जब उस ढगका पुण्योदय है तो वे लोग आपकी पूछ कर रहे है। तो अपनी ही करतूत अपनेको फल देती है। इस बातका निर्णय बनाये कि यहा कोई दूसरा मेरा साथी नही है। यह भी श्रद्धान हो तब भी बहुतसे सकटोसे छुटकारा हो सकता है।

पर्यायविवेक—हममे उत्तरोत्तर कार्य किस प्रकारसे होते रहते है उसका यह वर्णन चल रहा है। मै हू, अनादिसे हूँ, अनन्तकाल तक रहूँगा, मेरा कभी अभाव न होगा। मै रहूंगा सदा। जब सदा रहूगा तो किसी न किसी अवस्थामे ही तो रहूगा। वे अवस्थाये गति मार्गणाकी दृष्टिसे ५ है नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्ध। इनमे से किसी न किसी अवस्थामे यह जीव रहता है। सिद्ध अवस्था ऐसी है कि उसके बाद फिर दूसरी अवस्था नही बनती। अवस्थाये तो है। इन्द्रिय मार्गणाकी दृष्टिसे एकेन्द्रिय रहे, दोइन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय रहे अथवा इन्द्रियसे रहित रहे, ये अवस्थाये ही तो है। इनमे इन्द्रियरहित अवस्था इसे प्राप्त हो तो फिर दूसरी अवस्था न होगी। तो इन अवस्थाओमे एक छटनी करे कि अपना हित किस अवस्थामे रहनेमे है ? क्या संसारमे जन्म मरण करते रहे, जिन्दगी मोह रागमे ही बिताये, इसमे कुछ अपना हित हो सकेगा ? अरे

यह तो सकट है । तो अपनेको ऐसी अवस्था प्रकट हो कि जो शान्ति उत्पन्न करे । उसीके लिए अपनी योग्यता बनाना है । वह योग्यता बनेगी भेदविज्ञानके सस्कारसे । नित्यभेदविज्ञान बना रहे ।

अपनी विविक्तताका परिचय—आचार्य संतजन तो कहते है कि अविच्छिन्न धारासे अर्थात् कभी भी न टूटे ऐसी धारासे भेदविज्ञान रहे, सदा विविक्त अन्तस्तत्त्वका प्रत्यय रहे, विश्वास रहे कि मै सबसे निराला केवल चैतन्यमात्र हू । मै अपने ज्ञानको ही करता हू, ज्ञान को ही भोगता हूँ । सर्व गुणोमे ज्ञानगुण प्रधान है । ज्ञानगुणका वर्णन करनेमे सभीका वर्णन आ जाता है । ज्ञानको छोडकर अन्य कुछ न मै करता हू, न भोगता हू । इसी समय मानो आपने कोई बिल्डिग बनाया, या कोई व्यापार बढाया तो इन सब प्रसगोमे आपने वास्तवमे किया क्या ? चीज बनी, चीजका परिणमन तो आपने नही किया, आपने विचार बनाया, बुद्धि बनाया, विकल्प बनाया, इसके आगे और कुछ नही किया । अब इस विधि विकल्पोके किये जानेपर निमित्तनैमित्तिक भाववश ये सब कार्य हो रहे है । तो सर्व स्थितियोमे यह जीव ज्ञानको करता है, विकल्पको करता है, किसी अन्य पदार्थका करने वाला नही है । तो यो वस्तुस्वरूप समझमे आनेपर पूर्वपर्यायसहित द्रव्य उत्तरपर्यायका कारण है, यह बात यथाविधि समझमे आनेपर जैसे मै मेरे लिए कार्यकारण हू ऐसे ही सभी पदार्थ उनके लिए कार्यकारण है । तब मेरा किसी अन्य पदार्थसे क्या सम्बध है ? ऐसा परिचय होता है तो उसमे मोह टूटता है । जहाँ जीवका मोह मिटा, अपने आपके स्वरूपकी धुन बनी कि उसके सर्व कुछ कार्य सिद्ध हो जाते है । सर्वकार्योके मायने, प्रयोजन है शान्तिका, उसका लाभ हो जाता है ।

कारण-कज्ज-विसेसा तीसु वि कालेसु हु ति वत्थूण ।
एक्केक्कम्मि य समए पुव्वुत्तर-भावमासिज्ज ॥२२३॥

वस्तुमें कारणकार्यपरम्परा—इस गाथामे यह बताया जा रहा है कि तीनो कालमे वस्तुके कार्यकारण भावका निर्णय उस ही वस्तुमे है । वस्तुके पूर्ण और उत्तर परिणमन को लेकर तीनो कालमे प्रत्येक समय कार्यकारण भाव है । इस समय जो पर्याय बन रही है वह पूर्वपर्यायका तो कार्य है और उत्तरपर्यायका कारण है । प्रत्येक अवस्था कार्यरूप भी है और कारणरूप भी है । पदार्थमे प्रतिसमय उत्पादव्ययध्रौव्य होता है और तीनो के तीनो एक ही समयमे होते है । जैसे कोई मनुष्य मरकर देव बना तो अब देव पर्यायमे निर्णय करिये—उत्पाद हुआ देवका, व्यय हुआ मनुष्यका और ध्रौव्य रहा जीवका । तो देवका सद्भाव, मनुष्यका अभाव और जीवको ध्रुवता ये तीनो एक समयमे है कि नही ? तो प्रत्येक पदार्थका उत्पादव्ययध्रौव्यका स्वभाव है । जैसे मिट्टीका पिडोला घडा बन

जाता है तो जब वह घडा बन गया तो घडेका सद्भाव, पिण्डोलेका अभाव और मिट्टीकी ध्रुवता ये तीनो एक समयमे है। तो पर्यायका उत्पाद विनाश होकर भी जो मूलभूत वस्तु है उसकी सदा ध्रुवता रहती है और यो तीनो कालमे प्रत्येक द्रव्यमे कारणकार्यकी परम्परा चल रही है। पूर्वपर्यायसंयुक्त द्रव्य उत्तरपर्यायका कारण है, उत्तरपर्याय पूर्वपर्यायका कार्य है अर्थात् द्रव्यमे निरन्तर अवस्थाये चलती रहती है।

एकत्वदृष्टिका लाभ—केवल एक वस्तुस्वरूपको निहारकर निश्चय देखे तो यही प्रतीत होगा कि प्रत्येक पदार्थ है और उनमे लगातार परिणमन चलता है। विश्वास यदि यह हो जाय कि मेरेमे मेरा परिणमन मेरे स्वभावसे चल रहा है, उस स्वभावको कोई दूसरा उत्पन्न नही करता तो सारतत्त्वपर दृष्टि जायगी और वहाँ विदित होगा कि इस सत् चैतन्यका तो मै ही अधिकारी हू, मै ही सर्वस्व हू, अन्य कुछ इसका कुछ नही है। जीवोको दुःख है नही, क्योकि दुःखका स्वभाव नही। स्वभाव न होकर भी चूंकि इसमे विभावशक्ति है तो कारणकूटमे और अपने अपराधसे यह जीव आनन्द स्वभावका अनुभव न करके दुःख-रूप परिणम जाता है। तो यहाँ इतना निश्चय कर लीजिए कि दुःख तो बनानेसे होता है और आनन्द स्वयं होता है। जैसे कि लोग ऐसा यत्न करते है कि आनन्द मिले। अरे आनन्दके लिए यत्न नही करना है। यत्न तो दुःखके लिए बना करता है। हाँ वह दुःख मिटे तो वहाँ आनन्द स्वय ही प्रकट होता है। तो करनेकी चीज खोटी है और स्वय होने की चीज भली है। न करे कुछ, कोई विकल्प न करे यह जीव, स्वय एक अपने विश्राममे आये तो इसपर स्वयं क्या होगा ? आनन्द ही होगा, दुःख न आयगा। हम विकल्प करते है, परवस्तुको उपयोगमे दृढ करते है, उसका आग्रह बनाते है, तो हममे जो इतने यत्न हो रहे है ये दुःखके कारण बन रहे है। जरा इन सब यत्नोको, श्रमोको छोडकर पूर्ण विश्रामके साथ स्थित तो हो जाय, वहा फिर क्लेशका कोई निदान न रहेगा। जब ज्ञानमे ज्ञानस्वरूप ही ज्ञात होता है उस समय इस जीवको कोई सकट नही रहता। तो हमे भेदविज्ञान करके इस तत्त्वज्ञानको दृढ करना है और उसके बलपर विकल्पोको त्यागना है। विकल्पोको त्यागे तो हममे बसे हुए परमात्माका दर्शन होगा और उससे ही हमे शान्ति प्राप्त होगी। अन्य उपायोमे शान्ति नही है। जन्ममरण करना, भटकना, यही इन समस्त बाह्य परिश्रमोका फल है। ससारभ्रमण नही चाहिये असंसरणस्वभावी निज अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि करे।

अनुप्रेक्षा प्रवचन पंचम भाग

सति अणताणंता तीसु वि कालेसु सव्व दव्वाणि ।
सव्वं पि अणेयंत तत्तो भणिदं जिणेंदेहि ॥२२४॥

पदार्थोंके अनेकान्तात्मत्वकी सूचना—लोकभावनामे सभी द्रव्योंका वर्णन करनेके पश्चात् अब यह बतला रहे है कि प्रत्येक पदार्थ अनेकान्तात्मक है, सभी पदार्थ अनन्तानन्त है और अनन्तानन्तकालमे रहा करते है। तब एक एक पदार्थकी अनन्त पर्यायें हो गई और प्रत्येक पर्यायके हिसाबसे उनमे प्रतिदृष्टिसे अनन्तात्मक अनेकान्त धर्म बनता है। इस तरह समस्त द्रव्य अनेक धर्मस्वरूप है ऐसा वीतराग जिनेन्द्रदेवके सिद्धान्तमे प्ररूपित है। वस्तु एक एक होकर भी प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे अनेकान्तरूप है। जैसे स्थूलरूपसे देखते है कि पदार्थ नित्य भी है, अनित्य भी है। जो घट पट आदिक पदार्थ नजर आते है—घडा हो तो उसका मिटकर खपरियाँ बनी, उसका चूरा किया तो जैसे उसमे अनेक पर्यायें नजर आती है, जो मिट्टी स्वरूप है वह वही है याने मूल वस्तु जिसमे परिणत हुआ करती है वह मूलवस्तु वही है जिसे हम आप सभी अपने-अपनेमे विचारे कि हम जो मूल वस्तु है आत्मा, वह जन्मसे लेकर अब तक वही है, पर अवस्थाये कितनी गुजर गयी ? यह तो एक भवकी बात है पर भव-भवमे न जाने कितने जन्ममरण किए। जीव तो वही है पर उसकी अवस्थायें बदलती हुई दीखती है। जब अवस्थाओकी दृष्टिसे देखते है तो यह अनेक रूप है और एक मूल द्रव्यकी दृष्टिसे देखते है तो वह एक रूप है और नित्य है। पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। नित्यानित्यात्मक पदार्थको न माननेपर वस्तुकी व्यवस्था नही बनती।

पदार्थको अनेकान्तात्मक न माननेपर वस्तुत्वकी असिद्धि—जैसे कोई दार्शनिक कहता है कि एक ब्रह्म है अपरिणामी है, सर्वव्यापक है- और सर्व ही क्या है ? वही एक ही है। उसकी ये सब पर्यायें है। अब देखिये – प्रतीति गवाह नही देती। प्रत्यक्षसे इसका विरोध है, पदार्थ यहाँ नाना नजर आते है और एक पदार्थ और दूसरे पदार्थके बीच आकाश का अन्तर भी समझमे आता है फिर वह एक कहाँ रहा ? प्रत्येक सत्मे उसका अपना स्वरूप है। प्रतिक्षण उसकी कोई न कोई मुद्रा है। पर उसे अपरिणामी कहा जा रहा। जब अपरिणामी है तो ये पर्याये कहाँसे आ गई ? तो केवल नित्य माना जाय तब भी व्यवस्था नही बनती और क्षण-क्षणमे नवीन-नवीन ही पदार्थ होता है ऐसा माना जाय तब भी व्यवस्था नही बनती। हम आपको हित क्यो करना चाहिए ? इसी कारण कि हम आप

नित्यनित्यात्मक है। अत हितकी आवश्यकता है। यदि यह मान लिया जाय कि मै जो जीव हू वह सदा अपरिणामी नित्य हू तो जो जैसा है यह मै वैसा ही रहूगा सदा, कुछ भी परिवर्तन हो ही नही सकता। फिर कल्याणकी आवश्यकता ही क्या है ? और यदि यह माना जाय कि मै कोई एक नही हू। जो ज्ञान होता है प्रतिक्षण बस एक एक ज्ञान वही पूरा आत्मा है, मै आत्मा कुछ नही हूँ, तो ज्ञान क्षण होता है, एक समय होकर मिट जाता है। होते रहते है, मिट जाते है। मै तो कोई आत्मा ही नही हू। है जो कोई जीव वह एक समय वाला है, एक समय रहता और मिट जाता है। उनका भी क्या नुक्सान है ? किसलिए हित किया जाय और एक जब मै कुछ नही हू तो किसलिए हित किया जाय ? तो मानना होगा कि हम नित्य और अनित्य स्वरूप है तभी हमे धर्मकी आवश्यकता है, संसारसकटोसे छूटनेका उपाय बनानेकी आवश्यकता है।

वस्तुको अनेकान्तात्मक न माननेपर अर्थक्रियाकारित्वकी असिद्धि--यदि अनेकात्मक वस्तु स्वीकार न की जाय तो उससे कोई काम नही बनता। जैसे उदाहरण लीजिये गाय का। तो कोई लोग कहते है कि गोत्व एक ही स्वरूप है, सर्वव्यापक है, सामान्य है, विशेष से रहित है, तो भला ऐसे सामान्य गोत्वसे क्या काम बनेगा ? बैलपर बोझ ढोना, गायका दूध दुहना, ये सब बाते देखी जा रही है, पर एक गोत्व सामान्य माना जाय व्यक्तिसे निराला तो उस सामान्यसे कोई काम न चलेगा और सामान्यरहित विशेष माना जाय, है नही ऐसा, पर कोई आग्रह करे तो सामान्यरहित विशेष अवस्तु है, उससे भी काम क्या बनेगा ? तो जितने भी पदार्थ है वे सब सामान्यविशेषात्मक है, नित्यानित्यात्मक है, एक वस्तुमे विना विरोधके अनेक धर्म ठहर सकते है। जैसे एक पुरुषका परिचय दिया जाता है तो कहते है कि यह पुत्र भी है, पिता भी है, मामा भी है, भाजा भी है तो वहाँ दृष्टियाँ अलग अलग है। अमुककी अपेक्षा पिता है, अमुककी अपेक्षा पुत्र है, अमुककी अपेक्षा मामा है इत्यादि, पर उसमे ये सभी धर्म है ना, तभी तो मामा, भाँजा, पिता, पुत्रादिकका व्यवहार उसके प्रति किया जाता है। तो जो नाना प्राणियोके प्रति नाना प्रकारके व्यवहार चलते चले जा रहे है। उससे सिद्ध है कि इसमे धर्म भी नाना है। तो एक वस्तुमे अनेक धर्म होते है उससे उसकी सत्ता सिद्ध की जाती है।

पदार्थके यथार्थ परिचयका प्रयोजन--पदार्थका यथार्थ परिचय किसलिए करना होता है कि मोह मिट जाय। मोहसे यह जगत परेशान है, और मोह मिटाने के लिए नाना उपाय भी यह रचता है। दुख मेटनेके लिए यह जीव उपाय अनेक प्रकारके रचता है पर उसका दुख मिट नही सकता, क्योकि मोह है। जब पदार्थ बिल्कुल भिन्न है। किसीका किसीमे कुछ लगाव नही है। कल्पनासे किसीका लगाव बना करता है। जब एक वस्तुका

दूसरी वस्तुके साथ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका सम्बन्ध नही। प्रत्येक पदार्थ अपनेमे अपनी पर्यायोको करते हुए चले जाते है और अपने ही स्वरूपसे वे एक है, पर्याय अपेक्षा अनेक है, नित्य है, अनित्य है, सब कुछ बात अपनेमे ही जब घटित है तो दूसरे से कोई सम्बन्ध लेनदेन न रहा और सम्बन्ध न होने पर भी जो परको अपनाया जा रहा कि यह मेरा है, बस यही भाव दुखका कारण बन जाता है। अब वे परपदार्थ किस तरहसे परिणमे जिनको मान लिया कि ये मेरे पुत्र है, अब वे इच्छाके विरुद्ध परिणमते है तो यह दुखी होता है। क्यो दुखी होता ? इसलिए कि उसे अपना मान रखा है। और भी तो बहुत से प्राणी है, वे भी तो कितना विपरीत चल रहे है पर उनके प्रति तो दुख नही होता। वहाँ दुख इसलिए नही होता कि यह मान्यता नही है कि ये मेरे है। परवस्तुओके प्रति जो यह भाव होता कि ये मेरे है, बस यही दुखका कारण हो रहा है। वही उन पुत्रादिक की प्रवृत्तियोसे दुख नही हो रहा। जिनको अपना दुख मेटना है वे अन्दरका उस तरहका भाव समाप्त करे जो कि दुःखका कारण बन रहा है। बाह्य पदार्थोमे सुधार बिगाड कर करके कोई आरामका समय नही प्राप्त कर सकता।

अपनेमें ही सुधार किये जानेसे सुधारकी शक्यता—अपने आपमे ही विचार करके ममता त्याग कर ही अपने मे शान्ति पा सकते है। और, किया भी यही जा सकता है। जैसे एक पहाड पर दो पुरुषोको घूमना था। तो एक पुरुष यह विचार करता है कि मैं इस सारे पहाडपर चमड़ा बिछा दूँ तो अच्छी तरहसे घूम फिर सकूँगा, फिर काँटे न लगेगे, और एक पुरुष यह विचार करता है कि मैं अपने ही पैरोमे मजबूत जूते पहिन लूँ फिर पर्वत पर अच्छी तरह घूमूँगा। तो आप बताओ कि पर्वतपर घूमनेके लिए कौन समर्थ हो सकेगा ? सफल तो वही हो सकेगा जो जूते पहिनकर घूमना सोच रहा है। सारे पर्वत पर चमडा बिछाकर कोई घूमना चाहे तो यह बात मुश्किल है। तो ऐसे ही समझिये कोई पुरुष यह विचार करते है कि हमारा परिवार ऐसा हो जाय, इतना धन हो जाय, ऐसी स्थिति हो जाय, ऐसी इज्जत हो जाय तो हम भली प्रकार शान्त हो सकेगे और ऐसा करने का वह यत्न भी करता है। और, एक पुरुष यह सोचता है कि यह मैं स्वय आनन्दस्वरूप हू, आत्माका और स्वरूप क्या है, ज्ञान और आनन्द। तो ज्ञान और आनन्द स्वरूप यह मै खुद हूँ, हमको अन्य करना ही क्या है ? केवल जो मिथ्या विकल्प लाद रखे है, जिनसे कोई कामकी सिद्धि नही होती, बरबादी है उन विकल्पोको हटाना है। मान लो कि न माने हम किसीको अपना तो क्या इस मुझ आत्मामे कोई आफत आती है ? और परको अगर अपना मानते है तो उसमे आफत है, यह बात स्पष्ट सिद्ध है। तो जो व्यर्थका मोह है, परको अपनानेका भीतरमे जो निर्णय है वह सकल्प दूर हो तो इसको शान्ति प्राप्त हो।

और बाहरी चीजोमे सुधार बिगाड बनाकर चाहे कि मै सुखी होऊँ तो यह हो नही सकता, क्योकि बाहरी पदार्थोमे सुधारका यत्न किया दो जगह, तो चार जगह बिगाड दिखने लगा, अब उनकी संभाल करे। और जब उन परपदार्थोकी सभालका उपयोग किया जाता है तो वह तो उलझन है। वहाँ शान्ति प्राप्त करनेका अवसर नही मिल सकता। बाहरी पदार्थो के सुधार बिगाडका यत्न करने पर इस जीवको शान्तिका मार्ग नही मिल सकता। वह यत्न करना है अपनेमे ही, और वह है भेदविज्ञान। जैसा है वैसा परिज्ञान करना यह ही शान्तिका उपाय है। तो यही बात समझी जा रही है अनेकात्मक वस्तुके ज्ञानमे।

सप्तभंगीपद्धतिमे सर्वपदार्थोंकी अनेकान्तात्मकता--प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है और पररूपसे नही है। दिख रहा है स्पष्ट। यह घडी अपने स्वरूपसे है चौकी आदिकके स्वरूपसे नही है, चौकी पुस्तक आदिकसे तो यह घडी बिल्कुल ही अलग दिख रही है। तो अब इस घडीमे अपने स्वरूपका अस्तित्व है और परस्वरूपका नास्तित्व है। तो यह घडी अपने स्वरूपसे है एक धर्म विदित किया। यह घडी पररूपसे नही है, यह दूसरी बात विदित की। अब इन दोनो बातोको कोई अलग-अलग लगाये किसी पदार्थमे तो माने कि स्वरूपसे है, वहाँ दूसरी बात न माने और किसी पदार्थमे माने कि यह पररूपसे नही है। उसमे अन्य अस्तित्व न माने तो भी वस्तुका स्वरूप नही बनता। एक ही पदार्थमे अस्तित्व और नास्तित्व है यह बात समझी जायगी क्रमश: अतएव तीसरा भंग बनता है वस्तु स्यात अस्ति स्यात नास्ति, लेकिन इन ही दोनो बातोको कोई एक साथ बताना चाहे तो कोई शब्द नही है। सब शब्द क्रमसे अपना व्यवहार करते है। तो सब धर्मोको एक साथ नही कहा जा सकता। इसलिए कहना होगा कि वस्तु स्यात् अवक्तव्य है, चारो धर्म हमको तो स्पष्ट समझमे आ रहे है। अब जब ये चार धर्म हो गए तो अन्य तीन संयोगी भंग और सिद्ध होते है। यह वस्तु है फिर भी अवक्तव्य है। वस्तु पररूपसे नही है फिर भी उतने ही स्वरूप नही, अवक्तव्य है। वस्तु अपने स्वरूपसे है, पररूपसे नही है इतना समझ लेनेपर भी वह अवक्तव्य विन्ति होती है। तो ऐसे पदार्थमे ७ प्रकारके भंग विदित होते है।

स्याद्वादशासनमें वस्तुके स्वातन्त्र्यकी घोषणा—सप्तभगीकी विवेचनाका रहस्य यह समझे कि वस्तु अपने स्वरूपमे अनेक धर्मोको लेकर स्वय स्वतत्र है। प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र है, क्योकि सत् है। किसीकी सत्ता किसी दूसरेकी दयापर नही मिली। जैसे यहाँ कोई असहाय, निर्बल लोग सोचने लगते है कि मेरी सत्ता तो इनके आधीन है, अगर ये लोग खुश रहेगे तो मेरी सत्ता कायम रहेगी। अगर ये नाराज हो जायेगे तो मेरी सत्ता कही नही है। तो ऐसा कही नही है। किसी पुरुषकी सत्ता किसी दूसरेसे उधार माँगी हुई नही है। स्वय अपने स्वरूपसे सत् है। जैसे मानो, राजाने किसी अपराधीको फाँसीकी सजा दे दी तो क्या

राजाने उसका विनाश कर दिया ? विनाश नहीं किया । जीव जीव है, वह जीव जीवमें ही रहेगा, शरीर शरीर है, अणु उन पुद्गलोंमें ही रहते हैं । वहाँ न एक अणुका विनाश हुआ, न उस जीवका विनाश हुआ । उस स्थितिमें एक ऐसी परिस्थिति हो गयी जीवकी और पुद्-गलकी कि पुद्गल तो सब सूना पड़ा है और जीव यहाँसे भाग गया है, पर सत्त्वकी दृष्टिसे देखो तो किसीके सत्त्वको किसीने नाश नहीं कर पाया । क्योंकि प्रत्येक पदार्थ है, स्वतंत्र है, अपने ही स्वरूप में है, किसीकी कृपासे नहीं है । सो यों वस्तु अनेकात्मक है और अपनी स्वतंत्र सत्तासे अपना अस्तित्व रखते जाते हैं । अब वस्तुमें अनेक बातें प्रकट नजर आती हैं । मैं जीव हूं । सब पर्यायोंमें वही रहता है । मेरी कलकी पर्याय आज नहीं है, आजकी पर्याय कल न रहेगी । जब पर्यायको देखते हैं तो हम बिल्कुल भिन्न-भिन्न नजर आते हैं । और, जब द्रव्यदृष्टिसे देखते हैं तो सब जगह वही हम एक अभिन्न हैं । इसी तरह जब हम अपनी दशाओंको देखते हैं तो हम अनित्य विदित होते हैं और स्वरूपको देखते हैं । तो हम नित्य विदित होते हैं । ऐसा यह मैं अपने आपमें सारे वैभवको लिए हुए यह अनेकान्तमय मैं स्वयं स्वतंत्र सत् हूँ । समस्त वस्तु अनेकान्तात्मक हैं यदि वस्तु अनेकान्तरूप न हो तो वह किसी भी कार्यको नहीं कर सकती ।

जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेदि णियमेण ।
बहु-धम्म-जुदं अत्थं कज्ज-करं दीसदे लोए ॥२२५॥

अनेकान्तस्वरूप वस्तुमें अर्थक्रियाकारित्व—वस्तु अनेकान्तस्वरूप है । तभी वह नियमसे कार्य करती है । जो बहुत धर्मोंयुक्त है वही पदार्थ क्रिया कर सकता है । अब यही देख लो—दो चीजें हैं, मानो—एक खाने की वस्तु और एक न खा सकने की वस्तु । एक ककड पडा है और एक बूंदी पडी है । अब बूंदी अपने स्वरूपसे है और ककड आदिक पर-स्वरूपसे नही है यह बात वहां सिद्ध है कि नही ? यदि ऐसा नही मानते तो इसका अर्थ है कि वह बूंदी जैसे अपने बूंदीपनका काम करती है, खानेके काम आती है इसी तरह ककड का भी काम कर बैठे या ककड बूंदीका काम कर बैठे । तो इसमे जो अपने-अपने जुदे जुदे काम होते दिख रहे हैं यह बात सिद्ध करती हे कि वस्तु अपने स्वरूपसे है और दूसरेके स्वरूपसे नही है । यदि यह व्यवस्था न हो तो जगत शून्य हो जायेगा । हम अपने स्वरूपसे भी होंगे और परस्वरूपसे भी होंगे । फिर हम रहे क्या ? कोई बात सिद्ध नही हो सकती । तो जब वस्तु अनेकान्तस्वरूप है, अपने स्वरूपसे ही है, परस्वरूपसे नही हे तभी उससे कार्य बनता हे । सभी बाते एक पदार्थमे घटित करते जाइये, यह पदार्थ अपने रूपसे है पर-रूपसे नही । यह पदार्थ सदा रहने वाला है और सदा रहता नही, यह पदार्थ अपनी पर्याय मे एकमेक है पर वे पर्यायें परस्परमे एकमेक नही है आदिक अनेक स्वभावोसे सम्पन्न पदार्थ

ही अर्थक्रिया कर सकता है ।

प्रसिद्ध लौकिक उदाहरणोंसे अनेकान्तस्वरूपका प्रकाश—पदार्थ अनेकान्तस्वरूप है, इस विषयमे मुख्य दो उदाहरण प्रसिद्धसे ले लीजिये । एक तो यह प्रसिद्ध है कि एक ही मनुष्य पिता, पुत्र, मामा, भाँजा, पति, भाई आदिक सब कुछ बन गया, तो वह पुत्रकी अपेक्षासे पिता कहा जाता है, पिताकी अपेक्षासे पुत्र कहा जाता है, भार्याकी अपेक्षासे पति कहा जाता है और बहिनकी अपेक्षासे वह भाई कहा जाता है । अनिष्टकी अपेक्षासे किसी का शत्रु कहा जाता है, किसी इष्टकी अपेक्षासे मित्र कहा जाता है, तो पुरुष तो वही एक है और उसमे धर्म नाना विदित हो गए । दूसरा उदाहरण जो प्रसिद्ध है वह यह है कि कोई चार अंधे पुरुष कही जा रहे थे, वे जन्मसे अन्धे थे । तो रास्तेमे एक हाथी मिला, वे हाथी का स्वरूप समझने लगे । मान लो हाथी बैठा हुआ था तो वे अंधे छूने लगे । तो एकके हाथ मे सूढ आयी तो वह कहता है कि हाथी मूसल जैसा होता है, दूसरेके हाथमे पेट आया तो वह कहता है कि हाथी ढोल जैसा होता है, तीसरेके हाथमे पैर आये तो वह कहता है कि हाथी खम्भा जैसा होता है, और चौथेके हाथमे कान आये तो वह कहता है कि हाथी सूप जैसा होता है, अब वे चारो अपनी अपनी बात बोल रहे थे और परस्परमे झगड रहे थे । इतनेमे कोई एक सूझता व्यक्ति वहाँसे निकला तो उसने उन चारोकी बातको सुनकर समझ लिया कि वे क्यो लड रहे थे । अब वह उन्हे समझाने लगा—भाई तुम लोग आपस मे क्यो लडते हो ? तुम सभी लोग अपनी बात ठीक कह रहे हो । हाथी सूढकी दृष्टिसे मूसल जैसा होता है, पेटकी दृष्टिसे ढोल जैसा, पैरोकी दृष्टिसे खम्भा जैसा तथा कानोकी दृष्टिसे सूप जैसा होता है । उसकी बातको सुनकर उनका पारस्परिक विवाद मिट गया । ऐसे ही आजकल जितने भी दर्शनोकी उपपत्ति हुई है वह सब इन्ही धर्मोके विवादपर हुई है । कोई कहता है कि जीव नित्य है, अपरिणामी है, उसमे कुछ भी परिवर्तन नही होता, परिणमन नही होता, तो कोई यो कह बैठे कि जीव ही एक कुछ नही है । जो एक-एक परिणमन कहा जा रहा है वही मात्र एक-एक जीव है । लो भिन्न-भिन्न दर्शन बन गए, पर कोई समझदार अनेकान्तकी जिसकी बुद्धि स्पष्ट हुई है वह समझाता है कि भाई एकान्त हठ क्यो कर रहे हो ? एक दूसरेकी बात समझ लो । यह जीव नित्य भी है, क्योकि इसकी पर्यायें बनती है । बिना पर्यायोके कोई द्रव्य नही ठहर सकता । तो उन पर्यायोकी दृष्टिसे जीव अनित्य है । तो दूसरोको समझाया जाता कि क्यो एकान्त कर रहे हो, जीव तो सदा अकेला रहने वाला है । हम जिन्हे जीव मानकर रह रहे है वे पर्यायें है, वे सब विनाशीक है और एक-एक पर्याय है । तो द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि दोनोका समन्वय करके जब समझाया जाता है तो दोनोका विवाद समाप्त हो जाता है तो वस्तु जब अनेकान्तस्व-

रूप है, नित्य भी है, अनित्य भी है तब तो उसमे काम बनेगा। केवल नित्य हो वह भी कुछ काम करनेमे समर्थ नही और मात्र अनित्य हो, क्षण-क्षणमे मिटने वाली हो उससे भी कुछ काम नही बनता। वह नित्यानित्यात्मक है।

स्वपदार्थके नित्यानित्यात्मकत्वके परिचयकी प्रयोजकता—हमको चाहिए कि हम ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे सासारिक अवस्थाओकी प्रवृत्ति तो मिट जाय और शुद्ध परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो। यह बात बन सकेगी। अपने आपमे जो ध्रुव परमात्मस्वरूप चैतन्यस्वरूप अनादि अनन्त अन्त विराजमान है, जिसको हम प्रज्ञाके बलसे देख सकते है उसकी उपासना करे। उसकी उपासनाके प्रसादसे सारे विकल्प टलेगे और मोह रागद्वेप हटेंगे, अपने ज्ञानस्वभावमे अपना उपयोग स्थिर होगा तो इसके प्रतापसे भव-भवके सचित कर्म कटेंगे, जन्म मरण मिटेगा और ससारके सकटोसे सदाके लिए छुटकारा मिल जायगा। यदि यह काम न कर सके तो समझ लो अनादिसे अनन्तकाल तक वह एक ही दुःख है और अपनी करनीके अनुसार हमारी नाना तरहकी पर्यायें बनती रहती है, उनमे जो अज्ञानभरी पर्यायें है वे तो हमारी बरबादी करने वाली है और जो ज्ञानमय पर्यायें है, अपने स्वरूपको समझनेमे रहने वाला परिणमन है वह हमारा भला कर सकता है। अत प्रत्येक समय अनेक उपायोसे हम आत्मतत्त्वका ज्ञान करे, आत्मस्वरूप समझे और उस सम्यग्ज्ञानमे ही प्रसन्न रहा करे।

एयत पुणु दव्व कज्ज ण करेदि लेस-मेत्त पि।
ज पुणु ण करदि कज्ज त वुच्चदि केरिम दव्व ॥२२६॥

किसीको एकान्तमात्र माननेपर कार्यकारिताका अभाव होनेसे उसके ही अभावका प्रसंग—यहाँ यह बताया जा रहा है कि पदार्थ अनेक धर्मात्मक है। किसी भी पदार्थको लो, वह एक भी है, अनेक भी है, नित्य भी है, अनित्य भी है, अपेक्षासे उस पदार्थमे अनेक धर्म की सिद्धि होती है। जैसे जीव है वह सदा रहता है उसका कभी नाश नही होता, इस कारण वह नित्य है। पदार्थ उसे कहते है जिसका अस्तित्व हो, जो है वह पदार्थ है। तो जीव भी है वह भी पदार्थ है, तो जीव पदार्थ कभी नष्ट नही होता, इस कारण नित्य है, किन्तु जीवमे प्रतिसमय नई नई अवस्थाये बनती है जैसे ऊपरी पर्याय तो नर, नारक, तिर्यञ्च मनुष्य आदिक अवस्थाये है और भीतरमे क्रोध, मान, माया, लोभादिक दशाये है तो इन दशाओको दृष्टिसे जीवको अनित्य कहा जाता है अर्थात् जो दशा अब है वह अगले समय नही रहती, दशाये बदलती रहती है, क्योकि पदार्थ परिणमनशील होते है, जो कुछ भी है वह किसी न किसी अवस्थाको धारण करता रहता है। तो अवस्थाओकी दृष्टिसे अनित्य है जीव और अपने स्वभावकी दृष्टिसे नित्य है जीव। किसीको एकान्तरूप माना

जाय, अनेकान्तात्मक न माना जाय तो पदार्थकी सिद्धि नही हो सकती। वह कुछ काम ही न कर सकेगा। पदार्थ है तो उससे कोई न कोई काम होता है। जिसे कहते है अर्थक्रिया। जैसे जीव वह जानता है, किसी जगह रमता है, कुछ विश्वास रमता है, इच्छाये करता है, शान्त होता है, कुछ न कुछ इसमे काम होते ही तो है। जो भी पदार्थ है उसमे कुछ न कुछ काम होगा ही होगा। यदि वस्तुको अनेकान्त न मानेगे, एकान्त स्वीकार करेगे जैसे कि जीव तो नित्य ही है, अनित्य किसी भी दृष्टिसे कोई न माने या अनित्य ही है, किसी भी दृष्टिसे नित्य न माने कोई तो वहाँ काम नही बन सकता, और जहा अर्थक्रिया न हो फिर वह कैसे द्रव्य है ? कुछ भी द्रव्य नही हो सकता, उसीको विवरणके साथ सुनो—

जीवमें सत्त्व, असत्त्व, एकत्व, अनेकत्व आदि किसीका भी एकान्त कर लेने पर अर्थ क्रियाके अभावका प्रसंग—एक जीव पदार्थ है, वह सदा रहता है इसलिए नित्य है। अवस्थाये नही रहती, अवस्थाये मिट जाया करती है और अवस्थावोमे तन्मय था वह जीव, जब अवस्था थी तो उस अवस्था संयुक्तद्रव्यपनेसे नष्ट हो गया जीव, अनित्य हो गया। वह जीव सब दशाओमे वही वही एक है और जब पर्यायको देखते है तो पर्यायदृष्टिसे वहा अनेकता है। जैसे जो मनुष्य था सो देव नही, जो देव है सो मनुष्य नही, ऐसी विभिन्नता, अनेकता नजर आती है। जो क्रोधी था सो मानी, मायावी आदिक अवस्थारूप है। नही इत्यादि भीतरी परिणतियाँ अनेक है इनमे भेद पडता है तो यह अनेक है। अब देखो—उन सब पर्यायोमे वह जीव अभिन्न है, वही तो एक है पर पर्याये परस्परमे भिन्न-भिन्न है। तो इस तरह जीवमे नित्यपना अनित्यपना एकपना अनेकपना, भिन्नता अभिन्नता आदि ये सब बाते सिद्ध होती है। अब उसमे से कोई एक ही धर्म माना जाय तो कुछ कार्य नही कर सकता, उसकी सत्ता ही नही रह सकती, उसमे परिणमन नही बन सकता। जैसे मान लो कि पदार्थ सत् ही है, सब कुछ सत् ही है, असत् है ही नही, जैसे कि तथ्य, तो यह है कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे सत् है पररूपसे असत् है, जैसे मै मै ही तो हू अन्य और चीज तो नही बन गया तो अन्य और कुछ मै नही बना, इस दृष्टिसे तो कहना होगा कि मै असत् हूँ, मायने अन्य कुछ नही हो सकता। सत् मायने है, असत् मायने नही है। तो अन्य पदार्थ की अपेक्षासे असत् और अपने स्वरूपकी दृष्टिसे सत्, इसमे यह आ गया कि वह सत् और असत् है। अब इसमे कोई यह आग्रह करे कि वस्तु सत् ही सत् है, मायने है ही है। अपने स्वरूपसे भी है, परके स्वरूपसे भी है। तो मै मै भी हो गया और दुनियाभरके पदार्थ भी हो गया, तो अब मै क्या रहा ? कुछ भी नही। तो वहाँ काम नही बन सकता। यदि यह माना जाय कि पदार्थ असत् ही असत् है तो मै जब हू ही नही तो मुझमे काम क्या हो ? तो जो अनेकात्मक न हो उसने अर्थक्रिया नही हो सकती। इससे मानना होगा कि वस्तु

अनेकात्मक है। काम न हो कुछ तो वह पदार्थ क्या ? जैसे आकाशपुष्प है, है नही वह पदार्थ, अवस्तु है तो क्या आकाशके फूलकी माला बनाकर पहिनी जा सकती है ? नही पहिनी जा सकती। जो है ही नही उसमे कोई काम नही बनता। जो है उससे ही काम बनता है और है भी तभी है वह जब कि वह अनेकान्तात्मक हो।

सामान्य विशेष आदि धर्मोंमें किसी एक धर्मका एकान्त मान लेनेपर अर्थक्रियाकी असिद्धि––सामान्य न माने तो विशेषका अभाव, विशेष न माने तो सामान्यका अभाव, विशेष माने तो सामान्यका अभाव। उससे कोई काम न बनेगा। तो मानना होगा कि पदार्थ अनेकधर्मात्मक है। यदि सारे पदार्थोंको एक मान लिया जाय तो वहाँ कोई काम ही नही बन सकता। यदि पदार्थको ऐसा क्षणिक मान लिया जाय कि जो एक-एक पर्याय है सो ही पूर्ण द्रव्य है तो वहाँ भी कोई काम नही बन सकता। जैसे जीवको माना कि मै सदा काल एक ही रूप रहता हू तो परिवर्तन क्या होगा ? यदि यह माने कि मैं तो एक समय रहता हू और यो एक शरीरमे एक दिनमे लाखो जीव पैदा हो जाते है, सुबह जो आत्मा था सो अब नही है, जो अब आत्मा है सो दोपहरको नही है, इस तरह एक एक क्षणमे नया-नया आत्मा होता है। वहाँ कोई एक न माना जाय तो जो आत्मा पैदा हुआ वह पैदा होते ही नष्ट हो गया, दूसरा हुआ नष्ट हो गया, काम कौन करेगा ? प्रवृत्ति कौन करेगा ? सो यदि सर्वथा क्षणिक माने तो वहाँ भी अर्थक्रिया नही हो सकती। कोई मानता है कि आत्मा अचेतन है, उसमे चेतना नही है, तो अगर अपेक्षासे माने कि अमुक प्रकारका विकल्प नही है इसलिए उसकी दृष्टिसे अब यह अचेतन है, अथवा इसके विकल्प नही है, वहाँ चेतना नही है यो अचेतन है, अथवा इसमे प्रमेयत्व आदि अचेतन धर्म भी है, यो अचेतन है। यह सब तो प्रकरणकी बात होगी, मगर सर्वथा ही अचेतन है तो आत्मामे अर्थक्रिया क्या रहेगी ? यो कुछ भी एकान्त किया जाय तो काय नही बन सकता।

आत्मामें मूर्तता या अमूर्तताके एकान्तकी अनुपपत्ति––अब आत्माके सम्बधमे यह बताओ कि यह मूर्तिक है या अमूर्तिक ? मूर्तिक उसे कहते है जैसा कि ये शरीरादिक चीजे दिखती है। जो पकडा जा सके, बन्धनमे आ सके वह मूर्तिक है। तो बताओ आत्मा मूर्तिक है कि अमूर्तिक ? तो कुछ तो नजर आता है कि आत्मा मूर्तिक है। प्राय साधारण लोग ऐसा ही सोचते है और कहते है कि ये जो पशु पक्षी, मनुष्य आदिक दिख रहे है ये जीव है। तो उनकी दृष्टिमे जीव मूर्तिक लगा, लेकिन यह तो कल्पना कीजिए कि यदि जीव सर्वथा मूर्तिक ही है तो उसमे जानन कैसे बनेगा ? मूर्तिक पदार्थमे जानन देखन नही बनता। यह जीव मूर्तिक है तो यह क्या जान पायगा ? मूर्तिक पदार्थ ज्ञानसे रहित होते है और दूसरी विडम्बना यह है कि यदि सर्वथा जीवको मूर्तिक ही मान ले तो फिर जीवका

मोक्ष नही हो सकता । और मोक्ष होगा तो यह कहना होगा कि मूर्तिक पदार्थका मोक्ष होता है । पुद्‌गलका मोक्ष होता है । तो जो सर्वथा मूर्त माने जीवको वहाँ भी काम नही बनता और कोई सर्वथा अमूर्त माने कि सदा काल यह सर्वथा समग्र रूपेण अमूर्त है याने इतना तक भी न स्वीकार करे कि संसार अवस्थामे जब कर्मबन्धन है तो यह उपचारसे मूर्तिक है । कर्मोसे बंधा है, उनसे अलग नही है, इस ढगसे मूर्तिक है, इसको स्वीकार न करे तो ससार कैसे चलेगा ? संसारका लोप हो जायेगा । कौन जन्ममरण करे ? आत्मा तो सर्वथा अमूर्त है । बन्धन नही रहता, तो न सर्वथा मूर्त और न सर्वथा अमूर्त सिद्ध किया जा सकता है ।

आत्मामें एकप्रदेशित्व, अनेकप्रदेशित्व, शुद्धता, मलिनता किसी भी एकान्तकी अनुपपत्ति—अच्छा य बतलाओ कि आत्मा एकप्रदेशी है या अनेकप्रदेशी ? जैसे कोई लोग मानते है कि आत्मा तो सिर्फ वटके बीजकी तरह ही है । जैसे वटके फलमे अनेक बीज होते है, उनमे एक बीज कितना छोटा होता है ? उतना छोटा आत्मा है और वह शरीरमे निरन्तर इतनी तेजीसे चक्कर लगाता रहता है कि लोगोको यह भ्रम हो जाता है कि आत्मा इतना विशाल है, अनेकप्रदेशी है । ऐसा भी मानने वाले कोई दार्शनिक है । यदि इस तरह और इससे भी बढकर एकप्रदेशी माना जाय आत्माको तो उससे कोई काम न बन सकेगा, अर्थक्रिया न हो सकेगी । वह अणु मात्र आत्मा कहाँ चक्कर लगाता है, यह प्रतीति विरुद्ध बात है । जब हम कभी कोई सुख पाते है तो कितनी जगह हम एक साथ रोमाचित हो जाते है ? कितनी जगहमे हमको उस सुखका अनुभव होता है ? तो प्रतीति यह बताती है कि आत्मा अनेकप्रदेशी है । और, यदि यह कहा जाय कि जैसे ये चौकी आदिक अनेकप्रदेशी है, पहिले पीछे अनेक अवयव है और इनमे एक-एक करके अनेक जगह है ऐसे ही आत्मामे भी भिन्न-भिन्न अनेक प्रदेश है, तब भी कार्य नही बन सकता । इसमे स्वभाव ही कुछ न रहेगा, भिन्न भिन्न अणु जैसे हो गए । तो कोई एकान्त की बात कहना सिद्ध नही होगी । अच्छा बताओ यह हम आपका आत्मा शुद्ध है कि सर्वथा मलिन है ? यदि कहो कि सर्वथा शुद्ध है तो फिर इसमे बन्धन न हो, कर्म न हो जन्म मरण न हो । फिर ये सब दशाये क्यो हो रही है ? इससे सिद्ध है कि जीव सर्वथा शुद्ध नही है, और यदि यह कहो कि जीव तो सर्वथा ही मलिन है याने वह अपने स्वभावमे सत्वमे अपना कुछ स्वरूप निराला नही रखता, ऐसा सर्वथा यदि अशुद्ध मान लिया जाय तो यह कभी शुद्ध ही नही हो सकता क्योकि जब स्वभाव ही शुद्ध नही है जीवमे तो यह परमात्म पर्याय कैसे प्रकट कर सकता ? तो यो अनेक विधियोसे विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि पदार्थ अनेकान्तात्मक है । अब उसमे से गाथा द्वारा यह बतला रहे है कि किसी पदार्थको

सर्वथा नित्य मान लिया जाय तो वह अर्थक्रिया नही कर सकता। उसमे प्रवृत्ति नही हो सकती।

परिणामेण विहीणं णिच्च दव्व विणस्सदे णेव।
णो उप्पज्जेदि सया एव कज्जं कहं कुणदि ॥२२७॥

मोहसंकटसे छुटकारा करानेमें तत्त्वज्ञानकी समर्थता—यदि पदार्थको परिणमनसे रहित माना जाय तो वह उत्पन्न ही नही हो सकता, विनष्ट ही नही हो सकता, फिर कार्य ही क्या बनेगा ? अपने आपके स्वरूपकी प्रतीतिके लिए यह समस्त तत्त्वोका वर्णन चल रहा है। मैं अपने आपको समझ जाऊँ कि मैं वास्तवमे हूँ क्या ? अपनी समझ बिना जगतके जीव बाह्य पदार्थोंमे ही उपयोग गाडकर दु खी हो रहे है। सावधानी यही करना है। तत्त्व समझ जाये और हम बाह्यमे न रमे, ऐसी अपनी वृत्ति बनाये तो हमारे समस्त दु ख दूर हो सकते है। और, जब बाह्यमे चित्त रमाते है उतना ही हम दु खी होते है। रहना कुछ नही है ? ये साधन, ये संयोग, ये घर, ये कुटुम्बीजन कुछ भी अपने साथ रहने का नही है। इसको अधिक क्या सिद्ध करना है ? जो कुछ अब तक गुजरा है उससे ही सिद्ध है कि यहाँ कुछ भी रहनेका नही। हमारे बाबा, बडबाबा ये भी अपनी भरी पूरी गृहस्थीमे रहते थे, अब क्या है उनका ? तो इसी तरह आज भले ही कुछ व्यवहार बन रहा है मगर यहाँ है क्या हमारा ? छोडकर जाना ही होगा। कुछ ही समयकी बात है। अब इस ही कुछ समयमे कुछ चेत गए, अपने आपके आत्मापर कुछ दया कर ली गई तब तो हमारा उद्धार है और यह दुर्लभ मानवजीवन पाना सफल हो जायगा और ऐसे ही मोह ममतामे अगर शेष जिन्दगी भी बिता दी तो उसमे आत्माका कोई उद्धार नही है। थोडे समयकी बात है, इस थोडेसे समयमे अगर चेत गए तब तो सब अनन्तकाल हमारा शान्ति मे गुजर जायगा और अगर न चेते तब तो हमारा भविष्य बिगड जायगा। अगर यहासे मरकर पशु पक्षी कीडा मकौडा आदि बन गए तो फिर क्या कर सकेंगे ? तो इस थोडे समयकी सावधानीपर हमारा सब भविष्य निर्भर है। अब यदि एकदम आसक्तिसे ममतामे ही जुटे रहे, अपने उपयोगको ममत्वमे ही लगाये रहे तो फिर चिरकाल तकके लिए बुरा हो गया और अगर इस थोडे समयमे चेत जाये तो फिर चिरकाल तकके लिए भविष्य सुन्दर रहेगा।

अपना आकिञ्चन्य—अपना कही कुछ नही, मरनेपर क्या साथ रहता आदि बात तो एक स्थूल दृष्टिसे कही जा रही है। अब जरा कुछ भीतरी दृष्टिसे देखे तो इस समयमे भी जिस समागमके बीच हम आप है वह समागम कुछ भी नही लग रहा, न उससे सुख होता, न उससे दु ख होता, न उससे हमारा सुधार हो रहा, न बिगाड हो रहा। हम अपना

विकल्प बनाते हैं उस विकल्पसे तो सुखी दु खी होते है, उन्ही विकल्पोसे हमारा बिगाड होता है। यहा कोई हमारा नही है। यदि हम मान ले कि यह घर मेरा है तो मान लेने मात्रसे घर मेरा न बन जायगा। मान लो अपना मान भी ले कल्पनासे तो वह अपना न बन जायगा। एक साधु पुरुष किसी नगरकी गलीसे जा रहा था, रास्तेमे एक हवेलीके द्वारपर खडे हुए पहरेदारसे पूछा—क्यो भाई यह धर्मशाला किसकी है ? तो पपरेदार बोला--महाराज, यह धर्मशाला नही है, यह तो अमुक सेठकी हवेली है। आप आगे चले जाइये, वहाँ धर्मशाला मिलेगी। तो साधुने फिर कहा—मै और कुछ नही पूछता, मै तो पूछता हू कि यह धर्मशाला किसकी है ? पहरेदारने फिर वही कहा। इतनेमे वह सेठ (मकान मालिक) निकला और कहता है—महाराज ! यह धर्मशाला नही है, यह तो आपकी हवेली है। धर्मशाला तो आगे है, हाँ आप यदि ठ्रना चाहे तो ठहर जाइये। तो साधु पूछता है—इसको किसने बनवाया ? ·हमारे वाबाने। · तुम्हारे बाबाजी इसमे कितने दिन रहे ? · महाराज वह तो पूरी वनवा भी न पाये थे, पहिले ही मर गए थे···फिर किसने पूरी बनवाया ? · हमारे पिताने।···तुम्हारे पिताजी इसमे कितने वर्ष रहे ? कुल ५ वर्ष रहे, फिर गुजर गए। · अब आप इसमे कितने वर्ष रहेगे ? लो अब उस सेठकी आखे खुली और वह सेठ महाराजके पैरो पडकर कहता है—महाराज ! सचमुच मै भूला था, यह हवेली मेरी नही। यह तो धर्मशाला है। और, एक बात और भी देखो कि यहाकी धर्मशालाओमे तो प्रेसीडेन्ट वगैरहसे कह सुनकर तो १०-१५ दिन और भी ठहरा जा सकता है, पर यह धर्मशाला (हवेली) ऐसी है कि मरणके बाद कोई एक मिनटके लिए भी नही ठहर सकता। तो आखिर यहा अपना है क्या ? कुछ भी तो अपना नही है, सब कुछ छोडकर जाना होगा।

वैराग्य विना शान्तिकी असंभवता—यह जीव जब इन मायामयी पुरुषोपर नजर करता है कि इस नगरमे अमुक ऐसा धनी है, अमुककी ऐसी इज्जत है, तो सारी सुधबुध खोकर उन विकल्पोको करने लगता है। उस ममत्वमे बढता है। तत्त्व देखो—इन बाहरी प्रसगोमे फसनेमे सार कुछ नही मिलता। दु खी होते जाते और उसी दु खके काममे लगे रहते। बस यही कार्यक्रम बना हुआ है। जैसे कोई पूछे कि आपका प्रोग्राम क्या है ? तो उसको उत्तर यह देना चाहिए कि हमारा तो एक यही प्रोग्राम है दु खी होते जाना और दु खी होनेके ही काममे लगते जाना। अन्य कोई दूसरा प्रोग्राम नही है। कुछ भी प्रोग्राम बनाया जाय, बात वहा इतनी ही मिलेगी। दु खी हो रहे है परके ममत्वसे और उस दु ख को मेटनेके लिए परका ममत्व करना ही उपाय समझते है। बुद्धिमे ऐसी विपरीत वात बैठी हुई है कि इन स्त्री-पुत्रादिकके प्रेमसे मेरे दु ख शान्त होगे। तो रागसे उत्पन्न हुए दु खको

मेटनेके लिए रागकी ही औषधि की जा रही है तो वह दुःख मिटे कैसे ? जिस क्षण किसी भी विवेकके कारण राग न रहेगा, वैराग्यमे आत्मा आयगा उस क्षण इसको शान्तिका अनुभव होगा। तभी तो बडे-बडे तीर्थंकर चक्रवर्ती जैसे पुरुषोने भी बडी विभूतिको त्यागकर आत्मामें ही चित्त दिया। बताओ उन तीर्थंकरोको गृहस्थीमे कितना सुख था, जिनके चित्त को रमानेके लिए बचपनमे इन्द्रादिक देव उन जैसा ही रूप रखकर उनके पास आते थे और उन तीर्थकर देवके चित्तको रमाते थे। बडे बडे देव और इन्द्र सेवक बनकर उन तीर्थकर देवके पास रहा करते थे। वे देव उन तीर्थकर देवकी पूजा किया करते थे। बताओ क्या कष्ट था जिससे उन्होने गृहस्थी छोडा और जगलमे रहे ? अरे वे जानते थे कि यह ससार दुःखमय ही है। यहा किसी भी समय इस जीवको शान्ति नही है। ये सब मायामयी बाते है, इनमे मेरा निस्तारा नही है, मेरा आत्मा ही मेरे लिए सर्वस्व है और उससे ही मेरा काम चलता है चलेगा। मैं अपनेको यथार्थरूपमे समझू और उसमे ही रम जाऊँ तो सारे कष्ट दूर हो जायेंगे। विवेक करके तीर्थंकरोने वैभव त्यागा और अपने आपमे सतोष पाया।

ज्ञानानुभवसे संकटोंका परिसमापन—जैसे कछुवा नदीमे अपनी चोच उठाकर चल रहा हो तो उसकी चोचको चूँटनेके लिए अनेक पक्षी उस पर मडराते है, वह कछुवा व्याकुल होकर यत्र तत्र भगता है। पर रे कछुवे, तेरेमे तो वह कला है कि यदि तू उसका उपयोग करले तो तेरे समस्त दुःख दूर हो जाये। तेरी कला यह है कि पानीमे चार अगुल तू डूब तो जा, बस फिर ये पक्षी तेरा क्या कर सकेगे ? तो इसी प्रकार यह जीव अपने उपयोगकी चोचको बाहर निकाले हुए है। बाह्यपदार्थोको चित्तमे बसाये है, उनमे रमता है उनसे ममता करता है। तो चारो ओर से यह संकटोमे घिरा हुआ है, अनेक प्रकारके विकल्प बन गए है, विकल्प ही सकट है। तो क्यो व्यर्थमे ये सकट उठाये जा रहे है ? हे आत्मन् ! तुझमे तो ऐसी सहज कला है कि तेरे सारे सकट अभी दूर हो जाये। अपने भीतर मे दृष्टि कर। अपनेको सबसे निराला देख ! केवलज्ञानमय अपना अनुभव कर। मै ज्ञानमात्र हूं, यही मेरा सर्वस्व है। बस उस ही मे तू रम जा, अन्य कोई विकल्प मत कर। किसी को अपना मत मान। ज्ञानका अनुभव होगा, परम शान्तिका अनुभव होगा, तेरे सभी सकट अभी मिट जायेगे। तो संकट दूर करनेके लिए ही वस्तु का यथार्थ ज्ञान किया जाता है। यथार्थ ज्ञानको हमे बडे प्रयत्न करके प्राप्त कर लेना चाहिए।

पज्जय-मित्त तच्च विणस्सर खणे खणे-वि अण्णण्ण।
अण्णइ-दव्व-विहीणं-ण य कज्ज कि पि साहेदि ॥२२८॥

नित्यैकान्तकी तरह अनित्यैकान्तमें भी अर्थक्रियाकी असंभवता—प्रकरणमे वस्तुका

स्वरूप वता रहे है कि प्रत्येक पदार्थ नित्य भी है, अनित्य भी है । चूँकि वह पदार्थ सदाकाल रहता है इस कारण तो नित्य है और उसमे जो अवस्थाये होती है वे अनित्य है, जुदी जुदी है । जैसे जब मनुष्य है तब मनुष्य है, मनुष्य मर कर देव बना तो देव है, मनुष्य न रहा । तो चूँकि इन पर्यायोमे परस्पर भेद है, इस कारण पर्यायदृष्टिसे अनित्य है, यो नित्यानित्यात्मक मानने पर ही इसमे परिणमन बनेगा, काम बनेगा, व्यवहार बनेगा । यदि वस्तुको अनेकान्तरूप न माना जाय और किसी एक ही बातका हठ किया जाय तो वहाँ कोई कार्य नही बन सकता । जैसे पहिली गाथामे बताया था कि जीवको सर्वथा नित्य मान लिया जाय उसमे कोई परिणमन न माना जाय तो ऐसी स्थितिमें इस आत्माका कोई काम नहीं होगा । परिणमन नही है तो भाव कहाँसे बने ? अच्छा बुरा, कषाये, शान्ति आदि कुछ भी बात न बनेगी, फिर यह ससार भी नही बन सकेगा । तो जैसे सर्वथा नित्य माननेमे वस्तु अर्थक्रियाकारी नही होता इसी प्रकार सर्वथा अनित्य माननेमे भी कार्य नही बन सकता । सर्वथा अनित्यका अर्थ यह है कि किसी रूपमे भी कुछ भी न था, और बन गया तथा बना कि तुरन्त मिट गया, ऐसा क्षणिकवादमे माना है ।

ज्ञानक्षणोंके क्षणक्षयमें कार्यव्यवस्थाकी असिद्धि—जैसे हम आपका जो शरीर है इस शरीरमे जो जीव है सो वह जीव एक नही माना क्षणिकवादियोने, किन्तु माना है यह कि क्षण-क्षणमे प्रति सेकेण्डमे उससे भी कम समयमे नया-नया जीव ही उत्पन्न होता है और पैदा होते ही नष्ट हो जाता है । उनको इस सिद्धान्तमे कौनसा हित दीखा जो यह सिद्धान्त बनाया ? तो उन्होने इसमे यह भलाई देखी होगी कि हम यह समझ जायें कि नया नया जीव होता है । कोई एक जीव तो है नही इसलिए कुछ एक नही माने और यो समझ ले कि वे भिन्न-भिन्न जीव है तो इसमे संस्कार न बन पायेगा । मै हू, कल था, अब हू, फिर हू, तो वह विकल्प बढाएगा, और जब मान लेंगे कि मैं हू ही नही, ये तो नये-नये जीव उत्पन्न होते है तो उससे उपेक्षा हो जायेगी, मोह मिटेगा । यह बात ढूँढी क्षणिकवादियोने लेकिन यह बात निभ कहाँ सकती थी ? जब आधार ही असत्य है तो यह बात बन न सकेगी । तो उनका कथन है कि जैसे एक तेलका दीपक जलाया गया तो उसमे बारी बारी से आने वाली एक-एक बूँद दीपक बनती जाती है । तो वे दीपक न्यारे-न्यारे है । यो एक-एक बूँदका एक एक दीपक माना । मगर वे दीपक निरन्तर बनते जा रहे है तो उसमे यह भ्रम हो जाता कि यह एक ही दीपक है । इसी तरह क्षणिकवादी कहते है कि शरीरमे नया नया जीव प्रति समय उत्पन्न होता रहता है और निरन्तर होता रहता है, इस कारण यह भ्रम बन गया कि वही एक जीव है । है तो ये न्यारे-न्यारे और एक जीव होनेका इस कारण भ्रम हो गया कि जो जीव मरा, उत्पन्न होते ही वह अपना आकार, अपना चार्ज,

अपने विकल्प सब दूसरे जीवको सौप देता है। तो इस कारण भी एक जीव माननेका भ्रम हो गया। तो क्षणिकवादमे क्षण-क्षणमे नया-नया जीव बनता है। कोई एक जीव नही है ऐसा माना है लेकिन ऐसा माननेमे कोई काम न बन सकेगा। जब अन्वयी द्रव्य न रहा अनादिकालसे अनन्तकाल तक रहने वाला कोई एक पदार्थ न रहा तो वहा कार्य क्या बनेगा ? परिणमन क्या होगा ? और, फिर नया-नया जीव बनता है इस स्थितिमे यह विडम्बना बनेगी कि पाप तो किया दूसरेने और फल भोगेगा कोई दूसरा जीव, क्योकि जो जीव हुआ वह होते ही मिट गया, अब नया जीव हुआ। तो पाप करने वाला और, भोगने वाला और, कर्म बाधने वाला और वह मुक्त होने वाला और रहा, तो यह एक अव्यवस्था बनती है। इस कारण मानना होगा कि जीवद्रव्य तो एक है और उसकी परिणतिया अनेक होती है।

नित्यानित्यात्मकताके परिचयमें प्राप्तव्य शिक्षा—यो नित्यानित्यात्मक मानकर हम अपने लिए क्या शिक्षा ले कि मैं जीव हू, अनादिसे हू, अनन्तकाल तक रहने वाला हू, और मुझमे प्रतिसमय परिणमन होते है, अवस्थाये बनती है, वे अवस्थाये मेरे भावोके अनुसार बनती है। शुभ भाव करूँ तो शुभ गति मिले, अशुभ भाव करूँ तो अशुभ गति मिले, और यदि शुद्ध स्वरूपमे रमण करने लगूँ तो मुक्ति प्राप्त हो। तो अपना सारा भविष्य अपने खुद के परिणामोपर निर्भर है। हमे सावधान रहना चाहिए, क्योकि मैं हू और मेरी अवस्थाये बनती रहेगी। अब एक यह बडी जिम्मेदारी है मनुष्यभवमे कि हम अपना भविष्य सुन्दर और उत्तम बनानेके अधिकारी है। यहा ही हम अपने आत्माका कोई सत्कार न बना सके तो यह बहुत खेदकी बात होगी। देखिये—जीव अनेक हैं कीडा मकोडा, पशु पक्षी आदिक। जैसे हम जीव है वैसे ही वे भी जीव हैं। जातिकी अपेक्षा हममे और उनमे कोई विषमता नही है। चेतन हम है, चेतन वे है, उनको देखकर यह भी निर्णय करना चाहिए कि ऐसी अवस्थाये हमारी भी कभी बनी होगी, और यह भी निर्णय रखना चाहिए कि हम यदि नही चेतते तो ऐसी ही दशाये हमे प्राप्त होगी, ऐसे ही जन्ममरण करना पडेगा। अगर मरण करके कीट पतिंगे बन गए तब सोचिये कि वहाँ क्या किया जा सकता है ? मन नही है, विवेक नही है, कुछ समझ नही है, आज मनुष्यभवमे है, कुछ विवेक मिला है, पुण्यके सब ठाठ मिले है तो खूब स्वच्छन्द होकर मनचाही प्रवृत्तियाँ की जा रही है, मन चाहता है राग, मोह, तो यह आत्मा भी राग मोहमे लिप्त हो जाता है। तो इस स्थितिका फल अच्छा नही है। जो ज्ञानी संतजन हुए है वे बड़े धनिक होकर भी चक्रवर्ती होकर भी समस्त वैभवो से न्यारा अपनेको अनुभव करते थे। भरत चक्रवर्तीकी कथा पढी होगी, अनेक घटनाओमे यह बात मिलेगी कि लो हजारो राजाओके बीच बैठे है, उनकी बात सुन रहे है, उनका

नमस्कार ग्रहण कर रहे है, पर वे तो सबसे निराले अपने आपके स्वरूपपर दृष्टि किए है। रानियोके बीच कुछ हास्य भी कर रहे, मगर भीतरमे उनका उपयोग उनसे अलिप्त है। वे अपने अन्त प्रकाशमय ज्ञानस्वरूप पर दृष्टि डाले हुए है। बडे-बडे महापुरुष ऐसे हुए है जो बडे वैभवोके बीच रहकर भी अपनी यही समझ बनाये रहे कि यह सब पुण्यका ठाठ है, पौद्गलिक है, मेरेसे भिन्न है, मै तो एक चैतन्यमात्र हू। आप भी घर गृहस्थीके बीच भी इस तरहकी दृष्टि बनाकर रह सकते है।

दुर्लभ मानवजीवन व जैनशासनसे परमार्थलाभ लेनेमें भलाई— देखिये—विछुडना तो सब कुछ है ही। अगर अभीसे विवेकसे काम लेते रहेगे तब तो आत्मा सद्गतिका पात्र बन सकेगा और यदि यहाँकी इस मोह ममतामे ही अपने उपयोगको गडाये रहे तब तो फिर इसे कुगतिका पात्र ही होना पडेगा। अज्ञानभावमें मरण करनेपर आगे भी दुर्गति होगी, इस कारण इतना विवेक करना चाहिए कि आज मुझे जो कुछ समागम प्राप्त है वे पुण्योदयसे प्राप्त हुए है। अगर पुण्योदय न होता तो लाख प्रयत्न करनेपर भी ये न प्राप्त होते। तो इन समागमोके प्रति अधिक विकल्प क्या करना ? जैसी स्थिति है उसीमे अपनी व्यवस्था बना ले। वहाँ तो ऐसा साहस रखना चाहिए और भीतरमे कोई ऐसी ज्ञानसाधना कर लेना चाहिए कि हमारा भविष्य उत्तम बन जाय। ये स्त्री पुत्रादिकके प्राप्त समागम इस जीवका कुछ भी सहाय न कर सकेंगे। अभी यही देख लो—कभी बुखार किसीको आ जाता है या शिरदर्द होने लगता है तो उसकी वेदनाको स्वयको ही सहन करना पडता है, उसे कोई भी दूसरा व्यक्ति बाँट नही सकता है। हाँ यदि उसके प्रति ख्याल बनाकर स्वयं कोई चिंतित हो जाय, दु खी हो जाय तो यह बात और है। उसने भी अगर अपनेमे चिंतापूर्वक अपनेमे दु ख बना लिया तो उसका दु ख अलग है, शिरदर्द वाले व्यक्तिका दु ख अलग है, वह चिता करके नया दु ख उत्पन्न कर सकता है पर उस दूसरेकी वेदनाको बाँट नही सकता। तो हर स्थितियोमे यही बात आप पाइयेगा कि अपने किएका फल सब कुछ अपने अकेलेको ही भोगना पडता है। सभी पदार्थोका स्वरूप देख लो—सब भिन्न है, एक चीज दूसरी चीजमे मिली हुई नही है। इस प्रकार वस्तुके स्वरूपको भिन्न समझकर यदि अपने जीवनको विवेक पूर्वक व्यतीत किया जाय तब तो यह दुर्लभ मानवजीवन पाना, उत्तम जैनशासनका पाना सार्थक है अन्यथा तो इस दुर्लभ मानवजीवनको व्यर्थ ही खोना है। तो यही तत्त्वज्ञान यहाँ बताया जा रहा है कि अपने आपका ऐसा अनुभव करे कि मै एक जीव पदार्थ हूँ, सदाकाल रहने वाला हू, मेरी अवस्थाये, पर्याये बनती रहेगी, फिर भी यही करना है कि अपनेमे भीतर बसे हुए परमात्माका अनुभव किया जाय, अध्ययन किया जाय ताकि खोटी अवस्थाये न हो।

णवणव-कज्ज-विसेसा तीसु वि कालेसु होंति वत्थूणं ।
एक्केक्कम्मि य समये पुव्वुत्तर-भावमासिज्ज ॥२२६॥

दार्शनिबोधकी हितकारिता—उक्त कुछ गाथाओमे यह बताया है कि अनेकान्तमय वस्तु है तभी उसमे परिणमन सिद्ध किया जा सकता है, यदि एकान्त हो तो उसमे परिणमन सिद्ध नही होता। अब इस गाथामे यह बतला रहे है कि अनेकान्त स्वरूप वस्तुको माननेपर ही कार्यकारणकी सिद्धि होती है। दार्शनिकका यह ही तो दर्श क्षेत्र है। जीव सर्वथा नित्य है, कोई मानता सर्वथा अनित्य है, इन बातोको सुनते समय कुछ ऐसा लगता है कि ये तो कुछ व्यर्थकी बाते है, इनसे क्या प्रयोजन निकलता, लेकिन मूल श्रद्धान जिससे कि सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, यह करना ही पडेगा, समझना ही होगा। यह दार्शनिकोकी बात व्यर्थकी नही है, इसपर श्रद्धान न होनेसे यह जीव किसी एक केन्द्रपर टिक नही पाता। जिसको यह स्पष्ट बोध है कि मैं नित्य हू, ऐसी पर्यायें मुझपर गुजरती रहती हैं इसलिए अनित्य हू, तो किसी भी पर्यायमे वह मोह न करेगा। मोह किससे करना ? आज जो मोह किया जा रहा है वह मोहकी अवस्था भी क्षणिक है, किस जीवने विरोध करना ? प्रत्येक जीव अपने आपमे अपना परिणमन करता है। कोई किसीका परिणमन नही करता। तो जो सदाचारकी बाते है, न्यायनीतिकी बाते है उनमे दृढ रह सके, उसके लिए इस अनेकान्तस्वरूपका बोध करना होगा। देखिये—अतीत भविष्य और वर्तमानकालमे जो जो भी नये-नये कार्य होते रहते है वे सब एक ही पदार्थमे पूर्व और उत्तरपर्यायका आश्रय करके होते रहते हैं। जैसे हम ही मे नई पर्याय बनती है, पुरानी पर्याय मिटती है, और हम वहीके वही रहते है, ऐसे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये तीनो धर्म हममे है, इस श्रद्धामे हितकी वाञ्छा होती है कि जब मुझे सदा रहना है तो मुझे दुर्गतियोमे गडना यह मेरे हितकी चीज नही है। तो कोई ऐसा उपाय बनाना चाहिए कि हमारी गति उत्तम हो और शाश्वत शान्ति हमको प्राप्त हो। यह जिज्ञासा और ऐसी आशका जब हो तब हम यही समझे कि मैं तो सदा रहने वाला हू और अवस्थाओरूपमे परिवर्तन करता रहता हू।

पापका दुष्परिणाम—जो पाप परिणाम करेगा वही जीव उसका फल भोगेगा। और, यह भी निर्णय है कि जो कर्मबन्ध किया वह यो आसानीसे तो बदलने वाला नही है, उसका फल नियमसे भोगना पडेगा। हाँ यदि कोई विशेष विवेक बने, विशेष दृढ भेदविज्ञान हो, अपने आत्मस्वरूपका विशेष उपयोग हो, स्वानुभव हो तो उसमे यह सामर्थ्य है कि अनेक कर्मोको किसी दूसरे कर्मरूप बदल दे, बडे फलको छोटे फलरूप कर दे, अन्य प्रकृतिरूप कर दे और इस तरहसे उन्हे खिरा दे, यह बात अपने बहुत ऊचे धर्म भावोके द्वारा साध्य है। बाँधे हुए कर्म यो आसानीसे नही टाले जा सकते है। और, यहाँ ही देख लो,

कोई पुरुष जीवनमे यदि मायाचार ही करता रहता है, अनेक छल करता रहता है, दूसरो को धोखा ही देता रहता है, या अनेक तरहसे पाप करता रहता है तो कुछ दिन बाद उसे बहुत बुरा समय इसी भवमे भी देखना पडता है ।

शुद्धभावोकी आवश्यकता—कदाचित् किसी मनुष्यको ऐसी जिन्दगी मिले कि पाप करता रहा और अन्त तक उसे बुरा फल न मिल पाया तो इतना तो निश्चय रखिये कि मरण तो उसका खोटे भावोमे होगा । जीवनभर जिसने पापका संस्कार बनाया उसका मरण अच्छे भावोमे नही हो सकता । और, भला सोचिये कि जो इस शरीरसे विदा हो रहा है, मरण कर रहा है और वह बुरे भावोमे, मोहमे, क्रूर परिणामोमे मरण करे तो आगेकी जिन्दगी उसको सारी खराब ही मिलेगी, और मरणसमय यदि शुद्ध भाव हो गया अर्थात् ऐसा भाव बन गया कि कितने समयकी बात है ? दो चार मिनटके लिए अब क्या किसीका ख्याल करना, इस प्रकारके निर्मल परिणाम बन जाये, तो वह बडी शान्तिपूर्वक मरण करेगा और आगेके जीवनमे भी उसको शान्ति व सुख प्राप्त होगा । तो कितना आवश्यक है मरणसमयमे शुद्धभावोका होना । बताते है कि मरण समयमे जैसी मति होती है वैसी गति होती है । तो यह बात सही है । जो आरम्भ परिग्रहके बीचमे ही मरण करता है उसकी गति बताया है नरक, और जो मायाचारमे अपना मरण करता है उसकी गति है तिर्यञ्च । जिनके शुद्धभाव रहते है उनकी गति मनुष्य हो, देव हो, ये दो बताये गए है । तो इस बातको भी कुछ ध्यानमे रखना है जिन्दगीमे कि हम अभीसे कुछ ज्ञानमार्गमे बढे तो यह मरणसमयमे काम देगा । यदि जीवनभर ज्ञानमार्गमे न आये तो मरण समयमे बडी बुरी अवस्था होगी और आगे भी खोटी गतियोके घोर दुःख सहन करने होगे ।

तत्त्वज्ञानका साहाय्य—तत्त्वज्ञान ही हम आपका साथी है, यह हम आपकी मदद कर सकेगा, अन्य कोई दूसरा हमारा साथी नही है जो कि मदद कर सके । दूसरे लोग कोई कितना ही समझाये, जब हम स्वय ही कुछ समझे तब शान्त हो सकेगे । तो हमारा ही ज्ञान हमको विपत्तिके समय मदद करेगा । इष्टका वियोग हो गया, स्त्री, पुत्र, माता पिता आदिकमे से किसीका वियोग हो गया तो उस वियोगके अवसरमे उस ही ओर दृष्टि रहती है । उसका ही ख्याल बनाये रहता है, तो उस उपयोगमे होता है दुःख, और जब विवेक हो गया कि जब सदा मै अकेला हू, मेरा कोई दूसरा यहाँ है ही नही, सब स्वप्नवत् है, इससे न होता सम्बंध, किसी अन्य जीवका सम्बध होता तो उस जीवसे मोह करता यह जीव । तो जीवसे तो कोई नाता न रहा । मै आत्मा स्वतंत्र अपने स्वरूपमे हू, इसका कोई दूसरा साथी नही है । इस विवेकका अभ्यास किया जाय, इस ओर उपयोग दिया जाय तो देख लीजिए वह विपत्ति कम हो जायगी और मिट भी जायगी ।

संसारकी असारता जानकर अन्तस्तत्त्वमें तृप्त होनेकी साधनाका आदर—एक वार एक राजाने किसी दूसरे राजा पर चढाई की, तो उसके सारे वंशका नाश कर दिया। केवल उसके वंशमे उसका चाचा जीवित बचा। वह बेचारा किसी श्मशानमे जाकर वही रहने लगा था। अब उसे किन्ही बाहरी पदार्थोसे ममता न थी। अब जिस राजाने पूरे वश का नाश किया था उसके चित्तमे कुछ विरक्ति उत्पन्न हुई, सोचने लगा—ओह! व्यर्थ ही मैने निरपराध जीवोकी हत्या की। मैने वडा खोटा काम किया। वस उसे राज्यभोगकी इच्छा न रही। वह किसी ऐसे व्यक्तिको खोजनेके लिए निकल पडा जो उस दूसरे राजाके वशमे हत्या किए जानेसे बच गया हो। लोगोसे पता लगाया। तो पता चला कि हाँ उस राजाके वशमे उसका एक चाचा भर जीवित बचा है, वह भी आजकल श्मशानमे रह रहा है। इतनी वात सुनकर वह राजा उसी श्मशानमे पहुचा जहाँ कि वह दूसरे राजाका चाचा रह रहा था। राजाने बहुत विनयपूर्वक कहा—महाराज मेरा अपराध क्षमा हो, मैंने व्यर्थ ही निरपराध लोगोकी हत्याये की। अब मुझे अपनी की गई गल्तीका वडा पछतावा हो रहा है। अब मुझे राज्यसुखकी वाञ्छा नही रही। कृपा करके आप जो चाहे सो हमसे माँग लीजिए। हम आपको सब कुछ देनेको तैयार है। (राजा तो सोचता था कि मेरे पास वहुत वडा राज्य है। वह इतने बडे राज्यसे वढकर और क्या माँगेगा)। सो वह चाचा बोला—मै जो कुछ माँगूगा क्या आप सचमुच दे देंगे? हाँ दे देंगे। तो आप मुझे ऐसा सुख दे दे जिसके वाद फिर कभी भी दुःख न हो। राजा उसकी बात सुनकर बडे चिन्तनमे पडा—ओह! यहाँ का कौनसा ऐसा सुख है जिसके बाद दुःख न हो। कोई भी ऐसा सुख जब न दीखा तो बोला—महाराज आप कोई दूसरी चीज माँगे, आपको मै वह सुख तो देनेमे असमर्थ हू जिसके वाद दुःख न हो। (भैया—यहा किसी भी सुखको आप ले लीजिए, हर सुखके वाद दुःख अवश्य मिलेगा, हाँ एक आत्माका आनन्द जो कि परमात्माके प्रकट हुआ है, जिसके कारण हम आप रोज उनकी उपासना किया करते है वह आनन्द तो ऐसा है कि जिसका कभी विघात नही है, क्योकि वह कर्मोके क्षयसे प्रकट हुआ है, किसी वस्तुके सहारेसे नही हुआ है। प्रभुका आनन्द सासारिक सुख नही है, वह तो अविनाशी है। पर सासारिक कोई सुख ऐसा नही है कि जिसके वाद दुःख न आया करता हो।) तो राजा शरमा गया। और कहा—आप कोई दूसरी चीज मागे। अच्छा तो आप हमे ऐसा जन्म दे दीजिए जिसके वाद फिर मरण न हो। (अब वताओ— है कोई ऐसा जन्म जिसमे मरण न हो? नही है ना,) वहुत सोच विचारके वाद राजा बोला— आप कोई तीसरी चीज मागिए, मैं यह चीज भी आपको दे सकनेमे असमर्थ हू। तो चाचा कहता है—अच्छा आप हमे ऐसी जवानी दे दीजिए जिसके वाद बुढापा न आये। (भला वताओ है कोई ऐसी

जवानी जिसके बाद बुढापा न आये ? नही है ना, अभी ये बच्चे लोग जो बूढोको देख देख कर हँसा करते है तो क्या उनका यह बुढापा न आयेगा ? उनको भी आयेगा) । आखिर राजा न दे सकनेसे उदास होकर वापिस लौट गया । तो यहाँ संसारकी कोई ऐसी स्थिति नही है जो इस जीवको आराम दे सके । तो इन प्राप्त समागमोको तुच्छ समझना चाहिए, क्योकि हम आपका वास्तविक वैभव तो प्रभुके समान अलौकिक वैभव है । उस निजी वैभव की ओर दृष्टि गडाकर और घरमे रहना हो रहा है सो काम करना होगा सो किया जाता है, मगर भीतरमे निर्णय यही बनाये कि मै तो उस जातिका हू जिस जातिके परमात्मा है । उनके ही समान विशुद्ध ज्ञान और आनन्दका मेरा स्वरूप है, उसको दृष्टिमे लूँ, उसे देखकर तृप्त रहा करूँ, तो इससे मेरे समस्त सकट टल सकते है । इन समागमोसे मेरे संकट न टलेगे किन्तु संकट वढेगे और जन्ममरणकी परम्परा बढेगी ।

पुव्व-परिणाम-जुत्तं कारण-भावेण वट्टदे दव्वं ।
उत्तर-परिणाम जुदं त चिय कज्जं हवेणियमा ॥२३०॥

पूर्वपर्यायसंयुक्त द्रव्यकी कारणरूपता व उत्तरपर्यायसंयुक्त द्रव्यकी कार्यरूपता—पूर्वपर्यायसहित द्रव्य कारण भावसे बताया गया है और उत्तरपर्यायसहित द्रव्य कार्य कहा गया है । कारण और कार्यकी बात कही जा रही है और यह भी उपादान दृष्टिसे । जैसे मुट्ठीसे एक अगुलीको पकडकर टेढा कर दिया तो कार्य क्या कहलाया ? इस अगुलीका टेढा हो जाना । अब पूछा जाय कि इस अगुलीके टेढी होनेका कारण क्या है ? तो बाह्यदृष्टिमे तो यह कहा जायगा कि इस मुट्ठीने, इस दूसरे हाथने इसको टेढा किया । तो दूसरा हाथ कारण है, और उपादान कारणकी ओरसे यह कहा जायगा कि इस बीचकी अंगुलीके टेढा होनेका कारण यह बीचकी अगुली है, यो दो तरहसे उत्तर होते है ना ? जैसे मिट्टीमे घडा बना तो कोई पूछे कि घडा बननेका कारण क्या है ? तो एक दृष्टिसे यह कहा जायगा कि कुम्हार है, चाक है आदि । तो एक कोई यह भी तो कह सकता है कि घडा बननेका कारण तो वह मिट्टी है जिसकी घडा दशा हुई है । तो एक उपादानकारणकी दृष्टिसे उत्तर है और एक वाह्य कारणोकी दृष्टिसे उत्तर है । तो यहाँ उपादानकारणकी दृष्टिसे कारणकार्य बात बता रहे है । पहिली अवस्था कारण है और बादकी अवस्था कार्य है । घडेका कारण मिट्टी है । तो क्या सारी मिट्टी है ? नही । जिस अवस्थाके बाद घडा बनेगा याने जो तैयार की हुई (सानी हुई) मिट्टी है और चाकपर रखी हो उसे कहेगे कि यह कारण है । इसी तरह प्रत्येक पदार्थ मे जो अवस्था बनती है उस अवस्थासे पहिले समयमे रहने वाली अवस्था उसका कारण है । तब यहाँ अब तीसरी बात सुनो । क्या केवल अवस्था कारण है ? कहते है कि केवल अवस्था तो कही किसीने देखा नही है । मिट्टी न हो और घडा बन जाय, ऐसा कही हो सकता

है क्या ? केवलपर्याय किसीने नही देखा । होता ही नही, किन्तु पर्यायसहित द्रव्य होता है । कोई चीज है उसकी हालत है तब कहना होगा कि पूर्वपर्यायसहित द्रव्य उत्तरपर्यायसहित द्रव्यरूप कार्यका कारण होता है ।

कष्टके प्रसङ्गमें कारणकी समीचीन अन्वेषण पद्धति—उक्त कथनसे हमे अपनेमे क्या देखना है, अपनेमे जो परिणाम होते रहते है, सुख दुख होते रहते है उन सुख दुख आदिक कार्योका उन शुभ अशुभ परिणामरूप कार्योका कारण कौन है ? हमारी ही पर्याय । हम ही उसके कारण है । यह उपादान दृष्टिमे समझ लेना चाहिए । जो लोग केवल निमित्त दृष्टि रखकर ही कारणोका निर्णय बनाते है, इसने मुझे दुख दिया, इसने मुझे दुखी कर दिया, इस तरहकी निगाह रखकर लोग दूसरो पर रोष किया करते है । उनकी यह दृष्टि मिथ्या है । अपने आपमे भी तो परख करे कि खुदका अपराध है कि नही जो दुखी हो रहे है । और, निश्चयतत्त्व यह बतलाता है कि जितने भी हमारे दुख है उन सबमे हमारा अपराध ही कारण है । दूसरोके अपराधसे हम दुखी नही होते । इसका विवरण करके समझिये—किसी पुत्रने कोई बात नही मानी, तो आप अर्थ लगाते है कि इसने मुझे दुखी किया है । अरे उसने नही माना, तो न सही, उसका परिणमन उसमे है । वह जीव है, आपसे भिन्न है, आपका क्या बिगाड किया ? लेकिन वहा जो ममता लगायी है और कल्पनाये बनायी है कि मेरा होकर मेरी बात नही मानता, बस इस कल्पनाने, इस मिथ्याधारणाने दुखी कर दिया । इसी तरह हर घटनामे आप लगाते जाइये, जितने भी आपको दुख होते है वे सब अपने अपराधसे होते है, दूसरे के कारणसे नही । तो ऐसी बात जान कर हम अपने अपराधको दूर करते है तो हमारे दुख दूर हो जायेगे । अपना अपराध खोजे छाने, छान-छानकर अपने अपराधको मिटाये तो अपना भविष्य सुन्दर बनेगा । जैसे भोजन की बात कह कहकर केवल गप्पे लगाकर पेट नही भरता, सभी लोग जानते है । ऐसे ही तत्त्वकी बात केवल सुन-सुनकर या ऊपरी कथन कर करके या मामूली जानकारी कर करके उसका आनन्द नही लूटा जा सकता । अपनेमे साहस बनाकर अपनेमे बात घटित करके एक बार भी समझ तो ले कि सारे अन्य पदार्थोसे निराला केवल एक चैतन्यमात्र मै आत्मा हू, जब मैं ऐसा नही सोचता अपनेको तो यह मेरा अपराध है । और उस अपराधके कारण ही हम दुखी हुआ करते है । तो इस गाथामे बताया है कि पूर्वपर्याय सहित द्रव्य कारणभावरूपसे है और उत्तरपर्याय सहित द्रव्य कार्य कहा है ।

जीवो अणाइ-णिहणो परिणममाणो हु णव-णव भाव ।
सामग्गीसु पवट्टदि कज्जाणि समासदे पच्छा ॥२३१॥

जीवकी अनादिनिधनता व नव नव परिणति—अब जीव द्रव्यके सम्बधमे उस

कारणकार्यके प्रभावकी बात बतला रहे है। जीवद्रव्य अनादि अनन्त है। इस जीवको किसी ने पैदा नही किया। यह आदिसे है, याने अनादिसे है। इस जीवका क्या कभी अन्त हो जायगा? नही। अनन्त है। एक नियम है कि जो भी पदार्थ सत् है वह न किसीके द्वारा पैदा किया गया है और न किसी समयमे उसका समूल नाश हो सकता है? कुछ लोग कल्पना करते है कि इस सारे जगतको किसी एक शक्तिने, ईश्वरने उत्पन्न किया, पर कारण कार्यविधानपूर्वक दृष्टि देकर सोचे तो सही, कोई भी बात उत्पन्न की जाती है तो कुछ तो होती है जिसको बनाया जाता है। जीव बनाया तो किसी चीजसे बनाया या कुछ भी नही था और यो ही बन गया? अथवा जैसे घडा बनता है तो मिट्टीसे बनता है ना। या कपास है उससे कपडा बनाया गया, तो इतने जीवोको, शरीरोको, इन ढेरोको रचा गया तो कुछ था उससे र ा गया या कुछ भी न था और उससे रच दिया गया? यदि इतनी बात आप ध्यानपूर्वक सोचेगे तो चित्त कह उठेगा कि कुछ था उसीमे रचा गया। जो न था वह तो रचा नही गया। तो इतनी बात तो यहाँ जान ली गई कि कुछ है तब रचा गया। तो जो कुछ है, जिससे रचा गया वह तो स्वय सिद्ध है। तब यह तो नही कहा जा सकता कि इन जीवोको किसीने बनाया। अब रहा यह कि द्रव्योको नही बनाया है तो उनकी अवस्था बनायी। तो उन अवस्थाओका वह ईश्वर उपादानकारण है या निमित्तकारण है? इन दो विकल्पोमे जब निर्णय करने चलेगे तो इसका भी समाधान मिल जाता है जैसे कि यदि इनका उपादानकारण है तो दुखी हो कोई तब तो ईश्वरको भी दुखी हो जाना चाहिए, जन्मे मरे, विकल्प हो, सकट हो तो ईश्वर ही संकटमे आया क्योकि वह उपादानभूत है। और फिर वह एक है, तो जितने अनुभव है जीवोके, एकका अनुभव हो तो, सभीके अनुभव हो जाना चाहिए। और, यदि निमित्तकारणकी बात कहते हो तो इसका अर्थ है कि वह भिन्न है, रचना करने वाला नही, किन्तु इनकी रचनामे एक वह भी कारण है, और विशेषतया विचार करे तो इन पदार्थोकी इन पर्यायोके होनेमे कोई ईश्वर निमित्तकारण नही है, किन्तु पदार्थमे उत्तरोत्तर परिणतिया होती रहती है तो उन परिणतियोका उपादानकारण पूर्व परिणतिमे आया हुआ द्रव्य है।

उपादानकारणका फलितार्थ––उपादानकारणका अर्थ इतना है कि किसी आधारमे कार्य बना तो जो उत्तरपर्याय होती है वह पूर्वपर्याय संयुक्त द्रव्यमे बनी है। निराधार परिणमन नही होता कि कुछ न हो और कार्य आ जाय। वह तो असत्का कार्य कहलायेगा। तो जो भी कार्य बनता है वह निराधारमे कार्य नही होता। तो उस कार्यका आधारभूत कौन है? तो यह उत्तरमे आता है कि पूर्वपर्यायसंयुक्त द्रव्य। अब इस निर्णयसे प्रत्येक उत्तरपर्यायका उपादानकारण पूर्वपर्यायसंयुक्त द्रव्य होगा। जैसे जहाँ असत्से शुद्ध पर्याय होती हो,

सम्यक्त्व हो तो जिस क्षण सम्यक्त्व हो उस क्षणमे जो सम्यक्त्व जगा वह है कार्य, वह कार्य क्या निराधार है ? किसीमे हुआ नही क्या ? उसका आधार है। तो उसका आधार कौन है ? पूर्वपर्यायसहित द्रव्य। अब सम्यक्त्व जगा उससे पूर्वपर्यायको कहा जायगा कि वह सम्यक्त्वरहित है। तो कुछ भी हो, जो भी उस पर्यायका आधारभूत हो वह उपादानकारण है इस निगाहमे सम्यक्त्वका आधारभूत पूर्वपर्यायसहित द्रव्य है। उसके विश्लेषणमे पर्यायको मिथ्यात्व कहो तो कह लीजिए, फिर भी उपादानकारणका विरोध नहीं होता। उपादान-कारणका अर्थ यह है कि वह कार्य किस आधारमे हुआ है ? तो यह मानना होगा कि उसका आधार पूर्वपर्यायसहित द्रव्य है। अब रही यह बात कि सम्यक्त्व जैसी उत्कृष्टपर्याय क्या मिथ्यात्व पर्यायसे उत्पन्न हुई है ? सो यहाँ किसी भी कार्यको पूर्वपर्यायसे यह हुआ है यह नही कहा जाता, किन्तु पूर्वपर्यायसयुक्त द्रव्यमे यह कार्य हुआ है और हुआ है वह पूर्वपर्यायो के विनाश वाला तो वहाँ इतना ही निरखना है कि यह पूर्वपर्यायसहित द्रव्य न होता तो यह उत्तरपर्याय किस आधारमे बनती ? यह आधार बतानेके लिए उपादानकारणका वर्णन होता है। अब यह भी अगर निरखा जाय कि मिथ्यात्वमे एकदम सम्यक्त्व पर्याय कैसे हो गई ? तो भला सम्यक्त्व क्षणसे पूर्व होने वाली पर्यायको सम्यक्त्वरहित होनेके कारण मिथ्यात्व कह दिया जाय किन्तु वह स्थिति कैसी है ? करणानुयोगमे अध करण, अपूर्वकरण, अनवृत्तिकरण परिणाम और उन परिणामोमे किस प्रकारका अतिम मिथ्यात्वपर्याय है, उस पर जब दृष्टि देते है तो वहाँ यह प्रतिभास होता है कि वह क्या मिथ्या पर्याय है। है वह सम्यक्त्वरहित पर्याय। और मिथ्यात्वके उदय वाली पर्याय, लेकिन जहाँ मिथ्यात्वका एकदम उपशम होना है अथवा विनाश होना है उससे पहिले वह मिथ्यात्वपर्याय इस ढगकी मिथ्यात्वपर्याय नही है कि जिसको सुनकर एकदम आश्चर्य हो बैठे कि अरे ऐसे मिथ्यात्वसे जैसा कि हम आप लोगोमे पाया जाता है, कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र आदिककी श्रद्धा या अचेत अवस्था या अज्ञानता भरी अवस्था, ऐसी पर्याय वह नही है जिसके बाद यह सम्यक्त्व पर्याय हुई है, फिर भी उपादानकारणका अर्थ इतना ही मात्र है कि यह उत्तरपर्याय पूर्वपर्याय-सहित द्रव्य आये बिना, हुए बिना हो नही सकती थी अतएव इस पर्यायका यह उपादान-कारण कहलाता है।

अपने क्लेशोंका कारण अपना अपराध—अब अपने क्लेशोके कारणोकी बात सोचिये, जितने भी हम आपको क्लेश हुआ करते है उन सब क्लेशोमे उपादान कारण तो हम ही है और कर्मोदय होना बाह्य निमित्त है। ये सब निमित्त कारण कहे जाते है, आश्रयभूत कारण कहे जाते है। यहाँ परम शुद्ध निश्चयनयसे निरखने पर न तो दु ख पर्याय का अस्तित्व जाना जाता है और न उसके कारणकार्यका विधान बनता है। वहा तो यह

शुद्ध चैतन्यमात्र ही दृष्टिगत होता है। तब जब हम अशुद्ध निश्चयनयसे वर्णन करते है तो वहाँ यह प्रश्न होनेपर कि यह इसमे पर्याय कैसे हुई है ? तो कारण बताना होगा कि इसमें ही वह दुखपर्याय हुई है, किसी अन्य पर्यायसे वह दुखपर्याय नही हुई है।

अब इसके विश्लेषणसे जब हम कुछ और आगे बढते है तो वह सब व्यवहार कथन हो जाता है। कैसी वह पर्याय है, कैसे उस समयके विचार है जिन विचारो से यह दुख पर्याय हुई है ? वह सब विश्लेषण नानारूप होनेके कारण व्यवहारनय का विषय बनता है। वहाँ जब हम निश्चयनयका और व्यवहारनयका भेद डालते है निश्चयनयसे देखा जाता है एक पदार्थ, व्यवहारनयमे देखा जाता है अनेक पदार्थ, तो जब हम निश्चयपद्धतिसे देखते है तो वहाँ यह कहना होगा कि दुख जितने होते है वे हमारे चतुष्टयसे होते है, हमारे कारणसे होते है और वह कारण अपराधरूप है, निरपराधरूप नही है। अपराध कहते है उसे जहाँ राधा अपगत हो गयी है, राधा मायने सिद्धि। जैसे कोई लोग कहते है कि राधा भगवानसे अभिन्न थी याने कोई दूसरी चीज न थी, राधामय ही भगवान है। तो उस राधाका अर्थ कोई देवी नही, किन्तु आत्माकी जो विशुद्ध परिणति है उसका नाम है राधा। सिद्धि भी कह सकते हो। उस आत्मानुभूतिसे जो अलग हो गया है उस भावको अपराध कहते है। तो इस दृष्टिसे जितने भी क्लेश है वे सब अपराधरूप है और अपराधसे हुए है। कुछ अपने आपके क्लेशोके कारणोको समझनेके लिए कि हमको जो क्लेश हुए है, हम अधिकतर दृष्टि बाहरी जीवोपर डालते है कि इसने मुझे दुखी किया, कुटुम्बके इतने लोगो ने मुझे परेशान कर डाला अथवा कोई परेशान स्पष्ट न कर रहा हो और यह मोहमे दुखी होकर अपनेको परेशान समझकर यो कहता है कि मुझे देखो कुटुम्ब ने फाँस रखा, इन्होने मुझे दुखी कर रखा। इन सब बातोका उत्तर यदि विवेकपूर्वक सोचा जाता है तो यह आता है इन्होने मुझे नही फाँसा, इन्होने मुझे दुखी नही किया, किन्तु मै ही अपने आपको अज्ञानी बनाकर मोही बनाकर स्वय फसा हू और इसी कारण दुखी होता हू। तो मुझमे दुख मेरे ही अपराधसे है, इसका निश्चय निश्चयनयसे भी होता है और व्यवहारनयसे भी होता है।

योग्यद्रव्यक्षेत्रकालभाव सामग्रीमें पदार्थका योग्य परिणमन—यहा प्रकरणमे यह बता रहे है कि यह जीवद्रव्य अनादि अनन्त है, इसमे प्रति समय नई-नई पर्यायोको उत्पन्न करनेके लिए यह जीवद्रव्य, यह जीव योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव सामग्रीसे युक्त होता है। जहा जिस स्थितिमे जो पर्याय बनती है वह उन्ही स्थितियोमे बना करती है। यहा यह निरखना है कि योग्य सामग्री प्राप्त होने पर ये पर्यायें बना करती है। कोई जीव अत्यन्त मोही हो और कहा जाय कि यह दूसरे समयमे सिद्ध बन जाय तो क्या यह

होता है ? जब योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी सामग्री अन्तरगमे आती है तब उस उस प्रकारकी पर्याय बनती है और वहा ऐसी नवीन-नवीन पर्यायोंको यह उत्पन्न करता है। जैसे कोई जीव देवपर्याय पानेके लिए उस योग्य बनना है ना कि उनोको धारण करता, सामायिक पूजा पाठ धर्मध्यान आदिक सामग्रियोको अपनाना, तो वह मनुष्यपर्यायको छोड कर देवपर्याय धारण करता है। जैसे-जैसे कारण बताये गए है गतियोमे उत्पन्न होनेके कोई बहुत आरम्भ परिग्रहमे फसा हुआ है तो वह नरक गतियोमे जाता है। तो जिन्हे नरक गतिमे जानेका ही काम पडा है वे ऐसी ही सामग्रीसे सयुक्त होते हैं, तो इस तरह योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव सामग्रीमे ये अनादि अनन्त जीव अपनेमे नवीन-नवीन पर्याय को उत्पन्न करते है तो वहा अन्तरङ्ग कारण की अपेक्षासे निरखा जाय तो यह बात बनती है कि जीव ही स्वय पूर्वपर्याय सहित होकर उत्तरपर्यायका कारण बनता है। और वह यदि कोई विषम पर्याय बन रही है, स्वभाव विपरीत पर्याय बन रही है, विकृतपर्याय हो रही है तो समझना चाहिए कि कोई अन्य द्रव्य भी वहा कारण है।

कार्यकारणविधानके परिचयमें हितंकर निर्देश——इस विवरणसे हम आपको यह शिक्षा लेना है कि हममे जो विकार जगता है, जिस विकारके कारण हम दु खी है, राग द्वेषादिक विकल्प जगते हैं उन रागद्वेषादिक भावोकी उत्पत्ति हुई किस प्रकार है ? यद्यपि वे भाव मुझमें हुए है तो उनका उपादानकारण मैं हू, लेकिन ये मेरे स्वभावके खिलाफ भाव हैं। तो यह निश्चय है कि कोई अन्य विजातीय पदार्थ मेरे साथ लगा हुआ है वह निमित्त है, जिस निमित्तकारणसे हममे ये विकारपर्याये उत्पन्न हुई हैं। तो ये रागद्वेष ये नैमित्तिक भाव है, अन्य पदार्थोका निमित्त पाकर उठे हुए भाव है। मेरे स्वरूप नही हैं, निमित्तनैमित्तिक व्यवस्था माननेपर भेदविज्ञानका उदय करनेमे बहुत सहयोग मिलता है। यह घर मैं नही हूँ, यह तो प्रकट सिद्ध बात है। घर दूसरी जगह है, मैं दूसरी जगह हूँ। यह घर अचेतन है, मैं चेतन हूँ। ये कुटुम्बके जीव मैं नही हूँ, यह भी प्रकट सिद्ध बात है। ये भिन्न है, मै भिन्न हू, देह मैं नही हू, यह भी झट मानी जा सकने योग्य बात है क्योकि मरते हुए व्यक्तिको लोग देखते है कि उसका जीव निकल जाता है, शरीर यही पडा रह जाता है और जला दिया जाता है। किन्तु, ये रागादिक विकारभाव मैं नही हू यह समझना कुछ कठिन होता है। तो इस निमित्तनैमित्तिक भावके परिज्ञानने इस भेदविज्ञानको सरल कर दिया, ये नैमित्तिक भाव है, कर्मके उदयका निमित्त पाकर हुए है, ये मेरे स्वरूप नही है। मै तो स्वत सहज चैतन्यमात्र हूँ। ये सब बाते कार्यकारणविधानकी सही जानकारीसे मिलती है, अत कार्यकारणविधानका यह वर्णन किया जाता है।

हम आपकी स्थिति व कर्तव्य——हम आप सब एक एक जीव है और हम आप सब

ही ज्ञान आनन्दका स्वभाव रखते हैं, लेकिन हो क्या रहा है हम आपमे कि ज्ञान भी बिगडा हुआ है और आनन्द भी बिगडा हुआ है। यद्यपि स्वभाव ज्ञान और आनन्दका है, सो किसी प्रकारके सकटकी बात न होना चाहिए, जो प्रभुका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है, लेकिन बीत क्या रही है कि ज्ञान भी तुच्छ है अथवा उल्टा भी है तथा आनन्दका तो बहुत ही बिगाड हो रहा है। चिता, शल्य, दुख आदिक नाना कष्ट हो रहे है, और इन ही कष्टोमें रहते हुए ये जीव अनेक जन्ममरण करते चले जा रहे है। पशु पक्षी कीडा मकौडा नरक तिर्यञ्च आदि नाना प्रकारके देहोको धारण करते चले आ रहे है। आज वडे सुयोगसे मनुष्य जन्म मिला। जीव तो आखिर सभी एक समान है, जैसे कीडा मकौडाके जीव है वैसे ही हम आप भी जीव हैं। क्या ऐसी पर्यायें हम आपकी न थी ? अब आज मनुष्य हुए है और साथ ही श्रेष्ठकुल, श्रेष्ठधर्म मिला है तो इतने उत्तम दुर्लभ समागमसे हम अपने लिए कौनसा अनुपम लाभ उठा रहे है इसपर कुछ निगाह रखना चाहिए। यह जीवन विषयोमे गमानेके लिए या विषयोका मौज लेनेके लिए नही है। यह जीवन तो इसलिए है कि कोई ऐसा धार्मिक प्रोग्राम बना ले कि सदाके लिए ससारके सकट मिट जाये।

अपना वडप्पन—भैया ! अपना वडप्पन इसी बातमे है, हम आपने जो कुछ पुण्योदयसे वडप्पन पाया है तो इसका सच्चा उपयोग यही है ऐसा ज्ञान, ऐसा धर्मभाव पा ले कि कर्म छूट जाये, संसारके सकट, जन्ममरण सदाके लिए छूट जाये, ऐसा उपाय बना लेनेका काम इस जीवनमे मुख्यतया हुआ है। अन्य सब बाते गौण हैं। बहुत वैभव बढ गया तो इस जीवको क्या मिलेगा अथवा परिजन मित्रजन बहुतसे लोग कुछ प्रशसक बन गए तो इस जीवको क्या मिलेगा ? कुछ अपने अन्त सोचे, जितना भी ज्ञान बन सकेगा आत्माकी दृष्टि कर सकेंगे, ऐसे अलौकिक तत्त्वमे तृप्त हो सकेंगे जिसके लिए तीर्थंकरोने, चक्रवर्तियोने छह खण्डका वैभव त्यागकर और निर्ग्रन्थ दिगम्बर अवस्थामे वनविहार करते रहे, अपने आपमे प्रसन्न रहे, वह तत्त्व मिले, वह दृष्टि आये, तो अपनेको मिलेगा अपनेमे अनुपम वैभव। यह काम पडा है हम आपको करनेके लिए, वैभव जोडनेका काम नही पडा हुआ है। जैसे आज का युग केवल एक वैभवका युग है, भौतिकवाद है। पुद्गलकी बाढमे सभीने होड लगा रखी है, प्राय. सभी मनुष्य ऐसा ही कर रहे है, उनको निरखकर तृष्णा उत्पन्न हो जाती है, मगर किसीकी तृष्णामे न चलना क्योकि लोग क्या है ? किसीने कुछ कहा तो कोई अपना प्रभु तो नही है। अपनेपर तो जो बीतती है वह खुदको ही भोगना पडता है, कोई दूसरा मददगार नही है। तब ऐसा विवेक बनाना है कि हम अपने उस सहज परमात्मस्वरूपके दर्शन कर सके और वहा ही तृप्त रह सके। शान्तिका उपाय जगतमे और कुछ न मिलेगा। केवल एक ही उपाय है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। ऋषि संतोने

जो बाते कही है उन शब्दोको चाहे कुछ समभना कठिन हो, लेकिन तत्त्व उनकी बातोमे पूरा भरा हुआ है। अनुभूत प्रयोग है। कैसे जीवको शान्ति मिले ? उसका उपाय जो रत्नत्रयका मार्ग बताया है वह पूर्णतया युक्तिसंगत है।

सम्यक् प्रतिबोधका प्रकाश—संसारके संकटोसे छूटनेके लिए अभी उपाय बनाना है सम्यक्त्वका। सम्यक्त्वमे क्या होता है ? मिथ्यात्व छूट गया, बाह्य वस्तुओकी ममता मिट गई, किसी वस्तुसे अपना हित माननेकी कुबुद्धि खतम हो गयी। तो ममता मिटाना, मोह मिटाना यह तो एक काम पडा है, पर लोग विपरीत कार्य कर रहे हैं। मोहके कारण ही तो दु खी होते है और उस दु खको दूर करनेका उपाय मोह करना सूझ रहा है, तो बताओ इस मोहके उपायसे यह सकट मिटेगा कैसे ? इस मोहको छोडना है। मोह छोडनेका अर्थ यह है कि सत्य बात समझ लेना हे कि किसी भी पदार्थका कोई अन्य पदार्थ कुछ नही है। देखिये—आज अपनी बधनकी स्थिति है, शरीरमे बंधे हुए हैं। क्षुधा तृषा आदिक अनेक रोगोमे पडे हुए है ऐसी स्थितिमे यह बात न बनाई जा सकेगी कि हम घरमे रहते हुए कोई आजीविकाका साधन न बनाये। अरे मुनि हो जाने पर भी कुछ चर्या विधि द्वारा आखिर उनको अपने जीवनको रखना पडता हे। तो गृहस्थ रहकर उन्हे अपना जीवन रखनेके लिए आजीविकाका कार्य करना पडेगा। आजीविकाका साधन बनाये, पर तत्त्व सही समझते रहे कि मेरे करनेसे कुछ नही हो रहा। पूर्वभवके पुण्यका उदय है तब ऐसा समागम मिल रहा है। भाव अच्छे किये थे उसका यह फल पाया जा रहा है। यदि आज भाव बिगाड लिया, मोह ममताका भाव करके अपने आत्मस्वभावका घात कर लिया तो इसका फल अच्छा नही है। काम पडा है इस मोहके तोडनेका। वह मोह कैसे मिटे ? लोग इस जानकारीमे भी व्याकुल है, लेकिन ऐसा निर्णय करलो कि हमे मोह मिटाना है। मोहके मिटे बिना शान्ति न मिल सकेगी।

मोहविनाशका उपाय—अब यह उलझन सामने आती है कि आखिर वह मोह मिटेगा कैसे ? अनेक उपाय रचे जाते है। घर छोडकर चल दिया, रूठकर घरसे चल दिए, इतने पर भी सफल नही हो पाते। तो इस गाथामे वही एक औषधि बतायी गई है कि जिसके पान करनेसे यह मोह सकट मिट जायेगा। यह औषधि ज्ञानरूप है और उसका पान भी ज्ञानोपयोगसे किया जाता है। इस गाथामे यह बताया है कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपमे रहता हुआ कार्य करता है, पर इस बातको प्रत्येक पदार्थमे घटाते जाइये—प्रत्येक पदार्थ, एक-एक अणु, एक-एक जीव सभी पदार्थ अपने ही स्वरूपमे रहते है और अपने ही स्वरूपमे रहकर अपना कार्य करते जाते है। तो अब यहाँ यह जानना है कि अपना स्वरूप है क्या जिसमे रहकर पदार्थ अपना कार्य करता है। दूसरी बात यह जानना है कि वह

अपना कार्य क्या है कि जो पदार्थका खुदका कार्य बताया जा रहा है ? तो इन दोनों बातो को समझनेके लिए पहिले एक मोटा लौकिक दृष्टान्त लो, फिर पारमार्थिक बात कही जायगी। जैसे एक यह घडी है तो यह घडी घडीके अवयवोमे है या चौकी आदिकके अवयवोमे है ? चौकीमे घडी है या घडीमे घडी है ? सीधा उत्तर यह है कि यह घडी घडीमे है, पुस्तक, चौकी, खम्भा आदिकमे नही है। तो यही है घडीका स्वरूप कि जिसमे यह घडी रह रही है। हम हम ही मे है, हम किसी दूसरेमे नही है। हम जो ज्ञानानन्दस्वरूप जीव-तत्त्व है सो देह मै नही, कुटुम्ब मैं नही, कही देश विदेशमे नही, कही भी बाहरमे नही। मै स्वय अपने आपके स्वरूपमे हू। प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे रहते है। बात यदि ध्यानपूर्वक आप लोग सुनेगे तो कुछ भी कठिनाई न आयगी, किन्तु मनको अगर ढीला कर दिया, अपने उपयोगको थोडा भी इधर उधर किया तो यह बात समझना कठिन हो जायगा। बात सीधीसी है कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे है। मैं अपने ज्ञानानन्द-स्वरूपमे हू। परमाणु अपने रूप, रस, गंध, स्पर्शस्वरूप है। जैसे कि ये दिखने वाले पदार्थ अपने अपने ही हिस्सेमे है, दूसरेके प्रदेशमे नही है, तो यो ही सारे पदार्थ अपने स्वरूपमें रहते है।

पदार्थका स्वरूपचतुष्टय—अब उस स्वरूपका ब्योरा सुनो, जिस निज-निज स्वरूपमे पदार्थ अवस्थित है उस स्वरूपकी पहिचान होती है चार उपायोसे। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्य तो हुआ पिण्ड। जैसे घडीका द्रव्य क्या ? यह, जिसको हाथमे ले सकते, दूसरो को बता सकते, जिसका उपयोग किया जा रहा, ऐसा जो यह पिण्ड है यह तो कहलाता है घडीद्रव्य, और यह घडी जितनी जगहमे फैली हुई है वह कहलाया घडीके प्रदेश, क्षेत्र। और घडीकी इस समय जो हालत है, नई, पुरानी, कमजोर आदि जैसा रूप, रस, गंध, स्पर्श है वह है घडीका काल याने परिणमन, और घडीमे जो शक्ति है वह है घडीका भाव। हर एक वस्तुमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होता है। यह बात जैनशासनकी एक मौलिक ढगसे कही जा रही है। यो ऊपरी बाते बहुतसी सुन लेनेसे काम आज तक नही निकल पाया, वह तत्त्व नही दिख पाया कि जिसके दिखने पर मोह मिट ही जाता है।

निर्मोह होकर जीवन बितानेका विवेक—एक बात इस प्रसंगमे और भी समझे कि मोह और रागमे फर्क है। गृहस्थोका राग बिना घरमे रहना नही बन सकता। नही है राग तो घरमे रहेगे कैसे ? पर मोहके बिना भी घरमे रहना बन सकता है। किसी गृहस्थके मोह न हो, फिर भी परिस्थिति है ऐसी कि घरमे रहना पडता है और सबसे राग करना पडता है, घरमे रहना राग बिना न बनेगा। पर मोह बिना घरमे रहना बन सकेगा। रागमे तो है साधारण आकुलता, पर मोहमे है तीव्र आकुलता। इसलिए एक बात ठान लीजिए कि

हमे मोह न करके ही घरमे रहना है, राग बिना तो जीवन न चलेगा घरमे इसलिए सबसे प्रेमका व्यवहार होना ही पडेगा लेकिन मोह न करे ऐसा हमारा काम घरमे रहकर भी बन सकता है। मोहका अर्थ है अज्ञान। एक पदार्थ दूसरे पदार्थका वास्तवमे कुछ है, इस प्रकार का जो विश्वास है उसको मोह कहते है। मोहका अर्थ है बेहोशी, अपने स्वरूपका जहाँ होश नही, वह है मोह। जैसे यह पुत्र मेरा ही तो है, अब अपनेमे और पुत्रमे भेद न समझ सके—यह न्यारा जीव है, मै न्यारा जीव हू, इसके कर्म न्यारे है मेरे कर्म न्यारे है, इसका पुण्य पाप इसमे है, मेरा पुण्य पाप मेरेमे है, यह भेद नही कुछ परखा जा सकता और एकदम अज्ञान समाया है, मेरा ही तो घर है, मेरा ही तो पुत्र है, मेरी ही तो स्त्री है। यही तो कहलाता है मोह, और तत्त्वज्ञान हो जाय जिसका कि वर्णन इस गाथामे किया जा रहा है उस विधिसे वास्तविकताका बोध हो जाय कि ये जीव मेरेसे न्यारे है, मै जीव न्यारा हू, अत्यन्ताभाव है मेरा इनमे और इनका मुझमे। तो इसे कहेगे कि मोह मिट गया। अब शारीरिक स्थिति ऐसी है कि आप निर्ग्रन्थ दिगम्बर नही बन सकते, तपश्चरण परीषह नही सह सकते, कोई शारीरिक रोग हो जाय तो उसकी वेदना सहनी पडती है, ऐसी स्थितियाँ है तो आपको घरमे रहना पडता है, तो घरमे रहकर अपना व्यवहार सबके प्रति प्रेमका रखना होगा तभी शान्तिसे निर्वाह चलेगा, एक दूसरेके सुख-दुखमे सहयोगी होना होगा तब तो बात निभेगी। करना पडता है करते है, पर उस समय मोह न हो। और अगर घरमे राग करके रहे तब तो गृहस्थ धर्म नही बिगडता, पर मोह रहे गृहस्थीमे तब तो फिर अपना सब कुछ बिगडता ही है।

मेरा मेरे ही द्रव्यमें अस्तित्व—बात यहाँ यह बतला रहे है कि मोह न रहे ऐसा कौन सा उपाय करे ? तो उस उपायको थोडा समझनेमे और उसको चित्तमे रखनेमे कठिनाई लगेगी, किन्तु जिन्होने अभ्यास किया है उनको कुछ भी कठिनाई नही है। एक हिम्मत बनाकर बाहरकी बातोको चित्तसे हटाकर, क्योकि जब सब असार है दुखके हेतुभूत है तो उनमे चित्तको क्या फसाना ? वहा से चित्त हटाकर खूब ध्यानपूर्वक इस प्रकरणको सुनो तो इस चीजका भान होगा, वह तत्त्व मिलेगा कि जिसके परिचयसे जन्म मरणका सकट टलेगा। यहा बतला रहे है कि प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमे है, इसका अर्थ है कि दूसरेके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नही है। बस इसका ही विवरणपूर्वक परिज्ञान बन जाय तो वहा मोहको रहनेके लिए स्थान न मिलेगा। मै अपने द्रव्यमे हू, अपने क्षेत्रमे हू, अपने ही कालमे हू और अपने ही भावमे हू। मै किसी दूसरे जीवके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नही हू, इसका अर्थ क्या ? मेरा द्रव्य क्या है ? जो मुझमे गुण है, जो मेरेमे शक्तिया है, ज्ञान आनन्द आदिक जितनी भी शक्तिया है, गुण है, स्वभाव है, विशेषताये है उनमे मै हूँ

दूसरेकी विशेषताओमे मै नही हू, दूसरेकी गुणपर्यायोमे मैं नही हूँ, मै अपने ही द्रव्यस्वरूप मे हू। अब देखिये घरमे जो २–४–१० कुटुम्बी जन है उनका जीव और दुनियामे पडोसमे, परदेशमे, विदेशमे जो अनेक मनुष्योके जीव है वे जीव, उन सब जीवोका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मुझमे नही है। इस दृष्टिसे जितने न्यारे विदेशके परदेशके मनुष्य है उतने ही न्यारे अपने घरके जीव (कुटुम्बीजन) है। कोई कहे कि विदेशमे रहने वाले––मनुष्योमे तो हमारे घरके जीवोका हमसे कुछ सम्बंध होगा, पर रच भी सम्बध नही है। वे कल्पनासे सम्बध मानते है और अपने प्रयोजनसे खुदगर्जीसे सम्बंध मानते है, पदार्थमे, तो पदार्थकी बात पदार्थ के ढंगसे रहेगी, हम कुछ कल्पनाये करे उसके अनुसार पदार्थ बन जाय सो नही हो सकता। तो मै अपने द्रव्यसे हू, अपने गुणपर्यायमे हू, जो मुझमे शक्तियाँ है, जिनसे मै रचा गया हू, जो कुछ भी मुझमे पाया जा रहा है उनमे ही मै हू, दूसरेमे मै नहीं हू।

मेरा मेरे ही निज अन्तः क्षेत्रमें अस्तित्व—क्षेत्रकी बात सुनो। मै हू और फैला हुआ हूँ, अनुभव भी होता है कि मैं इतना बडा हू। पैरोसे लेकर शिर तक इतनी जगह फैला हुआ हू। सुख होता है तो इतने प्रदेशोमे होता है, दु ख होता है, आकारज्ञान होता है तो इतने प्रदेशमे, अनुभव होता है तो इतने प्रदेशमे फैला हुआ हूँ। देह मै नही हू। देह के प्रदेश मेरे प्रदेशोमे एकक्षेत्रावगाह है, पर मै देहके क्षेत्रमे नही हू किन्तु अपने ही निज प्रदेशमे हू। किसी दूसरे जीवके प्रदेशमे नही हू, जब कोई बात दु ख दर्दकी आती है तो हम अपने ही प्रदेशमे अनुभव करते है, कुटुम्बीजनोके (परिजनोके) प्रदेशमे अनुभव नही करते। तो जब मै अपने ही प्रदेशमे हूँ, दूसरे जीवोके प्रदेशमे नही हू तो मेरा और दूसरे जीवका क्या सम्बध ? केवल कल्पनासे सम्बध बनाया। और, देखिये––कल्पनासे जो यह सम्बध बनाया है इसका तत्काल इतना प्रभाव पड गया है कि यह जीव चाहता है कि मैं खूब परिश्रम करके अपना आराम तज करके, आकुल व्याकुल होकर के खूब ऐसा धन वैभव कमा जाऊँ कि ये बाल बच्चे कभी भी हैरान न हो। तो अब देखिये—उन परजीवोका ख्याल करके अपने जीवनको कष्टमय बना रहे है––पहिली बात तो यह है। दूसरी बात यह है कि क्या यह आपके अधिकारकी बात है कि वैभव कमा ले ? यह आपके अधिकारकी बात नही है। शुभभाव किया, पुण्यबध हुआ, उसका उदय है तो ये सब समागम मिल रहे है। तीसरी बात—क्या यह आपके वशकी बात है कि ये कभी हैरान नही होगे। कितना ही धन वैभव जोडकर चले जाये, अगर उनका पुण्योदय नही है, पापका उदय है तो साल दो सालमे ही सारा धन खतम हो जायगा, निर्धनता आ जायगी, और अगर आप कुछ भी छोडकर न जाये, ज्योकी त्यो साधारण स्थिति रहे, यदि पुण्यका उदय हो तो एक वर्षमे ही वे कुछसे कुछ बन जायेगे। अगर उनके पुण्यका उदय है तो वैभव छोडकर जानेका क्या

प्रयोजन और अगर उनके पापका उदय है तो वैभव छोडकर जानेका क्या प्रयोजन ? अपने आपमे कुछ विवेक करना है और भीतरमे जो अलौकिक निधि बसी हुई है उस परमात्मस्वरूपकी निधिका दर्शन करना है । और जीवनमे कोई अलौकिक लाभ लेना है यह निर्णय बनाइये जीवनमे । इसी प्रयोजनकी पूर्तिके लिए यह भेदविज्ञानकी बात कही जा रही है । मै अपने क्षेत्रमे हू, दूसरे जीवोके क्षेत्रमे नही हू ।

मेरा मेरे ही काल भावमें अस्तित्व—तीसरी बात है कालकी । मै अपने कालमे हू दूसरेके कालमे नही हू । कालके मायने है परिणमन । जो मुझमे परिणति होती है, जो बात गुजरती है, सुख, दुःख ज्ञान आदिक जो कुछ यहाँ बन रहे है वह है मेरा काल । कषाये की जा रही हो वह है मेरा काल । कालके मायने परिणमन, अवस्था, दशा । तो मैं अपने कालसे हू, दूसरेके कालसे नही हू । जो मुझमे परिणमन है, उसमे ही मै हू, दूसरेके परिणमनमे नही हू । अपने सुख दुःखमे मै हू, दूसरेके सुख दुःखमे मै नही हू । हो ही नही सकता कोई किसीके परिणमनरूप । वस्तु है वह अपनेमे बनेगी, दूसरेमे क्या बनेगी ? तो मै अपने कालमे हू, इन कुटुम्बियोके कालमे, समयमे, परिणमनमे मैं नही हू । जहाँ यह स्पष्ट दर्शन हो वहाँ मोह नही ठहर सकता । अब भावकी बात देखिये—मैं अपने भावसे हूँ। भावके मायने गुण । जो सदा काल रहे ऐसा स्वरूप । मेरा सहज ज्ञान सदा रहता है । ज्ञान कभी मिटता नही, मेरा आनन्दस्वरूप स्वभाव सदा रहता है, वह मिटेगा नही । चाहे दुःख बने या सुख बने या आनन्द बने, पर जो गुण है मुझमे वे सदा काल रहते है । तो मै मेरे गुणोमे हूँ, दूसरोके गुणोमे नही हू । दूसरे जीवोके ज्ञान, आनन्द, शक्ति, गुण, उनके उनमे है, मेरे मेरेमे है ।

भ्रमके हटनेपर व्याकुलताका विनाश—अब बतलाओ कि मेरा किसी दूसरे जीवके साथ या किसी वैभवके साथ क्या सम्बध है ? अत्यन्ताभाव है, ऐसा जहाँ परिचय हो जाता है वहा मोह नही ठहरता । वहा भीतर व्याकुलता नही रहती, शान्ति हो जाती है । क्योकि मुझमे जो भ्रमके कारण आकुलता बनी थी, वह भ्रम मिटा कि आकुलता नष्ट हो जायगी । जैसे घरमे छोटी पडी हुई रस्सीको देखकर यह भ्रम हो जाय कि यह साप है तो उस भ्रम मे तो कितनी आकुलता मच जाती है । लेकिन थोडा साहस करके कुछ निकट जाकर सही परिचय पा लिया कि अरे यह तो कोरी रस्सी पडी है, कहा साप है ? तो इस सही ज्ञान होनेके कारण भ्रम मिट गया और उस भ्रमसे उत्पन्न हुआ दुःख दूर हो गया । तो ऐसे ही समझिये कि जब तक परको निज समझनेका भ्रम लगा है तब तक आकुलता है । और जब निजको निज परको पर जान लिया तो फिर वहा किसी भी प्रकारके सकट नही ठहरते । अब रहा थोडा रागका दुःख तो वह भी इस तत्त्वज्ञानके बलपर मिटा लिया जायगा ।

स-सरूवत्थो जीवो अण्ण-सरूवम्मि गच्छदे जदि हि ।
अण्णोण्ण-मेलणादो एक्क-सरूव हवे सव्व ॥२३३॥

स्वस्वरूपस्थ जीवका अन्यस्वरूपमें पहुँचना मानने पर अन्योन्य मेलन होनेसे एक स्वरूपताका प्रसङ्ग——इससे पहिलेकी गाथामे बताया था कि यह जीव अपने स्वरूपमे रहता हुआ ही अपने कार्यको करता है। जीव अपने ही गुण पर्यायमे है, अपनी ही शक्तियोमे है, अपनेमे ही अपना परिणमन कर रहा है। इस तरह जीवद्रव्यकी व्यवस्था है और जीवकी ही क्या, सभी पदार्थोंकी ऐसी ही व्यवस्था है कि वे अपनेमे रहते हुए अपने कार्यको करते है। अब इस गाथामे बतला रहे है कि अपने स्वरूपमे स्थित वह जीव यदि दूसरेके स्वरूपमे भी चला जाय तो इन दोनो का परस्पर मेल हो जायेगा, जैसे जीव अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमे है, अपनी जगहमे है, अपने स्वरूपमे है, इसी तरह यह जीव देहके स्वरूपमे बन जाय या अन्य अचेतन चेतनके स्वरूपमे बन जाय तो अब यह जीव न रहा। दूसरेका स्वरूप भी अपना लिया तो दूसरा बन गया। चेतनने अचेतनका स्वरूप अपना लिया तो वह अचेतन हो जायेगा। तो जब अन्य पुद्गल आदिकके स्वरूपमे यह जीव पहुंच गया तो सभी द्रव्य एक स्वरूप क्या हो गए ? कुछ भी न रहा। इस कारण यह ही श्रद्धान करे कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमे रहता हुआ ही अपना उत्पाद व्यय करता रहता है।

स्वस्वरूपस्थ वस्तुका अपना ही पर्यायस्वरूपसे उत्पादव्ययके याथातथ्यके अवगममें सन्मार्गदर्शन——इस लोकमे वैभव ठाठ मिलना या दरिद्रता मिलना यह जीवके भावो पर निर्भर है। जीवने शुभभाव किया, पूजा, दान, पुण्य, व्रत आदिक परिणाम किया, उससे पुण्यकर्मका बन्ध हुआ, उसके उदयमे अब नाना विभूतियाँ मिली, उस विभूतिके कमानेके लिए आजकी आपकी बुद्धिका कोई अधिकार नही है। यह सब पुण्यभावका फल है। तो जैसे शुभ अशुभ भावोके द्वारा जीव ससारकी विचित्र अवस्थाओको रच लेता है इसी प्रकार जीव यदि शुद्ध परिणाममे आ जाय, वस्तुका जैसा स्वतत्र स्वरूप है उस तरह ध्यानमे ले, मोहका विनाश करे तो इस जीवको मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है। तो सब कुछ हमारा हमारे भावो पर निर्भर है। हमारी असली कमाई अपने भावोकी संभाल है। बाहरी सभाल कोई असली सभाल नही है। बाहरमे कुछ आये तो आये, जाये तो जाये, किसी भी अवस्था को प्राप्त हो, उससे जीवका सुधार बिगाड नही है। जीवका सुधार बिगाड अज्ञान और ज्ञानसे है। तो उसी तत्त्वज्ञानकी बात कह रहे है कि यो निरखो कि प्रत्येक पदार्थ अपने ही स्वरूपमे है, दूसरेके स्वरूपमे न था, न है और न कभी हो सकेगा। ऐसा निरखने से यथार्थ ज्ञानप्रकाश मिलेगा, मोहादिक मिथ्याभावोका विनाश होगा। इस ही स्थितिमे जीव का महत्त्व है ? अलौकिक बडप्पन है। सब कुछ जीवका एक यही वैभव है कि वह अपने

अमूर्त ज्ञानस्वभाव की दृष्टिमे उपयुक्त रहे ।

अहवा बभ-सरूव एक्क सव्व पि मण्णदे जदि हि ।
चडाल-बंभणाण तो ण विसेसो हवे को वि ॥२३४॥

सर्वपदार्थोंको एक ब्रह्मस्वरूप ही माननेमें विडम्बना—जीवके सम्बन्धमे कुछ दार्शनिकोका यह ख्याल है कि अन्य क्या है, जगतमे सब कुछ एक ब्रह्म ही हे । चेतन अचेतन जितने भी पदार्थ है सभी पदार्थ ब्रह्मस्वरूप है । ब्रह्मको एक चैतन्यस्वरूपके ढगसे मानते है और सारे ही पदार्थोको ब्रह्मकी पर्याय कहा करते हे, तो ऐसे दार्शनिक जो मानते हैं कि सब कुछ एक ब्रह्मस्वरूप ही है सो उनके सिद्धान्तमे चाण्डाल और ब्राह्मणका कोई भेद सिद्ध नही होता और यह तो एक रूढि वाली आपत्ति पेश की है । वस्तुत किन्ही भी पदार्थोंमे कोई भेद सिद्ध न होगा । चेतन और अचेतन ये कैसे भिन्न है, क्यो भिन्न है ? जब एक ब्रह्मस्वरूप ही है तो यह भेद कहासे आया ? प्रकृतमे यह बतला रहे है कि यदि यह सिद्धान्त माना जाय जैसे कि उन दार्शनिकोकी श्रुतिमे कहा हे कि एक ही आत्मा अद्वितीय ब्रह्म है, ये नाना कुछ नही है । जो कुछ यहा नाना दिख रहे है वे सब ब्रह्मकी पर्याय है । ऐसी श्रुति के अनुसार जो लोग यह आग्रह करते है कि सब कुछ एक ब्रह्म ही है, भिन्न कुछ नही, स्वभाव भेद कुछ नही, तो वहा पूछा जा रहा है कि फिर यह बतलाओ कि चाण्डाल और ब्राह्मणमे कोई भेद फिर तो न रहेगा ना ? यदि चाण्डाल भी ब्रह्ममय है और ब्राह्मण भी ब्रह्ममय है किसी भी दृष्टिसे कुछ भी अतर नही तो फिर उनमे भेद कैसे रहेगा ? यदि कहो कि यह सब अविद्यासे माना गया भेद है और चाण्डाल, ब्राह्मणकी बात यदि दृष्टान्तमे अधिक नही लेना चाहते तो स्पष्ट अनेक पदार्थ पडे तो है । ये अचेतन है, ये चेतन है अथवा ये पशु है, यह मनुष्य है ऐसा भेद भी कैसे सिद्ध होगा ? यदि कहो कि अविद्यासे यह भेद कल्पित हुआ है तो फिर उस ही अविद्याको बताओ कि वह अविद्या उस ब्रह्मस्वरूपसे भिन्न है या अभिन्न ? यह अविद्या अलगसे क्या चीज बनी ? यदि कहो कि अविद्या ब्रह्मसे अभिन्न है तो भेद न रहना चाहिए । यदि कहो कि भिन्न है तो अद्वैत कहाँ रहा ? ब्रह्म भी एक पदार्थ है और अविद्या भी एक पदार्थ बन गया । तो यो यह भी न कहा जा सकेगा कि सर्व कुछ एक ब्रह्म है ।

वस्तुव्यवस्थाकी सही परखसे क्षोभका अभाव—वस्तुव्यवस्था यो है कि पदार्थ उतना है कि एक-एक परिणमन जितनेमें पूरेमे हो रहा है । जैसे हमारा विचार हम ही मे चलता तो हम एक जीव अलग है अन्य सर्वसे । दूसरोके विचार उनमे ही चलते है । प्रत्येक पदार्थ का परिणमन उस ही एकमे होता है, इस कारण सिद्ध है कि पदार्थ नाना है । स्पष्ट बात है । अब उन पदार्थोकी सदृशता जब दृष्टिमे लेते है तो जातियाँ बनती है और इस आधार

पर एक जीव जाति कहलायी जिसमे कि चैतन्य स्वारूपात्मक पदार्थोका संग्रह किया जाय। एक पुद्गल जाति बनी जिसमे कि रूप, रस, गध, स्पर्श वाले पदार्थोका संग्रह किया गया। यो जाति अपेक्षा एकता मानी गई है और इसी तरह सभी पदार्थोको एक सत् शब्दसे कह दिया जाय। है, सब अस्तित्व है तो उस सत्त्व मात्रकी अपेक्षा एक कह दिया जाय तो यह भी युक्ति सिद्ध है, सग्रहनयका विषय है, लेकिन कोई सर्वथा यह माने कि दूसरा कुछ है ही नही, सब कुछ केवल एक ही है, उसे ब्रह्म या किसी भी नामसे कहा, तो ऐसी एक वस्तु होना प्रमाण सिद्ध नही है। जीव नाना है, सबके अपने अपने परिणमन है, विचार है, इसी से तो कभी क्षोभ नही अपने चित्तमे लाना चाहिए कि इनपर तो हम बडा विश्वास रखते थे, ये मेरे पुत्र है, ये मित्र है, इन लोगोसे हम बहुत आशा रखते थे कि ये मेरे खिलाफ न चलेंगे, पर मेरेसे खिलाफ हो गए यो सोच सोचकर तो दुखी ही होते है। अरे किसी भी परवस्तु (परजीव) पर आपका कोई अधिकार नही। स्वतत्र सत्त्व है, उसका परिणमन उसमे है जिस प्रकारसे भी है। जब भी आपकी बात मानते थे पुत्र या मित्र तब भी आपकी बात नही मान रहे थे, किन्तु उनका खुदका विचार ऐसा था कि मै इस तरहसे चलूँगा तो सुख शान्तिसे रहूगा। तो अपने ही विचारके कारण वे आपके अनुकूल चल रहे थे। कही आपकी सत्ताके कारण वे आपकी बात नही मान रहे थे। तो सभी जीव स्वतत्र है, उनका परिणमन उनमे है। ऐसा जाननेपर क्षोभका अभाव हो जाता है, मोह दूर हो जाता है।

अणु-परिमाण तच्च अंस-विहीणं च मण्णदे जदि हि।
तो सबंध-अभावो तत्तो वि ण कज्ज-संसिद्धि ॥२३५॥

जीवको अंशविहीन अणुपरिमाण माननेपर कार्यसिद्धिका अभाव—अब कोई दार्शनिक कहते है कि आपने इसमें बाधा दी कि कोई एक व्यापक द्रव्य नही है, वह तो कल्पित है। सो ऐसा यदि नही है तब तो यह मान लीजिए कि तत्त्व अणु रूप होगा, जीव अणु मात्र है, जैसे लोग ख्याल करते है कि जीव इतने बडे शरीरमे व्यापक है, इतना विशाल है सो नही है विशाल। विशाल तो अभी माना ही नही गया, ऐसा विशाल मानते कि सारी दुनियामे एक जीव है तो जब वह विशाल न रहा तो इतना भी विशाल मत मानो कि देह प्रमाण है और, मानो कि एक परमाणु बराबर, बट बीज जैसा छोटा एक जीव होता है, इस सारे शरीरके किसी भी कोनेमे वह अणु मात्र जीव पडा है। इसके उत्तरमे कहते है यदि तत्त्वको अणुप्रमाण माना जाय, अशरहित, प्रदेशरहित माना जाय तब फिर सम्बधका अभाव हो जायगा। जैसे एक इस शरीरमे एक अणु बराबर जीव मान लिया तो वह तो अणु परिमाण हो गया, बडा न रहा, उसके अवयव न रहे। तो जब वह अणु परिमाण है तो उसका अन्य जगह सम्बंध ही न बनेगा। जैसे जीव एक अगुलीके आखिरी हिस्सेमे पडा

है, सारे शरीरमे सम्वध न रहे, तव तो फिर शरीरके किसी अगमे फोडा फुसी हो जानेपर उस जीवको वेदनाका अनुभव न होना चाहिए। तो अणुप्रमाण जीव है यह तत्त्व भी सही नही हो सकता। तब समस्त शरीरके साथ सम्बध न रहा जीवका, क्योकि वह तो अणु परिमाण है। किसी जगह पडा है। तो सर्व अङ्गोमे होने वाले सुख दुखका अनुभव न हो सकेगा। जैसे बाहरमे कोई चीज पडी है तब अनुभव आत्माको अपना नही होता, ऐसे ही शरीरमे भी किसी जगह कुछ बीते, जब वहाँ सब जगह आत्मा नही है, कही एक जगह पडा है, फिर उसका ज्ञान न होना चाहिए। और, जब उसका ज्ञान न होगा तो सुख दुख पुण्य पाप, लोक परलोक, जीवन मरण आदि ये भी न बन सकेगे। वे तो शुद्ध रह जायेगे। और, शुद्धद्रव्यका विभाव क्या, विकार क्या ? फिर ये विपमताये न बनेगी।

प्रत्येक जीवकी अखण्डता व अनेकप्रदेशिता——उक्त विश्लेपणसे सिद्ध होता है कि जीव एक होकर भी अनेकप्रदेशी है, अखण्डप्रदेशी है। अखण्ड है इसलिए तो एक है, वे सब एक है। इन पुद्गलोकी भाँति कही चीर फाड करके अलग-अलग टुकडोमे इस जीवको नही बाँटा जा सकता, क्योकि ये चीजे जो दिख रही है वे वास्तवमे एक नही है, अनन्त परमाणुओका समूहरूप है, और यत्न करके यह किया गया कि कुछ परमाणु एक तरफ पड गए, कुछ परमाणु एक तरफ। एकका आधा नही बन सकता। जो वास्तवमे एक है उसका आधा क्या किया जायगा ? जैसे एक मोटी बात उदाहरणमे ले लो——एक रूपयाका आधा क्या ? आधा रूपया। तो उस आधा रुपयाका अर्थ है ५० नये पैसे। तो वह रुपया १०० पैसोका समूह है तब आधा समझ लिया उसका। अब जैसे एक नये पैसेको उदाहरणमे लिया तो बताओ उसका आधा क्या ? अथवा कोई ऐसा सिक्का उदाहरणमे ले लो जैसे कि पहिले दमडी छदाम आदि चलते थे, जिनके बाद फिर कोई अश न हो, तो उस सिक्के का आधा नही किया जा सकता। जो वस्तु एक है उसके विभाग नही होते। यो यह मै जीव इतना विशाल होकर जो इतने देहमे व्यापक हू उतने पर भी मैं अखण्ड हू, उसके दो भाग नही हो सकते। इतने पर भी विशालता है यह कैसे जाना जायेगा ? तो वह प्रदेशको देखकर जाना जायगा। इतने मे फैला है यह जीव। प्रदेशोकी अपेक्षासे वह अनेकप्रदेशी है और अपनी अखण्डताकी अपेक्षासे प्रत्येक जीव प्रत्येक अणु एक-एक है, तो मानना होगा यह और अनुभव सिद्ध है यह कि मै एक असख्यातप्रदेशी होकर भी अखण्ड अपने स्वरूपमे रहता हू और अपने स्वरूपमे रहता हुआ अपना उत्पाद व्यय करता रहता हू। यह सब चर्चा अपने आपकी है। जैसे हम परवस्तुओका ज्ञान करते रहते है कि यह खम्भा है, यह चौकी है आदि, इसी तरह यदि हम अपने आपकी वस्तुका ज्ञान करने चलेगे तो न होगा क्या ? वह तो और आसानीसे होगा, और स्पष्ट होगा, क्योकि खुद ही आत्मा है, स्वय ज्ञानस्वरूप है

और खुदको ही जानने चला है और खुदके ही स्वरूपसे वह जान रहा है।

सव्वाणं दव्वाणं दव्व–सरूवेण होदि एयत्त।
णिय–णिय–गुण–भेएण हि सव्वाणि वि होंति भिण्णाणि ॥२३६॥

सभी द्रव्योका द्रव्यस्वरूपसे एकत्व और निज निज गुणभेदसे भिन्नत्व—सभी द्रव्य द्रव्यस्वरूपसे एक है, सभी पदार्थ सत् है, अपने गुण पर्यायमे व्याप्त है, इस दृष्टिसे चूँकि यह बात सबमे एक समान पायी जाती है अर्थात् कही विषमता नही है कि कोई पदार्थ अपना अस्तित्व रखता है और कोई नही रखता है। सब सत् है। उस सत्त्वकी दृष्टिसे सबमे एकता समझी जाती है, मगर अपने अपने गुणभेदसे सभी पदार्थ भिन्न-भिन्न हुआ करते है। सत् उसे कहते है जो अपने गुण पर्यायोमे व्याप करके रहे, उसीका ही नाम द्रव्य है। जो अपनी पर्यायोको प्राप्त करता था, करता है और करेगा; उसका नाम द्रव्य है। जो चीज है, जिसकी अनादिसे अवस्थाये बन रही थी। अब बन रही है और आगे बनती रहेगी उसका नाम पदार्थ है, गुण है, वस्तु है, ऐसे द्रव्य ६ जातिके हुआ करते है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। द्रव्योका यथार्थ स्वरूप ज्ञानमे आये तो यह बडा ऊँचा विवेक है, मोह तो इसी तत्त्वज्ञानसे दूर होगा, क्योकि सर्व पदार्थोका जब यथार्थ स्वरूप ज्ञानमे आयेगा तो सब न्यारे-न्यारे जचने लगेगे। सभी पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे है। जब सभी पदार्थ न्यारे-न्यारे जंचने लगेगे तो वहाँ मोह न ठहरेगा। मोह नाम है बेहोशीका। जहा पदार्थोका परस्परमे स्वरूप मेल कर दिया वहाँ फिर मोहमे होश नही रहता। अपना होश यही है कि मै समस्त परद्रव्योसे निराला अमूर्त केवल ज्ञानमात्र हू ऐसी सुध हो। ऐसी सुधमे मोह नही रहता। तो मोह मिटानेका अमोघ उपाय, जो उपाय व्यर्थ न जाय वह है भेदविज्ञान। और भेदविज्ञान करनेका साधन है वस्तुके निज-निज स्वरूपका परिज्ञान। तो उन सब निजस्वरूपके परिज्ञानके लिए यह सब शास्त्रपद्धतिमे वर्णन किया जा रहा है।

सर्व पदार्थोंमें साधारणगुणकी अपेक्षा अभेद—पदार्थ ६ जातिके है, जीव—जिसमे चेतनता हो सो जीव। सिद्ध भगवान, अरहंत, निगोदिया जीव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदिक ये सब जीव है और चेतनालक्षणकी दृष्टिसे वे सब एक जातिमे है। तो है सब एक जातिमे लेकिन परिणतियोमे तो बडा अन्तर है। एक सिद्ध है, मायने जो आत्मा है, जैसा है एक केवल वही रह गया, उसके साथ शरीर नही, कर्म नही, विकार नही, वह तो केवल एक विशुद्ध ज्ञानानंद स्वरूपमे बसा हुआ है। और यहाँ ये संसारी जीव अपने उपयोगमें कितने ही पदार्थोको लिए फिर रहे है, दुखी हो रहे है, तो विडम्बनामे फँसे हुए इन जीवोमे और केवल विशुद्ध सिद्ध भगवन्तमे कोई अन्तर नही है क्या? हाँ पर्यायदृष्टिसे इनमे अन्तर है, मगर मूलमे जो चैतन्यस्वभाव बसा हुआ है उसकी अपेक्षासे सब जीव एक समान कहे जाते

है। जैसे—घटादिक पर्यायें और रूपादिक गुणोका समुदाय मोटे रूपसे एक है, उनमे ये सब रूप, रस, गध, स्पर्श वाले पदार्थ जैसे खम्भा, चौकी, दरी आदिक ये सब पुद्गल स्वरूपकी दृष्टिसे एक है—सभी पुद्गल है, सभी रूपी है तो ये जैसे पुद्गलकी दृष्टिसे एक हैं इसी तरह जितने जीव है वे सब जीव-चैतन्यकी दृष्टिसे एक है और फिर जितने भी द्रव्य है—जीव हो, पुद्गल हो, सब एक सत्त्वकी दृष्टिसे एक है। द्रव्य तो है। द्रव्यमे जो बात होनी चाहिए द्रव्यके नाते से वह बात सबमे हो रही है, अर्थात् सब है और निरन्तर परिणमते रहते है।

वस्तुका निजस्वरूप और सामान्यदृष्टिसे उसका परिचय— देखिये वस्तुस्वरूप यह समझना है कि प्रत्येक पदार्थ है और अपने स्वरूपसे अपना उत्पाद व्यय ध्रौव्य करता है, अपनी नई अवस्था बनाता है, अपनी पूर्व अवस्था विलीन करता है, ऐसा सभी द्रव्योमे अपने आपके स्वरूपमे हो रहा है। भले ही जो विकाररूप परिणमन है वह किसी अन्य द्रव्यका निमित्त पाकर हो रहा है फिर भी अन्यका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव लेकर परिणमन नही होता। तो यो प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमे है, अपनी उनकी गुणपर्यायें है। अब उनमे पर्यायदृष्टिसे भेदव्यवहार है। गुणके भेदसे भेद किया जाता है। वैसे तो मूलधर्मकी अपेक्षा एक है। जीव किसे कहते है ? जिसमे चैतन्यगुण पाया जाय, और अजीव पुद्गल जिनमे अचेतनता हो, रूप, रस, गध आदिक हो तो अब इन गुणोके भेदसे ही वह भेद किया गया। जब गुण भेद पर दृष्टि करते है तो सभी पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रतीत होते है और जब उनको सत्त्वकी दृष्टिसे देखा तो सभीके सभी एक है। दूसरे क्या ? यह सब अपेक्षाओसे जाना गया है। जैसे पाँचो अगुली अगुलीकी दृष्टिसे एक है मगर इन सबमे स्वय अपने-अपने अलग-अलग गुण है इस कारणसे ये भिन्न-भिन्न है, जो बात बीचकी अगुलीमे बन रही है वह अन्य अगुलीमे नही बन रही, तो इनका परिणमन न्यारा है। रूप, रस आदिक भी न्यारे न्यारे है। तो जैसे ये गुण भेदसे भिन्न-भिन्न है, सारे द्रव्य गुणभेदसे भिन्न भिन्न है पर सत्त्व द्रव्यत्वकी दृष्टिसे निरखा जाय तो सर्व कुछ वह एक सद्रूप प्रतीत होता है। देखिये—जितना-जितना सामान्यकी ओर जायेगे उतनी-उतनी एकता समझमे आयेगी और जितना जितना विशेप की ओर दृष्टि जायेगी उतनी उतनी भिन्नता समझमे आयेगी। जैसे सभी मनुष्योको जब हम मनुष्यत्व सज्ञासे देखते है तो सभी मनुष्य एक है। किसी ने यदि कहा कि मनुष्यको लावो, तो चाहे बच्चा हो, बालक हो, जवान हो, बूढा हो, किसीको भी वह ला सकता है। उसे डाटा नही जा सकता कि तुम बच्चा क्यो ले आये ? और यदि कहा जाय कि कोई बलवान जवान पुरुष लावो, तब फिर कोई बच्चा, बालक या बूढा व्यक्ति नही लाया जा सकता, अगर लाये तो उसे डाटा जा सकता है। तो सामान्य पर दृष्टि देने

पर तो कोई भिन्नता नही प्रतीत होती, वहाँ एकता है, पर जब विशेषपर दृष्टि देते है तो वहा भिन्नता प्रतीत होती है ।

जो अत्थो पडिसमयं उप्पाद-व्वय-धुवत्त-सब्भावो ।
गुण-पज्जय-पहिणामो सो संतो भण्णदे समए ।।२३७।।

सत्‌का स्वरूप——सत् किसे कहते है याने जो है उसका स्वरूप क्या है इसका वर्णन इस गाथामे किया गया है । जो पदार्थ प्रति समय उत्पादव्ययका का स्वभाव रख रहा है अर्थात् प्रति समय नई अवस्थामे आता है और पुरानी अवस्था जिसकी विलीन होती है फिर भी जो वस्तु सदा काल रहती है उसको कहते है सत् । जो है उसमे ये तीन बाते नियमसे होंगी कि वह नई पर्यायको बनायेगा और पुरानी पर्यायको मिटायेगा और वह खुद बना रहेगा । देखिये—जितने भी पदार्थ है सभीमे यह लक्षण है कि उसमे नई बात बनेगी और पुरानी बात खतम होगी और वह चीज ज्यो की त्यो बनी रहेगी । जैसे जीव है उसमे नई-नई पर्याये बनती है, पुरानी पर्याये विलीन होती है, और उसका जो मूलभूत तत्त्व है वह निरन्तर रहा करता है । ऐसे ही पुद्गलमे रूप, रस आदिक तो बदलते रहते है, जो स्वयं मूल परमाणु है उसका कभी नाश नही होता । तो गुण और पर्यायसे युक्त जो द्रव्य है उसको सत् कहा करते है । अब प्रत्येक पदार्थ नई अवस्थाये बनाता तो है पर अटपट न बनायेगा, अपनी जातिमे बनायेगा । जैसे मिट्टीसे जो कुछ भी बनाया जायगा घडा, सकोरा, दीपक आदि वह सब मिट्टीमय ही होगा, कही अन्य धातुमे न बन जायगा, ऐसे ही जीवमे जो कुछ भी परिणमन होगा वह जीवरूप ही होगा, कही पुद्गलरूप न हो जायगा । तो पूर्व पर्यायके नाश होनेका नाम उत्पाद है । जब अगली पर्याय बनती है तो पूर्वपर्याय उसी समय नष्ट हो जाती है । जिस समय पूर्वपर्याय नष्ट हुई उसी समय नई पर्याय बनती है । अनादि पारिणामिक स्वभावसे देखा जाय तो वस्तु न नष्ट होती, न उत्पन्न होती किन्तु स्थिर रहती है । तो पदार्थमे ये तीन तत्त्व है इसको मना नही कर सकते ।

वस्तुकी विलक्षणता—अब जिनको ये तीन बाते उत्पादव्ययध्रौव्य वस्तुस्वरूपसे विदित हो रही है वे मान लेते है वस्तुरूपको और जो नही समझते, फिर वे कल्पनाये करते है कि इस लोकके रचने वाला कोई ब्रह्मा है, इस लोककी रक्षा करने वाला कोई विष्णु है और इस लोकका सहार करने वाला कोई महेश है । इस तरह तीन देवताओकी कल्पना चलती है, क्योकि यह अवश्यम्भावी है कि जो पर्याय है वह नष्ट होगी, नवीनपर्याय बनेगी और फिर भी वह मूलभूत चीज बनी रहेगी । ये तीनो बाते वस्तुके स्वभावमे है इस बातको तो मना नही कर सकते, किन्तु स्वरूपमे न देखकर अलगसे तीन देवता मान लिया । अरे, वस्तुमे देखो तो त्रिदेवतारूप सब वस्तु है । बताओ पहिले ब्रह्मा हुए कि विष्णु कि महेश ?

और इनमे छोटा बडा कौन है ? तो इसका कोई सही उत्तर नहीं मिल पाता। कभी तो यह चर्चा होती है कि ब्रह्मा पहिले हुए, विष्णु बादमे हुए, लेकिन कुछ कथन ऐसे भी मिलते हैं कि जहां एक देवताको दूसरे देवताकी शरणमे जाना पडा, तो काल कुछ न रहा, छोटे बडेकी भी बात कुछ न रही। कभी कोई किसीके पास शरण लेता; कभी कोई। और इन तीन देवताओके धर्मको यदि वस्तुके स्वभावमे ही परखा जाय तो देखो कितना वस्तुका वैभव (जौहर) विदित होता है ? वस्तु है तो उसमे नयी पर्यायका उत्पाद है, पूर्व पर्यायका विनाश है और सदा वह वस्तु रहती है। इस उत्पादका नाम है ब्रह्मा, व्ययका नाम है महेश और ध्रौव्य (स्थिरता) का नाम है विष्णु। ये तीनों ही धर्म वस्तुमे एक साथ है।

जिस समय उत्पाद है उसी समय व्यय है और उसी समय ध्रौव्य। जैसे मिट्टीमे घडा पर्याय बनी तो घडेका उत्पाद है, मृत्पिण्डका विनाश है और जो मिट्टी द्रव्य है उसकी सदा स्थिरता है। तो एक साथ उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन धर्म है। अब स्वरूपकी दृष्टिसे देखो तो जो उत्पादका स्वरूप है वह व्ययका नही, जो व्ययका स्वरूप है वह ध्रौव्यका नही। इन तीनोका स्वरूप भी न्यारा-न्यारा है। इस तरह देखा जाय तो प्रत्येक धर्मको प्रत्येक धर्मकी शरण लगी। यदि इन तीनोमे से किसी एकको न माना जाय तो बाकी दो भी नही रह सकते। जैसे मान लो कि वस्तु है मगर न उसमे उत्पाद है, न व्यय है तो वह कोई सत् न रहेगा। वस्तु निरन्तर उत्पन्न होती रहती है, उसमे यदि किसी पर्यायका उसी समयमे व्यय न हो तो उसका उत्पाद भी न बनेगा। और पर्याय नष्ट ही होती रहे, उसमे यदि किसी नवीन पर्यायका उत्पाद न हो तो उसका व्यय भी न बनेगा तो ये तीनो धर्म प्रत्येक वस्तुमे इस तरहसे है कि एकके बिना दूसरीकी सत्ता नहीं टिकती। यो वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूप है।

उत्पादव्ययध्रौव्यका समीचरण—प्रत्येक पदार्थमे वे उत्पादव्ययध्रौव्य भिन्न-भिन्न रूप से परखमे आयेंगे। जैसे जो जीव शुद्ध हो गया जैसे सिद्ध भगवान, सिद्ध भगवानको हम क्यो पूजते है कि वे एक ऐसी उत्कृष्ट आत्मा है कि जिनके साथ न शरीर है, न कर्म लगे है और न रागद्वेषादिक विकार है, यो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म इन तीनोसे रहित केवल आत्मा ही आत्मा रह गया है, उसका अलौकिक वैभव हैं। यह आत्मा केवल रह जाय, उसके साथ किसीका भी सबध न हो तो इसके गुण पूर्ण विकसित हो जाते है। ऐसा अलौकिक ज्ञान बनता है कि तीनो लोकालोकके समस्त पदार्थ ज्ञानमे आते है। उन सिद्ध भगवान का ऐसा अद्‌भुत आनन्द है कि जिस आनन्दमे कहीं न न्यूनता है, न विषमता है, न आकुलता है। और, अनन्तकाल तकके लिए उस ही रूप सदा रहते है। तो जिनके परिपूर्ण ज्ञानानन्द है ऐसे ये सिद्ध भगवान जिनके ध्यानसे ही हम आपकी सिद्धि हो सकती है, उनके

स्वरूपके ध्यानसे अपने आपका स्वरूप विदित होता है और स्वानुभव प्रकट होता है और उससे ही समस्त कर्मोका क्षय होता है। कर्मोके क्षयसे शरीर जन्म मरण ये सब दूर हो जाते है, और शुद्ध केवल परमात्मस्वरूप रह जाता है, ऐसा वह जो शुद्ध जीव है वह कैसा है ? अकेला। अपने स्वरूपसे निराला है, उसमे केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि ये तो शुद्ध गुण है और लोकप्रमाण अखण्ड प्रदेश शुद्ध पर्याय है याने शुद्ध जीवास्तिकाय है जो व्यक्तिमे चरम-देह प्रमाण है। जिस आत्माके साथ किसी अन्यका कोई सम्बंध नही है उसका उत्पादव्यय-ध्रौव्य क्या हो ? तो परमार्थत तो यह बताया गया है कि अगुरुलघुत्व गुणकी वृद्धिसे उनमे उत्पाद है और हानिसे उनका व्यय है, और वहाँ जो नवीन पर्यायका आविर्भाव हुआ है वह उत्पाद है और पूर्व समयकी पर्याय जो गुजर गई वह उनका व्यय है। अब अशुद्ध जीवको देखो तो उनमे जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदिक नाना ज्ञान बनते है वह तो उत्पाद है अथवा नर नारकादिक पर्याये बनती है वह उनका उत्पाद है, पूर्व शरीरको छोडा, नवीन शरीरको ग्रहण किया। जीव वही था अब नारकी कहलाने लगा, पशु कहलाने लगा, और जीव जिस पर्यायमे जाता है उस पर्यायके माफिक ही अपना सारा ढाचा बना लेता है। मनुष्य है तो उसका खाना, पीना, उठना बैठना आदिक सारी क्रियाये मनुष्य जैसी है और अगर मरकर पशु पक्षी आदि बन गए तो वहाँ उस तरहकी क्रियायें होगी। तो क्रियावोमे परिवर्तन तो हो गया मगर मूलमे जीव तो वही रहा।

अपनेको नित्यानित्यात्मक माननेसे धर्मधारणकी शक्तिका अवसर—देखिये—अपने आपको मै नित्य हू, मैं अनित्य हू, ऐसी दोनो बाते स्वीकार किए बिना धर्मके लिए चित्त न होगा। मैं सदाकाल रहता हू, कही मेरा विनाश नही है और मै नवीन-नवीन पर्यायोको धारण करता हू तब यह दया होती है अपने आपपर कि अपना ऐसा उपयोग बनावे कि जिससे नवीन पर्याय कष्टमयी न बने। मान लो आज जरा जरासे कष्टोसे बचनेके लिए मन को स्वच्छन्द बनाया है, अनेक प्रकारके भोगविषयोमे अपने चित्तको फसाकर जो आज स्व-च्छन्द होकर प्रवृत्तियाँ की जा रही है वे सब इस जीवको अहितके गर्तमे पटकने वाली होगी। यहाँका मौज कितने दिनोके लिए है ? लेकिन यह मोही प्राणी इन्हीमे रत होता है, कष्ट चाहे कितने ही सहन करने पडे। ठीक है, आज तो इन भोगविषयोमे रमनेमे बडा अच्छा लग रहा है, पर थोडे ही दिनो बादमे मान लो यहाँसे मरकर घोडा खच्चर बन गए तो क्या हाल होगा ? आप रोज-रोज उन जीवोकी हालत देख ही रहे है। जहा दो सालका ही खच्चरका बच्चा हुआ बस उसे इक्का, तागा आदिमे जोतने लगते है, बडा बोझा उसपर लादते है, दौडाते है, जरा भी चालमे कमी हुई तो ऊपरसे कोडे बरसते है। इतनेपर भी जब बेकामसा हो जाता तो उसे कसाइयोके हाथ बेच देते है, तो जरा उन खच्चरो आदिके दुख

की कहानी पर ध्यान तो दो, कितने कष्ट है । आज इस मनुष्यपर्यायमे आकर जरा जरासी बातोमे कष्ट मानते है, भोग विषयके साधन जुटानेमे सलग्न है, लेकिन इनसे इस जीवका पूरा न पडेगा । जीवका पूरा तो जीवके निजी वैभवसे ही पडेगा, इन बाहरी विभूतियोसे जीवका पूरा न पडेगा । जब यह जीव इस तरहके अनेक जन्म मरणोको धारण करता फिरता है तो अपना परिणाम ऐसा बनानेकी आवश्यकता है कि हमारी परिणति शुद्ध बने, जिसमे क्लेश नही हो । तो नित्यानित्यात्मक पदार्थ माननेसे हमें वहाँ उपदेश प्राप्त होता है ।

पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश व कालद्रव्यका उत्पादव्यय—अब पुद्गल द्रव्यको देखो—जो एक शुद्ध परमाणु है वह तो है शुद्धद्रव्य और उसमे स्पर्श, रस, गध, वर्णादिक गुण है, जब वे परमाणु असख्यात अथवा अनन्त मिल जाते है तो वहाँ यह स्कध-पिण्ड बन जाता है । यहाँ जो कुछ भी पदार्थ दिखता है वह अनेक (अनन्त) परमाणुओका पिण्ड है । जब अनेक परमाणु मिले तो स्कध पर्यायका उत्पाद हुआ । परमाणु बिखरे तो उसका व्यय हुआ, मगर परमाणु स्वरूपमे तो वह सदा ही रहता है । रूपादिककी अवस्थाओ मे गुणपर्याये बनती है । ऐसे ही धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य आदि सभी द्रव्योका उत्पाद व्यय है । धर्मद्रव्यका लक्षण बताया है कि जीव पुद्गलके चलनेमे सहकारी होना । वह धर्मद्रव्य लोकालोक बराबर है और जीव पुद्गल चलते है उससे उनका उत्पाद है, पुद्गल, जीव जब ठहरते है तो लो वह धर्मद्रव्यका व्यय है । यह कथन है आपेक्षिक । वस्तुत धर्मद्रव्यमे जो अगुरुलघुत्व गुण है उसकी षड्गुण वृद्धिमे उत्पाद और षड्गुण हानिमे व्यय है । इसी तरह अधर्मद्रव्य जो जीव पुद्गलके ठहरनेमे सहकारी हो । जब पुद्गल ठहरे तो उस रूपका उत्पाद है, ठहरना मिटा तो उस रूपका व्यय है । और फिर भी वह द्रव्य सदा है और वस्तुत उसके ही अगुरुलघुत्व की षड्गुण वृद्धि हानिमे उत्पादव्यय है । इसी तरह आकाश द्रव्यको ले लीजिए—यह आकाश अखण्ड है, एक है, सर्वव्यापी है । इसका उत्पाद व्यय क्या ? वस्तुत अगुरुलघुत्व गुणकी हानिवृद्धिसे उत्पाद व्यय है और नीचेसे कोई घट उठा कर यहाँ ऊपर रखा गया तो यहाँ (ऊपर) के घटाकाशका तो उत्पाद हुआ और नीचे के घटाकाशरूपका व्यय हुआ । इसी प्रकार काल द्रव्य-काल द्रव्यका वास्तविक परिणमन अगुरुलघुत्व गुणकी हानि वृद्धिसे है, पर उसमे नवीन समय जो आया वह उत्पाद है और पुराना समय गया वह उसका विनाश है । इस प्रकार निरखे तो जगतमे जो भी सत् है वे सब उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है । तत्त्वार्थसूत्रमे पञ्चम अध्यायमे आया है—उत्पादव्ययध्रौव्य-युक्त सत् । लोग इसे पढ तो जाते है पर इस सूत्रमे कितना मर्म (जौहर) भरा है इस पर लोग दृष्टि नही देते ।

विभ्रमज कष्टके विनाशका उपाय विभ्रमविनाश—भैया ! मोह मिटेगा तो वस्तुस्वरूप के सम्यग्ज्ञानसे मिटेगा। और जब मोह मिटेगा तब ही जीवको शान्ति होगी, क्योकि मोह एक व्यर्थकी चीज है। पहिले किसी पर्यायमे थे, वहाँ बहुतसा समागम मिला हुआ था, आज वतलावो वह समागम कुछ है क्या ? कुछ भी नही है। तो ऐसे ही समझलो आज जो समागम प्राप्त है वे अभी थोडे दिनो बाद आपके कुछ न रहेगे। वे समस्त परपदार्थ आप से अत्यन्त भिन्न है लेकिन मोहवश यह मोही प्राणी उन्हे अपना मान लेता है। यह कल्पना भी नही करता कि ये मेरे नही है। तो यह व्यर्थका मोह है। मोहवश जबरदस्ती ये प्राणी परपदार्थोको अपनाते है और दुखी होते है। जैसे कोई अतिथि घर आया तो उसे लोग बोला करते है कि महिमान आया। महिमा नही जिसकी सो महिमान। उसे लोग अपनाते तो नही है पर कोई कोई महिमान जबरदस्ती उन्हे अपनाता है। इसीकी एक कहावत भी प्रसिद्ध है—मान न मान, मै तेरा महिमान, याने तुम लोग चाहे मुझे अपनाओ या नही पर मै तो तुम्हारा हूँ। इसी तरह यह मोही प्राणी इन परपदार्थोको जबरदस्ती अपना मान लेता है, यह घर मेरा, ये कुटुम्बीजन मेरे, ये मित्रजन मेरे । वे इसे अपना माने अथवा न माने, पर यह मोही प्राणी अज्ञानतावश उन्हे अपनाता है और दुखी होता है। अरे इन पदार्थोका स्वरूप ही बतला रहा है कि ये सब भिन्न-भिन्न पदार्थ है, किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ रच भी सम्बन्ध नही, फिर भी यह मोही प्राणी उनसे अपना सम्बन्ध मानता है। जैसे कोई कामी-पुरुष किसी स्त्री द्वारा तिरस्कार किए जाने पर भी आसक्तिवश उसमे रति करता है इसी प्रकार इन बाह्य पदार्थोके सम्वन्धसे अनेक प्रकारके कष्ट मिलने पर भी यह जीव उन पदार्थोका समागम नही छोडता। यही तो कष्ट है। तो यह सूत्र यही चेतावनी देता है कि उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त पदार्थ है। पदार्थका स्वरूप ही है कि वह अपनेमे उत्पाद करे, अपनेमे व्यय करे और अपनेमे ही बना रहे। जव सभी पदार्थ अपने-अपने स्वरूपका ऐसा व्रत लिए हुए है तो फिर किसका कौन रहा ? लेकिन ये मोही जीव कितना ही समझाये जाने पर भी यही भीतरसे आवाज देते है कि मेरे तो यही सब कुछ है। वस इसी कुबुद्धिसे ही सारा कष्ट है। इस विभ्रमके मिटनेपर सारे कष्ट दूर हो जाते है।

पडिसमयं परिणामो पुव्वो णस्सेदि जायदे अण्णो।
वत्थु-विणासो पढमो उववादो भण्णदे विदिओ ॥२३८॥

वस्तुमें प्रतिसमय उत्पादव्ययकी समीक्षा—व्यय और ध्रौव्य क्या कहलाते है, उनके स्वरूपका इस गाथामे वर्णन है। प्रत्येक समयमे पदार्थमे पर्याये होती रहती है। तो किसी भी समयमे जो पहिली पर्याय है उसका तो व्यय है और जो नवीन पर्याय है उसका उत्पाद

कहलाता। जैसे घडा फूट गया तो खपरियोका उत्पाद हुआ और घडा पर्यायका व्यय हुआ। इतने पर भी मिट्टी वही वनी रही। यही वात सभी पदार्थोमे समझना चाहिए। यहाँ पूर्व पर्यायका नाश हुआ तो उसके मायने यह नही समझना कि वस्तु पूरी नष्ट हो गयी। यदि वस्तु पूरी नष्ट हो गयी यह अर्थ लिया जायेगा तो यह क्षणिकवाद कहलायेगा निरन्वय नाश। क्षणिकवादमे नवीन-नवीन वस्तु निरन्तर उत्पन्न होती रहती है, वह सद्भूत नही है, विल्कुल नई वस्तु उत्पन्न हुई है और पहिलेकी वस्तु पूर्ण नष्ट हो गई है, लेकिन इस प्रकार तो वस्तुस्वरूप नही है। वस्तुका एक नवीन परिणतिसे तो उत्पाद है और पूर्व परिणतिसे व्यय हुआ और इसमे एक वात यह समझना कि कोई पदार्थ अपनी जातिको छोडकर नही परिणमता। जैसे जीव परिणमता है तो जीव पुद्गल वनकर परिणमन करे सो न होगा। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने मे रहकर ही परिणमता है। जैसे जीव कितने ही विकल्प करे। वहाँ नये-नये विकल्प वनते, पुराने विकल्प दूर होते और जीव वही एक रहता है। तो यो उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त समस्त पदार्थ है।

भारतीय मुद्रामें जैनशासनका संकेत—अब देखिये आज के भारत देशकी जो मुद्रा है उसका रूप क्या है? उसमे अशोकका चिन्ह है, तो उस अशोक चिन्हका भी रूप क्या? अशोक चिन्हमे चार सिह ऊपर बनाये गए, एक पूर्वकी ओर, एक पश्चिमकी ओर, एक उत्तरकी ओर और एक दक्षिणकी ओर। पीछेका सिह तो दिखेगा नही, केवल तीन ही दिखाई पडते है। तो वे चार सिह वास्तवमे है क्या? महावीर स्वामीके शासनमे उनका चिन्ह बताया गया सिह। तो वह सिह महावीर स्वामीकी स्मृति दिलाता है। एक अशोक राजा हो चुका है उसके राज्यमे यह सिहका चिन्ह बनाया गया था। अशोक भी पहिले जैन था, कारणवश पीछे युद्ध हुआ तो उसके समयमे बौद्धमतका प्रसार अधिक होनेसे वह बौद्ध बन गया, वे सभीके सभी चिन्ह दूसरे रूपमे आ गए।

भारतध्वजमें वस्तुस्वरूपका चित्रण—अब ध्वजाकी वात देखिये तो वह भी वस्तु-स्वरूपका सकेत करता है। उसमे तीन रग है—लाल, हरा और सफेद। और, वह भी हरा, लाल रग तो अगल बगल है वीचमे सफेद रग है। साहित्यिक रचनामे कविजन बताते है कि हरा रग उत्पादका सूचक है। लोग कहते भी तो है कि अमुक व्यक्ति खूब हरा-भरा है मायने खूब घर, द्वार, धन, दौलत आदिसे भरा पूरा है। तो हरे रगका वर्णन चलता है उत्पादमे। लाल रगका वर्णन चलता है विनाशके लिए। कोई युद्ध हो जाय, खूनकी धाराये बह जाये, हत्याये हो जाये तो वहाँ कविजन लाल रगका वर्णन करते है। अब देखिये—बीचमे जो सफेद रग है उसका मतलब है कि वस्तु ध्रुव है। ध्रुवता, स्थिरता का वर्णन श्वेत रगसे किया जाता है। श्वेत रगसे सम्पर्क रखने वाले लाल और हरे रग है याने वस्तु

की स्थिरतासे सम्पर्क रखने वाले उत्पाद और व्यय अगल बगलमे है। यो प्रत्येक वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है। उस ध्वजाके बीचमे २४ आरोका एक चक्र बना हुआ है वह सूचक है चौबीस तीर्थंकरोका। वह २४ आरोका चक्र संसारके प्राणियोको यह सूचना देता है कि ऐ संसारके प्राणियो! यदि तुम सुखी होना चाहते हो तो चतुर्विंशति तीर्थंकरोसे प्रणीत वस्तुस्वरूपकी सत्य श्रद्धा करो, क्योकि शान्ति मिलेगी इस मोहके मेटनेसे, और यह मोह कब मिटेगा जब कि हम यह समझ पायेगे कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे है, किसीका किसी परपदार्थमे गमन नही है, ऐसी वस्तुकी स्वतन्त्रताका जब बोध होगा तब ही हम वस्तुके सत्य स्वरूपको परख सकेगे। अत सम्यग्ज्ञानके लिए हमे स्वाध्यायमे बहुत-बहुत उपयोग देना चाहिए, क्योकि ज्ञान होगा तो यही हमारा साथी बनेगा और यहाँके समागम कुछ भी प्राप्त हो जाये पर वे हमारे साथी कभी नही हो सकते। दुःख दूर होगे तो विवेक से होगे। विवेक किए बिना इस मोह द्वारा उपार्जित दुःख दूर न हो सकेंगे।

णो उप्पज्जदि जीवो दव्व-सरूवेण णेव णस्सेदि।
त चेव दव्व मित्त णिच्चत्त जाण जीवस्स ॥२३६॥

द्रव्यस्वरूपसे जीवके उत्पादव्ययका अभाव——जीवद्रव्य स्वरूपसे न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। याने जो जीवद्रव्य है वह जीवद्रव्य न तो नया बना है और न यह खुद मिटेगा। इस ही को समझना चाहिए कि यह नित्य है, द्रव्यमात्र है। जीवका जो निजी स्वरूप है, जो निजी वस्तु है वह वस्तु नही मिटती, वह तो अनादि अनन्त है। जैसे लोग कहा करते है कि अमुक पुरुषने जन्म लिया, अमुक बालकने जन्म लिया तो वहाँ जीवने जन्म नही लिया, जीव तो अनादिसे है अनन्त काल तक है, और जीव ही क्या, जगतमे जितने भी पदार्थ है वे सब अनादि अनन्त है, किसीका सत्त्व बादमे आया हो सो बात नही है। तो जीव सत्ता स्वरूपसे अपने ध्रुवरूपसे अथवा पारिणामिक भावरूपसे न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है यदि जीवका उत्पादव्यय माना जाय तो इसके मायने है कि कोई नया जीव उत्पन्न हो गया अथवा स्वय जो तत्त्व है उसका नाश हो गया, पर ऐसा तो नही है। जो भी सत् है। वह नष्ट कहासे हो जायगा? जैसे यहा जिन पुद्गलोको देखते है कि जला देनेपर राख हो जाते है, राख उड़ जाती है, जरा-जरासे हिस्सोमे फैल जाती है, फिर भी उसका जो मूल परमाणु है वह कभी नष्ट न होगा। तो निश्चयनयसे वस्तु न तो नष्ट होती है और न उत्पन्न होती है किन्तु ध्रुव है, स्थिर है, रहा करती है। तो यह पदार्थोंके स्वरूपकी चर्चा चल रही है कि प्रत्येक पदार्थ पर्यायरूपसे तो उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, लेकिन उसका जो मूल रूप है वह सदा है, द्रव्य है, वह न कभी उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है।

अणाइ-रूव दव्व विसेस-रूवो हवेइ पज्जावो।
दव्व वि विसेसेण हि उप्पज्ज दिणस्सदे सदद ॥२४०॥

वस्तुकी अन्वयिरूपता और विशेषरूपता—द्रव्यको कहते हे अन्वयी याने जो सब पर्यायोमे रहे उसको कहते है अन्वयी। तो जीव अन्वयी है, आज मनुष्य है तो इस पर्यायमे भी वही जीव है, मरण करके देव आदिक हो गए तो वहाँ भी वही जीव हे। समस्त पर्यायो मे जीव वही रहता है, इस कारणसे इसे अन्वयी कहते है। तो द्रव्य क्या होता हे ? वह जो अन्वयी हो, और जो विशेषरूप हो, जो अब है सो आगे नही, जिसका आकार प्रकार मुद्रा न्यारी-न्यारी है, विशेप स्वरूप है उसको पर्याय कहते है। यहाँ दो बाते जानना है—द्रव्य और पर्याय। द्रव्य जो होता है वह सदा रहता है। पर्याय नष्ट होती रहती है। जैसे मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी आदि ये सब पर्याये है। जीव द्रव्य है, अथवा क्रोध, मान, माया, लोभ, इच्छा आदिक ये सब पर्यायें है और इन सबमे रहने वाला जो अन्वयी चेतन है उसे जीव-द्रव्य कहते है। तो द्रव्य विशेपरूपसे याने पर्याय रूपसे निरन्तर उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, पर द्रव्यरूपसे न जीव कभी उत्पन्न होगा और न कभी नष्ट होगा। जिसमे यह बोध हो रहा है कि मै हूँ इस अह प्रत्ययके द्वारा जो जाना जा रहा है, सो मै सद्भूत वस्तु हू। उस सत्का कभी नाश नही होता और न कभी उत्पाद होता। इससे हमे यह शिक्षा लेना है कि जो मै हूँ वह कभी मिट नही सकता, सदा रहूगा, लेकिन उसमे विशेप पर्याये होती है। तो इससे हम यह निर्णय बनाये कि हम ऐसी पर्याय बनाये कि जिसमे अशान्ति न हो। जब हम विशुद्ध परिणाम बनायेगे, आचरण बनायेगे, अनुकूल श्रद्धान होगा तब ही तो हमारा भविष्य शान्तिमय व्यतीत होगा। तो यह शिक्षा लेना है इस नित्यत्व और अनित्यत्व की बात सुनकर कि हम जब सदा रहेगे तो फिर हमे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि हमारी अवस्था शान्ति स्वरूप रहे।

सरिसो जो परिणामो अणाइ—णिहणो हवे गुणो सो हि।
सो सामण्ण—सरूवो उप्पज्जदि णस्सदे णेय ॥२४१॥

द्रव्य होता है गुणपर्यायरूप याने जो भी चीज है उसमे दो बातोकी परख करना है। एक तो उसकी अवस्था और दूसरे उस पदार्थकी शक्ति। शक्तिका तो नाम है गुण और अवस्थाका नाम है पर्याय। कोई भी पदार्थ हो वह गुण पर्यायात्मक है। यदि पदार्थमे हम गुण न देखे, पर्याय न देखे तो पदार्थ फिर मिलेगा ही क्या ? तो पदार्थमे जो सदृश परिणाम है, अनादि अनन्त है उसे गुण कहते है। वह सामान्य स्वरूप है। गुण कभी नया उत्पन्न नही होता और न कभी नष्ट होता। जैसे जीवादिक द्रव्योमे कुछ गुण ऐसे पाये जाते है जिन्हे सामान्य कहते है। सबमे पाये जाते है। और, कुछ विशेप गुण होते है जैसे जीवद्रव्य

मे अस्तित्व गुण है, उसकी सत्ता है तो यह अस्तित्व सामान्य है, जीवमे भी अस्तित्व है और पुद्गल आदिक सभी द्रव्योमे भी अस्तित्व हैं। तो कुछ गुण ऐसे होते है जो सामान्य कहलाते है और कुछ विशेष गुण होते है, तो सामान्य और विशेष दोनो गुणोको समझना है, इसीसे द्रव्यकी परख बनती है। गुण वह कहलाता है जो सबमे एक साथ है। गुणोमे क्रम नही है, पर्यायोमे क्रम है।

जीवमे सामान्य और विशेष गुण—अब उन्ही सामान्य विशेष गुणोकी बात सुनो। जीवमे सामान्य गुण ८ है-अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रमेयत्व और प्रदेशत्व, ये ६ तो प्रसिद्ध साधारण गुण है। जीव अजीव सबमे समान पाये जाते है। इनके अतिरिक्त जो सब जीवोमे पाये जावे तथा जो जीव व कुछ अजीवो मे भी पाये जावे इस दृष्टिसे चैतनत्व और अमूर्तिकत्वको भी सामान्य गुण कहते है। तो पहिलेके जो ६ सामान्य गुण है वे तो सब द्रव्योमे है, अस्तित्व मायने वस्तुका होना, सत्ता होना। वस्तुत्वके मायने अपने स्वरूपसे होना, परके स्वरूपसे न होना, जैसे कि ये दो हाथ है, तो दाहिना हाथ अपने स्वरूपसे है बाया हाथ अपने स्वरूपसे, तब ही इन दोनो हाथोका स्वरूप है। जगतमे जो भी पदार्थ दिख रहे है उनका यही स्वरूप है, क्यो है यो कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थके स्वरूपसे नही है। तो यह कहलाता वस्तुत्व। द्रव्यत्व, जो निरन्तर परिणमन करता ही रहे। कोई समय ऐसा न आयेगा कि जहाँ परिणमन रुक जाय। इसे कहते है द्रव्यत्व गुण। और, परिणमन अपने स्वरूपमे ही करे दूसरेके स्वरूपमे न करे इसे कहते है अगुरुलघुत्व, और पदार्थ जब है तो अपने क्षेत्रमे है, दूसरेमे नही है इसे कहते है प्रदेशित्व और वह किसी न किसी ज्ञानके द्वारा ज्ञेय है इसे कहते है प्रमेयत्व। तो ये ६ गुण सभी पदार्थोमे है और चेतनत्व सब जीवोमे है। तो सब जीवोकी दृष्टिसे इसे भी सामान्यगुण कहा है। जैसे मुझ मे चेतन है, आपमे है, सभी जीवोमे है, अमूर्तत्व सभी जीवोमे है और कुछ अन्य द्रव्योमे भी है, यो ये ८ सामान्य गुण कहे है। विशेषगुण क्या है जीवके सो सुनो— ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शक्ति और अमूर्तत्व, चेतनत्व, तो ये ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शक्ति ये चार गुण तो जीवमे ही है अन्यमे नही पाये जाते, और सब जीवोमे भले ही समान है पर अन्य द्रव्योमे नही है इस कारण गुण विशेष है। और, अमूर्तत्व पुद्गलमे नही है, जीवमे है, अन्य द्रव्यो मे भी है, फिर भी सब द्रव्योमे नही है, इस कारण विशेष गुण कहा है। और चेतन तो इस जीवमे ही है अन्य पदार्थोमे नही है। तो इन गुणोकी परखसे बोध होता है कि यह मै जीव हू। हू ना, इस कारणसे ६ सामान्य गुण हो गए, और मै सबसे निराला हू, अपने स्वरूपमे हू। तो कोई इसका विशेष गुण होना चाहिए।

पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश व कालद्रव्यके सामान्य विशेष गुण— पुद्गलमे पूर्वकी

भाति ६ सामान्य गुण है और अचेतनत्व मूर्तत्व ये भी सामान्य गुण है। क्योकि सब पुद्गल मूर्तिक है, चाहे दिखने योग्य हो, चाहे न दिखने योग्य हो, सभी पुद्गलोमे मूर्तिपना है, रूप, रस, गध, स्पर्श है, अचेतनता है और पुद्गलमे विशेष गुण है रूप, रस, गध, स्पर्श, और अचेतनता और मूर्तपना, पुद्गल अचेतन है, वे सब रूपी होते है, उनमें रूप, रस, गध, स्पर्श है, अन्य द्रव्योमे नही है, इस कारण अचेतनत्व व मूर्तत्वको पुद्गलके विशेष गुण कहा है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश व कालद्रव्यमे अस्तित्वादि ६ सामान्य गुण तो है ही, अव विशेष गुण सुने– धर्मद्रव्यमे खास गुण है—जीव पुद्गल चले तो उनकी गतिमे कारण बने, अचेतनत्व और अमूर्तत्व भी धर्मके विशेष गुण है। अधर्मद्रव्यका गुण है कि जीव पुद्गल चलते हुए ठहरे तो उनके ठहरनेमे कारण पडें और अचेतनत्व अमूर्तत्व भी अधर्मका विशेष गुण है। आकाश—इसका गुण है अवगाहन। सभी पदार्थोको अपनेमे स्थान दे, अचेतनत्व अमूर्तत्व भी आकाशके गुण है। कालद्रव्यका विशेष गुण है परिणमनमे कारण बने, तथा अचेतनत्व अमूर्तत्व भी कालद्रव्यका गुण है। तो यो जो ६ जातिके पदार्थोकी व्यवस्था जैनशासनमे कही है वह निर्दोष है, याने कोई पदार्थ छूटे नही और कोई पदार्थ दुबारा आये नही, इसे कहते है सही व्यवस्था। यो पदार्थ अनन्तानन्त है और उनकी जातियाँ ६ है और वे द्रव्यस्वरूपसे कभी भी नष्ट नही होते, और न कभी उत्पन्न होते, अनादि अनन्त है

सो वि विणस्सदि जायदि विसेस-रूवेण सव्व-दव्वेसु।
दव्व-गुण-पज्जयाण एयत्त वत्थु परमत्थ ॥२४२॥

वस्तुमें द्रव्यगुण पर्यायका एकत्व—जितने भी द्रव्य है सभी द्रव्योके गुण विशेष रूपसे उत्पन्न होते है और नष्ट होते है। जैसे जीवका ज्ञानगुण है तो अभी कुछ जाना, फिर कुछ जाना, तो जाननेकी जो विशेषताये है वे तो बदलती रहती है मगर ज्ञानसामान्य, सहजज्ञान ये नही बदलते। ये तो अनादिसे अनन्तकाल तक रहते है। तो यो शक्तियाँ और उनके परिणमन इनका जो पिण्ड है उसीको ही द्रव्य कहते है। द्रव्यके मायने है उसमे अनेक प्रकारकी शक्तियोका रहना और उसे किसी न किसी अवस्थामे बने रहना। यहाँ यह जानना कि द्रव्य, गुण, पर्याय कोई जुदी वस्तु नही है। जैसे जीव है वह ज्ञानमय है, और ज्ञानकी प्रतिसमय कोई न कोई परिणति चलती है तो ऐसा नही है कि वह परिणमन न्यारी चीज हो और ज्ञानगुण न्यारी चीज हो और जीवद्रव्य न्यारी चीज हो, तीनो ही एक है। उन गुणो और पर्यायोके अलावा द्रव्य कोई वस्तु नही प्रतीत होती, वे गुण द्रव्यसे अलग भी नही हो सकते और चूँकि गुण निरन्तर परिणमते रहते है तो जिस समय जो अवस्था बन रही है उस समय वह उस अवस्थासे कही अलग नही है, तादात्म्यरूप है। यो पदार्थ नाना गुण पर्यायोरूपमे है और उनका जो पिण्ड है उसीको द्रव्य कहा करते है।

जदि दव्वे पज्जाया विविज्जमाणा तिरोहिदा सति ।
ता उप्पत्ती विहला पडिपिहिदे देवदत्तेव्व ॥२४३॥

द्रव्यमें विद्यमान अनन्त पर्यायोंकी तिरोहितताके सिद्धान्तकी समालोचना—अब कुछ न्यायके ढंगसे पर्यायके सम्बन्धमे कुछ शंका समाधान किए जा रहे है । यहाँ कोई यह जिज्ञासा कर सकता है कि द्रव्यमे जो पर्याय बनती है वह पहिलेसे मौजूद है वही बनती है या नही मौजूद है वह बनती है ? यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है । जैसे जीवमे क्रोध जगा तो बतलाओ वह क्रोध परिणमन जीवमे पहिले से था, सो ही उत्पन्न हुआ या पहिले न था तो उत्पन्न हुआ ? ऐसी जिज्ञासाका समाधान इस गाथामे किया गया है । देखिये—यदि द्रव्य मे पर्याय पहिले से विद्यमान हो तो इसके मायने यह हुआ कि पर्याय तो पदार्थमे थी लेकिन उसको किसी आवरण-द्वारा ढक दिया तो ऐसी स्थितिमे उत्पन्न होना न कहलायेगा । जैसे बहुतसी चीजे रखी है और उनपर ऊपरसे कोई कपडा ढक दिया गया । जब कपड़े को हटाया गया तो वे सभी चीजे दिखनेमे आने लगी । अब बताओ वे चीजे वहाँ पहिलेसे ही थीं या बादमे बनी ? वे तो पहिले से ही थी उत्पन्न नही हुई । वे आवरण होनेसे दिखने मे नही आ रही थी । इसी प्रकार यदि द्रव्यमे पर्याये पहिलेसे मौजूद हो और केवल ढकी हुई हो तो आवरणके हटने पर यह नही कहा जा सकता कि पर्याय उत्पन्न हुई है । वह तो थी, व्यक्त हुई है । तब उत्पत्ति कहना बिल्कुल व्यर्थ हो जायेगा । कुछ दार्शनिक है ऐसे जो पदार्थमे सब पर्याये मौजूद है ऐसा मानते है और यहाँ तक मानते हे सत्कार्यवादी कि एक वटवृक्षके फलका जो एक दाना होता है उसके अन्दर भी अनेक बीज, अनेक बट तथा अनेक फल आदिकी पर्याये मौजूद है । याने एक छोटे से बरगदफलके दानेमे जितनी भी पर्याये आगे हो सकती है वे सभी की सभी पर्याये इस समय भी मौजूद है । ऐसा उनका कहना है, लेकिन यह बात प्रत्यक्षविरुद्ध है । कहाँ वे सभी पर्याये दिख रही है और कहाँ समाया हुआ है उतना बडा पेड उस बीजमे ? वह दाना तो उस समय दाना ही है । हाँ उसमे योग्यता जरूर ऐसी है कि मिट्टी, पानी आदिकका संयोग मिले तो उसमे एक बटका अकुर पैदा हो सकता है । तो पर्याय जो हुई है वह अविद्यमान हुई है । पहिले न थी, वह उत्पन्न हुई है । जैसे एक जीव पदार्थ है, मनुष्य, नारकी, तिर्यञ्च आदिक अनेक पर्यायोको धारण करता है । तो उस दार्शनिकके हिसाबसे यह कहा जायेगा कि जीवमे जो कुछ आगे बनना है वे सभी पर्याये इस समय मौजूद है । मगर कहाँ मौजूद है ? नवीन-नवीन पर्याये उत्पन्न होती है । तो यह सिद्धान्त निकला कि अविद्यमान पर्याय ही उत्पन्न होती है । हाँ जिसमे पर्याय उत्पन्न हुई वह द्रव्य पहिलेसे है । जीव है पहिले से । उसमे योग्यता है, शक्ति है । तो शक्तिकी अपेक्षा कुछ भी कह लो मगर वह अवस्था वह पर्याय वहाँ मौजूद नही है ।

सव्वाण-पज्जयाण अविज्जमाणाण होदि उप्पत्ती ।
कालाई-लद्धीए अणाइ-णिहणम्मि दव्वम्मि ।।२४४।।

अनादिनिधन द्रव्यमें प्रतिसमय अविद्यमान पर्यायोंकी उत्पत्ति—सिद्धान्त यह है कि अविद्यमान ही पर्यायकी उत्पत्ति होती है। पदार्थ है, जीव है, उसमे योग्यता है, पर जव काललब्धि मिलेगी तो उस द्रव्यमे अविद्यमान पर्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। इसमे निष्कर्ष यह समझें कि मूलभूत पदार्थ तो अविनाशी है, अनादि अनन्त है, फिर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मिले उस प्रकारसे तो वहा पर्यायकी उत्पत्ति हो गयी। वे पर्यायें अविद्यमान हैं। अविद्यमान पर्याय उत्पन्न होती है व विद्यमान मिटती है। द्रव्यमे जव घडा वननेके अनुकूल साधन मिल जाते है तो घट पर्याय उत्पन्न हो जाती है। वह पर्याय पहिलेसे नही है, वह नवीन वना करती है और पदार्थका ऐसा ही धाराप्रवाह परिणमन चल रहा कि नवीन पर्याय बनती है, पूर्वपर्याय मिटती है और यह जीवादिद्रव्य अथवा पदार्थ सदा काल वना रहता है। इसे कहते है उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। जो भी पदार्थ है वह उत्पादव्ययध्रौव्य वाला है। देखिये—समस्त भेदविज्ञान इस सूत्रसे विदित हो जाता है। पदार्थ है, अपने ही स्वरूपसे उत्पन्न होता है, उसमे उत्पन्न होनेका स्वभाव है कि अपनेमे अपनी पर्याय वनाये और अपने ही स्वरूपसे विलीन होता है, तो पदार्थको उत्पन्न करने वाला कोई दूसरा पदार्थ नही है। सब है, अनादिकालसे है। और इनमे उनका परिणमन चलता रहता है। उन परिणमनोका जो समूह है उसको एक व्यापकरूपसे पदार्थ कहा है। ऐसे सभी पदार्थ स्वतन्त्र स्वत सिद्ध है, अत एकका दूसरेमे अत्यन्ताभाव है। जव मेरा सर्व परमे तथा सर्व परका मेरेमे अत्यन्ताभाव है तव सम्बन्ध कल्पना करना नितान्त अविवेक है।

अपने भविष्यकी स्वयंपर निर्भरता—हम जैसा भाव करते है उस प्रकारसे हमारी रचना होती चली जाती है। वताया गया है कि यदि बहुत आरम्भ और परिग्रहमे चित्त लगा हुआ हो तो चूंकि एकदम बाहरी पदार्थोमे उपयोग बसाया है उसका फल यही है कि ऐसा कर्मबन्धन होता है कि जिसके उदयमे नरकगतिके दु ख भोगने पडते है। जिस जीवको अपनी सुध नही है, एकदम परपदार्थोमे ही उपयोग दे डाला है उस जीवकी गति अच्छी नही हो सकती, क्योकि शान्तिका आनन्दका धाम जो स्वय है उसकी सुध ही नहीं है। बताया गया है सिद्धान्त ग्रन्थोमे कि जो जीव मायाचारकी विशेष प्रवृत्ति रखते है, मनमे कुछ और है, वचनोसे कुछ और बोलते है, कायसे कुछ और-ही चेष्टाये करते है, वे तिर्यञ्च गतिके पात्र है। और, जिनके थोडा आरम्भ है, थोडा परिग्रह है, उतनेमे ही सन्तुष्ट है, तृप्त है, अपने आपकी सुध लेनेके काबिल हो गए है वे जीव मरण करके मनुष्य पर्याय प्राप्त करते है। अब आप समझ लीजिए कि हम आप आज मनुष्य है तो ऐसे ही अच्छे भाव किए होगे

तभी तो मनुष्य बने है। यदि आज हम उन भावोके विरुद्ध चलते है तो परिणाम यही होगा कि खोटी गतियाँ प्राप्त होगी। सिद्धान्त ग्रन्थोंमे बताया है कि जो जीव दया, दान, संयम, व्रत, जप, तप आदि करते है वे मरकर देवगतिमे उत्पन्न होते है। तो हम कैसे बने ? हमको सुख शान्ति मिले इसका उपाय तो इस ही मे बसा हुआ है। उसके कर सकने वाले हम ही है। कोई दूसरा हमारा हमारी इस सृष्टिको करनेमे समर्थ नही है। तब बहुत बडी जिम्मेदारी है इस मनुष्यभवमे। अगर हम आप आज यत्न करे तो कभी मोक्ष भी पा लेगे। सदाके लिए संसारसकटोसे छुटकारा पा लेगे, और यदि हम नही चेतते है तो फिर इस ही संसारमे आवागमन बनाये रखनेका उपाय बना लेगे। तो हम नीचेसे नीचे गिरे और ऊपर से ऊपर उठे, उस सबकी जिम्मेदारी हमारे इस मनुष्यभवमे है। यहाँ थोडासा समागम मिला और मिले इतने समागमके पीछे अपने सारे भविष्यको खतरेमे डाल देना यह उचित नही है। तो हमे चेतना चाहिए और सम्यक्त्वलाभसे अपना जीवन सफल करना चाहिए।

दव्वाण पज्जयाणं धम्म-विवक्खाए कीरए भेओ।
वत्थु-सरूवेण पुणो ण हि भेदो सक्कदे काउ ॥२४५॥

द्रव्य और पर्यायमें धर्मविवक्षासे भेद और द्रव्यस्वरूपसे अभेद—मूल प्रसगमे कारण और कार्यकी बात चल रही थी कि कार्य तो कहते है अवस्थाको और कारण कहते है उस द्रव्यको जिसमे कि अवस्था बने। जैसे जीवमे राग हुआ तो परमार्थसे पूछा जाय कि इस रागका कारण क्या है ? तो कहेगे यह जीव। यह स्वय रागी बना है और विशेष रूपसे कहा जाय तो पूर्वपर्यायसहित यह जीव उत्तरपर्यायका कारण होता है। तो यहाँ यह बात बतायी जा रही है कि द्रव्य और पर्यायमे जो भेद बताया गया है वह धर्मविवक्षासे है। जैसे जीवने राग किया तो बताओ जीव अलग है और राग अलग है क्या ? जीव न हो और राग चल रहा हो ऐसा हो सकता है क्या ? राग और जीव जिस समयमे राग हो रहा है एकमेक है और उनमे यदि भेद किया जाता है तो स्वभाव समझनेके लिए किया जाता है जो इस जीवमे इस समय इस प्रकारकी प्रकृति है। वास्तवमे तो इनमे भेद नही किया जा सकता। जीव है, अपनी परिणति बनाता है, भाव करता रहता है, बात वह एक ही है। जिस समय जीव जैसी परिणतिमे होता है उस समय वह तन्मय होता है। उसको भेदसे नही बता सकते है। तो इस तरह जब द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे कहते है तो कार्य और कारणमे एकपना है। वही जीव है, रागी हुआ है, और जब गुण गुणीका भेद करता है तो वहाँ भेद नजर आता है। सर्वथा भेद या सर्वथा अभेद कहना सिद्धान्तके विरुद्ध है।

जदि वत्थुदो विभेदो पज्जय-दव्वाण मण्णसेमूढ।
तो णिरवेक्खा सिद्धी दोण्ह पि य पावदे णियमा ॥२४६॥

वस्तुके एकत्वका दर्शन—द्रव्यमे और पर्यायमे, कारणमे और कार्यमे यदि वास्तवमे भेद मान लिया जाय तो दोनोकी निरपेक्षता सिद्ध हो जायगी। याने द्रव्य अलग चीज हुई पर्याय अलग चीज हुई। अब यह बतलाओ द्रव्यके विना पर्यायका क्या स्वरूप रहा ? याने जीव तो नही है और राग हो रहा है। अरे जीव ही तो रागमय बन रहा है। जीवको छोडकर राग अन्यत्र कोई अलग वस्तु नही। यदि अलग हो जाय तो न रागका स्वरूप रहेगा और न जीवका स्वरूप रहेगा। जैसे मिट्टीसे घडा बना। अब मिट्टीसे बिल्कुल अलग मान लो घडा तो बतलाओ कि वह घडा अब मिट्टीके बिना बन गया। तो है क्या ऐसा कि जिसका कोई आधार न हो और वस्तु बन जाय ? तो हममे जो रागादिक भाव हो रहे है उससे ही यह समझलो कि हम कोई वास्तवमे पदार्थ है और उसमे ये सब अवस्थाये चल रही है। देखो–तत्त्वकी बात तो यह है कि अपने आपका जैसा यथार्थ स्वरूप है वैसा समझ लेवे और उस पर दृष्टिपात करे तो इस जीवका कल्याण है। नही तो यह ससार है, जन्म मरण चल रहा है।

अपनी संभालकी अत्यावश्यकता—भैया ! आज मनुष्य है, कल और किसी गतिमे जन्म ले लिया तो इन थोडे दिनोके आरामका क्या भरोसा करना ? इससे क्या पूरा पड़ता ? यदि हम अपने स्वरूपको जान लेते है और उसमे अपना उपयोग बसाते है तो ज्ञानमे ज्ञानकी एकता हो जानेसे कर्मबन्धन स्वय टूट जायेगा। कर्मोका तोडना कोई बाहरी बहादुरीसे न बनेगा या भेद दृष्टिसे न बनेगा। जब खुद अपने स्वरूपमे मग्न हो जाये तो कर्म अपने आप झडेगे। जैसे गीली धोतीमे रेत लग गया है तो उसको तब झिटक देने से रेत न खिरेगी, उस धोती को धूपमे सुखा दिया जाय, उसमे गीलापन न रहे तो रेत अपने आप जड जायेगी। इसी तरह हममे अब कषायोका गीलापन न रहे, बाह्य पदार्थोके प्रति स्नेह बुद्धि न रहे नो ये कर्म अपने आप झड जायेगे। हमे कर्मबन्धनसे मुक्त होने के लिए यही एक भीतरी उपाय करना है कि मैं अपने स्वरूपको जानूँ और उसही स्वरूपमे मग्न हो जाऊँ। विश्वास करे कि मै मै ही हू, मुझमे दूसरी चीज नही है। मुझमे यदि दूसरी चीज बसी हो तो मै ही न रहूगा। मै स्वतत्र हू, यह मेरा चैतन्यस्वरूप है, वह मैं उस ही ही रूप हू। मुझमे कोई दूसरी चीज नही आयी है। घर, दौलत, परिजन, मित्रजन आदि कुछ भी चीज मुझमे नही है। मैं सबसे निराला केवल चैतन्यमात्र हू, तो जब मै सबसे न्यारा हूँ तो ऐसा मै न्यारा ही रहू, ज्ञानमे भी मुझमे कोई दूसरी चीज मत आये। जिस ज्ञानमे ये ज्ञेय पदार्थ स्वत आ जाते है उसकी बात नही कह रहे किन्तु जहाँ हम आपके रागद्वेष चल रहा है वहाँकी बात कह रहे है कि बाहरी पदार्थ मुझमे मत आये, मै अपने ५ ही रहूगा और अपना कल्याण करूँगा, ऐसी भावना उपासना होनी चाहिए। तो इस

ही भेदविज्ञानके लिए यह सब कथन चल रहा है कि मै हू, मेरी परिणतियाँ किस तरह है, किस प्रकारका कार्य होता है ? तो यद्यपि कार्यके होनेमे बाहरी बहुतसे पदार्थ निमित्त होते है फिर भी अन्तरङ्ग कारण तो मै ही हू। मैने अपनेको सम्हाला तो सब कुछ सम्हाल लिया और अगर अपनेको न सम्हाल सके, बाहरी पदार्थोकी सम्हालमे ही लगे रहे तो भले ही लाखोकी सम्पदा उपस्थित हो जाय तो उससे लाभ क्या ? प्रथम तो आपके यत्नसे सम्पदा नही आती। पुण्योदयका योग है कि उस विधिमे सम्पदा आ जाती है। और, भले ही कितना ही वैभव आपके पास संचित हो जाय, फिर भी उससे आपके आत्माको कुछ शान्ति न मिल सकेगी। रही यह बात कि इस जीवनमे इतने लोगोमे इज्जत तो है, पोजीशन तो बनी है। अरे लोग भी माया स्वरूप है, पोजीशन भी माया स्वरूप है, जिस देशमे हम आज है वह देश भी माया स्वरूप है। तो जैसे स्वप्नमे कोई किसीसे लडाई करे या राग करे तो वह केवल कल्पनाकी चीज है। रखा क्या है वहाँ ? इसी तरह मोहकी नीदमे ये सब बाते बन रही है तो यह है क्या ? एक स्वप्न जैसी चीज है। रखा कुछ तत्त्व नही है।

आत्महितका उपाय बनानेका अनुरोध—अपने आपके स्वरूपका बोध करना और इस ही स्वरूपमे मग्न होना, इसका उपाय ढूँढो। बहुत-बहुत उपाय किया, बहुतोको प्रसन्न करनेके लिए, बहुतोमे अपना नाम रखनेके लिए, बहुतोके अनुकूल चल-चलकर बहुत परिश्रम कर डाला भीतरी परेशानी कर डाली, अब जिसमे आत्महित हो ऐसा भी उपाय बनाना चाहिए। वह उपाय है आत्माका परिज्ञान करना। मै आत्मा क्या हू ? सबसे पहिले इतना निश्चय कर लीजिए कि मै सबसे निराला ज्ञानमय पदार्थ हू। केवल ज्ञान प्रतिभास जानन यही स्वरूप है और वह अमूर्त है। उसमे रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि नही है। आत्मा कोई मिट्टी जैसा पिण्ड नही है। वह तो आकाशकी तरह अमूर्त है, किन्तु ज्ञानमय पदार्थ है। कैसा विलक्षण है यह जीवतत्त्व ? कैसा विशाल और अपनेमे सीमित केवल ज्ञानप्रतिभाससे भरा हुआ कैसा अलौकिक तत्त्व है ? इस निज स्वरूपको न जानकर बाहरमे पदार्थोसे आशा बना बनाकर परेशान हो रहे है। अब शान्तिधामको पाऊँ उपाय यह करना है और। इस ही सत्य बातमे उपयोग लगे, इसके लिए ही तो मदिरमे आना होता है। मंदिरमे किसलिए आते ? एक लोकपद्धतिसे, सभी लोग आते है तो समझिये, केवल इन ही बातोसे अगर मदिर आना होता है तो उसमे कौनसा लाभ है ? मंदिरमे इसलिए आते है कि हम बाहरके व्यर्थ असार झझटोमे बहुत उपयोग फसा चुके, अब कुछ उससे अलग हटकर यहाँ स्वतत्त्वका अनुभव करना है, जिस उपायसे पूर्व महापुरुष कर्मबन्धनसे मुक्त हुए है उस उपायकी याद करनेके लिए मदिरमे आते है, प्रभु पूजा करते, प्रभु दर्शन करते, स्वाध्याय करते। सभी जगह वस्तुस्वरूपका अभ्यास कर रहे है। मै केवल चैतन्यमात्र हू। मै केवल अपना ही परि-

रामन कर पाता हू किसी दूसरेका परिरामन नही कर सकता ।

विषयोंके मौजमें अपनी बरबादी—अभी तक दूसरे पदार्थोका परिरामन अपने मन के अनुकूल करनेमे ही अनन्त समय बिता डाला, यह मोहका रोग इस मनुष्यभवसे ही तो नही है, सभी भवोमे यह मोहका रोग रहा, पर उससे नफा कुछ न पाया । आज भी जिस मोहके समागममे रह रहे है उससे नफा कुछ न मिलेगा, टोटा ही हाथ लगेगा । इस प्रकार का एक सत्य ज्ञानप्रकाश अपनेमे जगे तो समझिये कि हमारा मनुष्यभव पाना सफल है अन्यथा तो पशु पक्षियोकी भाँतिका ही अपना जीवन समझिये । जैसे गधा, सूकर आदिक पशु व मुर्गा मुर्गी कबूतर आदिक पक्षी विषयोमे अपना मौज मानते है वैसे ही आप भी मौज मान रहे । फर्क तो कुछ न रहा । आप तो सोचते है कि इन पशुओकी जिन्दगी भी क्या जिन्दगी है ? पर अपने बारेमे नही सोचते कि यह मेरा विषयोसे भरा जीवन भी क्या जीवन है ? सभी संसारी जीवोका प्रयोजन एक यही बना हुआ है—विषयोमे मौज मानना । जो प्रयोजन पशु पक्षियोने बनाया वही प्रयोजन मनुष्योने बनाया । आप सब मनुष्योसे विषयोका मौज लेनेमे कम नही है वे पशु पक्षी । हाँ आप जरा विशेष कलात्मक ढगसे उन विषयोका मौज ले रहे है । पर उन विषयोका मौज लेकर जैसे वे पशु पक्षी कुछ लाभ नही उठा पाते । ऐसे ही ये मनुष्य भी कुछ लाभ नही उठा पाते । यो विषयोके मौजमे पशु पक्षियोमे तथा मनुष्योमे समानता ही रही ।

श्रेष्ठ नरजीवन व जैनशासनसे अपूर्व लाभ उठानेकी सद्भावना—तो सोचिये—यह नरजन्म, यह जैनशासन एक ऐसा अपूर्व कल्याण कर जानेके लिए पाया है कि जिससे सदा के लिए ससारसकट छूट जाये । यदि यह न किया जा सके तो समझ लीजिए कि हम आप सबकी यह कितनी बडी गल्ती है । तो यहाँ उसी वस्तुस्वरूपका वर्णन चल रहा है कि मैं हू और मुझमे रागादिक अवस्थाये बनती है तो इन कार्योके लिए कर्मोदय निमित्त है । बाहरी पदार्थ भी आश्रयभूत है, पर उपादान कारण तो मैं स्वय हू । मेरेमे ही ये रागादिक हो रहे है, मेरी ही बेसुधीसे हो रहे है । अपनी सुध बन जाय तो ये रागादिक एकदम खतम हो जायेगे, दूर हो जायेगे और समस्त सकट सदाके लिए मिट जायेगे । सकट केवल राग और मोहका है, वस्तुका सकट नही । कोई सोचता हो कि मेरे पास तो एक लाखकी ही सम्पत्ति है, इसमे तो परेशानी है, कष्ट भरा है, अमुक दूसरोके पास तो देखो करोडोका धन है, वे है मौजमे, लेकिन यह तो बताओ कि जिनके पास लाख की तो बात क्या, हजार भी नही, कुछ सैकडाकी ही जिनकी स्थिति है ऐसे पुरुष भी जीवन निर्वाह करते है या नही, बल्कि अधिक नि शल्य होकर जीवन बिता देते है । तो यहाँ कुछ हिसाब है क्या कि कितना धन हो तो उसमे सुख मिलेगा अथवा धनी कहलायेगे ? अरे ये

सब तो मोहजालकी बाते है, इसपर तो ध्यान ही न देना चाहिए । घरमे रहते है अतएव कर्तव्य है कि कुछ व्यापारका काम करे । अब जो उदयानुसार लाभ होता है बस वही पर्याप्त है, उसमे ही व्यस्वथा बनाना है और उस ही मे व्यवस्थित रहकर धर्मको प्रधानरूप देना है । धर्म किया तो समझो कि सब कुछ किया, और धर्म रहा तो अपना सब कुछ रहा । तो जो भी अवस्था हो उस ही मे सन्तुष्ट रहे और धर्मको प्रधानरूप दे । मुझे सम्यक्त्व लाभ करना है, सम्यग्ज्ञान करना है और सम्यक्त्व लाभ द्वारा अपने आपमे अपनेको तृप्त बनाये रहना है, ऐसा किए बिना किसीका भी गुजारा न चलेगा ।

जदि सव्वमेव णाणं णाणा–रूवेहि सठिदं एक्क ।
तो ण वि कि पि विणेयं णेयेण विणा कह णाणं ॥२४७॥

ज्ञान त्व और अनन्त ज्ञेयतत्त्वोंका निर्देश—वस्तुस्वरूपका वर्णन चल रहा है इस प्रसंगमे एक ज्ञानाद्वैतवादी दार्शनिक कह रहा है कि जगतमे सिर्फ ज्ञान ही ज्ञान है और कोई पदार्थ नही है । जैसे स्वप्नमे यो निरखते है कि देखो—यह बहुत बडा जंगल है, ये देखो बहुतसे पशु पक्षी है, तालाब है, झरना है आदि, तो वहाँ वस्तुत है क्या ? कुछ भी तो नही है । केवल कल्पनाये है, केवल प्रतिभास है । तो इसी तरह यहाँ भी केवल कल्पना है, केवल प्रतिभास है । धन वैभव, मकान आदिक जो भी पदार्थ विदित होते है वे सब मायाजाल है, मिथ्या है, अवस्तु है । केवल एक ज्ञान ही तत्त्व है, ऐसा एक दार्शनिकका सिद्धान्त है । उसके प्रति कह रहे है कि यदि ऐसा मानोगे कि सर्व कुछ जो नाना रूपोमे दिख रहे है वह सब एक ज्ञान ही है, ऐसा मानने पर तो फिर कुछ भी ज्ञेय न रहा, कोई बाह्य पदार्थ न रहा । तो जब कोई ज्ञेय न रहा तो ज्ञान किसे कहोगे ? ज्ञान नाम है जानने का । जब ज्ञानमे कोई पदार्थ आता ही नही है । पदार्थ है ही नही तो विषयभूत पदार्थका अभाव मानने पर ज्ञानका स्वरूप भी न बनेगा । इससे मानना चाहिए कि ज्ञानतत्त्व भी है और ज्ञेयतत्त्व भी है । ज्ञानतत्त्वमे तो आया यह मै आत्मा जो जान रहा हू और ज्ञेयतत्त्व मे आया मुझ आत्माको छोडकर बाकी सब जीव और पुद्गल आदिक सर्व पदार्थ ये ज्ञेय तत्त्व कहलाते है । तो ज्ञानमे ज्ञेयतत्त्व विषयभूत होते है । ज्ञेय भी सही है और ज्ञान भी सही है । ज्ञेयके बिना ज्ञान बन नही सकता, इसलिए इन बाह्य पदार्थोकी सत्ता मानना ही चाहिए । और, भी सुनो—

घड–पड–जड–दव्वाणि हि णेय–सरूवाणि सुप्पसिद्धाणि ।
णाण जाणेदि जदो अप्पादो भिण्णरूपाणि ॥२४८॥

ज्ञान द्वारा आत्मासे भिन्न अनेक पदार्थोंका परिज्ञान—देखिये– घट, कपड़ा आदिक जड है । ये ज्ञेय रूप है, इन्हे लोग जानते है, ये सब प्रसिद्ध है और ज्ञान इन्हे जानता है ।

तो ये आत्मासे भिन्न पदार्थ है ना ? जानने वाला ज्ञान तो मेरे आत्मामे अनुभूत हो रहा है। मै यहाँ हू, यहाँ ही रहकर सब कुछ जानता हू और मुझसे बाहरमे जो पदार्थ पडे हुए है, वे क्या अवस्तु है ? वे सब सत है। तो जिस कारणसे सब ज्ञेयरूप है, जानने योग्य जो हो उसे ज्ञेय कहते है। तो वह स्वरूप जहाँ पाया जाय वह सब ये पदार्थ है। तो इन प्रसिद्ध पदार्थोका लोप कैसे किया जाय ? ज्ञानस्वरूप मै जीव हू और मुझसे भिन्न ये ज्ञेयपदार्थ है तब यह एकान्त मत करो कि जगतमे अन्य कुछ नही है, सिर्फ ज्ञान ही ज्ञान है, और यदि केवल ज्ञान ही ज्ञान जगतमे होता तो यह वन्धन, यह जन्ममरण, ये फिर कहाँसे होते मैं ज्ञानस्वरूप तत्त्व हूँ, किन्तु मेरे साथ अनन्त कर्मोका वन्धन है। ये जड पदार्थ, ये ज्ञेय पदार्थ और बाहरी अनेक आश्रयभूत पदार्थ है, इनको असत्य नही कहा जा सकता। और तब ही यह व्यवस्था बनी हुई है कि कर्मोदयका निमित्त पाकर यह ज्ञानतत्त्व विगड रहा है। ज्ञानतत्त्वकी सभालमे कर्मवन्धन हटता है और ज्ञानतत्त्व शुद्ध विकसित होता है।

ज सव्व--लोय--सिद्ध देह -गेहादि- बाहिर अत्थ।
जो त वि णाण मण्णदि ण मुणदि सो णाण--णाम पि ॥२४६॥

बाह्य अर्थोंको ज्ञानरूप मानने वालोंके ज्ञानस्वरूपका अनवबोध—देखिये- जिन्हे सारा लोक जानता है ऐसे शरीर, घर आदिक ये बाह्य अर्थ है, इनको यदि ज्ञान नही जान रहा है तो फिर ज्ञान नाम किसका है ? ज्ञान ही सिद्ध न होगा। जिनका स्वरूप जानने योग्य है उन्हे तो ज्ञेय कहते है। सो ज्ञानसे बाहर जितने पदार्थ हैं वे सब ज्ञेयरूप है, ज्ञानरूप नही। उनको ज्ञानरूप जो कहते है वे तो ज्ञानका स्वरूप भी नही जानते। ज्ञानका उन्होने नाम ही नही समझा। जैसे दर्पणमे सामनेकी चीज प्रतिभास्य तो हो जाती है, मगर वहाँ केवल दर्पण ही दर्पण है क्या ? बाह्य पदार्थ नही है क्या ? अगर बाह्य पदार्थ न हो तो उनका प्रतिभास भी सम्भव नही है। अत यह मानना चाहिए कि ज्ञानतत्त्व भी है और ज्ञेयतत्त्व भी है। इस तरह ज्ञानाद्वैतवादियोका निराकरण करके अब नास्तिकवादियोकी बात कहते है।

अच्छीहि पिच्छमाणो जीवाजीवादि-बहुविह अत्थ।
जो भणदि णत्थि किंचिवि सो झुट्ठाण महाझुट्ठो ॥२५०॥

आखोंसे दिखते हुए भी पदार्थोंका नास्तित्व मानने वालोंकी असत्यताका दिग्दर्शन—कुछ ऐसे भी दार्शनिक है कि आँखोसे तो देख रहे है सर्व कुछ पदार्थ, मनुष्यादिक जीव है, घटादिक अजीव है और फिर भी यह कहते है कि कुछ भी नही है तो वे तो झूठोके सिरताज है। नास्तिकवादी मुख्यतया यह मानते है कि कुछ भी नही है और ये चार्वाक नामके नास्तिक यह मानते है कि केवल भौतिक पदार्थ है। जीव नामका कोई तत्त्व नही है, और इसी

सिद्धान्तपर उन्होने यह प्रवृत्ति बर रखी है कि खूब मौजसे जियो, चाहे कर्ज भी लेना पडे तो भी उसकी परवाह न करो, क्योकि यहाँसे मरनेपर तो फिर यह जीव कुछ न रहेगा, लोग तो व्यर्थका यह डर दिखा रहे कि मरनेपर इसे कष्ट भोगना होगा, ऐसे भी कोई नास्तिक है। नास्तिक शब्दका अर्थ यह है कि जो है उसे न मानना, याने अस्तित्वका जो लोप करे उसे नास्तिक कहते है। वैसे तो लोग नास्तिकका अर्थ यह लगाने लगे कि जो मेरे धर्मको न माने वह नास्तिक है, काफिर है अथवा मिथ्यादृष्टि है। लेकिन नास्तिकका सही अर्थ यह नही है। नास्तिकका सही अर्थ यही है कि जो जैसा है उसे वैसा न माने, उससे उल्टो बात माने। जीवतत्त्व है, अनुभवमे आता है कि जीव सुखी अथवा दु खी होता है, ऐसा सुखी दु खी हो सकने वाला जो पदार्थ है वही तो जीव है। क्या शरीर सुखी दु खी होता है ? ये बाहरी पदार्थ क्या सुखी होते है ? सुख दु ख माननेका जहाँ प्रसंग है उसीको तो जीव कहते है। अब उस जीवका सत्य स्वरूप समझे याने जीव जबसे है तबसे वहाँ जो बात हुई, जब तक है, तब तक जो बात हुई वह जीवका स्वरूप है। जीव अनादिसे है, अनन्तकाल तक है। इस जीवमे ज्ञानस्वरूप सदा रहता है ज्ञानस्वरूपका कभी भी अन्तर नही पडता। क्रोध करता है तब भी देखो ज्ञान है ना, तभी तो क्रोध जग रहा है। मान, माया, लोभ आदिक करे तब भी ज्ञान है, और यहा तक कि मदिरापान करके बेहोश भी हो जाय तो भले ही ऊपरसे ज्ञान नही मालूम होता, पर अन्दरमे कुछ न कुछ उसका प्रतिभास रहता ही है। कीडा मकौडोमे भी ज्ञान है और ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति रूप एकेन्द्रिय जीवोमे भी ज्ञान रहता है। तो ज्ञान इस जीवका सहज स्वरूप है। ऐसे ज्ञानमय जीवतत्त्व को जो नही मानता वह असत्यवादियोका सिरताज है।

जं सव्व पि य संत ता सो वि असंतओ कह होदि।
णत्थि त्ति किंचि तत्तो अहवा सुण्ण कह मुणदि ॥२५१॥

शून्यवादमें शून्य कहनेकी अनुपपत्ति—जगतमे जो कुछ भी पदार्थ है वे तो है ही। सभी लोग जानते है कि ये सब कुछ है फिर भी असत् कैसे हो जायेगे ? जो सत् है वह किसी भी प्रकारसे असत् नही बन सकता। है तो है ही। वह कभी भी असत् याने अवस्तु नही हो सकता, और दूसरी बात सुनो। यदि कुछ नही है तो "शून्य है" यह भी कैसे कहा जायगा ? शून्य तत्त्व है कि नही ? अगर शून्य तत्त्व नही है तब तो किसकी सिद्धि कर रहे हो और शून्य तत्त्व है तो कुछ तो है ना, फिर अभाव कैसे कहते हो ? कुछ भी नही है, ऐसा शून्य कैसे जाना जायगा ? स्वय विद्यमान है तब तो वह शून्यको जाने जा रहा है, तो लो शून्यतत्त्वका समर्थन करने वाला भी तो एक सत् हुआ। तो सर्व जगत अवस्तु है, शून्य है, यह कहना अयुक्त है। लोकभावनामे लोकमे क्या क्या पदार्थ है, कैसी-कैसी रचनाये है ?

इन सब वातोका वर्णन किया गया। और, कोई पुरुष ऐसा ही कहे कि कुछ है ही नही, अवस्तु है, वर्णन किसका कर रहे हो ? तो उसका कहना प्रतीति विरुद्ध बात है।

जदि सव्व पि असत ता सो वि य संतओ कहं भरणदि।
णत्थि त्ति किं पि तच्चं अहवा सुण्ण कह मुणदि ॥२५१॥

शून्यवादमें शून्यको समझने व कहनेकी असंभवता—यदि समस्त पदार्थ असत् ही हैं तो जो जगतको शून्य कह रहा है वह पुरुष भी तो असत् ही रहा, अवस्तु रहा, कुछ न रहा, तो वह कैसे कह सकेगा कि कुछ भी नहीं है ? और जब कुछ भी नही है तो इस शून्यको भी कैसे जानेगा ? शून्यवादीका यह कहना है कि जो कुछ भी जगतमे दिखता है वह वास्तवमे इस रूप है ही नही। समस्त वस्तुवे मात्र असत् है। शून्यके सिवाय जगत और कुछ नही है। तो पहिली बात तो यह है कि समस्त पदार्थोको देखते हुए भी यह कह रहा है कि कुछ नही है, सब अवस्तु है तो यह तो महाभूठा पुरुष हुआ। और, फिर यह वतलाओ कि जब यह आग्रह कर लिया कि सब शून्य है. कुछ भी नही है तो ज्ञान भी न रहा, शब्द ही न रहा। तो जब ज्ञान न रहा, ज्ञान भी अवस्तु बन गया तो फिर यह शून्यवादी कैसे जान लेगा कि सब कुछ शून्य है और जब शब्द भी असत् है, शब्द भी कुछ न रहा तो यह शून्यवादी यह कैसे समझ लेगा, कैसे दूसरोको समझा देगा कि यह शून्य है ? तो समस्त जगत शून्य हुआ, इसका अर्थ है कि ज्ञान भी शून्य है, शब्द भी शून्य है, तव फिर न जान सकेगे और न दूसरोको समझा सकेगे ? स्पष्ट बात एक यह भी है कि जो यह कह रहा कि सब जगत शून्य है तो कहने वाला भी तो शून्य हो गया। अगर वह है तो शून्य कहाँ रहा सब ? और यदि वह नही है, शून्य है तो वह शून्यको कैसे जान लेगा कि जगतमें कुछ भी वस्तु नही है ? तो इन सब आपत्तियोसे वचनेके लिए यह स्वीकार करना ही होगा कि जगतमे सर्वपदार्थ है और उन पदार्थोकी ६ जातियाँ है– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। और, प्रत्येक पदार्थमे अनन्त गुण है और अनन्त पर्यायें होती है। तो इन गुण पर्यायो की व्यवस्था, वस्तुस्वरूपकी व्यवस्था मानना ही चाहिए। तव वस्तुका सही ज्ञान करनेका यत्न करे ताकि यह मोह मिटे, अज्ञान दूर हो और यह आत्मा अपने आनन्दके स्थानमे निरन्तर रमण कर जाये। यही एक कल्याणका उपाय है।

किं वहुणा उत्तेण य जेत्तिय–मेत्ताणि सति णामाणि।
तेत्तिय–मेत्ता अत्था संति य णियमेण परमत्था ॥२५२॥

विविध नामों द्वारा विविध पदार्थोंके अस्तित्वकी सूचना—यहाँ आचार्यदेव कहते है कि वहुत कहनेसे क्या प्रयोजन है ? यह निर्णय करलो कि जितने भी दुनियामे नाम है वे सब पदार्थ ही है। पदार्थ न हो तो नाम किसका रखा जाय ? जितने भी शब्द हैं वे यह

सूचना देते है कि इतनी तरहके पदार्थ है लोकमे, और वे सब पदार्थ परमार्थभूत है और दिखते भी है। नाम जितने पाये जा रहे—कपडा, वृक्ष, फल, जल, कमल, घडी, देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यंच, हाथी, घोडा आदि जितने भी चेतन अचेतन वस्तुविषयक नाम है, वे सब नाम यही तो सिद्ध करते है कि ये सब पदार्थ है। यदि ये सब पदार्थ न होते तो इतने नाम कहाँसे बनाये जाते ? पदार्थोका परिचय करनेके लिए ही तो नाम रखा गया है। अब शकाकार कहता है कि यदि यह नियम वनाते हो कि जितने नाम है उतने ही पदार्थ है तो वतलाओ खरविषाण भी तो एक नाम है। आकाशपुष्प भी तो एक नाम है। बध्यापुत्र भी तो एक नाम है, पर ये चीजे तो नही पायी जाती। तुम्हारे नियम के अनुसार तो ये चीजे भी पायी जाना चाहिए। पर बताओ ये कहाँ है ? तो जितने नाम है उतने पदार्थ है, यह कहना ठीक नही बनता है। तो इसके समाधानमे शकाकारसे निःशक कहिये कि तुम्हारा (शंकाकारका) कहना ठीक नही। देखिये—यह नियम बिल्कुल ठीक है कि दुनियामे जितने नाम है वे सब पदार्थ है। मगर आपने जो खरविषाण कहा, आकाशपुष्प कहा अथवा बध्यापुत्र कहा तो ये कोई एक-एक शब्द तो नही है। इनमे दो दो शब्द है—खर और विषाण, आकाश और पुष्प, बध्या और पुत्र आदि। अब देखिये–खर अर्थात् खरगोश तो कुछ होता ही है और विषाण अर्थात् सीग भी दुनियामे हुआ करते है, आकाश भी होता ही है और पुष्प भी होते है, बध्या भी होती है और पुत्र भी होता है। तो देखिये यह वात कहा गलत रही कि जितने नाम दुनियामें होते है वे सब पदार्थ होते है ? अब आप अटपट ही खरविषाण, आकाशपुष्प, बध्यापुत्र आदिको एक एक शब्द मानकर तर्क करे तो यह तो कोई युक्त बात न रही। तो अब यह जानना कि जगत शून्य नही है, यहाँ पर सभी पदार्थ है और तभी उनके वाचक ये शब्द बताये गए है।

णाणा धम्मेहि जुद अप्पाण तह परपि णिच्छयदो।
जं जाणेदि सजोगं तं णाण भण्णदे समए ॥२५३॥

अनेकान्तस्वरूप स्वपरको जानने वाले ज्ञानकी समीचीनता— जो नाना धर्मोसे युक्त अपनेको और नाना धर्मोसे सहित अपने योग्य परपदार्थोको जानता है उसको ही वास्तवमे ज्ञान कहते है। ज्ञान वही ज्ञान है जो अनेकान्तस्वरूप वस्तुको जानता है। यो जानने वाले तो बहुत है, ससारके सभी जीव जानते है, लेकिन उनका ज्ञान सही ज्ञान नही है, क्योकि उनके ज्ञानमे स्याद्वाद पद्धतिसे वस्तुका ज्ञान नही बन रहा है। अनेकान्त वस्तुको जाने, और उसमे प्रथम बात यह है कि प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त है, पदार्थ शाश्वत रहकर भी निरन्तर नवीन अवस्था बनाता और पुरानी अवस्था विलीन करता है। और, यह उत्

वस्तुमे स्वभाव पडा ही है, द्रव्यत्व गुणके कारण पदार्थमे निरन्तर परिणमन होता है। तो देखो अब मै हू और जब मै हू तो मै अपनेमे अपना परिणमन करता ही रहता हू। इसके आगे और कोई मेरा सम्बध तो नही, किसी परपदार्थसे। सभी पदार्थोकी यही प्रकृति है कि वे अपने अपनेमे अपनेरूप परिणमन करते रहे। फिर बताओ कि किसी एक पदार्थका दूसरा पदार्थ क्या लग जाता है? कुछ भी तो सम्बध नही। लेकिन जो इस तरह उत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मक पदार्थको नही मानते उनके ही तो मोह छा रहा है, अज्ञानदशा बन रही है।

यथार्थ पदार्थस्वरूपके परिचयमें आत्महितकी निहितता—शब्दोसे कह देने मात्रसे ज्ञान नही बनता। यदि कोई मनुष्य वस्तुत यह स्वीकार कर लेता है कि प्रत्येक पदार्थ अपने उत्पादव्ययध्रौव्य धर्मसे युक्त है तो इसका अर्थ है कि सभी पदार्थ जब ऐसे है तो सर्व स्वतत्र है। किसी की सत्ता किसी दूसरेके आधीन नही है। ऐसा जब ज्ञान हो जाता तो वहा मोह (अज्ञान) न ठहर सकेगा। तो ज्ञान उसे ही कहते है जो अपने को यो समझता है कि मै अपनी अनन्तगुण पर्यायोरूप हू। मेरा सब कुछ मुझमे ही चल रहा है, मेरा वैभव मेरा सत्त्व सब कुछ मुझमे ही है। मेरेसे बाहर मेरा अनुभव नही, परिणमन नही, कुछ भी तत्त्व नही। ऐसा जिसने अपनेको जाना उसका ज्ञान सही है। और जो अपने क्षयोपशम के योग्य बाह्य पदार्थोको भी अनेकान्त रूपमे जान रहा है वह ज्ञान भी ज्ञान है। अपने योग्यका मतलब यह है कि यहाँ ससारमे जीव छद्मस्थ है, वे सर्व पदार्थोको नही जान पाते, तो कुछ ही जान पाते, मगर जिसको भी जान रहे है उसको सही ढगसे तो जाने कि ये स्वय अपनेमे उत्पादव्ययध्रौव्यको लिए हुए है। तो जो नाना धर्मोसे सयुक्त वस्तु तत्त्व को मानता है उसका ज्ञान सम्यक्ज्ञान है। ज्ञानका लक्षण ही दर्शन शास्त्रमे ऐसा बताया है कि जो स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय करे उसको ज्ञान कहते है। तो स्व कैसा है और अर्थ कैसा है, इसका भी तो ठीक निर्णय होना चाहिए। स्व है अर्थात् स्वय आत्मा अथवा यह ज्ञान और पर है बाह्य समस्त पदार्थ। ये सब अनेकान्तस्वरूप है, इस विधिसे परिज्ञान करना समीचीन ज्ञान है।

ज सव्व पि पयासदि दव्व-पज्जाय सजुद लोय।
तह य अलोय सव्व त णाणं सव्व-पच्चक्ख ॥२५४॥

सकलप्रत्यक्ष ज्ञानका स्वरूप—इस गाथामे सर्व प्रत्यक्ष अर्थात् केवल ज्ञानका स्वरूप बताया है। ज्ञानोमे उत्कृष्ट ज्ञान केवलज्ञान है। देखिये ज्ञानमे स्वभाव पडा है जाननेका। पर उस स्वभावका वर्णन करने वाला, व्यक्त न होने देने वाला आवरण कर्म जीवके साथ है, इस कारण यद्यपि वह आवरण पूर्णतया ज्ञानको ढक नही सकता, तब भी बहुत कुछ दबा हुआ है। आवरण यदि टल जाय तो ज्ञान कितना जानेगा इसकी कल्पना कर लीजिए। जब

उसमे जाननेका स्वभाव पडा है तो यह सीमा न बनायी जा सकेगी कि बस जान लिया, बहुत हो गया, अब न जानेगा। जो भी सत् है वह सब ज्ञानमे आ जाता है। भगवान अरहत सिद्ध परमेष्ठीका यही तो महत्त्व है, उनका ज्ञान ऐसा निर्मल है कि सर्व लोकालोकका एक साथ स्पष्ट प्रतिभास हो रहा है। वहाँ रागद्वेष रच भी नही है। किसी प्रकारका, कर्मका, शरीरका बधन नही है इस कारण उनका ज्ञान समान रहता है और जो सत् है उसके केवल ज्ञाताद्रष्टा है। उनके किसी प्रकारके विकल्प नही उत्पन्न होते। जब कि यहाँ संसारी जीवोमे ये दो ऐब लगे हुए है—एक तो अज्ञानका—सब कुछ जान नही सकते और इसी कारण जाननेकी इच्छा बनाते है पर जान नही पाते, और, दूसरा ऐब लगा है रागद्वेषका। कुछ अगर जान भी लिया तो उसीमे रागद्वेष वश इष्ट अथवा अनिष्टकी बुद्धि कर डालते है। यह मेरे लिए इष्ट है, यह मेरे लिए अनिष्ट है आदि। यदि यह जीव मात्र अपने आपके स्वरूपमे रमण करे, देखे, उसीमे तृप्त रहे तो इस जीवका सर्व कल्याण है। मोही जीव यहाँ नही तकता, बाहरमे देखता, रागद्वेष लगे हुए है तो किसीको इष्ट मान लेना और किसीको अनिष्ट मान लेना तब द्विविधा और विडम्वनामे मोही जीव फसे रहते है किन्तु भगवान अरहत सिद्ध परमेष्ठीका ज्ञान निर्मल है, निरावरण है, वे समस्त लोकालोकको व त्रिकालवर्ती सब पदार्थोको स्पष्ट जानते है।

काल और लोककी विशालताका परिचय—यह लोक कितना बडा है, और काल कबसे कब तक है, इसको परखिये—लोकका परिमाण बताया गया है ३४३ घनराजू प्रमाण तथा कालको बताया है अनादि अनन्त। एक राजू भी बहुत बडा होता है, जिसकी संख्यादि उपायसे कल्पना नही कर सकते कि कितने प्रमाण है। काल अनादिनिधन है। उसके परिचयका भी अन्य कोई उपाय नही है इसलिए उसको उपमा प्रमाणसे बताया गया है। काल कितना बडा है यह जाननेके लिए पहिले सागरको जाने। सागरका प्रमाण बताया है पल्यके आधारसे तो पहिले पल्य समझे। पल्यका अर्थ गढा होता है।

उपमाप्रमाणमे एक ऐसे गड्ढे की कल्पना करे जो दो हजार कोशका लम्बा, चौडा, गहरा गड्ढा हो। इतना बडा गड्ढा किया नही जा सकता, लेकिन काल जब है और उसका प्रारम्भ व अन्त नही बताया जा सकता तो वह इतना बडा हो सकता है कि जो सख्यासे दूर है, उसको समझनेके लिए उपमाके द्वारा बताया गया है। इतने बड़े गड्ढेमे बालोके इतने छोटे-छोटे टुकडे जिनका कैंचीसे दूसरा टुकडा न बन सके ऐसे रोम भर दिए जायें और वे रोम बहुत ही कोमल हो और उन्हे ठसाठस भर दिया जाय। मानो, उन पर हाथी घुमा दिया जाय ताकि रोम ठसाठस भरे। अबप्रत्येक १०० वर्षके बादमे रोमका एक एक टुकडा निकाला जाय तो सारे रोम जितने वर्षोमे निकल सकें उसका नाम है व्यवहार

पल्य । और उससे असख्यात गुना होता है उद्धारपल्य, उससे असंख्यात गुना अद्धापल्य । एक करोड अद्धापल्यमे एक करोड अद्धापल्यका गुणा किया जाय उसे कहते है एक कोडाकोडी अद्धापल्य । ऐसे १० कोडाकोडी अद्धापल्योका नाम है एक सागर । ऐसे २० कोडाकोडी सागरका एक कल्पकाल होता है । ऐसे अनन्त कल्पकाल व्यतीत हुए और होगे । स्पष्ट बात यह है कि समयका न आदि है, न अन्त हे । यो काल अनादि अनन्त है । अब लोक ३४३ घनराजू प्रमाण है इसको समझनेके लिए कोश व योजनसे चले । देखिये—दो हजार कोश का एक योजन होता है । ऐसे एक लाख योजन प्रमाण जम्बूद्वीप है, जिसमे ७ क्षेत्र है, बीच विदेह क्षेत्र है, जहाँ सदा तीर्थंकर होते है, मुनिजन भी मोक्ष जाते रहते है । उस जम्बूद्वीपसे दूना है एक तरफ समुद्र । समुद्र जम्बूद्वीपके चारो ओर है । (एक एक तरफकी बात कह रहे है) उससे दूना है दूसरा द्वीप एक तरफ, उससे दूना है दूसरा समुद्र एक तरफ, उससे दूना है तीसरा द्वीप एक तरफ । इस तरह द्वीपके बाद समुद्र, समुद्रके बाद द्वीप, यो असख्याते द्वीप, समुद्र पडे हुए है और वे एक दूसरेसे दूने-दूने है । तो सारे द्वीप समुद्र जो अनगिनते है वे जितनी जगह घेरे वह एम राजू भी पूरा नही होता । और यह तो प्रतर राजू है । एक राजू लम्बा, एक राजू चौडा, एक राजू मोटा इतनेको कहते है एक घनराजू । ऐसे ३४३ घनराजू प्रमाण यह लोक है ।

काल और लोककी विशालताके परिचयका लाभ—यदि इस लोकके विस्तारको ही जानने लगे तो मोह मिटनेका अवसर यहाँ भी मिल जाता है कि अरे इतना बडा लोक है, इस लोकके सामने जहाँ हम आप आज पैदा है या परिचय है वह कितना बडा है, क्या चीज है ? समुद्रके सामने एक बिन्दु बराबर भी नही है । तो इतनी सी जगहमे मोह बनाकर, कल्पनाये बनाकर अपने ऐसे अद्‌भुत परमवैभवसम्पन्न आत्माकी बरबादी की जा रही है, यह क्या कोई विवेक है ? कालका प्रमाण जब उपयोगमे आता है कि काल अनादि अनन्त है और ये जीव भी अनादि अनन्त है । तो अनादि कालसे यह जीव पर्याये धारण करता आया है । अनन्तकाल तक यह जीव रहेगा तो कितना काल व्यतीत हो गया ? उसके सामने यह १००–५० वर्षका जीवन कुछ गिनती भी रखता है क्या ? कुछ भी तो गिनती नही रखता । इतनी सी देरके लिए परिजनोमे, कुटुम्बमे, वैभवमे उपयोग दे देकर, उन्हे अपना मान मानकर यह जीवन गुजार दिया जाता है, इससे इस जीवको कुछ लाभ मिलेगा क्या ? केवल बरबादी ही मिलेगी । मगर मोहवश यह जीव अपनी इस कुटेवको नही छोड सकता, उस ज्ञानका आदर नही कर सकता, जो उसका परमवैभव है ।

सकल प्रत्यक्षज्ञानकी महिमा—लोक कितना बडा, काल कितना बडा ? इस लोकमे पदार्थ कितने है ? अनन्त । और प्रत्येक पदार्थमे अनन्त गुण है, उनकी अनन्त पर्याये है ।

ऐसे अनन्त सब पदार्थोंको केवलज्ञानी एक साथ स्पष्ट जानता है और देखता है। वह ज्ञान क्षायिक है। कर्मोके क्षयसे उत्पन्न हुआ है। वह ज्ञान अनुपम है, अनन्त है, सदा यह ज्ञान ऐसा चलता रहेगा, उसका कभी विनाश न होगा। यह ज्ञान तीन कालके समस्त अर्थोंको एक साथ प्रकट जानता है। शाश्वत सहज आनन्दका धाम है। कोई पुरुष केवलज्ञान ही ज्ञान करता रहे, ज्ञाता दृष्टा रहे तो यहा भी वह अद्भुत आनन्दको प्राप्त कर लेता है और जो परमेष्ठी अरहतदेव सिद्ध भगवान निरन्तर ज्ञाता दृष्टा मात्र रहते है और ऐसे विशुद्ध ज्ञाता दृष्टा कि जहा समस्त पदार्थ एक साथ प्रतिबिम्बित हो रहे है ऐसे अपूर्व ज्ञाताद्दष्टा प्रभुका आनन्द कैसा होगा ? तो वह अनन्त आनन्द है। तो ऐसे अनन्त आनन्दके स्थानभूत मै केवलज्ञानको सतत् प्रणाम करता हू। देखिये—ध्येय तो जीवनमे कुछ होना चाहिए। क्या धन कमाते रहना ही ध्येय बनानेसे कुछ तत्त्व मिलेगा ? देखते है कि सभी लोग अचानक मरण कर जाते है। अब उनका क्या रहा यहाँ ? और यहाकी मोह ममताका लाभ परभवमे भी क्या उठाया जायेगा ? कोई साथी न होगा ? केवल जो पाप कमाया है उस पापका फल ही भोगना होगा। तो इस लोकमे अपना उद्धार करने के लिए अपना क्या कर्तव्य है, इस पर ध्यान दे। मेरा भविष्य शान्तिमय कैसे व्यतीत हो, इस पर भी तो कुछ विचार करे। अभी तक तो दुख प्राप्त करने के ही उपाय बनाये जाते रहे। जहा सही ज्ञान नही बन रहा वहाँ अभी भी दुख ही है और भविष्यमे भी दुख ही मिलेगा। तो अपनेको कुछ चेतना चाहिए और सत्यज्ञानका आदर करना चाहिए।

सव्व जाणदि जम्हा सव्व-गय त पि वुच्चदे तम्हा।
ण य पुण विसरदि णाण जीव चइऊण अण्णत्थ ॥२५५॥

आत्मप्रदेशस्थ होकर ही ज्ञानद्वारा सर्वज्ञेयोंकी परिज्ञान—प्रभुका केवलज्ञान चूंकि समस्त लोकालोकको जानता है, सर्वपदार्थोंको जानता है। इस दृष्टिसे उसे सर्वगत कहा है, अर्थात् समस्त लोकालोकमे व्यापक बताया गया है। ज्ञानको व्यापक बताया गया है। लेकिन वह ज्ञान परमार्थत अपने जीवस्वरूपको छोडकर अन्य जगह नही फैलता है। यहाँ भी हम आप लोगोका ज्ञान आत्मामे ही तो है और आत्माके प्रदेशोमे रहता हुआ ही यह ज्ञान कितनी दूर तककी चीजोको जानता है ? तो एक दृष्टिसे यह कहा जायगा कि हमारा ज्ञान इतने कोशोतक फैला हुआ है, और एक दृष्टिसे यह कहा जायगा कि हमारा ज्ञान तो हमारे आत्मा मे ही रह रहा है, बाहर कही नही फैलता। तो जिस कारणसे केवलज्ञान समस्त द्रव्य गुण पर्याय सहित लोक अलोकको जानता है इस कारण उसे सर्वगत कहा है। कोई दार्शनिक ऐसे भी है जो यह मानते है कि ज्ञान जो है वह ज्ञेय पदार्थके प्रदेशोमे जा जाकर प्रत्यक्षरूप से जानता है तो वह ज्ञेय-प्रदेशोमे किस प्रकार जाता है, उसकी विधि वे बतलाते है कि

सयोगसे जाता है, और समवायसे जाता है संयोगसमवाय सम्बंधके अनेक भेदो रूप सान्निकर्षोके द्वारा यह ज्ञान ज्ञेय पदार्थोके प्रदेशोमे जाता है। जैसे वे मानते है कि आख पदार्थमे जाती है, आखकी किरण गई तो वह भी तो आख है, तो ऐसे ही मानते है कि ज्ञान ज्ञेय पदार्थोके पास पहुंच-पहुचकर जानता है, लेकिन यह युक्त बात नही है, क्योकि ज्ञान जीवको छोडकर अन्य ज्ञेयप्रदेशोमे नही फैलता, वहा नही जाता, किन्तु अपने आत्मप्रदेशोमे ही रहता हुआ समस्त लोकालोकको जानता है।

णाण ण जादि णेयं णेयं पि ण जादि णाण--देसम्मि।
णिय--णिय--देस--ठियाणं ववहारो णाण--णेयाण ॥२५६॥

ज्ञानका ज्ञेयमें व ज्ञेयका ज्ञानमें गमन न होकर भी निज निज प्रदेशमें रहने वाले ज्ञान और ज्ञेयोका व्यवहार--ज्ञान ज्ञेयपदार्थोके पास नही जाता और ज्ञेयपदार्थ भी ज्ञानके प्रदेशमे नही आते है। पदार्थ अपनी ही जगह ठहरा है, ज्ञान अपने ही धाममे ठहरा है, पर ज्ञान हो रहा, जानन हो रहा इस कारण ज्ञान और ज्ञेयका व्यवहार चलता है। कुछ दार्शनिक ऐसे भी है कि जो ज्ञानमे पदार्थोका जानना मानते है। पदार्थ ज्ञानमे पहुचते है, वे अपना आकार सौपते है तब ज्ञान जानता है। तो न इस तरह ज्ञेय ज्ञानमे जाता है और न ज्ञान ज्ञेयमे जाता है, दोनो अपने ही अपने प्रदेशोमे ठहरे हुए है, किन्तु जाननेका काम है ज्ञानका और जानना होता है ज्ञेयका। इसी रूपको लेकर ज्ञान और ज्ञेयका व्यवहार चलता है। जो जाने सो ज्ञान, और जो जान जाय सो ज्ञेय कहलाता है। ज्ञान ज्ञेयमे नही जाता, ज्ञेय ज्ञानमे नही जाता।

दृष्टान्तपूर्वक ज्ञानका ज्ञेयमें अागमन व ज्ञेयका ज्ञानमें आगमनकी सिद्धि--ज्ञान ज्ञेय को जानकर भी ज्ञेयमे नही जाता इसकी सिद्धिके लिये दर्पणका दृष्टान्त भी लिया जा सकता है। जैसे दर्पणमे अनेक पदार्थोका प्रतिबिम्ब आता है, किन्तु पदार्थ उस दर्पणमे नही घुस जाते, और दर्पण भी उन पदार्थोमे नही जाता। दर्पण, दर्पणकी जगह है और वे पदार्थ, पदार्थकी जगह है, पर उस दर्पणमें ऐसा ही स्वभाव है कि जो भी चीज सामने हो उसको प्रतिबिम्बित कर लेता है। तो यह दर्पणका और पदार्थोका ऐसा स्वभाव है। पदार्थ अपना आकार समर्पित करते है और दर्पण उनका आकार ग्रहण करता है, यह व्यवहारसे कहा जाता है। वस्तुत दर्पण न पदार्थमे कुछ करता और न पदार्थ दर्पणमे कुछ करता। सबका अपने-अपने स्वभावसे परिणमन होता रहता है। ज्ञान ज्ञेयमे नही जाता, ज्ञेय ज्ञानमे नही आते। इसके लिए एक नेत्रका भी दृष्टान्त ले सकते है। जैसे नेत्रो द्वारा पदार्थ दिख जाते है, पर नेत्र कही पदार्थोके पास जा जाकर उन्हे नही देखते, और पदार्थ भी आँखोके पास आ आकर नही दिखनेमे आते। पदार्थ पदार्थकी जगह है, आँख आँखकी

जगह है। वे सब अपने अपने प्रदेशमें है। ये आँखे अपनी ही जगह रहते हुए अनेक पदार्थो को देख लेती है। इसी तरह यह ज्ञान आत्मप्रदेशोमे ही रहता है और ये पदार्थ अपने प्रदेशो मे ही रहते है, पर स्वभाव है ऐसा ज्ञानमे कि अपने ही प्रदेशोमे रहता हुआ वह ज्ञान इन बाह्यपदार्थोको जान लेता है। लोग कहते क्यो है ऐसा कि ज्ञान ज्ञेयमे गया, यह व्यवहार बनाते है, तो यह कुछ रूपक समझ कर बना है। जैसे दूधमे एक नीलमणि डाल दी जाय तो सारा दूध नीला हो जाता है। तो नील उस सारे दूधमे व्याप गया ऐसा लोग कहते है, पर नीलमणि तो जितनी है उतनी ही है, वह तो उस सारे दूधमे फैली नही है, लेकिन उस नीलमणिका सन्निधान पाकर समस्त दूधमे नीलेपनका प्रतिभास हुआ है। अत व्यवहारसे यह कहा जाता कि यह नीलमणि सारे दूधमे फैल गई है, इसी तरह ज्ञान ज्ञेयमे जाता तो नही है पर जान लेता है बहुत दूरवर्ती पदार्थोको, तो उन दूरवर्ती पदार्थोको जान लेनेके कारण यह व्यवहार हुआ है कि ज्ञान ज्ञेयमे जाता है। वस्तुत जैसे नीलमणि दूधमे व्यापक नही। दूध दूधमे है, नीलमणि नीलमे है, इसी प्रकार ज्ञान ज्ञानमे ही है, और पदार्थ पदार्थ मे ही है, फिर भी ऐसा ज्ञान ज्ञेयका सम्बन्ध है कि अपने ही प्रदेशोमे रहते हुए यह ज्ञान पदार्थोको जान लेता है।

लोकभावनामें वर्णित विषयसे आत्महितके लिये शिक्षा—लोकभावनामे समस्त द्रव्यो का वर्णन किया जा रहा है। तो उस वर्णनसे हमे क्या निरखना है ? तो मूल बात यह निरखना है कि प्रत्येक द्रव्य अपना-अपना उत्पादव्ययध्रौव्य स्वभाव लिए हुए है अतएव कोई किसीके आधीन नही है। किसीकी सत्ता किसी दूसरे पदार्थकी कृपासे नही है। यह जाननेसे मोह दूर होता है। साथ ही जो लोकभावनामे जीवकी नाना योनियोका वर्णन किया है, उस वर्णनसे वैराग्यको सहयोग मिलता है कि देखो जीवकी अज्ञानदशामे रहनेके कारण कैसी-कैसी परिस्थितियाँ होती है, कैसे-कैसे जन्म धारण करने पडते है ? तो यहा बताया जा रहा है कि यह आत्मा ज्ञानमय है, वह अपने आपमे ही है, ये पदार्थ ज्ञेय है अपनी जगह है। इन पदार्थोमे आत्मा नही प्रवेश करता, आत्मामे ये पदार्थ प्रवेश नही करते, किन्तु आत्मा अपने आपमे रहता हुआ इन पदार्थोको जान लेता है।

मण–पज्जय–विण्णाणं ओही–णाणं च देस–पच्चक्खं।
मदि–सुदि–णाण कमसो विसद–परोक्खं च ॥२५७॥

मनःपर्ययज्ञानका विवरण—ज्ञानके भेद ५ बताये गए है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। तो इसमे सर्वप्रथम केवलज्ञानका वर्णन किया गया है, क्योकि वह सर्वोत्कृष्ट है और पूज्य है। अब केवलज्ञानके वर्णनके बाद मन.पर्ययज्ञान का स्वरूप दिखा रहे है। मन पर्ययज्ञान भी ऋद्धीश्वर संयमी साधुवोके हो सकता है, इस

कारण शेष ज्ञानोकी अपेक्षा यह पूज्य ज्ञान है। मन.पर्ययज्ञानका अर्थ है कि दूसरेके मनमें ठहरे हुए पदार्थका और उसके विचारका ज्ञान कर लेना। मन पर्यय ज्ञान दो प्रकारका होता है ऋजुमति और विपुलमति। ऋजुमति मन पर्ययज्ञान तो सरल दिल वालोकी बातको समझता है किन्तु विपुलमति मन पर्ययज्ञान तो कोई कैसा ही मायाचारी पुरुष हो, कितने ही कठोर दिलका हो, उसके भी भावको समझ जाता है। इसी कारण विपुलमति मन पर्ययज्ञान की महिमा अधिक बतायी गई है, क्योकि उस ज्ञानमे शक्ति, योग्यता विशेष है। और, कहा गया है सिद्धान्तमे कि जिसे विपुलमति मन पर्ययज्ञान होता है वह नियमसे उसी भवसे मोक्ष जाता है।

अवधिज्ञानका विवरण—अवधिज्ञान-जिसकी हद की गई हो, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से जो मर्यादा रूपमे हो उसे अवधिज्ञान कहते है। अथवा जो नीचे तो बहुत दूर तककी बात जाने और ऊपर कम दूर तककी बात जाने उसे अवधिज्ञान कहते है। अवधिज्ञान जानता तो है चारो ओरकी बातोको, फिर भी अवधिज्ञानमे ऐसी प्रकृति है कि नीचेके क्षेत्रमे तो बहुत दूर तक की बात जानेगा और ऊपर कुछ कम दूरी तक की बात जानेगा त उसे अवधिज्ञान कहते है जो इन्द्रिय और मनकी सहायताके विना केवल आत्मीय शक्तिसे इन रूपी पदार्थो को जानता है याने अवधिज्ञान पुद्गलको तो जानेगा पर जीवके भावोको न जानेगा। कभी कभी सम्यक्त्वका अनुमान भी किया जाता है अवधिज्ञानके माध्यमसे तो वहा अवधिज्ञानने किसी का सम्यक्त्व नही जाना किन्तु उस आत्मामे किन कर्मो का उपशम क्षयोपशम है यह जान लिया, क्योकि कर्म है रूपी, फिर उस ज्ञानके माध्यमसे सम्यक्त्वका भी अनुमान किया जाता है। अवधिज्ञान तीन प्रकारका होता है—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि। इनमे परमावधि और सर्वावधि ज्ञान तो उत्कृष्ट ज्ञान है। ऐसा अवधिज्ञानी पुरुष नियमसे मोक्ष जाता है। पर देशावधि ज्ञान एक देश अवधिज्ञानको कहते है। यह देशावधि ज्ञान चारो गतियोके जीवोमे उत्पन्न हो सकता है लेकिन परमावधि और सर्वावधि ज्ञान केवल सयमी साधुवोके ही हो सकता है। सो ये दोनो ज्ञान (मन पर्ययज्ञान और अवधिज्ञान) एक देशप्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष ज्ञान तीन तरहके बताये गए है—अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। तो केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। कोई भी पदार्थ जाननेसे नही बचा। समस्त सतोको केवलज्ञानीने जान लिया, किन्तु मन पर्ययज्ञानका विषय अल्प है, अवधिज्ञान का भी अल्प है, सर्व नही है, इस कारण इसे देशप्रत्यक्ष कहते है।

महिम ज्ञान प्राप्त न होनेका कारण—ज्ञानकी यह महिमा हम सब जीवोमे स्वभावत पडी हुई है। लेकिन जब अपनी सुध नही रखते है और अपने आपके चैतन्यस्वरूपमे मग्न होना ही हमारा एक काम है, यह बुद्धि नही रखते तो बाहर बाहर उपयोग घूमता है,

ऐसी स्थितिमे हम आपका ज्ञान इन सर्व महिमाओंको प्राप्त नही कर पाता। इस जगतमे सार कहाँ दिख रहा है? देहको कितना ही पुष्ट करो आखिर यह अन्तमे जला दिया जायगा। मरण हो जानेके बाद फिर इससे कौन प्रीति करेगा? धन वैभव कितना ही जोड लिया जाय, आखिर उन परपदार्थोंमे उपयोग रहनेसे इस आत्माको कहाँ अपनी सुध रहती है? सोचिये कितना हम आप अपने आपपर अन्याय कर रहे है? इस अन्याय करनेका फल यही है कि हम आपको इस ससारमे रुलना पड रहा है। लोकमे कितनी ही इज्जत प्रतिष्ठा बना लिया तो उससे जीवने कौनसा लाभ पा लिया? थोडे दिनोका जीवन है। यहांसे मरकर किसी निम्नगतिमे पैदा हो गए तो फिर क्या हाल होगा? यहाकी इज्जत प्रतिष्ठासे इस जीव को कोई शान्ति है क्या? जगतमे सार कुछ नही है? केवल एक सारभूत काम यहा यह है कि हम अपने स्वरूपका परिज्ञान करे। मै सबसे निराला चैतन्यस्वरूपमात्र हू और ऐसा ही जान-जानकर, यहाँ ही दृढतासे अपनी दृष्टि जमाकर अनुभव करे कि मैं ज्ञानमात्र हू। कोई विकल्प न रहे, ज्ञानमे ज्ञानस्वरूप समा जाय, यह उपयोग ज्ञानमे आ जाय, ऐसी अनुभूति बनाये, यही तो केवल एक सारभूत बात है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ सारभूत बात नही है।

परोक्ष ज्ञान--प्रत्यक्ष ज्ञानका वर्णन करके अब परोक्षज्ञानका वर्णन करते है। मति-ज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्षज्ञान कहलाते है। मति, श्रुत, ज्ञान सभी जीवोके हुआ करते है। यह चर्चा अपने स्वरूपकी है इस कारण ध्यानपूर्वक इसे सुनना है और मनन करना है। मैं ज्ञानस्वरूप हू और इस ज्ञानस्वरूप मुझ आत्माके ज्ञानका किस-किस रूपमे कब विकास होता है, उसकी यह चर्चा है। मतिज्ञान उसे कहते है जो इन्द्रिय और मनसे पदार्थोंको जानता है, मतिज्ञानमे परोक्षता भी है और साव्यवहारिक प्रत्यक्षता भी है। जैसे लोग कहते है कि हमने प्रत्यक्ष देखा, हमने प्रत्यक्ष सुना आदि, तो वहाँ मालूम होता है कि हम कुछ स्पष्ट ही तो जान रहे है। इसे कहते है साव्यवहारिक प्रत्यक्ष। किन्तु, इन्द्रिय और मनकी आधीनतासे जाना ना इस कारण वास्तवमे परोक्ष है यह। श्रुतज्ञान परोक्ष ही है। शब्दो द्वारा जाना या मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थोंको और विशेषरूपसे जाना, ये सब परोक्षज्ञान कहलाते है। ये सभी ज्ञान अपने प्रदेशोमे रहकर ही इन बाह्यपदार्थोंको जानते है।

भेदविज्ञानकी शरणयता--देखिये--भेदविज्ञान ही हम आप लोगोके लिए सहारा है। भेदविज्ञान मे समझना यह है कि मै परपदार्थोंसे निराला हू, मै किसी भी परपदार्थका कोई काम नहीं करता हू। जब राग करता हूँ तो किसी जीवपर राग नही करता, किन्तु अपने आपमे राग परिणति बनाता रहता हू, और उस राग परिणतिके बननेका नियम ऐसा ही है

कि वहाँ कोई वाह्यपदार्थ विपयभूत होता है। जो दूसरेका नाम ले लेकर, दूसरेको अपने उपयोगमे ला लाकर राग किया करता है। राग किसी जीवपर कोई नही करता है। राग की तो बात क्या कहे, ज्ञानकी वात जब यहाँ ऐसी दिखाई गई है कि कोई भी मनुष्य इन वाह्यपदार्थोंको जानता नही है, किन्तु वास्तवमे वह अपने स्वरूपमे रहता हुआ अपनेको उस उस पर्यायरूपको जान रहा है ? अब ज्ञानमे विपय आये वाह्यपदार्थ और जाना निश्चयसे अपने आपको ही, वहाँ वाह्यपदार्थ विपयभूत हुए, इस कारण व्यवहारसे कहा जायगा कि ज्ञानने बाह्यपदार्थोंको जाना, पर परमार्थत ज्ञान अपने को ही जानता है। तो जब मेरे ज्ञानका ही सम्बध वाह्यपदार्थोंमे कार्य करनेका नही है तब अन्य क्रियाकी तो बात ही क्या है ? यह सब जानकर एक बार भी साहस करके समस्त वाह्यपदार्थोंसे उपेक्षा कर, अपनेमे आराम ले, विश्राम करे, विकल्प हटाये तो स्वत' अपने आपमे वह ज्ञानप्रकाश उदित होता है, वह अनुभव बनता है जिसे ज्ञानानुभव कहते है। ज्ञानानुभूतिके प्रतापसे यह जीव कर्मोके बन्धनको नष्ट कर देता है।

इदियजं मदि-णाणं जोग्ग जाणेदि पुग्गल दव्व।
माणस-णाण च पुणो सुय-विसय अक्ख-विसय च ॥२५८॥

मतिज्ञान व श्रुतज्ञानसे जाननेकी पद्धति--अब मतिज्ञान और श्रुतज्ञान किस प्रकारसे जानते है ? इसका इस गाथामे वर्णन किया है। इन्द्रियसे उत्पन्न होने वाला मतिज्ञान अपने योग्य पुद्गल द्रव्यको जानता है। स्पर्शनइन्द्रियसे स्पर्श जाना जाता, रसनाइन्द्रियसे पदार्थो का रस जाना जाता, घ्राणइन्द्रियसे गध, चक्षुइन्द्रियसे रूप और कर्णइन्द्रियसे शब्द जाने जाते है। तो इन इन्द्रियो द्वारा जो कुछ जाना जाता वह अपने योग्यको ही जान सकता है, सबको नही जान सकता। जितना क्षयोपशम है, जो पदार्थ सामने है, जहाँ तक समझ सकनेकी इन्द्रियोमे सामर्थ्य है बस उस रूपसे पदार्थको जान पाता है। मतिज्ञान मनसे भी उत्पन्न होता है और मानस ज्ञान श्रुतका भी विपय करता है और इन्द्रियके विषयको भी विषय करता है। इस तरह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनो परोक्षज्ञान बताये गए है। मतिज्ञानसे हम जब किसी पदार्थको जानते है ना, तो पहिले सामान्य ज्ञान होता है, फिर उसका कुछ और विशेष ज्ञान होता है, फिर उसमे निश्चय होता, और फिर हम उसे कभी भूल न सके ऐसी धारणा हो जाती है। ये मतिज्ञानके ही भेद है, जिसे सिद्धान्तमे कहा है--अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। जैसे ज्यो ही नेत्र खुले त्यो ही सर्वप्रथम कुछ प्रतिभास हुआ कि चीज है। उससे बाद जाना कि यह तो भीत होनी चाहिए, फिर यह भीत ही है ऐसी धारणा हो गई। किसी भी नवीन पदार्थको जब जानने चलते है जिसे कि अभी तक नही जाना वहाँ इन चार भेदोकी बात भली प्रकार विदित हो जाती है। यहाँ चूँकि अभ्यास है, रोज-रोज

इन बातोको निरखते है तो यह पता नही पड़ता कि यह अवग्रह है, यह ईहा है, यह अवाय है और यह धारणा है। जानते है हम इसी विधिसे। और, यह ज्ञान इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न होता है।

मतिज्ञान द्वारा बारह प्रकारके अर्थोंका ज्ञान—मतिज्ञान बारह प्रकारके अर्थोको जानता है। कभी तो बहुज्ञान होता है। बहुतसी चीजोका एक साथ ज्ञान हो जाता है। जैसे बन देखा तो बहुतसे वृक्षोंका समूह हो तो बन है। बहुतसी चीजोका ज्ञान हो गया। उसी बनमे जब यो देखा कि यह आम है, यह इमली है, यह केला है आदिक। तो यह बहुत प्रकारके वृक्षोका ज्ञान हुआ सो यो बहुविधज्ञान होता है। कभी जल्दी चलते हुए पदार्थोका ज्ञान होता, निसृत हुए पदार्थोंका ज्ञान होता, कभी न कहे हुएका ज्ञान हो जाता, कभी ध्रुव स्थिर पदार्थोका ज्ञान होता, तो किसी ज्ञानमे एक ही पदार्थ ज्ञानमे आता, एक प्रकार के पदार्थ ज्ञानमे आते और जो पूरा नही निकला उसका एक अंश ही प्रकट है उससे पूरेको जान जाता है। जैसे कोई हाथी तालाबमे डूबा है, केवल सूँढ निकली है तो उस सूढको ही देखकर पूरे हाथीको जान गए। इस प्रकार भी मतिज्ञान होता है कि कभी पूरी बात नही कह सकते, थोडा कह सकते, यो चेष्टाको देखकर उसका भाव जान लिया जाता है। कभी चंचल बिजली आदिक पदार्थोका ज्ञान होता। यो १२ प्रकारसे मतिज्ञान पदार्थोको जानता है और मानस ज्ञान जो मनसे उत्पन्न हुआ ज्ञान है वह भी ऐसे पदार्थोंको जानता है और श्रुतज्ञानके विषयको जानता है, इस तरह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनो ज्ञान परोक्ष रूपसे इन अनेक पदार्थोको जानता है। हम आपके मतिज्ञान और श्रुतज्ञान है, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान, केवलज्ञान नही है, अथवा इस कालमे अवधिज्ञान तक हो सकता है, पर मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान नही होते, लेकिन हम अपने मति और श्रुतज्ञानसे कल्याणका उपाय बना सकते है।

पंचिंदियणाणाण मज्झे एग च होदि उवजुत्तं।
मणणाणे उवजुत्तो इंदियणाणं ण जाणेदि ॥२५९॥

पञ्च इन्द्रियज्ञानों व मानसज्ञानमें किसी एकका उपयोग होनेपर अन्यका अनुपयोग—यह लोकभावनाका प्रकरण है। लोकभावनामे उस उस ढगसे पदार्थोका वर्णन किया गया कि जिसमे इस जीवको भेदविज्ञान और सन्मार्गमे चलनेकी प्रेरणा मिले। इस प्रसंगमे ज्ञानकी वार्ता चल रही है कि जीवमे ज्ञान कितना होता है, किस ढगसे होता है ? तो यहाँ मतिज्ञानकी बात कह रहे है कि ५ इन्द्रिय और एक मन इन ६ कारणोसे मतिज्ञानकी उत्पत्ति होती है। उनमे जब पञ्चेन्द्रियका ज्ञान हो रहा हो तो एक इन्द्रियके ज्ञानके समय एक ही इन्द्रियज्ञान उपयुक्त होता है, अर्थात् जब जिस इन्द्रियसे जान रहे है तब उस इन्द्रियसे जानने

का ही उपयोग है अन्य इन्द्रियज्ञानका उपयोग नही है । इसी प्रकार जब मानस ज्ञानसे जाना जा रहा है तो उस समय मानसज्ञानका ही उपयोग है, इन्द्रियज्ञानका उपयोग नही है । उपयोगका अर्थ है वस्तुके ग्रहण करनेमे व्यापार करना, जिसको अन्य दार्शनिकोने सीधा "व्यापार" शब्दसे ही प्रयोग किया है । तो जब इन ६ प्रकारके ज्ञानोमे किसी भी प्रकारके ज्ञान का उपयोग है तब अन्यका उपयोग नही है और यह बात अनुभवसे भी समझमे आती है कि जब मानसज्ञान कभी आर्तरौद्रध्यानमे व्यापार कर रहा हो, किसी भी चिन्तनमे लग रहा हो उस समय इन्द्रियज ज्ञानका उपयोग नही रहता और बडे-बडे योगीजनोके जब कुछ विशिष्ट धर्मध्यानमे मानसज्ञान चल रहा है तो वहाँ भी इन्द्रियज्ञानका उपयोग न रहेगा । जैसे कोई पुरुष किसी रौद्रध्यानमे विशेष मनसे लग रहा है या आर्तध्यानमे लग रहा है तो उस समय उसके इन्द्रियज्ञानका उपयोग नही होता, और कभी कोई बात गुजर जाय शरीरसे तो उसकी सुध नही रहती । इससे सिद्ध है कि इन ६ प्रकारके ज्ञानोमे जिस किसी भी ज्ञानका उपयोग है उस समय वह एक उपयोग है ।

इन्द्रियज्ञानोंके एक साथ हो जानेकी एक आशंका—यहा एक आशका की जा सकती कि कोई स्थिति ऐसी देखी जाती है कि जहा सभी ज्ञान एक साथ व्यापार कर रहे है और इसके लिए एक दृष्टान्त प्रसिद्ध है । दीर्घशष्कुलीभक्षण । एक बहुत बडी पपडिया खायी जाती हो तो उस समय उसकी चुर चुर आवाज आती है, वह सुननेमे आ रही है, उसकी गध भी चूंकि नाकके सामने है इसलिए स्पष्ट समझमे आती है और बडी पपडिया है सो दिख भी रही है, उसके रस भी खानेसे मालूम हो रहा है, उसके स्पर्शका भी ज्ञान हो रहा है, कडी कडी लग रही है तो कैसे यह कहे कि ये सब ज्ञान एक साथ व्यापार नही करते ? उसीके उत्तरमे कह रहे है कि—

> एक्के काले एक्क णाणं जीवस्स होदि उवजुत्त ।
> णाणाणाणाणि पुणो लद्धिसहावेण वुच्चति ॥२६०॥

एक कालमें लब्धिकी अपेक्षासे नाना ज्ञान होनेपर भी उपयोगकी अपेक्षासे एक ही ज्ञानकी संभवता—उपयोगकी अपेक्षासे तो ज्ञान एक ही कालमे एक ही उपयुक्त होता है, किन्तु लब्धिकी अपेक्षासे नाना ज्ञान एक साथ कहे आते है । जैसे ५० पानोकी एक गड्डी हो और उसमे बडी तेजीसे एक सूई चुभो दी जाय तो देखनेमे ऐसा लगता है कि वे सभी पान एक साथ छिद गए मगर ऐसी बात नही है । उनके छिदनेमे समयभेद अवश्य रहा । कितनी ही द्रुतगतिसे सूई उन पानोको छेद दे, फिर भी वे पान एक साथ नही छिद सकते । वे क्रम क्रमसे लगे हुए पान क्रम क्रमसे ही छिदे । भले ही वहाँ समय भेद न मालूम पडे फिर भी समयभेद रहता ही है । इसी प्रकार भले ही बहुत जल्दी-जल्दी लम्बी पपडीके खाते

समय पाँचो इन्द्रियो द्वारा एक साथ ज्ञान हो रहा है, फिर भी समय भेद उ.मे अवश्य है। उपयोगकी दृष्टिसे उन सबका क्रमसे ज्ञान हो रहा है। जब जहाँ उपयोग हो उस समय उसका ही ज्ञान है, पर इत.ी शीघ्रतासे वह ज्ञान चल रहा है कि उनका समयभेद समझमे नही आता। इसीसे कुछ ऐसा विदित होता है कि सभी इन्द्रियो द्वारा एक साथ ज्ञान कर लिया।

उपयोगतः एक कालमें नाना ज्ञानोंकी असंभवताके परिचयसे आत्मशिक्षा—इस प्रकरणसे हमे हितके लिए क्या शिक्षा लेना है कि देखिये मै ज्ञानस्वरूप हू, और मेरे ज्ञानमे ऐसी सामर्थ्य है कि समस्त विश्वको एक साथ स्पष्ट जान लूँ। ज्ञानमे ज्ञानकी ओरसे रुकावट नही है कि वह यो क्रमसे जाने, थोडा जाने। यह तो कोई आवरणके निमित्तसे ही हो रहा है। तो मेरे स्वरूपका स्वभाव तो ऐसा है कि समस्त पदार्थोको मै एक साथ जान लूँ लेकिन आज स्थिति हमारी क्या हो रही है? कुछ थोडासा पुण्यका उदय है जिससे कुछ सुख सामग्रियाँ मिली है, उन्हीका अहकार करके या उन्हीके प्रसगमे थोडा सा कल्पित मौज मानकर अपना जीवन बिता देते है, पर यह नही देखते कि हमारी आजकी कितनी दयनीय स्थिति है? हम किसी भी स्थितिका क्या अहकार करे? अन्तरङ्ग स्थिति बतायी जा रही है कि इतना समर्थ ज्ञान भी आज इतना अशक्त हो रहा है कि वह क्रमसे ही पदार्थोको जान पाता है और उसका उपयोग क्रमश हो रहा है। तो यह मतिज्ञान उपयोगकी दृष्टिसे तो क्रमश होता है, पर लब्धिकी अपेक्षासे ये नाना ज्ञान एक साथ है और मतिज्ञान विषयक ही नाना क्यो जितने भी श्रुतज्ञान, मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान जिसके जितने ज्ञान है वे सबके सब एक साथ है, लब्धिकी दृष्टिसे, परउपयोगकी दृष्टिसे वे सब क्रमश. हुआ करते है।

ज्ञान दर्शन गुणका प्रतिसमय परिणमन होनेपर भी उपयोगतः एक कालमें एककी संभवता—यहाँ यह भी समझना चाहिए कि जब आत्मामे ज्ञानगुण और दर्शनगुण है तो क्या ऐसा हो सकता है कि जब ज्ञानगुणका उपयोग चल रहा है तो दर्शन गुणका कोई परिणमन न हो। जब दर्शनोपयोग चल रहा है तब ज्ञान गुणका कोई परिणमन न हो, क्या यह बात सम्भव है? जब गुण है तो प्रतिसमय उनके परिणमन है, जो भी गुण है वे स्थिति बिना नही रहते है, उनके कोई न कोई परिणमन है। तो परिणमन सतत् होते रहनेपर भी उपयोग क्रमश होता है, यह यहाँ एक विलक्षणता है। प्रभुमे यह भेद नही पडा है, उनके ज्ञानका परिणमन सतत् है, उपयोग भी सतत् है। इसीलिए ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोग प्रभुमे एक साथ बताये गए है और छद्मस्थ जीवोके साथ नही कहे गए। तो ये नाना ज्ञान स्पर्शन आदिक इन्द्रियजन्य ज्ञान मानसज्ञान और अन्य ज्ञान भी लब्धिकी दृष्टिसे सब एक साथ है,

पर उपयोगकी दृष्टिसे छद्मस्थ अवस्थामे एक साथ नही होते ।

सहजज्ञानस्वरूपके बोध बिना विडम्बनाओंका वेध—अब देखिये– जहाँ इन बाहरी स्वरूपोमे चलते है तो विडम्बनायें नजर आती है और जब एक अपने अन्त स्वरूपमे आते है तो वहाँ कोई विडम्बना नही है । क्या वर्त रहा है, क्या परिणति है, क्या स्थिति है कि अब वह केवल ज्ञान न रहा, अल्पज्ञान रहा । जिस भव्य पुरपका अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव चल रहा है उसके उस अनुभवकालमे, तो वह पूर्ण वैभवसम्पन्न है, उसको आकुलता कहाँ ? उसको तरग कहाँ ? उस अनुभूतिसे तो केवल एक सहज आनन्दका ही अनुभव हो रहा है । तो हम इस ओर आये । बाहरमे कहाँ क्या बीतता है इसकी उपेक्षा कर के हम अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव किया करे । उसीमे हम अपने उपयोगको दिया करे । जिन बाह्य पदार्थोको हम जानते रहते है उनके जानते रहनेका हम आपने अभी तक बडा परिश्रम किया, पर लाभ कुछ न मिला । खूब खुद भी बाह्यपदार्थोकी जानकारी की, दूसरोसे भी जानी, अनेक प्रकारकी पुस्तको द्वारा भी बाह्यपदार्थो की जानकारी की, प्रयोगात्मक ढग से भी अनेक चीजोकी जानकारी की, पर वहा लाभ कुछ न पाया । निजका जो सहज ज्ञान स्वरूप है, मनन करके उसका स्वरूप समझते हुए हम वहा प्रवेश करे अपना उपयोग वहा लगाये तो इसमे आत्महित है । और समझेगे कि हा हमने जीवनमे कुछ पाया है । तो ज्ञान परिणमन अनेक प्रकारके कहे गए पर हमे यह न भूलना चाहिए कि जिस ज्ञानगुणके ये सब परिणमन चलते है, जो सहज ज्ञानस्वरूप उस सहज ज्ञानस्वरूपके ज्ञान बिना इस जीवकी ऐसी विचित्र दशाये हुईं ।

ज वत्थु अणेयत एयंत तपि होदि सविपेक्ख ।
सुदणाणेण णयेहिय णिखेक्ख दीसदे णेव ॥२६१॥

वस्तुकी अनेकान्तरूपता व सापेक्षैकान्तरूपता—यहा अनेकान्तात्मक वस्तुका वर्णन चल रहा था और अनेकान्तात्मकताकी सिद्धि की । अब इस गाथामे यह कह रहे है कि जो वस्तु अनेकान्तस्वरूप है वही वस्तु सापेक्ष रूपसे एकान्तरूप भी है, और, श्रुतज्ञानके द्वारा, नयोके द्वारा वह वस्तु निरपेक्ष नही है । प्रमाणसे भी वस्तुस्वरूपका बोध होता है और सुनयसे भी वस्तुत्वका बोध होता है इतने पर भी जो नयोका बोध होता है उसे प्रमेयका बोध नही कहा जा सकता, नेयका बोध कहेगे ? प्रमाणसे जो बोध होता है उसे प्रमेयका बोध कहेगे । जो प्रमाणका विषय है उसे प्रमेय कहते है, जो नयका विषय है उसे नेय कहते है । किन्तु यहां यह समझना चाहिए कि सुनय से तो वस्तुत्वका बोध होगा और दुर्नयसे नही । सुनय और प्रमाणमें अन्तर क्या है ? सुनय भी अनेक धर्मोको प्रकट करता है और प्रमाण भी अनेक धर्मो को प्रकट करता है । केवल एक ही धर्मको यदि नय बताये तो वह

दुर्नय हो जायेगा। सुनय भी अनेक धर्मोंको प्रकट करता है और प्रमाण भी अनेक धर्मो को प्रकट करता है यह मा ना होगा, अन्यथा उसे सुनय न कहेंगे, दुर्नय हो जायेगा, किन्तु वहा जो जाननेकी पद्धति है उस पद्धतिसे नय और प्रमाणका भेद आता है। जैसे नयमे बताया कि स्यात् नित्य जीव है। तो इस नयमे अथवा कहो इस ढंगमे जीवको नित्य स्पष्ट रूपसे कहा, लेकिन उसके साथ जो स्यात् शब्द जुडा है उस स्यात् शब्दने उस नित्यत्वके प्रतिपक्ष अनेक धर्मो का संके त कर दिया है इस कारणसे स्यात् नित्य जीव है, इस कथनमे एक ही धर्मको नही बताया, अनेक धर्मोंको बताया, पर नित्यको बताया प्रधानतासे और प्रतिपक्ष अनेक धर्मो को बताया गौणतासे और इसी कारण ये सुनय कहलाते है, किन्तु प्रमाणसे जो भी जाने गए वे सबके सब धर्म प्रधानतासे जाने जाते है। वहा प्रधानता और गौणता नही होती। तो प्रमाणमे अनेक धर्मोंको समझा जाता है। स्पष्टतासे प्रधानतासे और नयमे एक धर्मका जो कि वक्तव्य हुआ है, जिसे वचनोसे कहा है उसे तो जानता है प्रधानतासे और उसके अतिरिक्त अन्य धर्मो को गौणतासे सूचित करता है।

द्योतक और वाचक स्यात् शब्दमें अनेकान्तका प्रकाश—स्यात् शब्दको द्योतक भी कहा है और वाचक भी। स्यात् शब्द एक निपात संज्ञक शब्द है, जिसका अर्थ है कथचित्। जिसे कहते है त्रिवृत्त-चिद्विधि। जैसे बोला गया कि स्यात् नित्य है तो स्यात् शब्द जब वाचकरूप है, वह अर्थका कहने वाला है, उसका अर्थ वाच्य अर्थ है। जब यह बात बतलाते है तो वे नित्यको प्रधानतासे और अनित्यको गौणतासे सबको बोल देते है। अतएव वाचक पक्षमे भी स्यात् शब्दने अनेकान्त धर्मको प्रकट किया। और, जिस समय द्योतक रूपमे स्यात् शब्दका प्रयोग होता है, द्योतकका अर्थ है कि जो कहे उसीका ही प्रकाश करना, जैसे कहा जीव नित्य ही है तो ही शब्द द्योतक माना गया। एव शब्दको द्योतक माना ही गया है, वहाँ अलगसे क्या बात कही गई ? जो कहा है उसका अवधारण ही तो किया। तो द्योतक शब्द जब हम स्यात्को मानते है तो इसके कहे हुएको प्रधानतासे सूचित किया और न कहे हुएको इसने गौणतासे सूचित किया। यदि यह सब चमत्कार स्यात् शब्दका न हो तो उसका कहना निरर्थक होगा। फिर भङ्गोमे स्यात् शब्दका प्रयोग ही क्यो किया जाता है ? तो देखो, स्यात्—इतनेसे शब्दने हम लोगोके ज्ञानको सम्यग्ज्ञान बना दिया और स्यात्की मुद्रा न हो जिस बोधमे उसे बताया है कि वह कुज्ञान है। इसीलिए ऋषिसतोने बताया है कि स्यात् पद से मुद्रित है यह समस्त शब्द ब्रह्म याने आगम। कहा हो तो, न कहा हो तो, जो सम्यग्ज्ञान के पारखी है वे स्यात् शब्दकी मुद्राको सब जगह नजरमे ले लेते है। तो इसीको कहते है सापेक्षएकान्त। अनेकान्त सर्वथा अनेकान्त नही है। वस्तु अनेकान्तरूप भी है और एकान्त-रूप भी है, मगर इस एकान्तका अर्थ है सापेक्षएकान्त। सापेक्षएकान्तका समूह अनेकान्त

बताया गया है। सो श्रुतज्ञानके द्वारा ये सब जाने जाते है, पर निरपेक्ष दर्शन इनका नही है।

ज्ञानीके ज्ञानमें स्यात्पद मुद्राकी अङ्कितता—हम जब कभी स्यात् शब्द नही भी बोलते है और अनेक बार बोलते भी है जैसे व्यवहारमे भी हम स्यात् शब्द कहाँ बोला करते है ? और, बोलते जाते है बहुत सी बाते। तो सब बातोके बोलते रहनेपर भी बोलने वाले के चित्तमे स्यात् शब्दका रहस्य पडा हुआ ही रहता है और इसीलिए बोलता जाता है। जैसे—पिताजी आ गए, पुत्र आ गया, गुरुजी आ गए, आदि बहुतसी बाते कहते है, तो कहते हुए भी स्यात् शब्दका जो चमत्कार है वह उस ज्ञानीके चित्तमे सदा बसा हुआ है। वह जान रहा है, इन्हे सबका गुरु, पिता आदिक तो नही समझ रहा। स्यात् शब्दकी प्रतीति ज्ञानी पुरुषके सदा रहती है, इस कारण जितने भी ज्ञान है सबमे स्यात् पदकी मुद्रा हो तो वह सम्यक्ज्ञान है। स्यात्की मुद्रा नही है तो वह सम्यग्ज्ञान नही है। स्यात् शब्द बोले अथवा न बोले, सब कुछ बात भाववचनसे बोलते है। द्रव्यवचन तो एक जैसे वृद्ध पुरुषका सहारा लाठी है इसी तरह ज्ञानी पुरुषका सहारा एक द्रव्य वचन है, पर जो कुछ निर्णय है वह सब भाववचनका है। जो आशयमे समझा उससे व्यवस्था है। लोग तो सब कुछ बोलते हुए भी अपने आशयमे स्यात् पदकी बात रखा ही करते है। तो यो जो वस्तु अनेकान्तरूप बतायी गई है वही वस्तु सापेक्ष एकान्तरूप रूप भी है। सापेक्षका अर्थ है अपने प्रतिपक्षकी आकाक्षा सहित रहना। जिसने प्रमाणसे वस्तुका परिज्ञान किया है वह पुरुष एक धर्मकी बात सुने या एक धर्मकी बात कहे। उसको तो नियमसे अन्य धर्मों की आकाक्षा साथमे रहती ही है, अन्यथा वह सम्यग्ज्ञान नही है। वह एकान्तवाद हो जायगा, और एकान्तवाद जब सर्वथा रूपको पकड लेता है तब वही एक मिथ्यादर्शन कहलाने लगता है, और यदि सर्वथा शब्दको नहीं पकडता तो वह सब सुदर्शन हो जाता है।

दार्शनिकोका हृदय—जितने भी दार्शनिक हुए है किसी भी दार्शनिकने बेईमानीसे दर्शनका निर्माण नही किया। सबका भाव उत्तम था, वस्तुस्वरूपके निर्णयका था, आत्महितका था। भीतरसे किसीने भी बेइमानी नही रखी, नैयायिक, वैशेषिक क्षणिकवादी आदिक जो जो भी दार्शनिक है उन्होने अपने अपने दर्शनमे स्वरूपका वर्णन हितकी दृष्टिसे किया है। तो किसी भी दर्शनमे बेईमानी नही कही जा सकती। लेकिन, त्रुटि कही जा सकती है। गल्ती होना और बेइमानी होना इन दोनोमे बहुत अन्तर है। त्रुटि यह है कि जो वे कह रहे थे उसके प्रतिपक्षभूत धर्मकी उन्होने आकाक्षा नही रखी। बस इतनी सी त्रुटिकी वजहसे जो कुछ कहा वह सब सही न रह सका। जैसे अद्वैत एकान्त कहता है कि सर्व कुछ एक ज्ञान ब्रह्म ही है। ठीक है। जब आत्मतत्त्वका, वस्तुस्वरूपका हम सही तौरसे

वताया गया है। सो श्रुतज्ञानके द्वारा ये सब जाने जाते है, पर निरपेक्ष दर्शन इनका नही है।

ज्ञानीके ज्ञानमें स्यात्पद मुद्राकी अङ्कितता--हम जब कभी स्यात् शब्द नही भी बोलते है और अनेक वार बोलते भी है जैसे व्यवहारमे भी हम स्यात् शब्द कहाँ बोला करते है? और, बोलते जाते है बहुत सी बाते। तो सब बातोके बोलते रहनेपर भी बोलने वाले के चित्तमे स्यात् शब्दका रहस्य पडा हुआ ही रहता है और इसीलिए बोलता जाता है। जैसे--पिताजी आ गए, पुत्र आ गया, गुरुजी आ गए, आदि बहुतसी बाते कहते है, तो कहते हुए भी स्यात् शब्दका जो चमत्कार है वह उस ज्ञानीके चित्तमे सदा बसा हुआ है। वह जान रहा है, इन्हे सबका गुरु, पिता आदिक तो नही समझ रहा। स्यात् शब्दकी प्रतीति ज्ञानी पुरुषके सदा रहती है, इस कारण जितने भी ज्ञान है सबमे स्यात् पदकी मुद्रा हो तो वह सम्यक्ज्ञान है। स्यात्की मुद्रा नही है तो वह सम्यग्ज्ञान नही है। स्यात् शब्द बोले अथवा न बोले, सब कुछ बात भाववचनसे बोलते है। द्रव्यवचन तो एक जैसे वृद्ध पुरुषका सहारा लाठी है इसी तरह ज्ञानी पुरुषका सहारा एक द्रव्य वचन है, पर जो कुछ निर्णय है वह सब भाववचनका है। जो आशयमे समझा उससे व्यवस्था है। लोग तो सब कुछ बोलते हुए भी अपने आशयमे स्यात् पदकी बात रखा ही करते है। तो यो जो वस्तु अनेकान्तरूप बतायी गई है वही वस्तु सापेक्ष एकान्तरूप रूप भी है। सापेक्षका अर्थ है अपने प्रतिपक्षकी आकाक्षा सहित रहना। जिसने प्रमाणसे वस्तुका परिज्ञान किया है वह पुरुप एक धर्मकी बात सुने या एक धर्मकी वात कहे। उसको तो नियमसे अन्य धर्मो की आकाक्षा साथमे रहती ही है, अन्यथा वह सम्यग्ज्ञान नही है। वह एकान्तवाद हो जायगा, और एकान्तवाद जब सर्वथा रूपको पकड लेता है तब वही एक मिथ्यादर्शन कहलाने लगता है, और यदि सर्वथा शब्दको नही पकडता तो वह सब सुदर्शन हो जाता है।

दार्शनिकोंका हृदय--जितने भी दार्शनिक हुए है किसी भी दार्शनिकने बेईमानीसे दर्शनका निर्माण नही किया। सबका भाव उत्तम था, वस्तुस्वरूपके निर्णयका था, आत्म-हितका था। भीतरमे किसीने भी बेइमानी नही रखी, नैयायिक, वैशेषिक क्षणिकवादी आदिक जो जो भी दार्शनिक है उन्होने अपने अपने दर्शनमे स्वरूपका वर्णन हितकी दृष्टिसे किया है। तो किसी भी दर्शनमे बेईमानी नही कही जा सकती। लेकिन, त्रुटि कही जा सकती है। गल्ती होना और बेइमानी होना इन दोनोमे बहुत अन्तर है। त्रुटि यह है कि जो वे कह रहे थे उसके प्रतिपक्षभूत धर्मकी उन्होने आकाक्षा नही रखी। बस इतनी सी त्रुटिकी वजहसे जो कुछ कहा वह सब सही न रह सका। जैसे अद्वैत एकान्त कहता है कि सर्व कुछ एक ज्ञान ब्रह्म ही है। ठीक है। जब आत्मतत्त्वका, वस्तुस्वरूपका हम सही तौरसे

रूप नही आता। जैसे वस्तु अपने स्वरूपसे है यह तो मान लिया परमार्थ और वस्तु परस्वरूपसे नही है इसे मान लिया काल्पनिक तो काल्पनिक नास्तित्वसे वस्तुकी व्यवस्था भी काल्पनिक ही बनेगी। तब स्वरूप भी है यह बात तो पायी गई आश्रयभूत और पररूपसे नही है यह बात हो गई काल्पनिक। तो इसमे विडम्बना क्या बनेगी कि वस्तु स्वरूपसे है यही एक बात है, पररूपसे नही है, यह बात नही है, तो इसका अर्थ हुआ कि पररूपसे वह हो गया। अब एक वस्तु स्वरूपसे भी हुआ, पररूपसे भी हुआ तो उसकी क्या मुद्रा बनेगी ? उसका स्वरूप ही क्या बनेगा ?

वस्तुके वस्तुत्वकी स्वपररूपोपादानापोहननिष्पाद्यता—यह आवश्यक है कि वस्तु-स्वरूपसे है, पररूपसे नही है। जैसे स्वरूपत अस्तित्व स्वभाव पारमार्थिक है, वस्तुमे इसी प्रकार परद्रव्योसे हटे रहनेका स्वभाव भी वहाँ पारमार्थिक है। जितने भी दार्शनिक है उन्होने इस स्याद्वादसे ही किरण प्राप्त की है। और वहाँ एकान्त हठ करनेके कारण ही एक थोडी भूल हो गई है, किन्तु कहा उन्होने वस्तुगत धर्मको ही। जैसे विशेषवादमे कहते है कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव, ये ७ पदार्थ है। जो पदका अर्थ समझमे आये वही तो पदार्थ कहलाता है। सामान्य भी एक पद है, विशेप भी एक पद है, अभाव भी पद है, और इसके द्वारा जो समझमे आता है उनका परस्परमे व्यतिरेक भी है। अर्थात् सामान्यका स्वरूप विशेषमे नही है, विशेपका स्वरूप सामान्यमे नहीं है, द्रव्यका स्वरूप गुणमे नही है, गुणका स्वरूप द्रव्यमे नही, लो व्यतिरेक भी पाया गया, पदका वाच्य भी पाया गया, तो क्यो न भिन्न-भिन्न पदार्थ हुए ? इस तरह वहा भिन्न-भिन्न पदार्थ ये माने गए। तो शब्दानुसार तो चले पर अर्थानुसार गति नहीं हुई। जब कि बात यह है कि पदार्थ जो सत् है वही पदार्थ भेददृष्टिसे गुणरूप है, भेददृष्टिमे सामान्य विशेपरूप है, किन्तु वे सब उस सद्भूत पदार्थसे अलग चीज नही है, प्रदेशका पार्थक्य नही है। स्वरूपका ही तो पार्थक्य है, पर द्रव्य, गुण, कर्म आदिकमे प्रदेशका पार्थक्य नही है। स्वरूपत अतद्भाव है, बस इतने मात्रको भेदका पूरा कारण मान लेनेसे द्रव्य गुण आदिक पदार्थोंकी भिन्न व्यवस्था मान लिया गया है। चले तो वह एक जो बताया गया था मार्ग उसीको ही भेददृष्टिसे एक वस्तु अनेकरूप बतायी गयी है, तो चले तो उस मार्गसे ही, पर जैसे कि यहा भी अनेक मनुष्य काम करते है, एक दूसरेसे मिलते-जुलते ही, लेकिन कोई होते है अक्खड दिमागके और कोई नम्र दिमागके। तो एक उस बुद्धिसे जैसे मनुष्योके कर्तव्यमे फर्क हो जाता है इसी प्रकार दार्शनिकोकी दृष्टिमे भी अन्तर आया। यहा बात यह चल रही है कि अपेक्षा छोड़ देनेसे कथन एकान्तरूप होता है और वह दुर्नय होता है। वस्तु स्वत है, उसमे जितना बल

प्रमाणका विषय है बहुधर्मसंयुक्त पदार्थका जानना, फिर नानास्वभावसयुक्त पदार्थको जानकर फिर सापेक्ष सिद्धिके लिए नयसे मिश्रित करना चाहिए। प्रमाणमे जान लिया और नयसे इसका नयन होगा, ले जाने वाला तो नय है। तो जो प्रमाणसे जाना है उसीकी सापेक्ष सिद्धि करनेके लिए नयका प्रयोग हुआ है। तभी नयका यह लक्षण बताया है कि प्रमाणसे ग्रहण किए गए पदार्थके अशको बताना सो नय है तो अब अश बताये जा रहे है।

पदार्थमे अस्तित्वस्वभावकी प्रतिष्ठाकी तरह नास्तित्वस्वभावकी भी प्रतिष्ठा-- पदार्थमे क्या स्वभाव है ? एक एक धर्मकी बात कही जा रही है। पदार्थमे अस्तित्व स्वभाव है। स्वद्रव्यग्राहकनयकी अपेक्षासे "है" ही है। नयमे 'भी' का प्रयोग एक फलित प्रवृत्ति है। सैद्धान्तिक है तो एवकारका प्रयोग है-- वस्तु स्यात् अस्ति एव। है भी, नही भी है। नित्य भी है, अनित्य भी है। यह फलित अर्थ है। प्राचीन पद्धतिमे एवकार लगाकर जहाँ स्याद्वाद का विशेष स्पष्टीकरण किया गया है वहाँ एव शब्दकी व्याख्या की गई है। अपि शब्दकी व्याख्या नही की गई। तो वस्तु स्वचतुष्टयसे है ही। अपेक्षा लगाकर वस्तुका एक अश बताकर वहा निश्चय ही करना चाहिए, अवधारण ही करना चाहिए कि वस्तु है ही, अन्यथा याने अपेक्षा भी लगाये और 'भी' का प्रयोग करे तो गलत हो जायगा। जैसे द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य भी है यह गलत प्रयोग हो गया, द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य ही है, अनित्य नही है। जैसे कोई लोकव्यवहारमे कहे कि बेटाका नाम लेकर, उसकी अपेक्षा बताकर, इसका यह पिता भी है तो कितना गलत हो जायगा ? वहाँ तो लट्ठमारी हो जायगी। जैसे मानो देवदत्त तो पिताका नाम है और यज्ञदत्त लडकेका नाम है तो वहाँ यह कहना कि यह यज्ञदत्तका पिता भी है तो यह बिल्कुल गलत प्रयोग है। वहा तो 'ही' का प्रयोग ठीक रहेगा। वह यज्ञदत्त का पिता ही है अन्य कुछ नही है। तो भङ्गोमे स्यात् और एव ये दो जैसे घाटीपर चलने वाली रेलगाडीमे आगे पीछे इजन रहता है इसी प्रकार यह नय है घाटी, इस घाटीपर नय की गाडी चलानेमे आगे पीछे स्यात् और एव इजन लगे है ताकि यह पटरीसे न उतरे। स्यात अपेक्षासे कहता है तो एव उसका अवधारण कहता है। तो उन्ही अशोको बता रहे हैं कि वस्तुमे अस्ति स्वभाव है स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा, और परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको ग्रहण करने वाले नयकी दृष्टिमे वस्तुमे नास्तित्व स्वभाव है। जिस तरहसे अस्तित्व स्वभावकी प्रतिष्ठा है पदार्थमे उसी प्रकारसे नास्तित्व स्वभावकी भी पदार्थमे प्रतिष्ठा है। इसमे अस्तित्वको मुख्य कहा जाय, नास्तित्वको गौण सो बात नही। जब अस्तित्व धर्मको कहा जा रहा है तब अस्तित्व मुख्य है, नास्तित्व गौण है। और जब नास्तित्व धर्म को कहा जा रहा है तो नास्तित्व मुख्य है, अस्तित्व गौण है। इस तरह स्याद्वादकी व्यवस्था बनेगी। इसमे यदि एकको वास्तविक और एकको अवास्तविक माना जाय तो वस्तुका स्व-

रूप नहीं आता। जैसे वस्तु अपने स्वरूपसे है यह तो मान लिया परमार्थ और वस्तु परस्व-रूपसे नही है इसे मान लिया काल्पनिक तो काल्पनिक नास्तित्वसे वस्तुकी व्यवस्था भी काल्पनिक ही बनेगी। तब स्वरूप भी है यह बात तो पायी गई आश्रयभूत और पररूपसे नही है यह बात हो गई काल्पनिक। तो इसमे विडम्बना क्या बनेगी कि वस्तु स्वरूपसे है यही एक बात है, पररूपसे नही है, यह बात नही है, तो इसका अर्थ हुआ कि पररूपसे वह हो गया। अब एक वस्तु स्वरूपसे भी हुआ, पररूपसे भी हुआ तो उसकी क्या मुद्रा बनेगी ? उसका स्वरूप ही क्या बनेगा ?

वस्तुके वस्तुत्वकी स्वपररूपोपादानापोहननिष्पाद्यता—यह आवश्यक है कि वस्तु-स्वरूपसे है, पररूपसे नही है। जैसे स्वरूपत अस्तित्व स्वभाव पारमार्थिक है, वस्तुमे इसी प्रकार परद्रव्योंसे हटे रहनेका स्वभाव भी वहाँ पारमार्थिक है। जितने भी दार्शनिक है उन्होने इस स्याद्वादसे ही किरण प्राप्त की है। और वहाँ एकान्त हठ करनेके कारण ही एक थोडी भूल हो गई है, किन्तु कहा उन्होने वस्तुगत धर्मको ही। जैसे विशेषवादमे कहते है कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव, ये ७ पदार्थ है। जो पदका अर्थ समझमे आये वही तो पदार्थ कहलाता है। सामान्य भी एक पद है, विशेष भी एक पद है, अभाव भी पद है, और इसके द्वारा जो समझमे आता है उनका परस्परमे व्यतिरेक भी है। अर्थात् सामान्यका स्वरूप विशेषमे नही है, विशेषका स्वरूप सामान्यमे नही है, द्रव्यका स्वरूप गुणमे नही है, गुणका स्वरूप द्रव्यमे नही, लो व्यतिरेक भी पाया गया, पदका वाच्य भी पाया गया, तो क्यो न भिन्न-भिन्न पदार्थ हुए ? इस तरह वहा भिन्न-भिन्न पदार्थ ये माने गए। तो शब्दानुसार तो चले पर अर्थानुसार गति नहीं हुई। जब कि बात यह है कि पदार्थ जो सत् है वही पदार्थ भेददृष्टिसे गुणरूप है, भेददृष्टिमे सामान्य विशेषरूप है, किन्तु वे सब उस सद्भूत पदार्थसे अलग चीज नही है, प्रदेशका पार्थक्य नही है। स्वरूपका ही तो पार्थक्य है, पर द्रव्य, गुण, कर्म आदिकमे प्रदेशका पार्थक्य नही है। स्वरूपत अतद्भाव है, बस इतने मात्रको भेदका पूरा कारण मान लेनेसे द्रव्य गुण आदिक पदार्थोकी भिन्न व्यवस्था मान लिया गया है। चले तो वह एक जो बताया गया था मार्ग उसीको ही भेददृष्टिसे एक वस्तु अनेकरूप बतायी गयी है, तो चले तो उस मार्गसे ही, पर जैसे कि यहा भी अनेक मनुष्य काम करत है, एक दूसरेसे मिलते-जुलते ही, लेकिन कोई होते है अक्खड दिमागके और कोई नम्र दिमागके। तो एक उस बुद्धिसे जैसे मनुष्योके कर्तव्यमे फर्क हो जाता है इसी प्रकार दार्शनिकोकी दृष्टिमे भी अन्तर आया। यहा बात यह चल रही है कि अपेक्षा छोड़ देनेसे कथन एकान्तरूप होता है और वह दुर्नय होता है। वस्तु स्वत है, उसमे जितना बल

है उतना ही तो वस्तु पररूपसे नहीं है इसका पता हुआ है। इन दोनोंमे किसे बलवान कहे और किसे दुर्बल कहे ? अगर कोई बलवान हो और कोई दुर्बल हो तो वध्य घातक विरोध आयेगा, लेकिन एक पदार्थमे अनेक धर्म रहते है और उनमे विरोध नहीं है।

एक वस्तुमें अनेक धर्मोंका अविरोध—विरोध हुआ करता है तीन प्रकारसे। सहानवस्था, परस्पर परिहार स्थिति और वध्यघातक तीनो ही प्रकारके विरोधसे वस्तुमे उन अनन्त धर्मों के रहनेका विरोध है, यह बात नहीं है। सहानवस्था एक साथ न रह सके उसे कहते है सहानवस्था, लेकिन ये अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदिक सभी धर्म एक साथ रह रहे है। सहानवस्था विरुद्ध नहीं है, यह बात प्रमाणसे सिद्ध है। परस्पर परिहारस्थिति– यह कोई विरोध नहीं कहलाता बल्कि परस्पर परिहार होनेसे ही सत् बना रहता है। जिसे माना है विरोध कि न रहना चाहिए एक साथ वह है यहा रूपक, अस्तित्व और नास्तित्वमे परस्पर परिहार है। जो अस्तित्वका स्वरूप है वह नास्तित्वका नहीं और जो नास्तित्व का स्वरूप है वह अस्तित्वका नहीं। तो परस्परपरिहार बन गया ना। एक दूसरेसे अलग रह रहा तभी तो दो तत्त्व कहलाये, नहीं तो एक कहलाता। अब जहा दो है, अनेक है, बहुत है उनका एक जगह ठहरना बताया जायगा। एकका एक जगह ठहरनेमे अनेककी बात तो न आयगी। अनेक वस्तु, अनेक धर्म, अनेक चीजे एक जगह ठहरे वे कब ठहर पायेंगे ? जब उनमे परस्पर परिहार हो गया। तो चले तो थे विरोध करने वाले इस रीतिसे कि हम विरोध साबित कर दें कि परस्परपरिहार स्थितिका विरोध है, लेकिन सिद्ध यह होता है कि सबकी एक जगह स्थिति तब ही हो पाती है जब कि उनका परस्परमे परिहार हो। तीसरा विरोध बताया गया है वध्यघातक। वध्यघातक विरोध वहा चलता है जहाँ एक मरे और एक मारने वाला हो। यह विरोध वहा चलता है जहा एक बलवान हो एक निर्बल हो। जैसे शंकाकारने यह कहा कि जहाँ पदार्थमे अस्तित्व है वहाँ नास्तित्व नहीं रह सकता। इसमे विरोध है। लेकिन यह वध्यघातक विरोध यो नहीं है कि इसमे दोनो ही एक समान बलवान है। जैसे अस्तित्व स्वभाव बलवान है वैसे ही नास्तित्व स्वभाव भी बलवान है। जब दोनो एक समान बलवान है तो वहाँ एक मर जाय, एक रह जाय यह हो नहीं सकता। तो यो विरोधका अभाव होनेसे एक पदार्थमे अनेक धर्म रहते है। अस्तित्व स्वभाव है स्वरूप चतुष्टयका, नास्तित्व स्वभाव है पररूप चतुष्टयका। यदि यह माना जाय कि वस्तु पररूपसे नहीं है यह तो है वास्तविक बात, और स्वरूप है यह है काल्पनिक बात। तब सोचा जा सकता कि ऐसा भी कोई दार्शनिक होता जो पररूपसे नहीं है, इसको देते हो मुख्यता और वास्तविकता और स्वरूपसे है इसे कहते हो गौण अथवा उपचाररूप। है ऐसे दार्शनिक जो

शब्दका अन्यापोह अर्थ मानते है। उनका यही तो सिद्धान्त है। जैसे कहे चौकी तो इस चौकी शब्दसे उनके इस चौकी पदार्थका ग्रहण नही होता, किन्तु दुनियामे जो चौकी नही है, चटाई, भीत, किवाड आदि इन सबका अभाव है, यह कहा चौकी शब्दने, जिस चौकीको उठाकर रखा उसे नही कहा। उसे कहा अचौकी व्यावृत्ति। यह दर्शन कहाँसे आया ? स्याद्वादियोका जो द्वितीय भङ्ग है, उसका एकान्त किया ? प्रमुखताकी तो अन्यापोह बन गया, लेकिन इन दोनोमे एक बलवान हो, एक निर्बल हो यह बात हो तो वस्तुका स्वरूप नही बन सकता। जितना बलिष्ट अस्ति शब्द है उतना ही बलिष्ट नास्ति शब्द है। तभी बताया गया है कि वस्तुका वस्तुत्वस्वरूपके उपादान और पररूपके त्यागसे निष्पाद्य होता है।

वस्तुमे नित्यत्वस्वभाव व अनित्यत्वस्वभावका अविरोध—वस्तुमे अनेक धर्म है, इसका वर्णन चल रहा है। वस्तुमे नित्यस्वभाव है।—जब उत्पादव्ययको गौण किया, सत्ताकी दृष्टि मे ग्रहण किया उस दृष्टिमे वस्तु नित्य है। किसी भी अंशको सिद्ध करते समय सापेक्षताकी बात नही भूलना चाहिए। मुखसे न कहे तो हृदयमे रख ले और किसी ढगमे मुखसे भी बोले तब सुनयकी व्यवस्था बनती है। तो उत्पादव्ययध्रौव्यसे अनुस्यूत है पदार्थ, उनमे से उत्पादव्ययको गौण किया और सत्ताको प्रधानतासे देखा ऐसी दृष्टिमे पदार्थ कैसा है ? यह पूछा जानेपर उत्तर होगा कि नित्य स्वभाव है, और सत्ताको तो गौण किया, उत्पादव्ययको मुख्य किया, ऐसी दृष्टिमे पूछा जाय कि पदार्थ कैसा है ? तो उत्तर होगा कि अनित्य है, अनित्य स्वभाव है। एक ही पदार्थमे नित्यत्व रहना, अनित्यत्व रहना यह अविरोधपूर्वक रहता है। जैसे दार्शनिकोने यह कहकर कि एकमे अनेक धर्म असम्भव है, अनेकान्तका, निराकरण किया है, उन्होने अनेकान्तके स्वरूपको यथार्थतया समझा नही है। स्यात् और एव ये दो अगल-बगलके जो इन्जिन है इस धर्मकी गाडी चलानेके लिए, ये इतने पुष्ट है कि इनमे सर्वशकाओका निराकरण हो जाता है। कोई कहता है कि स्याद्वाद सशयवाद है ? अरे जब एव शब्द लग गया तो संशयवाद कहाँ रहा ? कोई कहता है कि हठवाद हो गया, एकान्तवाद हो गया ? अरे हठवाद कहाँ रहा जब स्यात् शब्द साथमे लगा हुआ है कि इस दृष्टिसे ऐसा ही है। तो पदार्थमे यो अनेक धर्म एक साथ अविरोध रूपसे पाये जाते है।

एक वस्तुमें एक स्वभाव व अनेक स्वभावका अविरोध——पदार्थ एक स्वभावी है या अनेकस्वभावी ? इस आधारपर भी अनेक दर्शनोकी उत्पत्ति हुई है। भेदकल्पना निरपेक्ष दृष्टिसे पदार्थ एक स्वभावरूप है। जो जाना सो पदार्थ। आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ये सब भेदकल्पना निरपेक्ष दृष्टिमे है। पदार्थको जिसे जाना, जो प्रमाणसे प्रमेय हुआ वह

पदार्थ इन भेदो वाला नही है, वह तो अवक्तव्य कह दिया जाय। वह ज्ञानमे आया है इसी कारणसे क्षणिकवादियोने स्वलक्षणको शब्द द्वारा अभिधेय नही माना। स्वलक्षण वस्तुका खुद है जो कि निराकार दर्शनसे ही जाना जाता है, सविकल्पज्ञानसे नही। ऐसे वस्तुका स्व-लक्षण शब्द द्वारा कहा नही जा सकता। शब्द किसे कहते है ? शब्द कहते है अवस्तु को। शब्द द्वारा वस्तु नही कहा जाना। वस्तु तो प्रमेय है, ज्ञानमे आ जायगा, मगर शब्दो द्वारा अभिधेय जो होगा वह असद्व्यावृत्ति होगा, वह वस्तु न होगा फिर भी वह असत् नही है। सत् होना और बात है, वस्तु होना और बात है इस सिद्धान्तमे। वस्तु वह कहलाता है जहाँ स्वलक्षण हो, विशेष हो, असाधारण धर्म हो। और, सत् वह कहलाता है कि जो किसी प्रकार कल्पनामे आ सके। सत् व्यापक है और स्वलक्षण व्याप्य है। तो जब इन दृष्टियोके मार्गसे चलते है और फिर सापेक्षता छोड देते है तो ऐसे ही एकान्तवादकी उत्पत्ति होती है। अब यहा एक स्वभाव है भेदकल्पना निरपेक्ष दृष्टिमे। जो है सो है, आत्मा जो है सो है, पर व्यवहारनय द्वारा उसका शक्तिभेद करके समझा जाता है। जिसको कि जिसके ज्ञान हो, दर्शन हो वह आत्मा है। अब यही निरख लो क अपेक्षा दृष्टिमे कि काल्पनिक बात क्या हुई। भेदकल्पना हुआ या अभेद वस्तु काल्पनिक हुआ ? तो दृष्टि उत्तर दे देगी। कल्पना तो भेदमे हुई, अभेदमे कल्पना नही। वह परमार्थ है। इस ही परमार्थका एकान्त करके स्व-लक्षण तत्त्व माना है। तो वस्तु एक स्वभाव है। जहा भेदकल्पना नही है और अनेक स्व-भाव है। यद्यपि अन्वय द्रव्यार्थिक नयसे वस्तु एक स्वभाव रूप है फिर भी भेदकल्पनासे वहा देखते है तो शक्तिभेद, परिणति भेद ये सब दृष्टिगोचर होते है। वहा भी अनेक स्व-भाव है।

वस्तुमें शक्तिपरिचयकी समीचीन पद्धति—देखिये—यद्यपि कल्पना की है गुणकी, लेकिन यह इतना फिट है कि जिसे कल्पना शब्दसे प्रयुक्त नही किया गया है। द्रव्यमे गुण है अनन्त। तो जो बताया गया उस रूपसे ही तो द्रव्य परखा गया। इसलिए काल्पनिक शब्दसे नही कहा, फिर भी भेदकल्पनाकी दृष्टि कहती है कि वहा कल्पनासे गुण समझा गया है। वस्तु तो स्वय स्वत सिद्ध जो है वह एक स्वभाव ही है। और चूँकि वह परिणति भी सदा-काल है ना इसलिए प्रतिसमयमे एक परिणमन है। जहा गुणभेद माना गया है वहा एक समयमे अनन्त पर्याये मानी गई है। जहाँ अभेद समझा गया है वहा एक स्वभाव और एक परिणमन समझा गया है। तो यो पदार्थ भेदकल्पना निरपेक्षदृष्टिसे एक स्वभाव है और भेद-कल्पना सापेक्षदृष्टिसे अनेक स्वभाव है। इस तरह वस्तु भेदस्वभावरूप है और अभेदस्वभाव-रूप है। गुण गुणीका भेद करना यह है सद्भूत व्यवहारसे और जहा भेदकल्पना न रखी

गई उस दृष्टिसे है गुण गुणीका परस्परमे अभेद। यो वस्तु जो है वह है, वही है, पर उसमे नयोके प्रयोगसे परस्पर उन अनन्त धर्मोकी सापेक्षता बतायी गई है। जो सारे अनन्त धर्म प्रमाणमे बिना विश्लेषणके एक साथ ज्ञानमे आये। विश्लेषण करना नयका काम है। जहा विश्लेषण होगा वहा नियमसे किसीकी प्रधानता, किसीकी गौणता आ ही पडेगी। तब प्रमाणसे जो पदार्थ जाना है, जैसे अनन्तधर्मात्मक जाना है बिना गिनती किये, बिना विश्लेषण किए, बिना भेद डाले हुए, उस ही पदार्थके उन अनन्त अशोका भेद करके प्रधानता गौणताकी सिद्धि करके जो समझा गया है यह है नयका काम। इस तरह वस्तु अनेकान्तरूप भी है और सापेक्ष एकान्तरूप भी है, यह बात यहा इस गाथामे बतायी गई है।

॥ अनुप्रेक्षा प्रवचन पंचम भाग समाप्त ॥

अनुप्रेक्षा प्रवचन षष्ठ भाग

जीवो अणंत-कालं वसइ णिगोएसु आइ-परिहीणो ।
तत्तो णिस्सरिदूणं पुढवी-कायादिओ होदि ॥२८४॥

बोधिलाभकी दुर्लभता बतानेके प्रकरणमें जीवकी आद्य अवस्थाका वर्णन— बोधि दुर्लभ भावनामे यह बताया जायगा कि जीवकी स्थिति कौनसी बहुत कठिनाईसे प्राप्त होती है ? यह बतानेके लिए जीवोकी सर्वप्रथम स्थिति बतला रहे हे । यह जीव अनादिकालसे निगोद मे बस रहा है । कितना काल व्यतीत हो गया ? अनन्तकाल, क्योकि कालकी कुछ आदि ही नही । कल्पनामे यदि ऐसा लाया जाय कि अमुक दिनसे काल शुरू हुआ है तो क्या चित्त गवाही दे देगा कि इस दिनसे पहिले समय न था ? तो समयकी आदि नही होती, अतएव काल अनादि है, और इस जीवका निगोदमे बसना भी अनादिसे ही है । निगोद नाम है एक प्रकारके शरीरका । जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—नियता जाददाति इति निगोद याने जो शरीर अन्य जीवोको नियत क्षेत्र दे देवे उसे निगोद कहते है । तो निगोद जीवोका शरीर इस प्रकारका होता है कि वहाँ अनन्त निगोद समा जाये और वे अगुलके असख्यात भागमे रहते है, ऐसा निगोद शरीर जिनका होता है उनको निगोद जीव कहते है । निगोद एकेन्द्रिय जीव होते है और वनस्पतिके भेदमेसे है । ये हरी बनस्पति तो नही है निगोद पर साधारणवनस्पति जो भेद किया है बनस्पतिका उसे कहते है निगोद । तो यह जीव अनन्तकाल निगोद मे बसा ।

प्राकरणिक अपना चिन्तन—ये सब बाते अपने आपपर घटित करके सुनना है, समझना है कि हम कैसी कठिन खराब कुयोनियोसे निकलकर आज इस श्रेष्ठ नरजन्ममे आये है और नरजन्ममे आकर यदि यहाँ भी विषयप्रेम कषायवासनाकी सज्ञाओसे इस जीवनको गवा दिया तो यह हम आपके लिए कितने खेदकी बात है ? इस जीवका मूल ऐब यही है कि जिस पर्यायमे यह पहुचता है उसको ही आत्मरूपसे स्वीकार कर लेता है । कषाय बढनेमे और कारण क्या है ? जिस शरीरमे बसा उसीको ही मान लिया कि यह ही मैं हू । किसी ने निन्दा की, गाली दे दी तो इसनै मुझे यो कहा ऐसा सोचकर दु खी होता है । अरे इसे निजका कुछ पता ही नही है । जो ये नाक, आँख, कान आदिक इन्द्रिय वाला शरीर है इसी को समझ लिया कि यह मै हू । इसने मुझको कहा । पोजीशन आदिककी जो चाह है, प्रतिष्ठा के प्रति भीतरमे जो लगाव है यह इस नरजन्मको बरबाद कर देने वाला है । तो इस जीव

ने जिस भवमे जन्म लिया उसमे ही मोह किया। आज मनुष्यभवमे है तो यहाँ भी मोह कर रहे। तो बताओ यह बात कहाँ तक युक्त है ? जिस घरमे मोह किया जा रहा, जिन परिजनोसे मोह किया जा रहा उनसे मोह करना ही चाहिए ऐसी कोई युक्ति है क्या ? कुछ भी तो हेतु नही है। आज ये जीव जो आपके घरमे आकर बसे है, बजाय इनके यदि और कोई दूसरे जीव आपके घरमे आ जाते तो उनसे मोह करने लगते। तो इस जीवकी मोह करने की आदत पडी है। एक जीवका किसी दूसरे जीवसे कुछ नाता तो नही है, फिर भी ऐसा मोह पडा है कि बस ये ही घरके लोग मेरे सब कुछ है, इन्हीके पीछे मेरा सारा जीवन है। बाक़ी तो सब गैर लोग है।

जब इस जीवको मोह करनेकी आदत पडी है तो फिर इसे अपनी ज्ञाननिधिकी सुध हो कहाँसे ? इसे तो ये बाह्यपदार्थ ही रम्य प्रतीत हो रहे है। यह कितनी बडी इस जीवकी गल्ती है ? लोग दोष देते है दूसरोपर कि हम बडे बुरे फंसे हैं, हमारी कच्ची गृहस्थी है। अभी ठीक ढग नही है। अरे ठीक ढग कब होगा ? अपनेसे गरीबोपर दृष्टि डालकर देख लो—जब उनके सभी ढग बन रहे है, वे भी जब जीवित है तो फिर आपके सभी साधन क्यो न बनेगे ? आपकी तो उनसे हजार गुना अधिक अच्छी स्थिति है। और ढंग क्या बनाओगे ? किस जगह बनाओगे ? इस तरह बाह्यकी ओर दृष्टि रखकर कि मै इनका सुधार कर दूँ, तब निश्चित होकर अपना जीवन धर्मसाधनामे लगाऊँगा, ऐसी जो बात सोचते है उनका ढंग कभी बननेका नही है, क्योकि वे तृष्णाके पथपर चल रहे है। जितना जितना ढंग बनाते जायेगे उतना उतना ही वे ढग और बिगडते जायेगे। सुधार होगा सतोषवृत्तिसे, विज्ञानसे, आत्महितकी लगनसे। एक गुप्त ही गुप्त अपने आपमे अपनी दृष्टि करके अपना कल्याण करते जावो। यहाँ कौन किसका है ? किसे क्या दिखाना है ? ऐसा भीतरमे संतोष भाव करके अन्तर्दृष्टि करे तो ढग बन पायेगा अन्यथा याने बाह्यपदार्थोमे दृष्टि रख रखकर ढंग न बन पायेगा।

निगोद जीवोंका विवरण—यहाँ बतला रहे है कि प्रारम्भमे इस जीवकी क्या हालत थी ? प्रारम्भके मायने अनादि। यह निगोद। निगोदमे क्या बात बीतती है ? तो शास्त्रोमे स्पष्ट इसका कथन किया गया है। एक श्वासमे १८ बार जन्म मरण करना पडता है। श्वासके मायने नाडीके एक वार उचकनेमे जितना समय लगे उतनेका नाम एक श्वास है। यहाँ मुखके श्वासका नाम श्वास नही है। तो यो समझिये कि एक सेकेण्डमे करीब २३ बार जन्म मरण होता है। यह बात शास्त्रोमे कही है। हम उस तरह इसे आँखो तो नही देख सकते जैसे पशुपक्षियोके दुखोको देख रहे है, लेकिन यह बात असत्य यो नही है कि जिन ऋषि संतोने मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत तत्त्वोका वर्णन किया है, जिनका ध्येय विशुद्ध

आत्मतत्त्वकी दृष्टिका रहा है, जिनका ध्यान वीतरागताकी ओर अग्रसर होते रहनेका रहा है, जो अवधिज्ञानी व मन पर्ययज्ञानी भी थे, जिन्होने केवली भगवान व श्रुतकेवली की निकटता भी प्राप्त की थी, वे भला असत्य वचन कैसे कह सकेगे ? जिन तत्त्वोमे हमारी युक्तिसे गति हो सकती है उनके वरिणत स्वरूपमे जब हम वहाँ निर्वाधता पाते है और अनुभवसे हम उसे सत्य करार कर लेते है तो जो परोक्ष बात है उसकी सत्यतामे क्या संदेह ? देखिये—निकृष्टसे निकृष्ट जीव यहाँ जो दिखते है उनसे भी निकृष्ट जीव है, और सबसे निकृष्ट ये निगोद जीव है। एकेन्द्रिय जीवके ५ भेद कहे गए है—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय। वनस्पतिके दो भेद कहे गए है—प्रत्येकबनस्पति और साधारणबनस्पति। तो साधारणबनस्पतिका नाम निगोद है। यह एक ऐसा ही निगोद शरीर है कि एक जीव मरे तो सब मरे, एक जीव जन्म ले तो सब जन्म लें। जिनका आहरण एक समान है, जिनका श्वास एक समान है, जन्म और मृत्यु भी सबकी एक साथ है, क्योकि एक शरीरका आधार है, और उस एक औदारिक शरीरमे ये सब भिन्न-भिन्न जीव अपने भिन्न-भिन्न सूक्ष्म शरीरमे रहते हुए दु ख पाया करते है।

साधारण वनस्पतिका परिचय—जो कुछ वनस्पति दिखनेमे आ रही है वे सब प्रत्येकवनस्पति है। जो भक्ष्य है वे भी प्रत्येकवनस्पति है। और जिन्हे अभक्ष्य कहा है आलू, कद आदिक, वे भी प्रत्येकवनस्पति है। साधारणवनस्पति तो आँखो दिख नही सकते। सो कदादिक भी प्रत्येकवनस्पति है, परन्तु साधारणवनस्पति सहित प्रत्येक-वनस्पति कहलाते है। जिनका नाम है सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति। उन्हे साधारणवनस्पति शब्दसे लोग कह देते है, पर शुद्ध नाम उनका आलू आदिक कदोका साधारणवनस्पति नही है। सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति है। साधारणवनस्पति तो केवल निगोदको कहते है। ये दो प्रकारके होते है– निराधार और साधार। वनस्पतिकाय दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय आदिक औदारिक शरीर जहाँ रह सकते है उनके आधारमे निगोद जीव है और इन शरीरोके बिना ये सर्वत्र निगोद जीव बसे है। जहा हम आप पोल समझते है वहा भी अनन्त निगोदिया जीव भरे पडे है। ये निराधार कहलाते है। और, आलू वगैरहमे जो निगोद है वे साधार कहलाते है। तो ऐसे सूक्ष्म और वादर निगोदसे यह सारा जगत व्याप्त है, और ये निगोद अनादि कालसे चले आये है। जिन्होने अभी तक निगोद पर्याय नही छोडा है ऐसे अनन्त जीव है, उन्हे कहते है नित्यनिगोद। और, जिन्होने निगोदपर्याय छोड दी थी, यहा व्यवहार रीतिमे आ गए थे, पृथ्वी आदिक एकेन्द्रिय हो गए, अथवा दोइन्द्रिय हो गए, मनुष्य, देव आदिक हो गए और फिर भी निगोदमे पहुचे तो उनको कहते है इतर-नगोद।

असावधानीका फल—अब अपनी-अपनी बात सोचिये—यह जीव निगोदसे निकल आया कि नही ? अपने आपकी बात सोचो—यह तो स्पष्ट है कि हम आप निगोदसे निकल आये और उससे भी आगे दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय आदिकको भी उल्लघन करके हम पञ्चेन्द्रिय हुए, लेकिन यह ध्यानमे रखनेकी बात है कि अब यदि नही चेतते है और अटपट ही रहते है, व्यर्थका जो मोह लगा है, उससे ही मोह बना हुआ है तो वही निगोद दशा फिर होनेको है। थोडे बहुत अन्य अन्य भवोमे जायेगे, पर जहाँ सावधानी नही है वहाँ यही निर्णय है कि आखिर निगोद होना पडेगा। असावधानीके मायने है कि विषयोका प्रेम, कषायोकी वासना, परका उपयोग, अपने आपकी सुध न रहे ऐसी रहे बेहोशी तो ऐसे वातावरणमे जो जीवन गुजरता है वह असावधानी है। एक कथानक है कि एक साधु महाराजके पास एक चूहा रहता था, उस चूहेपर एक दिन बिल्ली झपटी, चूहा बिल्लीसे भयभीत हो गया, तो साधुने चूहेको आशीर्वाद दे दिया बिडालो भव अर्थात् तू भी बिल्ली बन जा। लो चूहा बिल्ली बन गया। एक बार उस बिल्लीपर झपटा कुत्ता तो बिल्ली भयभीत हो गयी। साधुने पुन बिल्लीको आशीर्वाद दिया कि श्वा भव अर्थात् तू भी कुत्ता बन जा। बिल्ली कुत्ता बन गयी। उस कुत्तेपर एक दिन झपटा व्याघ्र। कुत्ता भयभीत हो गया तो साधुने आशीर्वाद दिया—व्याघ्रो भव अर्थात् तू भी व्याघ्र बन जा। वह कुत्ता व्याघ्र बन गया। एक दिन उस व्याघ्र पर झपटा सिह, व्याघ्र भयभीत हो गया तो साधुने आशीर्वाद दिया—सिहो भव अर्थात् तू भी सिह बन जा। अब देखिये वह चूहा सिह बन गया। अब उस सिहको लगी भूख। पास मे कुछ खानेको तो था नही, सो सोचा कि इन्ही साधु महाराजको खाकर अपनी भूख मिटाना चाहिए। जब साधुने सिहके मनकी बातको पहिचान लिया तो कहा—पुन मूषको भव अर्थात् तू फिर चूहा बन जा। अरे जिसके आशीर्वादसे वह चूहा सिह बना उसीपर वह आक्रमण करने लगे तो उसका फल यह तो होगा ही कि पुन चूहा बनेगा। तो ऐसे ही यहाँ देखिये—जिस आत्मदेवकी निर्मलताके प्रसादसे यह जीव कुयोनियोसे उठकर पञ्चेन्द्रिय हुआ, मनुष्य हुआ, इतना श्रेष्ठ भव पाया, अब यहा ही उस आत्मदेवपर हमला बोला जाय, विषयो का प्रेम, कषायोकी वासना आदि यह अपने भगवानपर हमला करना ही तो है। तो यहा यह आशीर्वाद मिलेगा कि पुन निगोद भव, याने फिरसे निगोद हो जा।

निगोद जीवोकी दशा व गणना—निगोद जीव सर्वजीवोसे निकृष्ट दशा वाला जीव है। जैसे बताते है ना, कि एक आलूके जरासे टुकडेमे कितने ही निगोद जीव बसे हुए है। कदके खानेसे उन अनन्त स्थावर जीवोका घात हो जाता है। वे तो साधार है, पर निराधार निगोदिया जीव कितने ही भरे पड़े है, जो बताया गया है कि सिद्ध जोवोसे अनन्त गुने संसारी जीव है, इस वचनकी रक्षा ये निगोदिया जीव कर रहे है। नही तो निगोदको

छोडकर बाकी सब प्रकारके संसारी जीव सिद्धोसे कम है। [ये निगोद भी काम आ रहे है जिनागमके वचनोकी बात निभानेमे (हँसी)] तो यह जीव अनन्तकाल तक निगोदमे बसा और वहासे निकला तो पृथ्वीकायादिक हुआ। अब यहा ६ भेद समझ लीजिए एकेन्द्रियके, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, प्रत्येकवनस्पतिकाय और साधारण वनस्पतिकाय। तो जीव अनादिसे साधारण वनस्पतिमे रहा, वहासे निकला तो इन ५ प्रकारके स्थावरो मे जन्म लिया। प्रत्येकवनस्पति हुआ तो निगोदसे निकला हुआ ही समझिये। पृथ्वी आदिक हुआ तो निगोदसे निकलकर हुआ। यो इस जीवने निगोदमे अनन्त काल व्यतीत किया। भक्ष्य अभक्ष्यके विवेककी पद्धति यो है कि त्रस जीवका जहा घात होता हो उस अभक्ष्यका त्याग होना अत्यन्त आवश्यक है। और, फिर जहा अनन्त स्थावर जीवोका घात होता हो ऐसे पदार्थोका त्याग हो। इन निगोदोमे मास तो नही है मगर सख्या तो अनन्त है। एक कदके घातमे अनन्त निगोद जीवोका घात होता है।

निगोद जीवकी आयु व निगोदमें बने रहनेका काल——ऐसे निगोद जीवोमे अनन्तकाल तक यह जीव रहता आया है सो यह सामान्य वचन कहा। कही ऐसा अर्थ न लगा लेना कि निगोदिया जीवोकी आयु अनन्तकालकी होती है। इतर निगोद भी अधिकसे अधिक ढाई पुद्गल परिवर्तन तक रहते है तो उनकी भी इतनी आयु नही है। आयु तो निगोद जीवोकी एक श्वासके १८ वे भाग प्रमाण है। इतनी स्वल्प आयु है। वे निगोद निगोदमे रहकर अनतकाल बिता देते है। बहुतसे निगोदिया जीव तो ऐसे है जो कभी निगोदका वास छोडते ही नही। ऐसे जीव नित्यनिगोद कहलाते है। तो इतना निर्णय तो हम आपको कर ही लेना चाहिए कि हम नित्य निगोद नही है, इतर निगोद भी नही है। पर सावधानी न रखेंगे तो इतर निगोद हो सकेंगे। ऐसे निगोदसे निकल कर यह जीव पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और प्रत्येकवनस्पतिकायिक आदिक हुआ। इन ५ स्थावरोमे भी विशेष पापी जीव माने गए अग्निकायिक और वायुकायिक जीव। दूसरे गुणस्थानमे मरण होने पर पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिकमे तो उत्पन्न हो जाय, पर अग्निकायिक और वायुकायिकमे उत्पत्ति नही है अर्थात् अपर्याप्त अग्नि और वायु मे दूसरा गुणस्थान न होगा। पर्याप्तमे तो किसी भी एकेन्द्रियके दूसरा गुणस्थान नही है। ऐसे इन ५ प्रकारके स्थावरोमे यह जीव बहुत काल तक रहा। पृथ्वी आदिकमे भी असख्याते काल तक रहता है। अब यह जीव कदाचित वहासे निकला तो किस-किस तरहसे निकलनेकी बात होती है, सो बताते है।

तत्थ वि असख काल बायर-सुहुमेसु कुणइ परियत्त।
चितामणि व्व दुलहं तसत्तण लहदि कट्टेण ॥२८५॥

त्रस पर्याय पानेकी दुर्लभता—निगोदमे अनन्तकाल यह जीव रहा। वहासे निकल-कर पृथ्वीकाय आदिकमे असंख्याते काल तक रहा, और वहासे निकलकर त्रस हो जाय तो यो समझिये कि चिन्तामणि रत्न पाने की तरह दुर्लभ बात पा ली। जैसे खुली जगहमे चौहट्टेमे जहाँसे बहुतसे लोगोका आना जाना बना रहता है वहाँ पर खोया हुआ चिन्ता-मणि रत्न मिलना अति दुर्लभ है, अथवा समुद्रमे फिका हुआ चिन्तामणि रत्न मिलना दुर्लभ है इसी प्रकार त्रस पर्यायका पाना दुर्लभ है। अपनी अपनी बात सभालनेका ध्यान रहे तो सभाल होता है और दुसरोकी संभालके लिए जो यत्न रखे, उपदेश देकर, ज्ञान देकर, अन्य उपायोसे दूसरोके उपकारकी ही बात चित्तमे रखे तो दूसरोका उपकार हो गया क्या, यह भी नही कहा जा सकता और खुदका तो कुछ कहना ही नही। १० आदमी अगर खुद खुद की संभालमे लगे तो वे सब सभल जायेगे। और, वे दसो व्यक्ति अगर दूसरोकी सभालमे लगे तो वे न संभलेगे। अपनी बात देखना है कि किस-किस तरहसे जन्म मरण करते हुए कैसी-कैसी कुयोनियोको पार करके आज इस श्रेष्ठ जैनशासनमे हम आये हुए है। यहाँ आकर क्या मोह करना ? अपना कर्तव्य है ? मोह कहते है बेहोशीको। मोह कहो, मुग्धता कहो, मूढता कहो, बेहोशी कहो एक ही बात है। जैसे मदिरापान करके होता क्या है ? बेहोशी, ऐसे ही मोह करके होता क्या है ? बेहोशी। मोहमें और रागमे अन्तर है। राग हो, बेहोशी न रहे यह स्थिति हो सकती है, पर मोहमे बेहोशी रहती ही है। अपने आपकी सुध न होना यही है बेहोशी। तो यो जीव निगोदमे अनन्तकाल व अन्य स्थावरोमे असंख्य काल भ्रमण करके बडी कठिनाईसे त्रस पर्यायको प्राप्त हुआ।

वियलिदियेसु जायदि तत्थवि अच्छेदि पुव्वकोडीओ।
तत्तो णिस्सरिदूणं कहमवि पचिदिओ होदि ॥२८६॥

दुर्लभतासे एकेन्द्रियसे निकलकर विकलेन्द्रिय व पञ्चेन्द्रियमें जन्मलाभ—यह जीव अनन्तकाल तक निगोदमे रहा था, वहाँसे निकला तो असंख्यातकाल तक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येकवनस्पतिमे रहा। वहाँसे बडी दुर्लभतासे है इसने निकलकर त्रसपर्याय प्राप्त की। सो त्रसमे दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय आदिक जीव हुआ। इन्हे विकलेन्द्रिय कहते है, विकल मायने अधूरी। ऐसी अधूरी इन्द्रिय वाले तो एकेन्द्रिय भी है लेकिन एकेन्द्रियको यहाँ ग्रहण न करना। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय यो तीन भेद किये गये है। सो एकेन्द्रियसे ऊपर जितने भी जीव ऐसे है कि जिनके पाँचो इन्द्रियाँ नही है उन्हे विकलेन्द्रिय कहते है। इसी जीवके जब रसनेन्द्रियावरणका क्षयोपशम हुआ, वीर्यान्तरायका क्षयोपशम हुआ, अङ्गोपाङ्गका उदय आया, ऐसा जीव दो इन्द्रियमे जन्म लेता है। दोइन्द्रिय जीवके रसनाइन्द्रिय हो जानेसे ज्ञानमे कितना अन्तर आ गया। एकइन्द्रियका ज्ञान और रसनाइन्द्रिय

का ज्ञान । इसके व्यावहारिक रूपमे कुछ सयझ आयी, स्वादकी समझ आयी । पहिले उस जीवमे स्वाद लेनेकी कोई बात न थी । आहार बिना कोई जीवित नही रहता, आहार तो एकेन्द्रिय जीवके भी रहा किन्तु उसका अपने ढगसे रहा । जैसे पेडमे खाद दिया, पानी दिया तो जडोसे उसने आहार ग्रहण किया । यहाँ दोइन्द्रिय होनेपर यह मुख द्वारा आहार ग्रहण करने लगता है तो बनावटसे देखे, उसकी व्यावहारिकतासे देखे, भीतरके ज्ञानसे देखें तो एकेन्द्रियसे दोइन्द्रियमे विशेषता पायी जाती है । दोइन्द्रिय जीवके बाद यह तीनइन्द्रिय हुआ। वहाँ नासिका इन्द्रिय और प्राप्त हो गयी । अब तो वह जीव गधका भी ज्ञान करने लगा । देखिये ये कीडा कीडी गधका ज्ञान करके कैसा बाहर निकल पडती है और एक सीधी लाइन सी बना लेती है । तो समझिये कि उन तीन इन्द्रिय जीवोमे कितनी समझ बढ गई । यह जीव और आगे बढा तो चारइन्द्रिय जीव हो गया । आँखे और मित गई, अब रूपका भी ज्ञान होने लगा । यो एकेन्द्रियसे लेकर चारइन्द्रिय तक यह जीव कोटि पूर्व पर्यन्त रहा । वहा से निकला तो किसी भी प्रकार यह जीव पञ्चेन्द्रिय हुआ । तो असैनी पञ्चेन्द्रिय हुआ, तो वहा मनके बिना कल्याणका पात्र भी नही है ।

दुर्लभ समागम पानेके वर्णनके प्रसंगमें अपने लिये शिक्षाकी ओर दृष्टि—यहा यह अपने आपपर घटित करना कि हम कितनी-कितनी निकृष्ट स्थितियोको पार करके आज मनुष्य हुए है, कितना अवसर है कि हम अपने उपयोगको संभाले, विवेकपूर्वक रहे, जरा मनको समझाये और अपने घरमे ही रहकर तृप्त होनेकी प्रकृति बनाले । तो कितना सुन्दर अवसर है कि हम अपने आत्माका कल्याण करले । इसके विरुद्ध जो कुछ हम करते है उस मे सार कुछ नही है । किन्ही परजीवोमे, परपदार्थोमे हम अपने उपयोगको लगाते है, स्नेह करते है तो उन मोही जीवोकी ओरसे बात यह मिलती है कि वे मोहवश उनकी ओर आकृष्ट हो जाते है । तो यह मोहके आकर्षणकी दुनिया है यह तो है दुनियाकी दुनिया । और अपने आपके ज्ञानस्वभावको निरखकर तृप्त होने वाली दुनिया खुदकी दुनिया है और यही अपनी पारलौकिक दुनिया है, इन दोनो दुनियामे कितना अन्तर है ? यहा तो एक जगह सन्तोष है, दूसरी जगह असन्तोष है, निजमे तो आनन्दका योग है और बाहरमे क्लेशका योग है । तिस पर भी ऐसा मोह छाया है कि क्लेश पाते है और क्लेशके ही कारणोमे जुटे रहते है । जिन घरोमे स्त्री पुत्रादिक की ओरसे कलह होते रहते है और झुंझला जाते है, दुखी हो जाते है, पर यह साहस नही कर सकते कि जब इनसे हमे क्लेश होता है तो हम इन्हे छोड दे और कोई दूसरा ढग बना ले । जिस मोहसे कष्ट मिलता है उसी मोहको करते जाते है और दुखी होते रहते है । यहा इतनी विपरीत मार्ग वाली स्थिति है । यदि

कुछ सावधानी बर्ती जाय, जिसका कि साधन आजकल स्वाध्याय और सत्सग है और प्रधानतया अपने आपका ज्ञानध्यान है। सभी उपायो द्वारा अपने आपकी ओर रहकर तृप्त रहनेकी प्रकृति बना ली जाय तो यहा कुछ सार मिलेगा और बाहरमे कही कुछ भी सार नही है।

विकलेन्द्रियोसे निकलकर पञ्चेन्द्रियत्वकी प्राप्तिकी दुर्लभता—तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय तक हम पार कर चुके है, पर इतना यह पार होना कोई इस तरह का पार नही है कि अब ये गतिया कभी न मिल सकेंगी। अरे अगर सावधान न रहेगे तो वही फिर जाना होगा। फिर वही अज्ञानभरी, वही अल्प ज्ञान वाली स्थिति मिल जायगी। किसी प्रकार हम इन सबसे निकले तो बडी दुर्लभतासे पञ्चेन्द्रिय जीव हुए। तो असैनी पञ्चेन्द्रिय हुए। अब पञ्चेन्द्रिय जीवोमे यह देखें कि कितनी तरहके संसारी जीव है और उन सब पञ्चेन्द्रियोमे हम आप पञ्चेन्द्रियोकी स्थितिया कितनी दुर्लभ है।

सोवि मणेण विहीणो णय अप्पाण परपि जाणेदि।
अह मणसहिओ होदि दु तहवि निरिक्खो हवे रुद्दो ॥२८७॥

मनरहित पञ्चेन्द्रियमें भी आत्महितकी अपात्रता—पञ्चेन्द्रिय जीव हुए, पर मनसे रहित हुए तो कल्याणकी दिशामे जैसे वे विकलेन्द्रिय जीव कुछ नही कर सकते वैसे ही ये भी कुछ नही कर सकते। कानोसे सुननेका ज्ञान बन गया, इतनी ही विशेषता बन सकती है। मन उसे कहते है कि जिससे हित अहितकी बातका निर्णय किया जा सके। हितमे चलाये, अहितसे हटाये ऐसी जिसमे योग्यता हो उसे मन कहते है। मनको पाकर कोई अहित से दूर न हो और हितमे न लगे तो यह उसकी व्यक्तिगत बात है, पर मनका लक्षण यही है कि जिसमे इतनी योग्यता है कि वह हित पर चल सकता है और अहितसे हट सकता है, हित अहितकी विशेष शिक्षाका ग्रहण कर सकता है। तो ऐसा मन जब न हो तो उसने अपने को और परको जाना ही नही, उसके स्वपरका विवेक नही है। यो तो जो अपना अस्तित्व है वह सब स्व है। जिस किसी भी प्रकारसे बर्त रहा हो, यह जीव मोही, रागी, द्वेषी आदिक कैसा ही हो, सभी स्व है, लेकिन जब अपने परमार्थ स्वपर दृष्टि देते है कि परमार्थत हम है क्या, तब वहाँ छानबीन होकर यह समाधान मिलेगा कि मै तो एक सहज चैतन्यस्वरूप हू, मेरे सत्त्वसे मेरेमे जो कुछ बात सहज हो सकती है, वह तो हुआ मै स्व और बाकी सब अन्य है पर। तो यह जीव जब मनरहित है तो न स्वको जानता है और न परको जानता है। असज्ञी जीव वे है जिनके साथ संज्ञा नही है, जिनके पास भली प्रकार जाननेकी बुद्धि नही है, जो मन द्वारा उत्पन्न होता है ऐसे मानसबुद्धिरहित संसारी जीवोको असज्ञी कहते है। तो उसने स्वको भी नही जाना और परको भी नही जाना। इसने यो भी

स्वपरको नही जाना कि मै हू एक कारणपरमात्मतत्त्व और यहाँ पर अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये है पर, जिनमे कोई परमात्मा है, कोई परमात्मत्वकी साधनामे लगे है, इस तरह भी स्वपरको नही समझा। तो जब स्वपरको नही जाना तो ऐसी स्थितिमे असज्ञी पञ्चेन्द्रियका मूल्य क्या ? जो विकलेन्द्रियका मूल्य है वही इनका है। अन्तर इतना है कि इनके समझ इतनी बढ गई कि वे कर्णेन्द्रियसे भी कुछ जान समझ लेते है। तो पञ्चेन्द्रिय हुए, मनरहित हुए तो इससे क्या काम निकला ? तव मनसहित पञ्चेन्द्रिय होना दुर्लभ है।

संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें क्रूर तिर्यञ्च भव पानेपर भी हितवैशिष्टयका अभाव—हो गए मनसहित सज्ञी पञ्चेन्द्रिय और हो गए कोई रौद्र तिर्यञ्च विल्ली, चूहा, शेर, हाथी आदिक, तो वहाँ पर भी क्या साधन वना सकते है ? यद्यपि तिर्यञ्चोकी सज्ञा विशेष है, भयमासयम होनेमे मनुष्योकी अपेक्षा, लेकिन जब तिर्यञ्चोकी सही गणनापर दृष्टि देते है तो उनमे कुछ बिरले ही तिर्यञ्च ऐसे है कि जो विवेक रखते है, जिनके सम्यक्त्व जगा है, वाकी तो सव तिर्यञ्चोकी स्थिति देखिये—कितनी दयनीय स्थिति है, ऐसे वडे-वडे हाथी, जिनका इतना वडा शरीर होता कि यदि कोई आदमी पासमे खडा हो जाय तो उसके एक पैरके वरावर भी आदमी मालूम पडे। ऐसा विशाल शरीर हाथीका होता है। तो देखिये कितना वडा मनुष्य और कितना बडा हाथी, मगर मनुष्यके छोटे छोटे वच्चे भी हाथीपर जैसा चाहे चढते उतरते है और एक अकुशके बलपर उसे जैसा चाहे नचाते है। जिस हाथीका इतना वडा पराक्रम होता है कि सिह तकको भी दबोच दे। यद्यपि अपनी चंचलताके कारण सिह हाथी को पिछाड देता है पर शक्ति हाथीकी इतनी अधिक होती है कि यदि सूँडमे लपेट पाये अथवा पैरोके नीचे ला पाये तो सिहको भी परास्त कर दे। इतनी शक्ति वाला हाथी भी मनुष्यके बच्चोके द्वारा जैसा चाहे नचाया जाता है। तो यहाँ वताया जा रहा था कि यदि ऐसे मनसहित रौद्र तिर्यञ्च भी हो गए तो उससे क्या फायदा उठाया ? ये स्थितियाँ हम आपकी भी हुई है, और फिर हो सकती है। किसीपर दया आनेका कारण यह है कि हमारी प्रतीतिमे और बुद्धिमे यह भाव पडा हुआ है कि यही स्थिति हमारी भी तो थी या हो सकती है। जैसे—बहुतसे भिक्षुक जनोको बडी दयनीय दशामे देखकर दया उपज जाती है तो वास्तवमे उस दया करने वालेने उस भिक्षुकपर दया नही की, बल्कि खुदपर दया की, क्योकि उसने सोचा कि इस वेचारेकी जैसी स्थिति कभी हमारी भी हुई होगी या हो सकती है। तो दया करने वाले लोग जव पहिले उस विषयक विकल्प करके अपने आपको दु खी कर डालते है तब उनके दया उत्पन्न होती है। यदि ऐसे तिर्यञ्च भी हो गए तो उससे क्या लाभ ? किसी भी एक तिर्यञ्चको देख लो तो उससे ससारके दु खोका बहुत कुछ भान हो जाता है। घोडोकी जिन्दगी देखिये—जहाँ दो वर्षके हुए बस इक्का ताँगा आदिमे जुतने लगे। लोग

उन पर १५-२० आदमी भी बैठाल लेते है, जब वे चलनेमे कुछ कमी करते है तो उनपर कोडे पडते है। इस तरहसे बोझेका दुख व कोडोकी मारका दुख वे बेचारे घोडे सहते है। और वे ही बेचारे घोडे जब वृद्ध हो जाते है, चलनेमे असमर्थ हो जाते है तो उनपर लोग इतना भी रहम नही करते कि चलो शेष जीवन इसे यही बिता लेने दो, वे कषायियोको बेच देते है। उन कषाइयो द्वारा उन बेचारे घोडोकी निर्मम होकर हत्या कर दी जाती है। भला सोचो तो सही कि उन घोडोका कैसा जीवन है ?

दुर्लभ मनुष्यभव पाने पर कर्तव्य व अकर्तव्यके विवेककी आवश्यकता—हम आप मनुष्योको तो कितनी सुविधाये मिली हुई है, किन्तु उन सुविधाओपर दृष्टि न देकर लोग तृष्णाके वशमे आकर दुखी रहा करते है। वर्तमान प्राप्त सुविधाको नही भोग पाते। इस लालसा (तृष्णा) के कारण जो जितना धनिक है वह उतनेमे ही दुखी है। अरे जरा सोचो तो सही कि हमारी हजारो लाखो लोगोसे भी अधिक अच्छी स्थिति है। सब प्रकारकी सुविधाये मिल रही है। जीवन अच्छी प्रकार चल रहा है। सक्षेप रूपसे यह कह सकते है कि जिसको जितना जो कुछ मिला है वह उसे जरूरतसे ज्यादह मिला है। लेकिन ऐसा कोई मानता तो नही है कि मुझे जरूरतसे ज्यादह मिला है। अब आगे ज्यादह धन वैभव बढाने की जरूरत नही है। रही यह बात कि दुनियाके लोग वाहवाही न कर सकेंगे। क्योकि आज अर्थका युग है, अर्थ अधिक न होनेसे इन दुनियावी लोगोके बीच इज्जत न मिल सकेगी। तो आपकी यह बात मान भी ले, लेकिन जिसे सही ज्ञान जागृत हो गया है उसकी तो यही वृत्ति है कि भीख मागकर उदर भरे, पर करे नही चक्रीका काम। अरे जो लोग किसीकी थोडीसी इज्जत कर देते है वे है क्या ? वे तो पपी संसारमे रुलने वाले, जन्म मरण करने वाले स्वार्थी प्राणी है। वे कोई खास चीज तो नही है कि जिनसे इज्जत मिलने की चाह की जाय। अरे अपनी दृष्टिमे अपनेको अच्छा तो देख लो। यही समस्त पूरी अपनी दुनिया है। अपनेमे अपनेको अच्छा वही देख सकेगा जो दुराचारसे दूर है। जो किसीको कभी धोखा न दे, किसीका कभी बुरा न विचारे, जो सबको सुखी रहनेकी भावना रखे, जिसने अपनेको ज्ञानमार्गमे लगाया है वही सन्तुष्ट रहेगा। और जिसने इस सदाचारके विरुद्ध अपना कदम रखा है उसके ज्ञान जगेगा तो पछतावा करेगा और न जगेगा तो पछतावा करनेकी भी बुद्धि न जगेगी। खोटी स्थिति होगी। इन सब बाह्य बातोको अध्यात्मवाद दृष्टिमे गौण करके अपनेको निरख करके अपनेमे तृप्त रहनेकी प्रकृति बना लीजिए। स्वानुभव ज्ञानानुभव जो कि विशुद्ध आनन्दका कारण है उसे कर लीजिए। बताओ अन्य कौनसा अनुभव आनन्दका कारण होगा ? अन्य अनुभव तो क्लेशके ही कारण बनते है। यह जीव किसी तरह पञ्चेन्द्रिय जीव हुआ और मनसहित भी हुआ तो तिर्यञ्च हुआ। तब

वहाँ भी यह जीव करेगा क्या ? ऐसे अशुभ परिणाम करके आर्त रौद्र ध्यानका परिणाम जो जीव रखते है वे मरकर नरकमे जन्म लेते है ।

सो तिव्व असुहलेस्सो णरये णिवडेइ दुक्खदे भीमे ।
तत्थवि दुक्ख भुजदि सारीर माणुस पउर ॥२८८॥

तीव्र अशुभलेश्यावश जीवका नरकमें पतन व शारीरिक मानसिक दुःखका उपभोग— वे पशु तिर्यञ्च जीव तीव्र अशुभ लेश्या वाले होकर नरकमे जन्म लेते हैं, जहाँ पर भयकर दुःख है। वहाँ पर ये जीव शारीरिक और मानसिक सभी प्रकारके दुःख भोगते हैं। देखिये—शरीरजन्य दुःख कितने प्रकारके है, शर्दी गर्मी भूख प्यास आदिक रोगोंकी तो गिनती क्या है ? आयुर्वेद शास्त्रोंमे बताया है कि व्याधियाँ ५ करोड ६८ लाख ९९ हजार ५८४ (५, ६८, ९९, ५८४) प्रकारकी है। अब लोगोंको कोई १०-२० प्रकारकी व्याधियाँ मालूम है जैसे ज्वर खासी, टीवी, कैन्सर आदिक। मगर इतनी ही जातियाँ उन शारीरिक व्याधियों की नही है। तो अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक दुःख इस जीवने सहे, क्योंकि बडी तीव्र कषाय है, कलुषितचित्त है, ऐसा मानसिक दुःख होता है। शारीरिक दुःख पर हमारा वश नही चल सकता। तो मानसिक दुःखोंको दूर करनेके लिए हम कुछ तत्काल यत्न कर भी सकते है, क्योंकि वह तो मनसे विचारा हुआ है, कल्पना कर लिया है। किसीको मान लिया कि यह मेरा विरोधी है बस दुःख उसमे होना शुरू हो जाता है। उसका देखना, बोलना, बैठना आदिक न सुहाये और सामने भी न हो, तो कल्पनाये करके दुःख मान लेते। देखो सब जीवोमे जीवत्व जातिसे समानता है और जगतका कोई यह नियम नही है कि ये जीव मेरे विरोधी है और रहेगे। अरे आज अगर विरोधी है तो कहो इसी जीवनमे थोडी ही देर बादमे परम मित्र बन जाये। और, आज जो मित्र है उनका भी कुछ भरोसा नही कि कब तक मित्रता निभाये, थोडी ही देरमे शत्रु बन सकते है। तो यहाँ किसे विरोधी माने और किसे बन्धु माने ? जीव है सब। सभीके प्रति समताका भाव रखे। भीतरमे ऐसा परिणाम हो तो वहाँ मानसिक दुःख न रहेगा। जब चिंता कलुषता जगती है तो वहा मानसिक दुःख होता है।

नारकियोंकी परस्परोदीरित दुःखता— नरकोमे कुछ परस्पर क्रिया वाले भी दुःख है। जैसे एक नारकी दूसरे नारकी को छेदता भेदता है। कोल्हूमे पेलना, भाडमे भूजना, पकाना शूलो पर फेक देना, तलवारके धारके समान नुकीले पत्तो वाले वृक्षोके नीचे डाल देना आदिक दुःख एक नारकी दूसरे नारकीको देता है। वहाँ दूसरे नारकीको दुःख देनेके साधनभूत शस्त्र कही बाहरसे वही लाने पडते। उनके शरीरमे ही ऐसी विक्रिया है कि जहाँ सकल्प किया कि मै इसे तलवारसे मार दूं तो उनका वह हाथ ही तलवारका रूप धारण कर लेता

है। यहाँ तो हम आपका औदारिक शरीर है लेकिन जब किसीको तीव्र कषाय जगती है तो उनके हाथ ही अनेक शस्त्रोंका काम करने लगते है। जैसे किसीको मुट्ठी बाँध कर तेजीसे हाथ मार दिया तो वह हाथ गदाका काम करता है, अथवा हाथके मुट्ठेसे अगूठा निकाल कर तेजीसे मार दिया तो वह हाथ शूलीका काम करता है अथवा हाथको यो ही बगलसे तेजीसे मार दिया तो वह हाथ तलवारका काम करता है। तो जब यहाँ हम आप औदारिक शरीरवालोमे ऐसी बात पायी जाती है तो फिर वे तो वैक्रियक शरीर वाले जीव है, उनको तो दुख देनेके साधन कैसे कही बाहरमे ढूँढने पडेगे। वे तो मारनेका संकल्प जब करते है तब ही उनके हाथ शस्त्ररूप बन जाते है। तो कितने कठिन दुख है नरकोमे।

आजकल अधिकाश लोग तो स्वर्ग और नरकका विश्वास ही नही करते। वे तो कहते कि स्वर्ग नर्क सब यही है। लेकिन कुछ युक्तियोसे और आगमसे जानकर स्वर्ग और नरककी बात बतायी गई है। जिन ऋषि संतोके वस्तुस्वरूपके वर्णनमे कही विरोध नही पाया जाता उन ऋषि सतों द्वारा बतायी हुई बातोमे शका न करना चाहिए। करणानुयोगमे जब नरकभूमिका शरीरका, और और बातोका वर्णन आता है और दूरवर्ती मेरूपर्वत आदिकका वर्णन आता है, और और प्रकारके वर्णन चलते है तो उनको पढकर वही ऐसी प्रमाणीकता की बुद्धि कर लेते है कि हाँ यह सत्य है। तो नरक इस पृथ्वीसे नीचे है। ७ नरक है। उनमे ऐसी तीव्र वेदना भोगनी होती है, और वह भी १००—२०० वर्ष ही की बात नही, अनगिनते वर्षो तक, सागरो पर्यन्त तक वहाँ घोर दुखोको सहन करना पडता है। नरकमे कमसे कम १० हजार वर्ष तो रहना ही पडता है और सागरोका समय तो असंख्यात वर्षोका है। इतने लम्बे समय तक वहावी घोर यातनाओको सहन करना पडता है। तो ऐसी खोटी योनियोमे तीव्र कषाय करने वाले जीवोको जन्म लेना पडता है। अब विचार करना होगा कि हम आपने कितना दुर्लभ मानव जीवन पाया है? इस जीवनका ऐसा उपयोग करे कि जिसमे धर्मसाधनाका ही विशेष महत्व हो।

तत्तो णिस्सरिदूणं पुणरवि तिरिएसु जायदेणवो।
तत्थ वि दुक्खमणंतं विसहदि जीवो अणेयविहं ॥२८९॥

नरकसे निकलकर तिर्यंच होनेपर अनेकविध दुःखोंका पुनः उपभोग—यह जीव नरकसे निकला तो फिर तिर्यचगतिमे पापरूप उत्पन्न हुआ। नरकसे निकलकर जीवकी केवल दो ही स्थितिया होती है या तो मनुष्य हो या तिर्यच हो। प्राय करके नरकसे निकलकर यह जीव तिर्यंच बनता है। तो नरकसे निकलकर तिर्यंचगतिमे आकर बहुत समय तक इस जीवने नाना प्रकारके दुःख सहे। तिर्यचगतिके नाना तरहके दुख स्पष्ट विदित हो रहे है। भूख प्यास, भार लादना, ठड, गर्मी आदिक अनेक प्रकारके दुख है। कुत्ता, घोड़ा

हाथी, गाय, भैंस आदि बिरले ही कोई पशु जीव पुण्यवान ऐसे पाये जाते है जिनकी उनके मालिक लोग बडी सेवा करते है, लेकिन प्राय करके सभी तिर्यञ्च जीव नाना प्रकारके दु ख सह रहे है। कितने ही लोग तो उन पशुओका निर्दयतापूर्वक शिकार करते है, उनका छेदन भेदन करना, उनको ताडना देना, उनकी हत्या करना आदिक नाना प्रकार के दु ख इन तिर्यञ्चोके पाये जाते है। किसी पशुके शरीरमे व्याधि हो जाय, जैसे कुत्तोके, झोटोके, गधोके कधे वगैरह सूज जाया करते है, उनसे खून भी चूता रहता है पर कौन है उन पर रहम करने वाला ? उन बेचारे पशुओके पास इलाज करनेका कोई साधन नही है, अथवा गाय, बैल, भैंस आदि कही बाँध दिए, मालिकने उनकी ओर अगर ध्यान न दिया तो वे बेचारे भूखे प्यासे जहाँके तहाँ बधे रहा करते है, किसीने कही धूपमे किसी जानवरको बाँध दिया, अगर उसका वहासे लाना भूल गए तो वह पशु धूपकी ज्वालामे जल जलकर दु खी होता रहता है। उन बेचारो पर कौन दयाका भाव करता है ? दयाका भाव होनेको अनुकम्पा कहते है। जब खुदके अन्दर भी कुछ कम्पन हो गया तो ऐसी स्थितिमे दयाका भाव उत्पन्न होता है। बोधिदुर्लभ भावनामे यह बतला रहे है कि हम आपने जो भी स्थिति पायी है वह बडी दुर्लभ है, और आगे कौनसी स्थिति पाने योग्य है जो कि अति दुर्लभ है ? निगोद, स्थावर, विकलेन्द्रिय आदिकसे निकलकर हम आप आज मनुष्य हुए है तो कितनी ऊँची स्थितिमे आ गए, यहा आकर हमको कितनी ऊँची स्थिति बनानी चाहिए, क्या पुरुषार्थ करना चाहिए ? यह सब बताया जायेगा। यहां तक यह बात आयी कि यह जीव तिर्यंच गतिमे भ्रमता फिरा। वहासे भ्रमकर नरकमे गया, नरकसे निकलकर तिर्यंच हुआ।

रयण चउप्पहे पिव मणुपत्त सुट्ठु दुल्लहं लहिय।
मिच्छो हवेइ जीवो तत्थ वि पाव समज्जेदि ॥२९०॥

दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी पापोपार्जनका अपराध—मनुष्यभवका पाना ऐसा दुर्लभ है कि जैसे चौहट्टे पर गिरी हुई रत्नमणिका मिलना दुर्लभ है। चौहट्टेपर चारो ओरसे लोगोका आना जाना बना रहता है, वहा पर किसीका गिरा हुआ रत्न कैसे पडा रहेगा ? तो जैसे चौहट्टे पर रत्नमणि मिलना दुर्लभ है ऐसे ही यह नरभव मिलना अति दुर्लभ है। ऐसे दुर्लभ नरभवको पाकर यहा मिथ्यादृष्टि होकर लोग पापकार्योमे रत होते है। पापकार्य वे है जो भले कामोसे बचावे, याने अच्छे काम जो न करने दे उनका नाम पाप है। हिसा, झूठ, चोरी कुशील, परिग्रह आदि इन समस्त पापोमे आकुलता बसी है। उस आकुलताको यह जीव भोगता जाता और उस दु खको दूर करनेका उपाय पापको ही समझता है। दूसरोका दिल दुखा दिया, जैसी चाहे बात कह दिया। थोडी सी पुण्य

सामग्री पाकर यह जीव मौज मानता है, दूसरोसे ईर्ष्या करता है। सो ठीक है, कर ले जैसा चाहे मनचाहा, पर इस खोटी करनी का फल कोई दूसरा भोगने न आयेगा। यहा तो सब कुछ सच्चाईसे काम चल रहा है। जो जीव जैसा परिणाम करता है उसके अनुसार कर्मोका बन्ध होता है। उन कर्मोका उदय आनेपर उस जीवको वैसा फल प्राप्त होता है। यह निमित्तनैमित्तिक भावकी बात ठीक जच रही है क्योकि इसमे दो चीजोका सम्बन्ध है– एक यह चेतन है और दूसरा अचेतन है। बेईमानी अचेतन क्या करेगा ? चेतन जैसे परिणाम करेगा वैसा उसमे प्रभाव बनेगा। लेकिन यह सोचना चाहिए कि यहा थोडीसी मोजके लिए यदि पापकार्योमे प्रवृत्ति की तो उसका फल भोगने कौन आयेगा ? कदाचित् पूर्वकृत पुण्यके उदयसे पापकार्य करते हुए भी मौजके प्रसग बने रहे, पर उस पापकर्मका फल बेकार न जायेगा उसका फल अवश्य भोगना पडेगा। तो मनुष्य होकर यह सावधानी रखनी है कि हमारा पाप करनेका भाव न हो, किसीका दिल दुखानेका भाव न हो, झूठ बोलनेका भाव न हो, किसी की चीज चुरानेका भाव न हो, किसी परपुरुष अथवा परस्त्री पर कुदृष्टिका भाव न हो, परिग्रहकी लालसा न हो, इस प्रकारका परिणाम रखनेका यत्न करे। तो यहा खेदके साथ कहा जा रहा है कि मनुष्यभव तो पाया मगर वहा पर भी इस जीवने पापकर्मका ही उपार्जन किया और प्राय करके म्लेच्छ खण्डमे जन्म पाया, म्लेच्छमयी स्थितिया पायी तब फिर इसने मनुष्य होकर भी कुछ लाभ न उठा पाया।

अह लहदि अज्जवत्त तह ण वि पावेइ उत्तम गोत्तं।
उत्तम कुले वि पत्ते धण–हीणो जायदे जीवो ॥२९१॥

आर्यक्षेत्रमें जन्म पाकर भी उत्तम कुलके न होनेसे क्लेशपात्रता—कभी यह जीव आर्यक्षेत्रमे भी उत्पन्न हुआ पर वहा पर भी उत्तम कुल न प्राप्त किया तब तो फिर यह जीव आत्मशीलसे वञ्चित ही रहा। देखिये—जहा उत्तम कुल नही मिलता वहा कैसा वातावरण रहता है, लोग वहा प्राय करके आकुलित रहा करते है। आकुलताये मिटनेका उपाय सिवाय ज्ञानप्रकाशके और कुछ नही है। जहा परवस्तुओको अपनाया, उनमे स्नेह किया, उनमे अपने मनके अनुकूल परिणमन देखना चाहा, बस वहां ही आकुलताके प्रसंग आ गए। इन आकुलताओके मेटनेका उपाय मात्र सम्यग्ज्ञान है। किसीको इष्टका वियोग हो तो जब तक उसकी यह दृष्टि रहती है कि बेचारा कितना अच्छा था, वह बेचारा हमारी कितनी फिक्र करता था, आज यहासे चला गया। यो सोच सोचकर उसका दुख बढता रहता है, लेकिन कदाचित् उसे वस्तुकी स्वतन्त्रताका बोध हो जाय कि यहा प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र है, सबकी सत्ता न्यारी न्यारी है, सब जुदे जुदे ही आते है, जुदे जुदे ही कर्मफल भोगते है, जैसे मैं जीव सबसे निराला हू वैसे ही सभी जीव मेरेसे अत्यन्त निराले है, यहा

कोई मेरा नही, लो इस प्रकारकी दृष्टि बनायी कि उस विषयक सभी आकुलताये समाप्त हो जाती है। तो भला बतलाओ, आकुलता किसने पैदा करायी ? अरे खुदकी अज्ञानदशाने ही तो उन आकुलताओको पैदा किया। आश्रयभूत बाह्यपदार्थोंने उन आकुलताओको नही उत्पन्न किया और न वे आकुलताये उन साधनोसे दूर हो सकती है। निमित्तभूत कारणकी बात तो अवश्य है, पर आश्रयभूत पदार्थोंको हम अपनी कल्पनामे लाकर, उपयोगमे लाकर उन्हे कारणभूत बना दिया करते है। हम जब भ्रममे है तब दु खी है, भ्रम दूर हो गया तो आनन्द हो गया। तो ज्ञानप्रकाश मिले बस इससे ही आकुलताये दूर हो सकती है, अन्य उपायोसे आकुलता नही दूर हो सकती है। आकुलता दूर करनेकी इच्छा जिन्हे है उन्हे यह निर्णय रखना चाहिए कि हम वस्तुस्वरूपके सही ज्ञानका अर्जन करे। पदार्थ वास्तवमे कैसा है, हम इस बातको दृढतासे समझ लेगे बस आकुलताये खतम।

प्रतिष्ठाकी चाहमें दुःखसंदोहभागिता—आप लोग देख रहे है कि सभी मनुष्य अपने अपने दु ख मान रहे है तो दु ख काहेसे है ? दु ख है उन समस्त मिथ्या धारणाओसे, जिनको कि चित्तमे बसा रखा है। इनसे मेरी इज्जत है, इनसे मेरी प्रतिष्ठा है, ये ही मेरे सब कुछ है, इनसे मुझे सुख मिलेगा आदि—इस प्रकारकी मिथ्या धारणाओके कारण ये जीव दु खी है। लोग धनिक क्यो बनना चाहते ? क्या किसी को खाने पीनेकी कमी है ? अथवा ठड गर्मी आदिसे बचनेके साधन नही है इसलिए धनिक होना चाहते ? अरे धनिक तो इसलिए होना चाहते कि इतने लोगोके बीचमे हमारी प्रतिष्ठा होगी। ये लोग समझ जायेगे कि यह भी कुछ है। बस इस थोडीसी इज्जत प्रतिष्ठाकी चाह करके लोग धनार्जन करनेकी होड करते है। लेकिन जो परद्रव्य है उनपर किसीका कुछ अधिकार तो नही है। लोग धनिक होना चाहते है अथवा सतानवान होना चाहते है, उन परद्रव्योका परिणमन अपनी इच्छा-नुकूल देखना चाहते है। वैसा देखनेको मिलता नही इसीलिए लोग दु खी रहा करते है। सतान चाहने वाले लोगोके मनमे भीतरमे एक ऐसा भाव पडा रहता है कि इससे मेरी कीर्ति होगी, इससे मेरा कुल चलेगा, मेरा नाम चलेगा, लोग कहेगे कि यह उनका लडका है, अगर कोई ऐसा सोचता हो कि हमारी वृद्धावस्था आनेपर हमारा लडका हमारी मदद करेगा इस-लिए हमे सतान चाहिए, तो उसका यह सोचना गलत है। अरे अगर आपके पुण्यका उदय होगा तब तो आपकी सतान आपकी मदद करेगी, अन्यथा नही। अगर आपके पापका उदय चल रहा है तो बहुत-बहुत प्रेम दिखाने वाली सतान भी आपके प्रतिकूल हो जायगा। और वह सतान कितना ही प्रतिकूल हो जाय, यदि आपके पुण्यका उदय है तो अन्य पड़ोसी लोग भी आपकी मदद कर देगे। तो सतानसे कीर्ति अथवा आरामकी आशा करना कोरा स्वप्न है। तो जो

लोग कुछ भी वैभव चाह रहे है वे इसीलिए चाहते है कि मेरी कीर्ति हो। यहाँ मेरीके मायने है यह पर्याय, यह देह। बस इस पर्यायको निरखकर ,समझते है कि मै तो यही हू और इस मेरेकी कीर्ति हो। उन्होने यह नही समझ पाया कि मै यह देह नही हू। मै तो इस देहके अन्दर विराजमान जो शुद्ध चैतन्यमात्र अंतस्तत्त्व है, वह हू। उस चैतन्यमात्र अतस्तत्त्वको लोग जानते ही कहाँ है ? वे तो इस दिखने वाली पर्यायमे ही अहबुद्धि किए जा रहे है। तो देखिये ना व्यर्थका ही एक विकार बनाकर, भ्रम बनाकर इस जीवने अपने आपको कितना दुखी कर डाला ? इस जीवको अपने आपके ज्ञानप्रकाशका जब पता पडेगा तो अपने आपको सुखी कर लेगा। इस जीवका सच्चे ज्ञानके सिवाय अन्य कोई साथी नही है। विपदा मे, सम्पदामे हर जगह सुख मिलता है, शान्ति मिलती है तो वह ज्ञानकी ही करामात है। हमारा ज्ञान सही बना रहे तो फिर कुछ आपत्ति नही है। आपत्ति तो ज्ञानके विरुद्ध परिणमनसे है। जब दुख नही चाहते तो एक ही तो कर्तव्य करनेका रह गया कि हम विशुद्ध ज्ञानका अर्जन करें।

उत्तम कुल पानेपर भी धनहीनतामें दुःखभागिता—यह जीव मनुष्य बना, आर्यक्षेत्र मे जन्म लिया, इसने उत्तम गोत्र पाया, मगर धनहीन रहा, भूख प्यास, शर्दी गर्मी आदिकके दुखसे बचनेका साधन न रहा। ऐसी स्थिति वाले लोगोको तो हम निर्धन कह सकते पर लखपति करोडपति आदि भी तो अपनेको तृष्णावश गरीब ही अनुभव करते है। उनके मन मे यही चाह बनी रहती है कि इतना धन और हो जाय तो अच्छा है। एक ब्राह्मणको अपनी लडकी की शादी करनेके लिए धनाभावके कारण विशेष चिंता रहा करती थी। एक दिन उसने राजासे शादीमे कुछ मदद करनेके लिए निवेदन किया। राजाने महा—ठीक है कल सुबह तुम्हे जितना धन चाहिए हो हमसे माग लेना। वह ब्राह्मण घर आया। शामको खाटपर लेटे हुएमे सोच रहा था कि कल राजासे कितना धन मागना चाहिए ? विचार हुआ कि १०० माँग लेगे। उस समय उस बेचारेकी दृष्टिमे १००) काफी थे। परन्तु ध्यान आया कि अरे १००) से क्या होगा ? जब राजाने कह ही दिया है कि तुम्हे जितना चाहिए हो सो माग लेना, सो हजार रुपये माँग लेना चाहिए। पर फिर याद आया कि अरे हजार रुपये से क्या होगा ? हजारपति तो हमारे ये पडोसी लोग भी है पर ये भी तो सुखी नही है, हमे तो लाख रुपये माग लेने चाहिएँ, पर जब लखपतियोपर दृष्टि गई तो सोचा कि ये लोग भी तो सुखी नही है, हमे करोड रुपये माँग लेना चाहिए। करोडपतियो पर जब दृष्टि गई तो वे भी सुखी नजर न आये। सोचा कि आधा राज्य मांग लेगे, पर विकल्प हुआ कि लोग कहेगे कि देखो यह राज्य तो इस अमुक राजाका था और इसे मांगनेपर दिया है। सो सोचा कि वह भी बात ठीक न रहेगी, पूरा राज्य माग लेना चाहिए। अब सुबह होनेको था सो

वह सामायिक करने बैठ गया। उस समय परिणाम विशुद्ध हुए, तव राजाकी दशापर दृष्टि गई तो सोचा कि देखो—यह राजा कितना हैरान रहा करता है, इसको इस राज्य वैभवके पीछे न जाने कितनी कितनी चिंतायें करनी पडती है ? इसलिए यह राजा भी सुखी नही है। हमे पूरा राज्य लेकर क्या करना, आधा ही राज्य मागना चाहिए। फिर सोचा कि आधे राज्यमे भी दुःख है, करोड रुपये ही माँग लेना चाहिए, पर करोडपतियोकी हालतपर विशेष चिंतन चलनेसे ऐसा पाया कि वे भी बहुत दुःखी रहा करते है, उनको बैठनेकी फुरसत नही, इधर उधर दौडधूप मचाये रहते है। रात्रिको अच्छी तरह सो भी नही सकते है, जगह-जगह उनके लिए टेलीफोन लगे हुए है। यहाँ तक कि सडास तकमे बहुतसे लोग टेलीफोन लगवा लेते है। यो करोडपतियोकी हालतपर विचार करके क्रमशः लखपति, हजारपति व शतपतियोपर दृष्टि गई। किसीको सुखी न देखा। इसी चितनमें वह ब्राह्मण रात्रिभर सो न सका था, अब प्रातःकाल भगवानका भजन करने बैठा तो उस समय उसका यही चिंतन बना हुआ था कि हमे राजासे कुछ न मागना चाहिए, हमारी जैसी स्थिति है वैसी ही ठीक है। इतनेमे सामनेसे वह राजा टहलता हुआ निकला और बोला ऐ विप्र ! माँगो—क्या चाहते हो ? तो हाथ जोडकर वह विप्र बोला—महाराज हमे कुछ न चाहिए। हमे तो यही स्थिति ठीक है। सो हमे चाहिए कि आज जो हमारी स्थिति है उसीमे व्यवस्था बनाये। यो तो आवश्यकताये अनन्त है, उनकी पूर्ति कभी हो नही सकती।

अह धरण-सहिदो होदि हु इंदिय-परिपुण्णदा तदो दुलहा।
अह इंदिय-संपुण्णो तह वि सरोओ हवे देहो ॥२९२॥

धनसहित होनेपर भी इन्द्रियपरिपूर्णताकी दुर्लभता—अब यह जीव धनसहित भी हो गया, मगर इन्द्रियकी परिपूर्णता न हुई तो क्या लाभ ? मान लो कोई इन्द्रिय ठीक नही है, आँखे न हो, या हाथ पैर वगैरह ही कट जाये, या लकवा वगैरह हो जानेसे कोई शारीरिक अंग खराब हो जाये तो यह भी एक बहुत बडी कमी है। अगर इन्द्रियकी परिपूर्णता नही है और धनिक विशेष हो गए तो भी उससे क्या लाभ ? तो शरीरका आरोग्य होना भी बडी मुश्किलसे मिलता है। ज्वर, खासी आदिक अनेक ऐसे उपद्रव होते है जो कि इस मनुष्यको हैरान करते रहते है। अगर कोई आधि व्याधिया, बीमारिया चलती रहती है तव फिर इस मनुष्यको उस व्यथाका आर्तध्यान बना रहता है। तो मनुष्य होनेपर भी यदि रोगोसे (बीमारियोसे) भरा हुआ जीवन रहा तव कुछ लाभ तो न उठाया जा सका। अब अपने आपकी बात देख लीजिए—हम आप आर्यक्षेत्रमे उत्पन्न हुए है, धनहीन भी नही है, इन्द्रियोकी परिपूर्णता है और देह भी निरोग है। यो तो प्रत्येक देहमें रोग है। कोई भी देह रोग बिना नही फिर भी जरा जरासे रोगोसे हम आपको घबडाना न चाहिए। उन रोगोकी तरफ

विशेष ध्यान न देना चाहिए, उनके प्रति उपेक्षाका जैसा भाव रहना चाहिए। और यह ध्यान रखे कि यह वही शरीर है जो किसी दिन जला दिया जायगा, उस शरीरकी ओर विशेष ध्यान रखनेसे क्या लाभ ? अथवा उस शरीरके पीछे रोना क्या ? तो यो यह जीव इतनी-इतनी स्थितियोको पार करके आज इतनी अच्छी स्थितिमे है कि सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय मनुष्य हुआ। उत्तम कुल भी मिल गया, धन भी आवश्यकतानुसार मिल गया, वैसे तो आवश्यकताकी वातपर यदि विचार किया जाय तब तो फिर सभी लोग यह अनुभव कर सकते है कि वास्तवमे आवश्यकतासे अधिक धन हम सबको मिला है। यदि दृष्टि बदल गई हो, धर्मपालनका भाव है, सम्यक्त्व उत्पन्न करनेकी धुन बनी हो, आत्माके सहज ज्ञानस्वरूप पर दृष्टि रखनेका अभ्यास बनाया हो तब तो उस व्यक्तिकी दृष्टि ऐसी बन जायगी कि वास्तव मे यहाकी समस्त परवस्तुवे मेरेसे अत्यन्त भिन्न है, मेरे लिए ये सब विडम्बनारूप है, अगर ऐसा भाव आ गया तो उसकी बहुतसी चितायें स्वत ही खतम हो जायेगी। यहा यह बताया जा रहा है कि इन्द्रिय परिपूर्णताकी प्राप्ति भी बहुत दुर्लभ है। बाह्यकरण व अन्त करणकी परिपूर्णता होनेपर ही तो चिन्ताविनाशक उपयोग किया जा सकता है।

वर्तमान दुर्लभ समागमके अवसरपर अपना उत्तरदायित्व—लोकमे जो भी पदार्थ है वे पहिलेसे थे तब ही अब है। ऐसा कोई पदार्थ नही जो पहिले तो कुछ भी न हो और हो गया हो। अर्थात् जो भी है वह अनादिसे है। अपने आपके सम्बन्धमे विचारे कि हम है तो अनादिसे है और जब अनादिसे है, किसी दिन हमारी नई सत्ता नही बनी, किसी न किसी रूपमे हम अनादिसे चले आये है तो किस रूपसे चले आये है और आज हमने अपना क्या रूप पाया है, इस विषयका यहाँ विचार करना है। यह जीव सबसे पहिले निगोद अवस्थामे था। वहाँसे निकला तो अन्य एकेन्द्रिय जीव हुआ, फिर दो इन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय आदि हुआ। फिर असैनी सैनी हुआ तो तिर्यंच नारकी आदि हुआ। और, अब हुआ मनुष्य। तो यहाँ यह बात देखना है कि हम कितनी खोटी योनियोको पार करके आज मनुष्य हुए है। अब इस मनुष्य पर्यायको पाकर हमे क्या करना चाहिए ? हमे अच्छे ही काम करना चाहिए और उनमे दृढता रखनी चाहिए ताकि आगे उन्नति होती रहे। जब हम इतनी खोटी स्थितियोको पार करके आज मनुष्य हुए है तो हमे ऐसे ही कार्य करने चाहिएँ कि जिससे इस मनुष्य भवसे नीचे तो न गिर जाये। आत्माका उत्कर्ष बनाये रहे, व्यर्थका जो मोहजाल है उसमे बेसुध न हो। कितने दिनोके लिए यह सम्बन्ध है ? थोड़े दिनोके लिए यह मोहजाल बनाये तो उससे जीवको क्या लाभ मिलेगा ? उससे तो जीव को खोटी योनियोमे ही जन्म लेना होगा। तो बहुत बड़ी जिम्मेदारी है इस मनुष्यभवको पाकर आत्माकी। तो इसी प्रसगमे यह कहा जा रहा है।

अह णीरोओ होदि हु तह वि ण पावेदि जीविय सुइर ।
अह चिर-काल जीवदि तो सील णेव पावेदि ॥२९३॥

नीरोग शरीर पानेपर भी सुचिर जीवन पानेकी दुर्लभता—यह जीव अनेक स्थितियो को पार करके मनुष्य हुआ है । तो मनुष्यमे भी कितनी दुर्लभताकी वाते पायी है । आर्यक्षेत्र मे जन्म हो गया यह भी कठिन चीज थी क्योकि म्लेन्छखण्डमे जन्म होता तो वहाँ हिसात्मक कार्योमे ही समय व्यतीत होता । आर्यक्षेत्रमे रहकर भी उत्तम कुलमे न हुए, चाण्डाल आदिकके कुलमे हो जाते तो वहाँ अभक्ष्यभक्षणमे व अनेक दुराचारमे ही समय व्यतीत होता । तो हम आपको ऐसा उत्तम कुल मिल गया । उत्तम कुल मिलने पर भी अगर धन-हीन होते तो वहाँ भी मलिनताका ही अवसर था । तो देखिये हम आपको धन भी प्राप्त हुआ है । धन उतनेका नाम है जितनेमे इस शरीरका निर्वाह हो सकता है । भूख, प्यास, शर्दी गर्मी आदिक वेदनाओसे बचाव किया जा सके, वस इस स्थितिको धनिक कहो अन्यथा तो कोई धनिक नही हो सकता । आज जो लखपति करोडपति लोग दिखते है वे भी अपने से अधिक धनिक लोगोपर दृष्टि डालकर अपनेको निर्धन अनुभव किया करते है । तो धनिक उतनेको कहते है जितने से भूख प्यास ठढी गर्मी आदिक वेदनाओसे बचत की जा सके । तो देखिये हम आप धनिक भी हो गए । धनिक होकर भी अगर इन्द्रियोकी पूर्णता न हो तो भी वहाँ धर्मपालनके लिए सुविधा नही बन सकती । देखिये—हम आपको सब इन्द्रिया भी मिली हुई है । और इन्द्रियोकी पूर्णता होने पर भी शरीरका निरोग मिलना दुर्लभ है । हम आपको निरोग दशा भी आज प्राप्त है । अब इस गाथामे यह बतलाते है कि जिस किसी पुरुषने ये सब बातें पा ली, निरोग शरीर भी मिल गया, मगर जीवन अल्प मिला तो उससे भी क्या लाभ ? बहुतसे लोगोका मरण तो छोटी उमरमे ही हो जाता है । अब देखिये हम आपने काफी बडी उमर भी पा लिया । अभी तक जीवित है तो समझिये कि यह कितनी दुर्लभ सी वात हो रही है ।

संसारमें मनुष्यके सुचिर जीवनपर आश्चर्य—मनुष्यके भट मर जानेमे तो कोई आश्चर्य नही है, पर बहुत दिनो तक जिन्दा बने रहे इसमे आश्चर्य है । जैसे लोग किसीके मृत्युकी खबर पाकर कहते है अरे बडा आश्चर्य हो गया, और इसमे आश्चर्य नही मानते कि हम अभी तक जिन्दा है । आश्चर्य तो इस बातपर होना चाहिए कि हम अभी तक जीवित वने है । मरणका क्या आश्चर्य ? जैसे बरषातमे ऊपरसे पानी गिरता है तो नीचे बबूले उठ जाते है । उनको बच्चे लोग देखते है तो वे इस पर बडा आश्चर्य प्रकट करते है कि देखिये-अब तक यह बना हुआ है । बबूलेके फूट जानेका आश्चर्य नही करते है । और वे बच्चे बबूले का बना रहना देखकर बड़े खुश होते है और वे बच्चे यह मेरा है यह मेरा है ऐसा भी कहते

है अरे तेरा बबूला मिट गया मेरा अभी तक नही मिटा ऐसा भी वे बच्चे कहते है। तो जैसे बबूलेके बने रहनेमे आश्चर्य मानते है, फूटनेमे नही, इसी प्रकार जीवित बने रहनेमे आश्चर्य है, मरणमे कोई आश्चर्य नही।

मनुष्यभवमें सुचिर जीवन पानेकी उपयोगिता—जब तक हम आप जीवित है तब तक कर्तव्य यह है कि कोई ऐसा उपाय बना ले कि जिससे हमे वास्तविक लाभ हो। इन बाहरी बातोके सम्बंधसे क्या लाभ है ? आज यहा हम आप दिख रहे है, आखिर यहाँसे मरण करके परभवमे जाना होगा। तो परभवमे साथ ले जानेके लिए कुछ भले काम करके अच्छी कमाई कर ले, इस बातकी दृष्टि रखे। बाहरी चीजे तो सब यही पडी रह जायेगी। अपनी वास्तविक कमाई है धर्मकी, ज्ञानकी। तो उस ज्ञानको, उस धर्मको हम विशेष महत्त्व दे और उसको अपने जीवनमे उतारे। तो इस जीवने यदि निरोग शरीर भी पाया, पर जीवन अधिक न पाया तो क्या लाभ ? और जीवन भी काफी पा लिया पर शील, सदाचार न बनाया, रागका द्वेष मोहादिकका ही काम किया तब फिर वहा ज्ञानका, धर्मका क्या अवकाश ? इतना विवेक रखे कि मेरे लिए यह तो करने योग्य बात है और यह न करने योग्य बात है। वहा तो इसे कुछ शान्ति प्राप्त होगी, पर जो मनमे सोचा वही कर बैठे, क्योकि शक्ति मिली है ना, पुण्यका उदय भी है, कुछ इज्जत भी मिली हुई है। तो जो सोचा वह कर बैठे, ऐसी मनकी स्वच्छन्दतामे तो जीवनकी सफलता नही है। चिरकाल तक यह जीवित भी रहा, पर इसने शीलस्वभाव नही प्राप्त किया। तो शीलयुक्त होना यह और भी दुर्लभ बात है।

अह होदि सीलजुत्तो तो विण पावेइ साहु-संसग्ग।
अह त पि कह वि पावदि सम्मत्तं तह वि अइदुलहं ॥२९४॥

साधुसंसर्ग व सम्यक्त्वलाभकी दुर्लभता—यह जीव शीलयुक्त भी हो गया, ब्रह्मचर्यसे भी रह रहा, अच्छे आचरणसे रह रहा, कुछ व्रत भी धारण कर रहा तो भी यह जीव साधु ससर्गको न प्राप्त हुआ। मनमे कुछ बात आयी है सो व्रत कर रहा है, पर जब तक साधु पुरुषोका समागम न प्राप्त हो, जो संसार, शरीर, भोगोसे विरक्त है ऐसे सत पुरुषोका समागम न प्राप्त हो तो वे व्रत तप आदिकके लिए की जाने वाली सारी क्रियाये थोथी रह जाती है। भीतर परिणामोमे उत्कर्षत्व नही उत्पन्न होता। तो साधुजनोका संसर्ग पाना बडा दुर्लभ है। इस सत्सगका तो सभी जगह बडा महत्त्व दिया है। सत्सग पानेकी कोशिश होना चाहिए और कदाचित् सत्सग भी मिल गया तो सम्यक्त्वकी प्राप्ति अति दुर्लभ है। अपना जैसा वास्तविक स्वरूप है अपने सत्त्वके कारण अपने आपका जो वास्तविक ढग है वह सहज स्वरूप अनुभवमे न आये उसीको कहते है सम्यक्त्व नही मिला। तो सम्यक्त्वकी प्राप्ति इतनी

दुर्लभ है।

गृहस्थके षट् आवश्यकोंका ध्येय—उस सम्यग्दर्शनको पानेके लिए ही तो ये सब उद्यम किए जा रहे है। देवदर्शन, गुरुपासना, स्वाध्याय, आदिक। भगवानके गुणोका स्मरण करके ज्ञानपद्धतिसे अपने और भगवानके बीचकी बात निरखना। जो भगवानका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है, पर अन्तर यह आ गया है कि भगवानका उपयोग तो बिल्कुल निर्मल है और हम आपका उपयोग रागद्वेष मोहादिकके रगसे रगा हुआ है। अर्थात् रागद्वेष मोहादिकके भावोसे कलकित हो रहा है। और इसी वीतरागता और सरागताके कारण इतना बडा अन्तर हो गया है कि प्रभु तो अनन्त आनन्दमे मग्न रहते है और हम आप यहाँ ससारमे जन्म मरण करते है, भटकते है। इतना महान अन्तर है इस सम्यग्दर्शनके न होनेसे। इसपर कुछ विचार करना है कि जिस ढगमे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होती है। हम गुरुपूजा करते है तो गुरुवोके वैराग्यभावको निरखे, शरीरका क्या निरखना ? इस आत्मामे क्या गुण है, कैसा ज्ञान है, कितनी वीतरागताकी परिणति है। धन्य है इनका जीवन और ज्ञान जो वैराग्यके मार्गमे लगे हुए है। इस ज्ञान और वैराग्यके स्वरूपको निहारो, वह सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका कारण बनेगा। तो गुरुजनोका वैसे तो एक सेवाभाव कुछ धर्मवृत्ति पर ही किया जा रहा है, पर वास्तविकता तो उनके रत्नत्रयकी साधनासे है। गुरुपासना भी रत्नत्रनकी प्राप्तिके लिए है, स्वाध्याय भी रत्नत्रयकी प्राप्तिका बडा अच्छा साधन है। ऋषि संतोमे वचन इतने निष्पक्ष होते है कि वे निजपरका कल्याण करने वाले है। उन वचनोके अन्दर धोखेका काम ही नहीं है। स्वाध्याय, यह भी एक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका साधक बने, इस ढगसे अपने आपपर अनेक बाते घटाते हुए स्वाध्याय करे। संयम—इन इन्द्रियोको सयमित करे, जो भी ये इन्द्रियाँ चाहती है उनकी इच्छाके मुताबिक न बह जाये। सयम करना, त्याग करना और जीवोकी रक्षा करना ये सब सयमके वातावरण भी हमारे निज ज्ञानस्वभावकी अनुभूतिके कारण बन सकेगे।

धनिकोंमें उदारताका अभाव होनेसे देशमें संकट प्रसङ्ग—यदि उदार पद्धतिसे हम चले, तप (इच्छा निरोध) करे, दान करे, रागद्वेष, मोहादिक पर विजय प्राप्त करे तो हमारा कल्याण अवश्य होगा। देखिये—इसी विवेकके न होनेसे आज देशमे, विदेशमे सभी जगह कम्युनिस्ट पार्टीका उदय हो रहा है। यदि सभी लोग ऐसा सोच ले कि यह धन तो हमे उदयानुसार प्राप्त हुआ है। हमारे उपयोगके लिए जो आवश्यक है वह हम करते है पर जो विशेष धन आया हुआ है वह इतने आरामके साधन बढानेमे और इस झूठी इज्जतके बनानेमे यह दुरुपयोग किया जा रहा है। अगर दीन दु खियोके उपकारमे धन खर्च किया जाता, और और भी धार्मिक कार्योमे इस धनको लगाया जाता तो आज जो यह कम्युनिस्ट पार्टी

इतनी तेजीसे बढ रही है उसका उदय न होता। लेकिन धनिक लोग हो गए कृपण। सिवाय अपने विषय आराम बढ़ानेके और किसी परोपकार आदिके काममे धन लगाते नही, तो फिर जिनके पास धन नही है वे कहाँ तक इस बातको देख सकेंगे। उनका यह दृश्य न देखा जायगा। हाँ अगर धनिक लोग परोपकारमे अपने धनका व्यय करते न कि भोगविषयों मे, तब तो फिर वे ही निर्धनजन उनके कृतज्ञ होते। इन तप, दान आदिक कार्योसे आत्मा की शुद्धि होती है, परम्परया ये सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण भी हो सकते है। तो इन सब कार्योंके करते हुएमे विवेक होना चाहिए।

ज्ञानार्जनके अनुद्यमका चित्रण—अब देखिये—किसीकी उम्र तो ६०-७० वर्ष की हो गयी पर देखनेमे यह आता है कि इतनी उम्र बीत जानेपर भी अभी वैसेके ही वैसे है जैसे कि १० वर्षकी उम्रमे थे। सारे जीवनभर धर्म भी किया फिर भी ज्योके त्यो है। याने जितनी समझ १० वर्षकी उम्रमे होती थी उतनी ही अब भी है। एक लाइन भी उससे अधिक समझ नही बनी। तो बतलाओ क्या किया धर्ममार्गमे ? जीवनभर परद्रव्योका सचय करनेकी ही धुन बनी रही, परद्रव्योसे रागद्वेषकी ही बात बनी रही, पर ये सब व्यर्थकी बाते है जिनमे कि कुछ भी तत्त्व नही है। जो असली चीज थी ज्ञानार्जनकी, उसके लिए तो दो चार मिनटका भी समय नही लगाया जा सकता। सम्यक्त्वके पुरुषार्थकी बात क्या कहे। सम्यक्त्वकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है। सब कुछ मिला, पर एक सम्यक्त्वलाभ न मिला तो समझिये कि कुछ भी न मिला। यह अधकारमय ससार है। यदि यहाँ जन्ममरण ही करते रहे, उसीमे ही बेसुध रहे तो फिर मिला क्या ? कुछ भी नही। जिस उपायसे शान्ति मिलती है वह उपाय मिले तो समझिये कि हमने कुछ पाया। तो सम्यक्त्वकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है। यदि सत्सग भी मिले, पर सम्यक्त्व न मिले तो यह कुछ लाभकी चीज न हुई। सम्यक्त्व-लाभ दुर्लभ चीज है।

सम्मत्ते वि य लद्धे चारित्तं णेव गिण्हदे जीवो।
अह कह वि तं पि गिण्हदि तो पालेदुं ण सक्केदि ॥२९५॥

सम्यक्त्वलाभ, चारित्रग्रहण, चारित्रपालनकी उत्तरोत्तर दुर्लभता—सम्यक्त्वकी प्राप्ति दुर्लभ है। इससे पहिले जितनी दुर्लभ बाते बतायी गई थी वे सब हम आपको मिली हुई है। साधुवोका ससर्ग भी होता ही रहता है। सदाचार भी यथायोग्य सबके है। जीवन भी पर्याप्त मिला हुआ है, यो सारी बाते हम आपको मिली भई हे। अब सम्यक्त्वकी प्राप्तिकी जो चर्चा है बस इसके बाद सभीने घुटने टेक दिए। सम्यक्त्व नही मिला। और मिला भी है सम्यक्त्व किसीको, पर वह जीव चारित्रको ग्रहण नही करता। प्रथम तो सम्यक्त्व प्राप्त हुआ भी या नही, इसका भी कुछ निर्णय नही दिया जा सकता। अपनी ख्याति लाभ

की वजहसे भी ऐसा कहा जा सकता है कि हमे सम्यक्त्व हो गया है। और, किसीके वास्तवमे सम्यक्त्व हो तो चारित्र ग्रहण नही करता। जिसके सम्यक्त्व हो गया उसके चारित्र तो कुछ न कुछ हो ही जाता है। उसके ऐसा भाव बन जाता है कि हमे सयमसे रहना चाहिए। करते है सयम मगर विशेषरूपसे चारित्रको ग्रहण नही कर पाते। तो चारित्र सम्यक्त्वसे भी दुर्लभ हो गया। और कदाचित् चारित्रका ग्रहण करते है तो उसका पालन कर सकनेमे असमर्थ हो रहे है। यह सब भीतरी भावोकी बात कही जा रही है। ऊपरी चारित्रका पालन तो आवेशवश भी हो सकता है, मगर अन्तरङ्गमे यह आत्मा अपने ज्ञानस्वरूपमे रमण करे, इस प्रकारकी भीतरमे धुन हो जाना यही हे वास्तविक चारित्रका मूल। तो इसकी धुन नही होती है अपने आपमे रम जानेमे। तो सम्यक्त्व प्राप्त होने पर भी चारित्रका ग्रहण दुर्लभ है और चारित्र प्राप्त हो जाने पर भी उसका पालना कठिन हो रहा है।

रयणत्तये वि लद्धे तिव्व कपाय करेदि जइ जीवो।
तो दुग्गईसु गच्छदि पणट्ठ-रयणत्तओ होउ ॥२९६॥

रत्नत्रय प्राप्त होनेपर भी तीव्रकषाय हो जानेपर रत्नत्रयके विनाशकी व दुर्गतिगमन की विडम्बना—किसी जीवको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्राप्त हो गया, कषायो का उपशम विशेष होनेसे ढगसे भी प्राप्त हो गया। तब किसी समय यदि ऐसा उदय आये कि यह जीव तीव्र क्रोध कर जाय तो दुर्गतियोका पात्र होता है। कथानकमे आया है कि द्वीपायन मुनि जो नेमिनाथ स्वामीके समयमे हो गए उनके जब समवशरणमे यह ज्ञानकी बात प्रकट हुई कि द्वारिका नगरी १२ वर्षके बाद भस्म होगी तो इनके ही कारणसे भस्म होगी तो उन्होने उस नगरीको छोड दिया, और बहुत दूर चले गए। अब जब १२ वर्ष गुजर गए द्वीपायन मुनिने अपने हिसाबसे सोचा कि अब तो चलना चाहिए नगरीमे, सो अपनी समझके अनुसार १२ वर्षके अन्तमे वे चले आये। वह १३ माहका वर्ष था। (१३ माहका भी वर्ष होता है) उस बीच राजाओने सब शराब फिकवा दी थी, क्योकि उस शराबके कारण सभी लोग मतवाले हो रहे थे। समझ लिया गया था कि इस शराबके कारण द्वारिकापुरी भस्म होगी। अब वह शराब कही फेक तो दी गई थी, किन्तु पानी बरसनेसे वह शराब पानीसे मिश्रित हो गयी थी। १२ वर्ष पूरे जानकर वही द्वीपायन मुनि उसी द्वारिका नगरीके उद्यानमे पहुचे। वहाँ पर जो शराब बिखेरी गई थी उससे मिश्रित जल पीने से वहाके कुछ लोग मतवाले हो गए थे। सो लोगोने द्वीपायन मुनिपर ढेला पत्थर मारना शुरू किया। उन द्वीपायन मुनिको तैजस ऋद्धि थी, सम्यग्दर्शन भी था, आत्माका रत्नत्रय भी प्राप्त था, मगर उन्होने सोचा कि देखो ये दुष्ट लोग व्यर्थ ही हमे सता रहे है सो ऐसा क्रोध

उपजा, निश्चय कर लिया कि मैं इन्हें भस्म कर दूं। इतना विचार करते ही उनके बाएं कधेसे तैजसका पुतला निकला, उससे सारी द्वारिकानगरी भस्म हो गयी और खुद भी भस्म हो गये। तो यहा यह बतला रहे है कि रत्नत्रय भी प्राप्त हो जाय तो भी यदि यह जीव तीव्रकषाय करता है तो इसे दुर्गतियोंमें जन्म लेना होता है। तब फिर रत्नत्रय कहांसे होगा?

तीव्रकषायसे हानियां जानकर अपने कर्तव्यका निर्णय——इस प्रसंगमे अपने जीवनमे इतनी शिक्षा लेना चाहिए कि तीव्र कषाय अशान्तिको ही बढाने वाली चीज है। सो तीव्र कषाय न करे। कभी कभी तीव्र क्रोध भी जग जाता हो, पर उसमे ऐसी गाँठ न लगाये कि हम इस व्यक्तिको बरबाद करके ही रहेगे। घमंड होना तो मनुष्योमे प्रधानतासे बताया ही गया है। देवगतिके जीवोमे लोभकषायकी प्रधानता है और नरकगतिके जीवोमे क्रोधकी प्रधानता है, तिर्यञ्चोमे मायाचारकी और मनुष्योमे मानकषायकी प्रधानता है। पर मनुष्य तो मानो इन चारों गतियोके प्रत्येक कषायका प्रतिनिधित्व रखना चाहता है (हँसी) याने क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक सभी कषाये इन मनुष्योमे बडी तीव्रतासे पायी जा रही है। इन तीव्र कषायोके ही कारण इस जीवको अनेक प्रकारके दुःख सहन करने पड़ रहे है। किसी ने किसीको दुर्वचन बोल दिये तो उसका फल तो बुरा ही होगा। उसी समय बुरा हो जाय या कुछ समय बाद हो जाय। और कर्मबन्ध होने से तो भविष्यमे बुरा होनेका ही है। तीव्र कषाय इस जीवनमे अशान्ति उत्पन्न करती है, अतः मेरे कोई कषाय मत रहो ऐसी भावना रखना चाहिए। तो यह जीव इतनी कठिन-कठिन चीजोको पार करके आज मनुष्य पर्यायमे आया है। इतनी ऊँची बाते प्राप्त करने पर भी यदि इन बातोकी उपेक्षा कर दी तब तो फिर उसी जन्ममरणके चक्रमे पडना होगा। इन तीव्र कषायोसे इस जीवका घात है, पाया हुआ ज्ञान भी खतम हो गया। अवधिज्ञानमे बताया है कि किसी जीवको जिस समय अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, वह उस जगहको छोडनेके बाद दूसरी जगह पहुंच गया तो अवधिज्ञान रहे भी, न भी रहे। कोई अवधिज्ञान इतना कमजोर है कि जिस जगह रहते हुए अवधिज्ञान हुआ वह स्थान छूटा तो अवधिज्ञान छूटा। तो इस बातमे हुआ क्या कि उपयोग बदल गया। अब उस उपयोगके बदलनेसे जो कषाय विशेष बनी तो पाया हुआ ज्ञान भी खतम हो जाता है। तो तीव्र कषायमे ज्ञानकी बरबादी है। अशान्ति उत्पन्न होती है, लाभ कुछ नही मिलता। तो मंदकषायपूर्वक जीवन बिताना यह भी एक अपने लिए बहुत बडी देन है।

रयणु व्व जलहि-पडिय मणुयत्तं त पि होदि अइदुलहं।
एवं सुणिच्छइत्ता मिच्छ-कसाये य वज्जेह ॥२९७॥

मनुष्यत्वलाभकी दुर्लभता जानकर मिथ्यात्व कषायके परिहारका कर्तव्य—जैसे समुद्र मे गिरा हुआ रत्न फिरसे मिले यह बहुत दुर्लभ बात है इसी प्रकार मनुष्य पर्याय भी अति दुर्लभतासे प्राप्त होती है। जब जीवोकी हम दृश्यमान अनेक स्थितियोपर दृष्टिपात करते है तो अपनी मनुष्यजन्मकी सफलताका भली प्रकार बोध होता है। कीडा मकौडा, स्थावर, पशु पक्षी आदिकके कितने ही प्रकारके दु खोको हम देख ही रहे है। उनको देखकर पता पडता है कि वास्तवमे हमे आज जो यह मनुष्यभव मिला है वह अत्यन्त श्रेष्ठ और दुर्लभ मिला है। तो मनुष्यपना पाना अति दुर्लभ है ऐसा निश्चय करके अब करना क्या है? मिथ्यात्व और कषायोको छोडें। मनुष्य होकर अगर मिथ्यात्व और कषायोमे लगे रहे तो मनुष्य होना न होना बराबर है। लाभ क्या मिला, विषयोका सुख तो पशु पर्यायमे रहते वहाँ भी मिलता, मनुष्य हुए तो यहाँ भी मिल रहा। उसमे कोई विशेषता नही है। विशेषता यह है कि मिथ्यात्व और कषाय इनको छोडे। प्रभुकी रोज पूजन वदना करने आते है तो क्यो आते है? मिथ्यात्व कषाय उनका सब नष्ट हो चुका है इसी कारण उनका सर्वस्व प्रकट हुआ है। तो भगवान सर्वज्ञ हुए है इसका तो प्रधान महत्त्व नही समझते, अरे किसीने थोडा जाना किसीने बहुत जाना, वह एक स्वाभाविक गुण है, हुआ ही है ऐसा, किन्तु उनको जो आनन्द प्रकट हुआ है और सदाके लिए कल्याणमय है, परमशिव हुए है वे वीतरागताके कारण ऐसे हुए है। रागद्वेष अब नही रहा इस कारणसे उनकी महत्ता है, सर्वज्ञता हो न हो, ऐसा तो होता नही कि न हो, लेकिन सर्व जान लेनेसे हमको इष्ट कुछ नही विदित होता, जान लिया सब। क्या हुआ, अरे भगवान न जानते सब और हम आप रागी लोग जानते सब तो उससे फायदा भी निकलता (हसी)। वे प्रभु तो वीतराग है और सबको जान रहे है तो उससे क्या फायदा? और, यहाँ हम आप अगर सब जान लेते तो बढिया व्यापार करते। जान लेते कि इस चीजका भाव बढ जायगा, इसका कम हो जायगा तो उसीके हिसाबसे व्यापार करके लाभ उठा लेते। (हँसी) तो देखिये जिनको जाननेकी जरूरत है वे जानते नही और जिनको जाननेकी कुछ जरूरत नही वे सब कुछ जानते है। जानना इसकी कोई महिमा नही है, महिमा है वीतरागता की। उनके रागद्वेष न रहा, जो भिन्न औपाधिक चीज थी, बाहरी बात थी, न रही, ठीक है। रहेगी कैसे? उसकी क्या महत्ता? महत्ता तो गुण विकास की है, सर्वज्ञता की है तो ऐसी सर्वज्ञता मिथ्यात्व कषायके दूर होनेसे प्रकट होती है। तो यह काम करनेका है।

मिथ्यात्वकी परिहार्यता—भैया! एक निर्णय रख लो। ये बच्चे लोग साथी न बनेगे, जिनमे हम झूठी इज्जत समझते है कि इसमे हमारा सब कुछ बडप्पन है, वे लोग साथ न दे देगे। परिवारका कोई साथी न होगा। साथ देने वाला है तो हमारा विशुद्ध

परिणाम है। भली प्रकार भीतरमे निश्चय कर लो और इस निश्चयके अनुसार अपना आशय बनाकर कुछ उसका प्रयत्न कर लो तो मिथ्यात्व और कषायको छोडे। मिथ्यात्व वह कहलाता है कि जो बात जैसी नही है उसको उस प्रकार माने। यह देह अपना नही है पर इसे माने कि यह मै हू तो यह मिथ्यात्व है। परिजन परिवार मै नही हू लेकिन उन्हे माने कि यह मैं हूँ, ये मेरे है यह मिथ्यात्वभाव है। भीतरमे जो रागद्वेपादिक कल्पनायें उठ रही हे, सुख दुःख उत्पन्न होता है यह भाव भी मेरा स्वरूप नही है, पर इन सबमे यह मोही जीव एकमेक हो रहा तो यह उसका मिथ्यात्व है। इस मनुष्यपर्यायको पाया है तो मिथ्यात्वके नाश करनेका उद्यम करे। धन वैभव जोडनेके लिए सभी लोग रात दिन जुटे हुए है। जिनका उदय अनुकूल है थोडेसे श्रमसे वात बन जाती है और जिनका उदय प्रतिकूल है वे कितना ही श्रम करे तो उससे सिद्धि कुछ नही होती। तो जब हमारे भावके साथ जिसका अविनाभाव आज नही, मै सोचूँ कि धन आ जाय, जब ऐसा नियम नही है तो उसके प्रति क्यो इतनी अधिक उमग रखते? इतनी दृढता रखना चाहिए कि जो कुछ आना है वह उदयानुसार आयेगा, और जो आयेगा उसीमे अपनी व्यवस्था बना लेगे। और अपना अधिकाधिक समय ज्ञानार्जन और आत्मसाधनामे लगायेगे। काम यह एक ही करना है। परको अपना मानना, परको स्वयं यह मै हू ऐसा समझना, रागद्वेष सुख दुःख आदिक परिणामोको आत्मा मानना, इन सब मिथ्यात्व भावोका त्याग करे। जब आगे कुछ रहना नही है, सबका दिछोह होगा तब फिर किसी भी परपदार्थसे क्या मोह करना? वहाँ इतना साहस बनानेकी जरूरत है, कि मेरे ये कुछ नही है। उनकी ओरसे तृष्णा कम करे और ज्ञानसाधनामे अपना चित्त विशेष लगाये तो जीवन सफल होगा, नही तो सभी लोग जन्मते हे और मरते है। तो इन कपाय भावोका त्याग करे, इससे ही इस नर-जीवन की सफलता होगी।

कषायोंकी परिहार्यता—कषाये ४ प्रकारकी होती है—क्रोध, मान, माया, लोभ। और ये चारो चार चार तरहकी होती है। कोई विकट क्रोध करता है और कोई हल्का। कुछ और हल्का है, कुछ बिल्कुल ही हल्का है, जिन्हे कहते है अनन्तानुबधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन। ऐसी कषाय जो दूसरे भवमे भी साथ जाय। वह अनन्तानुबन्धी कपाय कहलाती है। प्राय ससारी जीवोमे अनन्तानुबधी कषाय बसी हुई है। किसीसे कुछ भी अपना बिगाड समझमे आया तो उसका सर्वस्व विनाश करनेके लिए तुल जाते है। बताइये उससे लाभ क्या मिलता? लोग तो कहते है कि आजकल सज्जनताका जमाना नही है, लेकिन उनका यह कहना भूठ है। अरे सज्जनता कोई करते ही कहाँ है? हाँ थोडासा ऊपरी ऊपरी दिखावटी सज्जनता करते है, परिणाम यह होता है कि फल

उन्हे जो मिलना चाहिये था उसका उल्टा मिलता है। अरे सही ढंगसे कोई सज्जनता बर्ते तो फिर देखिये उसको लाभ मिलता है कि नही। सज्जनता करने से लौकिक लाभोसे भी वचित न रहेगा। तो कषाये मत करे। कोई पुरुष अपना विरोधी हो और उसके प्रति सज्जनता बर्ती जाय, हृदयसे उपकार करनेके भावसे उसके प्रति सज्जनताका व्यवहार किया जाय, अगर ऐसी विशुद्धि उत्पन्न हो तो उस विरोधीके हृदयमे भी फर्क आ जायगा, लेकिन लोग सही ढगसे सज्जनता बर्तते नही है और दोष देते है जमानेका कि आजकल सज्जनता बर्तने का जमाना नही है। तो क्रोध, मान, माया, लोभ ये चारो कषायें अनन्तानुबधी भी होती है, जिनका सस्कार, वासना परभव तक साथ जाता है। इन कषायोको छोडे तो सम्यक्त्व उत्पन्न हो जायगा। अपना जो आत्माका सहजस्वरूप है उस स्वरूपका अनुभव होगा और उनको जो विशुद्ध आनन्द प्रकट होगा उसके अनुभव द्वारा यह जान लेगे कि ससारके भी पदार्थमे राग करनेमे आनन्द नही है। रागमे आनन्द कैसे होगा ? राग खुद दु खका अविनाभावी है। जहाँ राग परिणाम हो रहा वहाँ तुरन्त क्लेश हो रहा, राग स्वय क्लेश रूप है। तब राग करके आनन्दकी आशा कहाँ की जा सकती है ? तो अनन्तानुबधी कषाय मिटे वहाँ आत्माकी अपनी सुध हो जाती है। फिर इसके बाद अप्रत्याख्यानावरण और और छोटी कषाये उन सबको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। यहाँ यह बतला रहे है कि ऐसा मनुष्यजन्म पाया है जो अतिदुर्लभ है, तो इस मनुष्यजन्म पानेकी सफलता इसमे है कि मिथ्यात्व और कषाय का त्याग कर दें।

लौकिक वैभवके अर्जनके लक्ष्योंकी सारहीनता—लोग धन वैभवके सग्रहके लिए इसीलिए तो मरे जा रहे है कि उन्होने दो बाते सोची है—धन वैभव बढानेके प्रयोजनमे एक तो यह कि दुनियामे हमारी इज्जत बढ जाय। बडे-बडे समारोहोमे आगे लोग बैठायेगे और अनेक जलसोमे सभापति बनाये जायेगे, वहाँ हमे प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। लोग भी समझ जायेंगे कि यह है धनिक पुरुष। तो एक तो इज्जत बढेगी इस ख्यालसे धनवृद्धिमे जुटे है। दूसरा ख्याल यह बन जाता है कि हमारे बालबच्चे सब अच्छी तरह सुखमे रहेगे, इनको धनी बना दे और ये सुखी रहे, इससे हमारा आत्मा भी शान्त रहेगा। मगर दोनो ही प्रयो-जनोपर विचार तो करो। दुनियाके लोग हमारी इज्जत करेंगे। तो पहिले तो वे दुनियाके सभी आदमी अपनी ही इज्जत सम्हाल लें। मरकर पशु पक्षी न बने। यहाँ पर ही अनेक अज्ञान अधकार उनके न रहे तो वे क्या अपनी ऐसी इज्जत सम्हाल सकने काबिल है ? नही। अरे वे खुद जन्म मरण करने वाले है, स्वार्थी है, कषायोसे भरे है, मिथ्यात्वसे भरपूर है, ऐसे इन न कुछसे जीवोसे कुछ थोडेसे शब्द प्रशसाके सुननेको मिल जाये ऐसी चाह करना कितनी बडी कुबुद्धि है ? क्या मिलता है ? कबसे हम मनुष्यजीवनमे आये है ? इससे पहिले

हम क्या हुए होंगे उसकी कुछ आज सुध नही है। इस थोडेसे जीवनके लिए यशकी क्या चाह करना ? इस जीवनमे ही उस यशसे लाभ क्या पाया ? और, आगे भी उससे क्या लाभ मिल जायगा ? वर्तमानमे भी लाभ नही है। अगर कुछ स्वार्थीजनोने इज्जत कर दी तो इज्जतकी चाह रखने वाले ये पुरुष उन जीवोके आनन्द और आरामके लिए कितना कष्ट सहते है ? यह किसका फल है ? थोडीसी इज्जत माननेका और उसका फल क्या मिला कि सारा जीवन सकटमे डाल लिया। कुछ लोग इज्जत बोल देते है तो इसके फलमे इसे कितना क्या और देना होगा सो यह बडे संकटकी बात है। दूसरी बात यह--कि बालबच्चे सुखसे रहेगे, धनिक रहेगे इसलिए बहुत धन कमाकर रख जाना चाहिए। सो ये भी असार बाते है। कितना ही कोई कमाकर रख जाय, उनका उदय पुण्यका नही है तो थोडे ही दिनोमे वह सारा धन समाप्त हो जायगा। और, आप कितना ही कमाकर धर जाये वह सब थोडा है, उनका अगर पुण्य अनुकूल है तो वे उससे हजार गुना कमा लेगे। और, इसी सम्बन्धमे दूसरी बात यह समझे कि कल्पनासे मान लिया कि ये मेरे पुत्रादिक है। इनके लिए हमे धन अर्जित करके रख जाना चाहिए, तो वे है क्या इसके ? मरणके बाद वे क्या सुखमे निमित्त हो सकते है? कुछ बात भी पूछ सकेगे क्या ? ये सब किसी काम न आ सकेगे ? और जीवन मे भी काम नही आते। बच्चोकी सेवा करते-करते जिन्दगी बिता डालो तो उससे इस आत्माको लाभ क्या मिला ? सभी लोग अपने-अपने अनुभवसे पूछ ले।

गृहस्थीकी परिस्थितिमें मनुष्यका कर्तव्य--गृहस्थीमे कर्तव्य केवल एक यही है कि जब गृहस्थ है तो इस नातेसे कुछ समय व्यापार करना या सेवा सुश्रुषा आदिकके जो काम करने हो सो करे, परिस्थिति है। फिर उदयानुसार जो कुछ प्राप्त हो उसमे ही अपनी व्यवस्था बनाले और जीवको इतना निरपेक्ष रखे कि इसे धर्मसाधनामे लगाये। यह काम अगर किया जा सका तो दुर्लभ मनुष्यजीवन पानेकी सफलता है, नही तो जैसे कीडामकोडी पशुपक्षी आदिक बने ऐसे ही मनुष्य बन गए। उससे लाभ क्या उठाया ? तो अतिदुर्लभ मानवजीवनको पाकर कर्तव्य यह है कि मिथ्यात्व और कषायको छोडे। मनन करे अपने स्वरूपका। मै हूँ। हूँ ना, न होऊँ तो यह बडे मजेकी बात होगी। असत्मे सुख दुख क्या होगा, पर ऐसा है कहाँ ? मै तो हू, अस्तित्वका अभाव कहासे होगा ? मै हूँ तो किसी न किसी अवस्थामे रहता हूँ। अब शान्तिवाली अवस्था चाहिए तो उसका उद्यम करना होगा। अशान्ति और क्लेशकी अवस्थाये तो हो ही रही है। अपना जैसा स्वरूप है वैसा शुद्ध जान लेगे केवल ज्ञानमात्र स्वरूप है हमारा। इसमे कोई दूसरी चीज मिली हुई नही है। रागद्वेप जो हममे आते है तो पर-उपाधिके सम्बन्धमे आ रहे है। मेरे स्वभावमे राग नही पडा है। मेरा सहजस्वरूप तो सिर्फ ज्ञानमात्र है। तो ऐसा ज्ञानमात्र मै अपने स्वभावसे हूँ, सहज हूँ,

उसकी सुन ली जाय तो यह मनुष्यजन्म और श्रेष्ठभवका पाना सफल हो जायेगा। और, यदि विषय कषायोमे ही लगे रहे तो मनुष्यजन्मके पानेका क्या फायदा ? तो दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर हे कल्याणार्थी जनो! मिथ्यात्व और कषायोंका परित्याग करें। किसी ने कुछ उल्टा सीधा कह दिया तो यहा आग बबूला हो गए। ऐसा कह क्यो दिया इसने ? मैं तो इससे बदला लूँगा। यह सब क्या है ? अधकार है। भीतरमे निर्णय तो स्वच्छ रखना है। भले ही गृहस्थीमे अनेक प्रसग ऐसे होते है कि उनका अगर प्रतिकार न किया, उचित ढगसे उनकी अक्ल ठिकाने न लाये तो सम्भव है कि ये बहुत दिनो तक हैरान करेगे। और, प्रथम तो बात यह है कि न उसकी अक्ल ठिकाने लायें और समता रखें, व सबके हितकी बात सोचे तो भी गृहस्थीमे गुजारा चल जायेगा, और इसके लिए तो बडा साहस करना होगा। भले ही अल्प साहसकी बात बने, मगर निर्णय शुद्ध रखना चाहिए। जगतमे अनन्त जीव है, कोई किसीका इष्ट मीत नही। यह जीव अपने विचारमे, पर्यायमे, उपयोगमे नाना प्रकार की कल्पनायें चेष्टाये करता है तो वह अपने सुखके लिए करता है, उसके विरोधके लिए नही करता। यह तथ्यकी बात है। कोई भी शत्रु हो, विद्वेषी हो वह जो चेष्टायें करेगा उसके प्रति वह उसके विरोधके कारण न करेगा, किन्तु उसे सुख शान्ति इस बातमे जँच रही है तो अपनी ही सुख शान्तिके लिए करेगा। अतएव कोई विरोधी नही।

मिथ्याज्ञानके अभावमें आकुलताका अभाव—भैया! निर्णय यथार्थ रखना चाहिए। जिसके बलसे ऐसी वृत्ति जगेगी कि जीव आकुलता न पायेगा। जितनी आकुलता होती है वह मिथ्याज्ञानसे होती है। अब यही देख लो— चीज जो कुछ भी मिली है वह सब मिट जायेगी, लेकिन खुदको जो मिला है बाह्य समागम, उसके प्रति ख्याल तक भी न लाना चाहिए कि ये सब चीजे मिटेगी, बिछुडेगी। दूसरोके लिए तो ख्याल ला देंगे कि कितना बेहोश हो रहा है। जो मिला है वह मिटेगा, पर खुदको जो मिला है वह भी मिटेगा, ऐसी कल्पना तक नही करना चाहते। याने अनित्य चीजको नित्य मान रहे है। मिथ्याज्ञान हो रहा है इसीका ही क्लेश है। अगर अनित्यको अनित्य मान लिया जाय, जिस घरमे रहते वह भी छूटेगा, जिस देहमे रहते यह भी मिटेगा, जो समागम मिले है वे सब असार है, आदिक बाते अगर मान ली जाये तो यही उसका बहुत सा क्लेश मिट जायेगा। और इतना तो निश्चित है कि जब धन वैभव परिजन आदिकका वियोग होगा तो यह ख्याल करने लगेगे कि लो जो हम जानते थे सो ही हो गया। हम पहिलेसे जान रहे थे कि यह मिटेगा तो देखिये जो बात जान रहे थे वही बात सच निकली। कोई आदमी किसी बातको पहिले से बता दे कि देखो ऐसा होगा। तो वैसी बातके हो जानेपर वह शानसे कहेगा कि मै तो

इसे पहिले से जानता था। जो जानता था सो ही हुआ। तो वह उस समय दु खी नही होता बल्कि खुशी मानता है। अगर अनित्य पदार्थ नष्ट हो गए तो ज्ञानी पुरुष उस समय खुशी मानेगा कि देखो जैसा हम समझ रहे थे वैसा ही हुआ। भला जो लोग अनित्यको नित्य समझते है तो उसके मिटने पर वे बडा खेद मचाते है। देखो अचानक क्या हो गया ? अरे अचानक क्या हुआ ? आश्चर्य तो इसमे होना चाहिए जो चीज देर तक (काफी समय तक) बनी रहे। मिटनेका क्या आश्चर्य ? इससे हम सच्चे ज्ञानके द्वारा अपने आपके आत्माकी रक्षा करे, मिथ्यात्व कषायसे दूर रहे, इसमे हम आपके जीवनकी सफलता है।

अहवा देवो होदि हु तत्थ वि पावेदि कह व सम्मत्त।
तो तव-चरण ण लहदि देस-जम सील-लेस पि ॥२९८॥

देवगतिमें हीन परिस्थिति––कभी किसी प्रकार यह जीव देव बन गया, मायने चारो गतियोमे जो एक देवगति है उसमे आ गया, वहाँ किसी प्रकार सम्यक्त्व भी पाले तो भी इतना तो निश्चित है कि वहाँ तपश्चरण, सयम महाव्रत ये कुछ भी नही हो सकते। ऐसी हीन दशा रहती है देवगतिके जीवोकी। लोग यहाँ घबडाते है कि कितना उपद्रव हो गया, उपसर्ग हो गया, न जाने अब कैसे क्या होगा ? अरे ये उपद्रव ये उपसर्ग भलेके लिए होते है। हम इनमे समता तो करले, कितने ही कर्मोका क्षय हो जायेगा। और उस बीच भी हमको कितनी बडी शान्ति मिलेगी। क्या सम्पदाके बीच रहकर जीव शान्त हो जाता है ? बहुत-बहुत सुविधाये मिली हो वहा भी यह जीव दु खी रहता है। यह धन सम्पदा सुखका हेतु नही है। सच्चा ज्ञान ही सुखका हेतु है, अतएव उपद्रव भी कदाचित् आये तो उस बीच भी सम्यग्ज्ञान बनाये और सुखी हो।

मणुअ–गईए वि तओ मणुअ–गईए महव्वद सयल।
मणुव–गदीए झाण मणुव–गदीए वि णिव्वाणं॥२९९॥

मनुष्यगतिमें तपश्चरणका अवसर––मनुष्यगतिमे ही तपश्चरण सयम, निर्वाण आदि हुआ करते है, इस कारणसे चारो गतियोमे मनुष्यगतिका महत्त्व है। अब कोई यहाँ यह सोचे कि इस कालमे तो मोक्ष होता नही तब फिर इस कालमे मनुष्यगतिका क्या महत्त्व ? तो ऐसी भी शका न करना चाहिए, कारण यह है कि इस मनुष्यगतिसे आज निर्वाण नही है लेकिन मन इतना श्रेष्ठ मिला है कि वस्तुस्वरूपका हम सही विचार कर सकते है और शुद्धज्ञान बना सकते है। शुद्धज्ञान वह है जहा यह स्पष्ट बोध हो कि प्रत्येक पदार्थकी सत्ता अत्यन्त जुदी जुदी है और प्रत्येक पदार्थमे बाकी सबका अत्यन्ताभाव है, किसी प्रकारका सम्बन्ध नही है। यदि कोई पदार्थ विकाररूप भी परिणम जाता है तो वह पदार्थ स्वय अपनी परिणतिसे विकाररूप परिणमा, इतनी बात वहाँ अवश्य है कि निमित्त-

भून पदार्थ होनेपर ही वह परिणमा, तो बात वहाँ क्या होती है कि अनुकूल निमित्तका सन्निधान होनेपर पदार्थ स्वय विकाररूप परिणम जाता है। तो यो वस्तुस्वरूपको निरखनेका सामर्थ्य इस मनुष्यभवमे है अतएव मनुष्यभवका बहुत बडा महत्त्व है। मनुष्यगतिमे ही तपश्चरण होता है। तपश्चरण १२ प्रकारके बताये गए है—६ बाह्य तपश्चरण और ६ अन्तरङ्ग तपश्चरण। जैसे अनशन—भूखसे कम खाना, कुछ अटपट आखडी लेकर खाना, रस का त्याग करना, एकान्त स्थानमे मौन बैठना और नाना प्रकारके कायक्लेश करना, ठड गर्मी आदिकके तपश्चरण, ये सब बाह्य तप कहलाते है क्योकि लोगोको यह सब दिखता है।

मनुष्यगतिमें अन्तरङ्ग तपकी विशेषता—अन्तरङ्ग तप ६ प्रकारके है—प्रायश्चित्त करना—कोई अपराध हुआ है अब उसका प्रायश्चित्त कर रहे है, उस दोषको मेट रहे है, आगामी कालमे यह दोष न बने, ऐसी मनमे दृढता ला रहे है तो ये बाते दूसरोको कहाँ दिखती है, ऐसा यह भीतरी तप कहलाता है। विनय—विनय नाम हाथ जोडने भरका नही है, हृदयसे दूसरेके गुणोमे प्रीति उत्पन्न हो उसका नाम विनय है। अब यह हृदय किसको दिखता है। कहो बाहरमे कोई ऐसी विनय करता हो कि जिसकी कुछ हद नही, किन्तु अन्त विरोध है, और कोई ऐसा विनय भी होता है कि कहो बाहरसे अधिक विनयकी बात न जाहिर हो सके पर अन्दरसे बडा ही विनयपूर्ण भाव हो तो विनय तपश्चरण भी भीतरी भाव है, उसे दूसरा कौन जानता है। तीसरा है वैयावृत्य तप। वैयावृत्य कहते है सेवा करने को, लेकिन वैयावृत्तका शब्दार्थ सेवा करना नही है, जैसे पैर दाबना आदिक, पर यह तो फलित अर्थ है। वैयावृत्यका अर्थ है कि जो अयोग्य कामसे हट गया हो उसे कहते है व्यावृत्त पुरुष। जो अनुचित कार्योसे हट गया हो। जो संसारसे या मोहियोके संगसे हट गया है उसका नाम है व्यावृत्त अर्थात् निवृत्त, उसकी वृत्तिको वैयावृत्य कहते है। धर्मात्माजनोकी सेवा करना इसका नाम है वैयावृत्य। यह तो वैयावृत्यका फलित अर्थ है, मगर इसका सम्बध भीतरी भाव से है। स्वाध्याय—लोग तो स्वाध्यायका अर्थ लगाते है किसी भी पुस्तकको पढ लेना, पर स्वाध्यायका यह मौलिक अर्थ नही है। स्वाध्यायका अर्थ है अपने आपका अध्ययन करना, याने स्वका जहाँ अध्ययन हो, स्वकी जहाँ दृष्टि हो उसका नाम है स्वाध्याय। तो स्वाध्याय नामका एक तप है। मै आत्मा क्या हूँ, कहाँसे आया हू, मुझे क्या करना है, मेरी क्या गति होगी, ऐसी बाते मनमे रखकर फिर स्वाध्याय करे तो वह अन्तरङ्ग तप कहलाता है। कायोत्सर्ग तप—समस्त बाह्यपदार्थोसे ममताको त्याग देना, निर्ममत्वभावमे ही शान्ति मिलती है। जब रागभावका कुछ उदय होता है तो लोग कही शान्ति नही पाते, क्योकि वे देखते है अपनेसे बडोको, धनिकोको। उनको देखकर चित्तमे यह बात आती है कि हाय मै न हुआ ऐसा, मेरी ऐसी स्थिति क्यो न हुई, लो यही सोच-सोचकर जीवनमे चैन नही पाते है।

आपने देशमे विदेशमे कही भी इस तरहकी वृत्तियोमे रहकर कोई शान्त देखा हो तो बताओ। दूसरोका वैभव देखकर मन ही मन दुखी रहा करते है। उस वैभवके सचयके लिए अनेक प्रकारके मायाचार भी करते है। यह मायाचार होता है लोभसे। लोभ न हो तो मायाचार का क्या काम ? ये सब बाते तभी होती है जब कि रागमोह भाव रहता है। तो मोहका परित्याग करना, ममता छोडना यह व्युत्सर्ग तप है। यह भी आन्तरिक तप है। दूसरा कोई क्या जाने कि इसने ममता छोडी या नही। कहो घर द्वार सब कुछ कोई छोड दे, पर ममता न त्याग सके। कहो ममताके कारण ही घरबार सब कुछ छोड दिया हो। वहाँ कोई यह नियम तो नही बना सकता कि इसने ममता त्याग दी है। घर द्वारकी ममता त्याग दिया, पर उससे बडी ममता अपने चित्तमे बसा लिया। तो ममत्वका त्याग कहाँ किया ? यह बात कोई दूसरा क्या जानेगा ? यह तो खुद ही जान सकते है। यदि उसने ममताको त्याग दिया तब तो शान्त हो जायगा नहीं तो दुखी ही रहेगा। छठवाँ अन्तरङ्ग तप है ध्यान—अच्छे तत्त्वकी ओर, हितकारी तत्त्वकी ओर अपने मनको लगाये रहना यह ध्यान है। इस ध्यान को कोई दूसरा क्या जान पायगा ? खुद ही के जाननेमे हो तो हो। इसी कारण ध्यान भी अन्तरङ्ग तप कहलाता है। तो यह तप मनुष्यभवमे बनता है, देव तिर्यञ्च आदिक अन्य भवोमे नही बन सकता। देव अनशन ऊनोदर आदिक क्या करेंगे? उनको तो भोग सामग्री विशेष मिली हुई है, वे तो भोगोमे ही रत रहकर अपनी जिन्दगी बिताते है। पर उससे जीवको कुछ फायदा नही होता। तत्काल भी क्लेश रहता है और भविष्यमें भी क्लेश रहता है। तो यह अवसर तो मनुष्यो को ही मिला है कि वे तपश्चरण करे। मनुष्यगतिमे ही ध्यान है।

मनुष्यगतिमें निर्वाण व निर्वाणसाधनकी विशेषता—मनुष्यगतिमे ही निर्वाण है, अन्य गतियोमे ये नही बनते। इन्द्र भी द्वादशाङ्गका पाठी है मगर वह श्रुतकेवली नही कहलाता। श्रुतकेवली तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि बन सकता है। तो मनुष्य गतिमे श्रेष्ठज्ञान, ध्यान आदिक बनते है, किसी अन्य गतिमे ये सम्भव नही है। निर्वाण भी मनुष्यगतिसे ही होता है। शुक्लध्यान अन्य गतियोमें नही होता। कुछ धर्मध्यान हो जाय मगर रागद्वेष उपयोगमे न रहे और ऐसा फिर वीतराग भाव प्रकट हो जाय ऐसा ध्यान मनुष्यगतिमे ही हो सकता है अन्यत्र नही। दुर्लभ मनुष्यगतिमे दुर्लभ तत्त्वोकी प्राप्तिका अवसर जान करके हमे अपने आपमे क्या घटित करना है कि हम कितने ही दंदफंदोको पार करके आज मनुष्य हुए है। मनुष्य हो जाना बडी दुर्लभ बात है और उस मनुष्यभवमे भी कितनी ही बाते प्राप्त करली, इन्द्रियाँ पूर्ण है, धन भी मिला है, खाने पीने आदिकी सारी सुविधाये मिली है, सम्यक्त्व भी प्राप्त है, सयम भी बनाना चाहे तो बन सकता है, ऐसा उच्च कुल भी हम

आपको प्राप्त है, सब प्रकारसे समर्थ भी है, कैसी दुर्लभ चीजें प्राप्त करली हे। अब ऐसा अवसर पाकर यदि हमने अपनी सावधानी न बनाया, मनको विषयोमे ही लगाये रहते है तो यह खुदकी बहुत वडी गल्ती है, आगे फिर संसारमे जन्म मरण करते रहना होगा।

इय दुलह मणुमत्त लहिऊण जे रमति विसएसु।
ते लहिय दिव्व-रयण भूइ-णिमित्त पजालति ॥३००॥

दुर्लभ मनुष्यत्वको पाकर विषयरमणका अविवेक—ऐसा दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी जो लोग विषयोमे रमण करते है वे मानो यह कर रहे है कि दिव्य रत्नको पाकर उसको राखकी जरूरत थी सो उस राखकी जरूरत की पूर्तिके लिए उस दिव्य रत्नको जला डालते है। जैसे किसीको बर्तन माजने के लिए राखकी जरूरत है और वह चदनके वनको काटकर जलाकर राख वनाये तब बर्तन मले तो क्या उसे कोई विवेकी कह सकेगा ? वह विवेकी नही है। इसी तरह विषयकपायोकी पूर्तिके लिए इस मनुष्य जीवनका उपयोग बनाया तो यह उसका कोई विवेक नही है। ये विपयभोग क्षणभगुर चीजे हे। कुछ इन्द्रिय और मन को सुहा गए, थोडे समयके लिए है, उनमे आसक्त होकर वन्धनमे पडे तो यह कोई विवेक नही है। दूसरेका अविवेक दूसरा जान लेता है पर अपने खुदके अविवेकको नही जान पाते। दूसरोको देखकर लोग कह बैठते है कि ये व्यर्थका मोह करके दुःखी हो रहे है, पर खुदके विषयमे ऐसा नही सोच पाते। वे तो जो काम कर रहे है उसे उस समय समझते है कि हम बहुत अच्छा कर रहे है। बुरे कामको यदि ये बुरा समझे तो यह भी एक ज्ञानप्रकाश है। तो यह जीव खुदके विषयमे नही समझ पाता कि मैं मोह कर रहा हूँ, अज्ञान कर रहा हूँ, ऐसा दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर यदि विषयोमे रमकर बिताया तो समझिये कि दुर्लभ रत्नको पाकर उसे व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। देखिये यह कितनी कठिन बात है जो लब्ध्यपर्याप्तकसे निकलकर इन्द्रियपर्याप्तक बने, अन्य स्थावर बने, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय बने। उसमे भी असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय और सज्ञी पञ्चेन्द्रिय भी बन गए। अब सज्ञी पञ्चेन्द्रिय बनकर भी श्रेष्ठ मन मिला, उत्तम जाति कुल आदिक मिले, सुचिर जीवन मिला, इन्द्रियोकी परिपूर्णता मिली, त्रसगति मिली, सम्यक्त्व भी जगा, ऐसी दुर्लभ बाते पाकर भी यदि विषयोकी ओर झुकाव हो तो समझिये कि इस मानवजीवनको पाकर लाभ कुछ न उठाया। कोई मनुष्य हाथी खरीद ले हजारो लाखो रुपये लगाकर, उसके खाने पीनेमे दसो आदमियोके खर्च बराबर खर्चा करे, पर उस हाथीका उपयोग करे कूडा करकट ढोनेमे तो भला उसे कोई विवेकी कहेगा क्या ? कोई विवेकी तो न कहेगा। यो ही समझिये कि इतना श्रेष्ठ जन्म पाया जो कि बहुत ही कठिन था और पा करके काम किया विषयभोगोमे रमनेका, तो उससे क्या लाभ पाया ?

पशुसम जीवनमें नरभवयापनकी उन्मत्तता--अरे इन विषयोमे तो ये पशुपक्षी भी रत होते है। उन कुत्ता, बिल्ली, कबूतर, मुर्गा, मुर्गी आदिककी योनियोमे रहकर भी तो ये विषयोके काम किये जा सकते थे। देखिये--उन पशु पक्षियोके भी बच्चे होते है, मनुष्योके भी बच्चे होते है, वे भी अपने बच्चोमे मोह रखते है, ये मनुष्य भी मोह रखते है, तो अब बताइये मनुष्यने विवेकका कौनसा काम किया ? रही एक धन वैभवके बढानेकी बात तो जितना उन पशु पक्षियोको साधन जोडनेकी जरूरत है उतना वे जोडते ही है। हा मनुष्योने उनकी अपेक्षा अधिक लगाव लगाया उन साधनोमे। पर यह लगाव इस मनुष्यके हितके लिए नही है। वह तो अशान्तिके लिए है। जितना अधिक वैभव होता जायेगा उतना ही अधिक अशान्ति बढती जायेगी। उसकी कोई हद नही है कि कितना वैभव हो जाय तो शान्ति मिलेगी। रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द आदिकी प्रवृत्तियोमे ही व्यापार करते है। इसी चक्रमे पडकर यह मनुष्य जीवन लोग व्यर्थ ही गँवा देते है, उस तरहसे जैसे कि भस्म के लिए अमूल्य रत्नको लोग जला देते है।

इय सव्व--दुलह--दुलह दंसण- णाणं तहा चरित्तं च।
मुणिऊण य संसारे महायर कुणह तिण्हं पि ॥३०१॥

दर्शन ज्ञान चारित्रके अतिरिक्त अन्यमें आदर करनेसे विपत्तिप्रसङ्ग--इस बोधि दुर्लभ भावनाके प्रकरणमे अब तक यह बताया गया है कि सर्वसे अत्यन्त दुर्लभ चीज दर्शन ज्ञान, चारित्र है, मनुष्य भी हो गए और रत्नत्रयकी प्राप्ति नही है तो उस मनुष्यभवसे फायदा क्या उठा पाया ? मरे फिर अन्य कुगतियोमे जन्म मरण करते रहे, संसारका चक्र लगाया, कौनसा वहाँ फायदा लूटा ? तो सर्व दुर्लभसे दुर्लभ है दर्शन, ज्ञान, चारित्र। इस अन्तस्तत्त्वको यदि पा लिया तो सब कुछ पा लिया। सन्तोष यहाँ ही मिलेगा। बाहरमे कही सन्तोष न मिलेगा। कितनी उम्र हो गयी, कितने ही परिजन थे, कितने ही मित्रजन थे, लेकिन आज क्या रहा ? परिजन मित्रजन कितने ही गुजर गए, उनसे मिला क्या ? मुसीबत जिन्दगी भर भोगा, पर उसके एवजमे इसको मिला क्या सो बताओ। मगर मोह इतना विकट है कि मुसीबत भी भोगते जाते है और वे ही मुसीबतके काम प्यारे लग रहे है। करना पडे यह बात अलग है मगर इसको भीतरमे उसीसे ही रुचि लगी है। यह सोच ही नही सकते कि उससे अलग रहकर हम जिन्दा रह सकते कि नही। वे पदार्थ है। जिन्दा रहनाका दूसरा कोई साधन नही। इसी परिवारमे रहे, राग करें तब तो हमारा जीवन है अन्यथा नही, ऐसा व्यामोह पडा हुआ है। तो यहा ये सभी चीजे धन वैभव आदिक मिलना तो सुलभ है पर एक यथार्थ ज्ञानका मिलना दुर्लभ है। इस सम्यग्ज्ञानके प्राप्त करने वाले बिरले ही लोग है। जिसने इस सम्यग्ज्ञानको पाया वह जान लेगा कि यही

सर्वस्व है, इसके सिवाय बाकी जगतके समस्त पदार्थ तुच्छ है। जिनकी समझमे यह आ गया उनको शान्ति है सन्तोष है, क्योकि तुच्छ तो है ही, अब उनको समझते है कि ये ही मेरे जीवनके अग है, ये ही मेरे सर्वस्व है, उनका उपयोग उस ओर झुक गया तो बाह्यपदार्थोमे जब उपयोग भाव गया तो उसको वहाँ मिलेगा क्या ? वे तो बाह्यपदार्थ है, उनका उत्पादव्यय उनमे है, उनका परिणमन उनमे है। उनसे मुझे कुछ मिल नो सकता नही तो वहाँ हम दु खी होते है। इतना ही क्यो हुआ, इतना क्यो न हुआ, यो कल्पनाये करके यह जीव दु खी होता है। देखिये लोकमे दूसरी आफत यह लगी है कि पडोसके लोग, देशके लोग धन वैभवके पीछे बढते चले जा रहे है, उन लोगो के सामने हम आदर नही पा रहे है, उनकी बातोको देखकर यह जीव सम्यग्ज्ञानमे टिक नही पाता। जैसे जुवारियोके अड्डेमे जुवा खेलने वाले व्यक्तिको वे जुवारी लोग उठने नही देते, अगर वह उठना भी चाहे कि चलो जो पैसे बच गए उनसे ही गनीमत है, पर वे जुवारी लोग यह कहकर कि बस हो गए, इतनी ही दम थी , उठने नही देते। ऐसे ही यहाँ किसी को ज्ञान भी हो जाय और सोचे कि हमे तो ज्ञानमे ही रमण करना है, क्या पडी है हमे दुनियाके झझटोसे, इन लोगोसे क्या लेना देना है, मगर लोगोके बीच रहते है सो उनके सगसे प्राय वह यहाँसे हट ही जाता है। भीतरकी वृत्तिसे वह अलग हो ही जाता है, तो दूसरी आफत यह लगी हुई है।

आदरणीय रत्नत्रयभावमें सम्यक्त्वकी आद्यता—दुर्लभ चीज है दर्शन, ज्ञान चारित्र। ऐसा जान करके इस ससारमे बस इन तीन चीजोका ही (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) आदर करे। सम्यक्चारित्र रूप जो परिणाम है, अपने आपके सहज स्वरूपकी श्रद्धा होना, उस ही सहज स्वरूपका बोध रहना, इसी सहज स्वरूपमे मग्न रहना, यह स्थिति मिले यही सारकी चीज है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी चीज मिल जाय, जुड जाय, ढेर हो जाय, वह हमारे हितकी चीज नही है, ऐसा सोचकर इस ही रत्नत्रयभावमे महान आदर करना चाहिए, अन्य कोई स्थिति हमारे आदरके योग्य नही है। इस प्रकरणमे बताया है कि एकेन्द्रियसे लेकर विकास करते-करते रत्नत्रयकी प्राप्ति पर्यन्त जो हमारा विकास हुआ है यह दुर्लभसे दुर्लभ बात हुई है। अब दुर्लभसे दुर्लभ जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र पाया है इसकी रक्षा करें और इस उपायसे संसारके सकटोसे सदाके लिए छूटनेकी बात वना ले। सम्यक्त्व क्या है ? तो निश्चयमे तो परद्रव्यसे, परभावसे भिन्न अपनी ही सत्तासे सहज शुद्ध जो चैतन्यस्वरूप है तन्मात्र अपने आपको अनुभवना, मै यही हू, यही है सम्यक्त्व। और व्यवहारमे अष्ट अङ्ग ही सम्यक्त्व है। जैसे ८ अगोको छोडकर शरीर और क्या ? जैसे पीठ, पेट, दो हाथ, एक मस्तक, दो पैर और एक कमरका भाग, जिसपर हम आप बैठे रहते है,

ये ८ अंग कुछ भी न सोचे तो शरीर और रहेगा क्या ? इन ८ अंगोका समुदाय ही तो शरीर है । इसी प्रकार व्यवहारमे ८ अगोका समुदाय ही तो सम्यक्त्व है और ये ही ८ अग व्यवहार दृष्टिसे व्यवहार सम्यक्त्व बनते है और निश्चय दृष्टिसे निश्चय सम्यक्त्व होते है ।

अष्टाङ्ग सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान व चारित्रमे आदर करनेकी प्रेरणा—नि शकित अग जिनवचनोमे शका न करना, जिनवाणीकी बात सर्व प्रमाणीक है, उसमे सदेह न करे, नि शकित अग हो गया और निश्चयसे आत्माका जो अजर अमर अजन्मा स्वरूप है, शाश्वत ज्ञानानन्दस्वरूप है उसमे शका न करना, इसमे कोई नई बात आ ही नही सकती, इसमे कोई गडबड होते नही, मै ऐसा अमूर्त चैतन्यस्वरूप हू, यही है निश्चयसे नि शकित अंग । नि काक्षित अग धर्मधारण करके भोगविषयोकी चाह न करना और निश्चयसे कोई भी पदार्थ, कोई भी भाव चाहनेके योग्य नही है । किसी भी भावमे लगाव न रखना, एक अपने चैतन्यस्वरूपमे मग्न होनेकी धुन रहे, लो निश्चय सम्यक्त्व हो गया । धर्मात्माओसे ग्लानि न करना सो निर्विचकित्सा अग है और अपनेमे जो रागद्वेषादिक भाव होते है, क्षुधा तृषा आदिककी जो वेदनाये होती है उनका भी विषाद न करना, उनका ज्ञाताद्रष्टा रहना, उनमे अपनेको दु खी न बनाना यह निर्विचकित्सा भाव हो गया । कुपथको देखकर, कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुको निरखकर उनको भला न मानना, यह श्रद्धान रखना कि सच्चे देव, शास्त्र गुरु ही सारभूत है यह अमूढ दृष्टि है । और, निश्चयसे आत्माका जो स्वरूप है उस स्वरूपमे व्यामोह न करना, अर्थात् उसके विपरीत कुछ न समझना, सही सहज स्वरूप जानना अमूढ दृष्टि हो गया । निजगुण व पर अवगुणका ढाकना व्यवहार उपगूहन है, अपने गुणोका विकास करना और अपने दोषोको दूर करना अन्त उपगूहन हो गया । अपनेको व परको धर्ममे स्थिर करना स्थितिकरण है, अपनेमे धर्मकी प्रभावना करना सो प्रभावना अग है । यो ८ अगोका समुदाय वही सम्यक्त्व है और उसीका परिज्ञान करना सम्यक्ज्ञान है । उसीमे उपयोगको रमाना सम्यक्चारित्र है । इनको महत्त्व दे, इनके सिवाय अन्य प्राप्त समागमोको महत्व न दे । दुर्लभसे दुर्लभ रत्नत्रय भाव है उसका साधन पाया तो एकचित्त होकर रत्नत्रयकी आराधनामे लग जाओ । अपनी अमूल्य निधि अपनेको मिले एकमात्र यही पुरुषार्थ करो ।

जो जाणदि पच्चक्ख तियाल--गुण--पज्जएहि सजुत्त ।
लोयालोय सयल सो सव्वण्हू हवे देवो ॥३०२॥

धर्ममूल, धर्ममूर्ति व धर्मफल श्री सर्वज्ञदेवका स्मरण—जो आत्मा तीन कालवर्ती गुणपर्यायोसे सयुक्त समस्त लोकालोकको प्रत्यक्ष जानता है वह सर्वज्ञदेव होता है । यह धर्मानुप्रेक्षा चल रही है । धर्मके सम्बन्धमे ज्ञानी चिंतन कर रहा है कि धर्मके मूल सर्वज्ञदेव

है। जितना भी धर्मका प्रसार है, लोगोको ज्ञान प्राप्त हुआ है उस सबका मूल आधार तो सर्वज्ञदेव है अर्थात् सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि सुनकर गणधरदेवने उसका अवधारण किया और गणधरदेवसे सुनकर अन्य आचार्योंने निवद्ध किया और उनकी परम्परासे यह सब धर्मोका ज्ञान चल रहा है तो चूंकि धर्मोंके मूलमे सर्वज्ञदेव है और साक्षात् धर्मकी मूर्ति सर्वज्ञदेव है। धर्मका फल भी प्रकट वही है, इस कारण धर्मानुप्रेक्षाके वर्णनके प्रारम्भमे सर्वज्ञदेवका स्मरण किया है और उनका लक्षण बताया है। जो प्रभु समस्त द्रव्योको उनके गुणोको और भूत भविष्य वर्तमानकी सभी पर्यायोको जानता है उसे सर्वज्ञ कहते है। देवका अर्थ है जो परम आनन्द पदमे क्रीडा करे उसे देव कहते है। देव दिव् धातुसे वना है जिसका अर्थ है क्रीडा करना। जो देवगतिमे जावे वे भी देव है, वे इन्द्रिय सुखमे क्रीडा करते है अतएव वे ससारी देव है और सर्वज्ञदेव करते है परम आनन्दस्वरूपमे क्रीडा, इस कारण उन्हे देवाधिदेव कहते है, जो अनन्त चतुष्टयस्वरूप परमात्मतत्त्वमे निरन्तर रमते रहे उन्हे कहते है देव। तो ये देव सर्वज्ञदेव ही हो सकते है अन्य और कोई जो सर्वज्ञ नही है वे देव नही हो सकते है।

वीतरागता व सर्वज्ञतासे ही देवत्वका अभ्युदय—लोकमे जिस चाहेको देव माननेकी प्रथा चल रही है, किन्तु उनका चरित्र जब सुनते है तो वहा सर्वज्ञताकी सिद्धि नही होती। कभी किसी देवपर विपत्ति आयी तो वह दूसरेकी शरणमे गया, उसने उसे समझाया, तो ऐसी घटनाये जब यहा चरित्रमे पायी जाती है तो उनसे सिद्ध होता है कि ये स्वय सब के ज्ञाता न थे तभी ये सकटमे आये। एक कथानक यो बताया जाता कि एक देवताकी स्त्री पर कोई पुरुष मुग्ध हो गया, उसने आराधना की देवताकी, वह प्रसन्न हो गया। प्रसन्न होने पर कहा कि मागो वरदान क्या मागते हो ? तो आराधकने कहा कि हमको यह वर दीजिए कि मै जिसके शिर पर हाथ रखूँ वह भस्म हो जाय। तो देवताने कहा—अच्छा ऐसा ही हो जायेगा। पुरुषकी नियत तो बदली ही थी। उसने सोचा कि हम इन देवतापर ही हाथ रखे तो ये भस्म हो जायेगे और इनकी स्त्री हमे मिल जायेगी। सो जब वह पुरुष उस पर हाथ रखने चला तो वह डर कर भागा। विष्णुके पास पहुचा। विष्णुने उसकी छल वलसे रक्षा की। स्वय उसकी स्त्रीका रूप धारण किया और उस भस्मासुर देवके पास पहुचा। जब भस्मासुरने उस स्त्रीसे प्रेम करना चाहा तो उसने कहा—आप मेरेसे यो न मिलो, हमारे पति जब क्रीडा करते थे तो ताण्डव नृत्य करते थे। उस नृत्यमे एक हाथ कमर पर और एक हाथ शिरपर रखा करते थे, आप भी ऐसा ही कीजिए, तव हमसे मिलिये। जब भस्मासुरने एक हाथ कमर पर और एक शिरपर रखकर ताडव नृत्य किया तो वह स्वयं भस्म हो गया। तो इस तरह छल बल करना, इस तरहके ददफदमे पडना

यह कोई भगवानका काम है क्या ? जो सर्वज्ञ होगा वह अपने परम आनन्द स्वरूपमे क्रीडा कर सकता है।

देवस्मरणमें कृतज्ञताकी सिद्धि—जो पुरुष जानता देखता है समस्त लोकालोकको प्रत्यक्ष एक साथ वही धर्मका मूल है, धर्मकी मूर्ति है और धर्मका फल है। यहा कोई यह आशका न करे कि साधुजनोमे जो श्रुतकेवली होता है वह भी समस्त काल और लोकालोक को जानता है। तो वह सर्वज्ञ हो जायगा क्या ? ये आशकाये न करना चाहिए कि सबको जाननेके उपाय दो है—एक तो श्रुतज्ञान (परोक्ष ज्ञान) और एक केवलज्ञान। केवल ज्ञान ने समस्त लोक और अलोकको जान लिया और श्रुतज्ञान भी जान लेता है, मगर श्रुतज्ञान जानता है परोक्षरूपसे, एक एक पदार्थको न्यारा करके नही। जैसे कोई बडा श्रुतज्ञानी हो गया तो वह यो कहेगा कि ३४३ घनराजू लोक है और इससे बाहर अनन्त अलोक है। परोक्षरूपसे कहा गया, ऐसा स्पष्ट जानता तो नही है कि यह जगह यह है, यह जगह यह है, जैसे आँखोसे कुछ देख लेते है इस तरह तो नही जानते, मगर केवली भगवान समस्त लोका-लोकको स्पष्ट जानते है। तो प्रत्यक्ष और परोक्षमे बडा अन्तर है। जो प्रत्यक्ष रूपसे समस्त लोकालोकको जान ले वह है सर्वज्ञदेव। तो यो सर्वज्ञदेवके प्रसादसे मिला धर्मका स्वरूप सो धर्मके फलको साक्षात् समझनेके लिए जो कृतज्ञता जगी, जिनके प्रतापसे हमे धर्मका मार्ग मिला है उनका स्मरण करना ही चाहिए। इस कृतज्ञताके कारण इस गाथामे सर्वज्ञदेवका स्वरूप बताते हुए भाव नमस्कार किया है।

जदि ण हवदि सव्वण्हू ता को जाणदि अदिदिय अत्थं।
इदिय-णाण ण मुणादि थूलं पि असेस-पज्जाय ॥३०३॥

सर्वज्ञके अस्तित्वकी जिज्ञासा—कोई दार्शनिक ऐसे है जो सर्वज्ञको नही मानते। उन दार्शनिकोके प्रति कहा जा रहा है कि यदि सर्वज्ञदेव न हो तो अतीन्द्रिय पदार्थको कौन जानेगा ? इन्द्रिय ज्ञान तो समस्त पर्यायियुक्त स्थूल पदार्थको भी नही जान सकता। इन्द्रिय से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह अतीन्द्रिय पदार्थको जानेगा किस तरह ? इससे यह स्वीकार करना चाहिए कि कोई सर्वज्ञ होता है जो कि समस्त अतीन्द्रिय पदार्थोको स्पष्ट जान लेता है। यहाँ कोई दार्शनिक प्रश्न कर रहा है जो सर्वज्ञ नही मानता। कहता है कि सर्वज्ञ नही है यह बात तो स्पष्ट सिद्ध है, क्योकि सर्वज्ञ पाया नही जा रहा, अगर हो तो उसे हमे आँखो दिखाओ या उसके पास ले चलो। तो सर्वज्ञ नही है क्योकि उसकी उप-लब्धि नही पायी जा रही और किसी भी प्रमाणसे सर्वज्ञ सिद्ध नही होता, इस कारण सर्वज्ञकी जबरदस्ती सिद्धि करना युक्त नही है। दार्शनिकोमे जो लोग सर्वज्ञ नही मानते उनमे दो ही प्रधान है—एक मीमासक और दूसरे चार्वाक। चार्वाक तो एकदम नास्तिक

है, वे किसी अमूर्त, अदृश्य पदार्थको मानते ही नही है, उनको जो आँखो दिखे उसे ही मानते है। मीमासक भी जीवको तो मानते है, पर इतना ही मानते हे कि वह क्रियाकाण्ड करके, यज्ञ विधान आदिक करके वैकुण्ठको प्राप्त हो जाय, मगर उस वैकुण्ठकी भी हद होती है। जब समय पूरा हो जाता हे तो वहाँसे गिरना पडता हैं, फिर ससारमे जन्ममरण करना पडता है, इनके सिद्धान्तमे केवल एक ही ईश्वर हे सदामुक्त, सदाशिव जो कि न कभी ससारी था और न कभी ससारी वनेगा। लेकिन ससारकी सारी विडम्वनायें कराता रहता है। तो मीमासक दर्शनमे सर्वज्ञको नही माना, उनकी ओरसे यह आशका हो रही हे कि सवज्ञ तो है ही नही, क्योकि वह दिखता नही ओर प्रत्यक्ष अनुमान आगम आदिक किसी भी प्रमाणसे उस सर्वज्ञकी सिद्धि होती नही।

सर्वज्ञत्वकी प्रसिद्धि---जो पुरुष सर्वज्ञ नही मानते उनके प्रति समाधानमे कहा जा रहा है कि यदि सर्वज्ञ नही होता तो अतीन्द्रिय पदार्थ जो इन्द्रिय द्वारा अगम्य है ऐसे सूक्ष्म देशकालके दूरवर्ती पदार्थोंको फिर कौन जानेगा ? सूक्ष्म पदार्थ तो परमाणु आदिक है, सो मीमासक परमाणु आदिकको मानते तो है, पर यह वतलाओ कि जो चीज किसीके द्वारा जानी नही जा सकती वह सत् कैसे हो सकती है ? तो सूक्ष्म परमाणु आदिक और अन्तरित पदार्थ याने जो स्वभावसे बहुत दूर है, अतरित है, ऐसे जीव पुण्य पाप आदिक इनको कौन जानेगा ? यदि सर्वज्ञ न हो, मीमासक मानते तो है इसको, जीव भी है, पुण्य पाप भी है, मगर इनके जानने वाले यदि कोई नही हैं तो फिर ये क्या हैं ? कुछ भी नही। यदि सर्वज्ञ न हो तो जीव पुण्य पाप आदिकको कौन जान सकेगा ? इसी प्रकार कुछ पदार्थ होते है कालसे अतरित याने बहुत पहिले समयमे हुए। जैसे राम रावण आदिक इनकी चर्चा पुराणोमे चलती है, मगर बहुत काल पहिले ये हुए है। अगर सर्वज्ञ न हो तो इन्हे जाने कौन और किस तरह इनका चरित्र आज तक चला आ सकता था ? कुछ पदार्थ दूरवर्ती होते हे जैसे मेरूपर्वत, नरक स्वर्ग आदिक। इन पदार्थोंको भी कौन जानेगा यदि सर्वज्ञ न हो ? यदि सर्वज्ञ न होता तो इन पदार्थोकी चर्चा आज हो न सकती थी। इससे सिद्ध है कि सर्वज्ञ है, सवका कोई प्रत्यक्ष ज्ञाता है, क्योकि ये पदार्थ अनुमेय वन रहे है। जिस चीजका अनुमान किया जाता हो उस चीजका कोई स्पष्ट जानने वाला भी होता है। जैसे पर्वतमे धुवाँ देख करके यह अनुमान किया कि इस पर्वतमे अग्नि है धुवाँ होनेसे। तो जब अग्नि अनुमेय बन गयी तो यह भी निश्चित है कि कोई पुरुष उस अग्निको साक्षात् जानता भी है। जो उस पर्वतपर रहने वाला पुरष होगा और उसके निकट कोई पहु ा हुआ हागा वह तो स्पष्ट जान लेता है कि यह अग्नि है। अथवा वही अनुमाता पुरुष निकट जाकर स्पष्ट जान लेगा कि अग्नि है यह तो जो पदार्थ अनुमेय होते है उनका कोई न कोई स्पष्ट ज्ञाता होता

है। तो जब ये परमाणु जीव पुद्गल, पुण्य पाप, मेरूपर्वत, नरक स्वर्ग आदिक, राम रावण आदिक ये सब ज्ञेय बन रहे है तो उनका कोई प्रत्यक्ष ज्ञाता भी है, यो सर्वज्ञकी सिद्धि होती है। इन्द्रियज्ञान तो अपने नियत विषयको जानेगा, इन सूक्ष्म पदार्थोको नही जान सकता, और इन्द्रियज्ञान इन स्थूल पदार्थोको जानेगा सो भी स्थूल पदार्थमे जो जो परिणतियाँ है वे सब परिणतियाँ सत् नही जानी जा सकती। कुछ एक-दो घटे बात जानेगी। ये इन्द्रियाँ जिसे जानती है उसे भी पूरे तौरसे नही जान सकती। तब फिर इन समस्त पर्यायो सहित इन लोकालोकवर्ती पदार्थोको सर्वज्ञ ही जान सकता है। इस इन्द्रियज्ञानमे सामर्थ्य नही है कि इन पदार्थोको जान सके। इस प्रकार सर्वज्ञ भगवानका अस्तित्व सिद्ध होना है। अब यह सुनो कि सर्वज्ञदेवने जो उपदेश किया है वह धर्म क्या है ? उस धर्मको अगीकार करने से ही जीवका उद्धार हो सकता है।

तेणुवइट्ठो धम्मो सगासत्ताण तह असगाण।
पठमो बारह-भेओ दह-भेओ भासिओ विदिओ ॥३०४॥

सर्वज्ञोपदिष्ट द्विविध धर्म—सर्वज्ञदेवने जो धर्मका उपदेश किया है वह दो प्रकारके पुरुषोके लिए किया गया है। एक तो गृहस्थ दूसरे मुनि। जो सगमे रह रहे है संगासक्त है, परिग्रह रखे बिना जिनका गुजारा नही है उनका धर्म बताया है और जो सग-रहित है ऐसे साधुपुरुषोका धर्म बताया। दो प्रकारके धर्मोका वर्णन किया। इस प्रसगमे यह भी सोच लेना कि दो प्रकारके धर्म चारित्रकी अपेक्षा बताये गए है। पर इन दोनो प्रकारके धर्मोका मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यक्त्व न हो तो श्रावकके व्रत भी धर्म न कहला सकेगे और मुनियोके व्रत भी धर्म न कहला सकेगे। तो सम्यग्दर्शनका कुछ वर्णन आगे आयेगा, उससे पहिले यह बताया जा रहा कि धर्म गृहस्थोका और साधुओका दो प्रकारसे बताया है सर्वज्ञदेवने। जिसमे गृहस्थोका धर्म तो १२ प्रकारका बताया है और साधुओका धर्म १० प्रकारका बताया है। १२ भेद है—एक अविरत सम्यक्त्व व ११ प्रतिमाये। ऐसे १२ भेदो वाला धर्म तो श्रावकका है। इसका वर्णन इसी प्रकरणमे स्पष्टरूपसे किया जायेगा। मतलब यह है कि इन बारह पदोमे ५ पापोके एकदेश त्यागका निर्देशन है तार-तम्यरूपसे। यह तो है गृहस्थोका धर्म। चूँकि वे गृहस्थ है सो उनका सर्वदेश त्याग नही हो सकता। और मुनियोका धर्म है उत्तमक्षमा, मार्जव, आर्जव आदिक १० प्रकारके धर्म, उनका पालन। यह है मुनियोका धर्म। इस प्रकार धर्मके दो भेदोकी सूचना करके पहिले श्रावकके जो १२ भेद कहे है उन १२ भेदोको एक समीचीन पद्धतिसे बतला रहे है।

सम्मद्दसण-सुद्धो रहिओ मज्जाइ-थूल-दोसेहि।
वय-धारी सामाइउ पव्व-वई पासुयाहारी ॥३०५॥

राई--भोयण–विरओ मेहुण--सारभ–सग -चत्तो य ।
कज्जाणुमोय--बिरओ उद्दिट्ठहार विरदो य ॥३०६॥

श्रावकके भेदोंमे प्रथम प्रकार—पहिला प्रकार हे सम्यग्दर्शनका शुद्ध होना । २५ दोषोसे रहित शुद्ध निर्मल सम्यक्त्वका जगना यह प्रथम धर्म है । यहाँ बारह भेद बताये जा रहे है इस तरह कि ११ तो प्रतिमाये है और एक है सम्यक्त्व । तो सम्यक्त्वको पहिले बताया और ११ प्रतिमाये इसके पश्चात् बतला रहे है । यो बारह भेद गृहस्थ धर्मके कहे जा रहे है । सम्यग्दर्शन कहते है आत्माके सहज स्वरूपके दर्शन होनेको, अनुभव होनेको । मै वास्तवमे क्या हू इसका परिचय हो जाना सो ही सम्यक्त्व है । खुद है और खुद वह है जो अनादिसे है, अनन्तकाल तक रहेगा । पदार्थका स्वरूप पदार्थसे कभी बिछुडता नही है । जैसे अग्निका स्वरूप गर्मी है । तो गर्मी कभी बिछुडती नही है । सदा काल रहती है और गर्मी बदल जाय तो अग्नि भी खतम हो जाय । तो यहा तो अग्नि द्रव्य नही है किन्तु पर्याय है, अतएव इस तरह कह देते है किन्तु पदार्थोमे पदार्थोका स्वरूप त्रिकाल भी न्यारा हो नही सकता । मेरा स्वरूप वह है जो मेरे सत्त्वके कारण मुझमे पाया जाय । वह स्वरूप है चैतन्यमात्र । उस स्वरूपपर यदि दृष्टि जाय तो जीवकी आकुलताये सब दूर हो जाये । क्या है ? जो मेरा स्वरूप है सो मुझमे रहेगा, सदा रहेगा, जो मेरा स्वरूप नही है वह मुझमे अब भी नही है, आगे भी न होगा । जितने बाह्यपदार्थ है वे सब मेरे स्वरूपसे भिन्न है, इनका जो बनता हो सो बने । इनमे जो बात होती हो सो हो । सम्यक्त्वके कारण ज्ञानीके हृदयमे इतना बडा साहस जगता है कि वह परपरिणतिको निरखकर व्याकुल नही होता । जो होता हो सो हो, परकी बात है, उससे मेरा क्या सम्बध है, यह विश्वास सम्यग्दृष्टिके रहता है ।

सम्यक्त्वकी अमीरी–अनुपम आनन्द आता है सम्यक्त्वके उदय होनेपर, इसको कोई व्यथा ही नही रहती, कभी मरण भी हो, इस देहको छोडकर जा रहा हो, वहाँ पर भी यह बडा प्रसन्न रहता है । क्या है ? मोही जीव ही तो मृत्युके समयमे दु ख मानते, कि बडे कष्ट से इतना धन कमाया, अब इसे छोडकर जा रहे है लेकिन ज्ञानी तो यह जानता हे कि मैंने कुछ नही कमाया, मेरा यहाँ कही कुछ नही है । केवल हमने परिणाम भर किया था, उस परिस्थितिमे हमने नाना तरहके भाव बनाये थे, पर उनसे मेरा सम्बध कुछ नही । मेरा स्वरूप तो केवल चैतन्यमात्र है । जो है मेरे साथ उसके साथ ही मै जा रहा हूँ । जो मेरा नही है वह मेरे साथ अब भी नही है, न कभी साथ रहा और न कभी साथ रहेगा । मेरा वास्तविक स्वरूप तो मेरे साथ ही है, मेरेमे पर्याय है, अतएव इस तरह कह देते है किन्तु रहेगा । इसी निज स्वरूपको हम देख रहे है, वही मेरी दुनिया है, वही मेरे परभवकी दुनिया है, वही मेरा सर्वस्त्र है यो जिनकी प्रतीति है उनको दु ख काहेका ? जिसे दु खसे दूर होना हो वह

सर्व प्रयत्न करके सम्यक्त्व उत्पन्न करे। सम्यक्त्वके हुए बिना कोई पुरुष अमीर नही कहा जा सकता। वे सब गरीब है जिनको सन्तोष नही है। उनको सहज आनन्दका अनुभव नही जग सकता। जिनको निरन्तर आकुलता रहती है, आगे अधकार ही अधकार बसा है, सत्य स्वरूप समझमे नही आता, वहाँ विह्वलताका क्या ठिकाना? भले ही कोई करोडपति हो जाय, फिर भी यदि सम्यक्त्व न हो तो फिर भी वह महा गरीब है। उसे शान्ति सन्तोषका अवसर नही मिल सकता। प्रभुका जो आनन्द है उसकी झलक नही हो सकती इसलिए वह गरीव है। और, कोई कितना ही गरीब हो लौकिक दृष्टिमे, उसने यदि अपने आत्माके स्वरूपका दर्शन कर लिया है तो जान लो कि उसको सारा वैभव तृणवत है। जैसे जीर्ण तृण है उससे कौन मुहब्बत करता है? बल्कि उससे तो सभी लोग उपेक्षा करते है। तो इसी तरह जिस ज्ञानी ने यह समझ लिया कि मेरे स्वरूपसे बाहर जो कुछ है बाहर ही है, वह मेरे काममे जरा भी आने वाला नही है, ऐसी प्रतीति उसके चित्तमे बसी है। जिसके बलपर वह अमीर कहलाता है, वास्तविक धनी है।

श्रावकका प्रथम भेद विशुद्ध सम्यग्दृष्टि—अपने आपके सहज स्वरूपका अनुभव होना, प्रतीति होना सो सम्यग्दर्शन है। वह शुद्ध कब है, कैसे शुद्ध है, जिसमे कोई मूढता नही। कोई लोग ऐसा सोचते है कि इस पर्वतसे गिरकर मरे तो बैकुण्ठ हो जाय, इस नदीमे नहावे तो बैकुण्ठ हो जायगा। यह मूढता ही तो है। रागी द्वेषी कुगुरुवोके बाहरी चमत्कार देखकर उनमे आसक्त हो जाते है, ये ही सच्चे गुरु है, रागीद्वेषी गुरुओको निरखकर विकल्प करके वहाँ भी भक्ति रहा करती है, तो ज्ञानी जीव मूढताओसे रहित है, उसके किसी भी प्रकारका मद उत्पन्न नही हो सकता। जाति, कुल, वैभव, प्रतिष्ठा आदिक किसी भी चीजका घमड नही होता। ८ प्रकारके भेद बताये गए है। अच्छी जातिमे उत्पन्न होनेका घमड, अच्छे कुल का घमड, ज्ञानका घमड, पूजा प्रतिष्ठा मिलती हो उसका गर्व, शरीरमे बल विशेष हो उसका गर्व, कुछ ऋद्धि चमत्कार हो उसका गर्व, तपश्चरणका घमड, शरीर सुन्दर हो उसका घमड, ये ८ प्रकारके मद सम्यग्दृष्टि पुरुषमे नही होते, और न वह कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु या उनके सेवकोमे अपनी प्रीति करता है। जहाँ शका आदिक कोई दोष नही। यो पच्चीस दोषोसे रहित सम्यक्त्वका पालन करे वह है श्रावकका प्रथम धर्म।

सम्यग्दृष्टिकी निःशङ्कता व निराकांक्षता—सम्यग्दर्शनमे शका आदिक कोई किञ्चित् दोष हो तो वह सम्यग्दर्शन विशुद्ध नही कहलाता है। अपने आपके स्वरूपमे कभी सदेह हो जाय, किसी प्रकारका भय हो जाय कि अब मेरी जिन्दगी किस तरह चलेगी, मेरा परलोक कैसे होगा? शरीरवेदनाका क्या परिणाम होगा, अथवा अभी मरण तो न आयेगा आदिक किसी भी प्रकारका भय हो तो वह सम्यक्त्वका दोष है। जिस जीवको सम्यक्त्व हो गया

उसको क्या भय ? जिसने सबसे निराले ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको निर्णयमे ले लिया उसको अब शंका क्यो होगी ? यह मै स्वरक्षित हू क्योकि सत् हू, जो सत् है वह कभी मिटता नही और उसमे किसी दूसरेका सम्बन्ध नही, ऐसा जिनकी प्रतीतिमे है उनको क्या शका ? उसी तरह जिनेन्द्र भगवान्के वचनोमे भी कही शका नही है। उसने खूब परीक्षा करली है। स्याद्वादकी कसौटी पर कसकर कि जो स्वरूप जैन शासनमे बताया गया वह प्रमाण सिद्ध स्वरूप है। सम्यग्दृष्टि जीवको कभी भोगोकी आकाक्षा नही र ती। भोग भोगता है, इच्छा होती है, मगर ऐसा कुछ नही है कि धर्म करके इच्छा की जाती हो। जैसे जो अतिव्यामोही पुरुष है वे पूजा आदिक करके पुत्र चाहेगे, विवाह चाहेगे, ऐसी वृत्ति सम्यग्दृष्टिकी नही होती। चूकि वह गृहस्थीमे रह रहा है दुकानमे जायेगा, वहाँ सोचेगा कि आप हो, इतना सोचनेसे सम्यक्त्व नही बिगडता, किन्तु धनमे ही आसक्ति हो जाय, प्रत्येक उपायसे धनकी ही इच्छा बनाये तो समझो वहाँ सम्यक्त्व बिगड गया।

सम्यग्दृष्टिकी निर्विचिकित्सा—सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी अपनी किसी परिस्थितिमे घबडाहट नही लाता कि क्या करूँ, इस प्रकारकी वेदना अनुभवमे नही लाता, क्योकि वह जानता है कि जो सुख दु खके प्रसग आते है ये अहेतुक है। मेरा स्वरूप तो नित्यानित्यात्मक है। यह आत्मा किन तत्त्वोसे बना, इसका स्वयं आकार क्या है ? तो आकार है ज्ञान और आनन्द। ज्ञान और आनन्दस्वरूपसे रचा हुआ यह मै आत्मा हू। तो मूलमे भीतरमे मेरेको कोई कष्ट ही नही है, आनन्दस्वरूप मेरा है। जब मै अपने स्वरूपसे हटकर बाहरमे कुछ निहारता हूँ तो मेरा स्वरूप विकृत हो जाता है। ज्ञानीको किसी क्लेशमे म्लानता नही होती। अपने आपमे रुचि होनेसे वह अपने स्वरूपको निहारता है। इसके फल मे बा रमे इतनी समता हो जाती कि उसे सब जीव अपने समान नजर आते है, और साधारणतया उन सबकी सेवा तो रहती ही है, पर धर्मात्माओकी सेवामे रहे और धर्मात्माओको दस्त कय आदिक हो फिर भी रच भी ग्लानि नही करता, क्योकि धर्ममे उसे बडा अनुराग है। जैसे यहाँ मातायें अपने बच्चेकी टट्टी, नाक आदिकके पोछनेमे ग्लानि नही होती, क्योकि उस बच्चेसे प्रेम रखती है, इसी प्रकार धर्मात्मा पुरुष किसी धर्मात्माकी सेवा करनेमे कोई ग्लानि नही करता।

सम्यग्दृष्टिका अमूढत्व व उपगूहन—सम्यग्दृष्टि जीवको अपने आपके स्वरूपके बारे मे पूर्ण सावधानी रहती है। मूढता उसके अन्दर नही है, क्योकि उसने साक्षात् अनुभव कर लिया अपने स्वरूपको। जैसे जिस पुरुषने कुछ बात आँखोसे देखली, उसके विरुद्ध वह मानता नही है। वह समझता है कि मैने यह सब अपने आँखो देखा। कैसे अन्य बात मान ली जाय ? तो आँखो देखी भी बात झूठ हो सकती है, मगर अपने अनुभवमे उतरी हुई

बात कभी झूठ नही हो सकती। ऐसी भी घटनायें हैं कि आँखो देखी बात भी झूठ निकल आये, मगर अपने हृदयमे, अपने अनुभवमे जो बात उतर आये, वह झूठ नही होती। ज्ञानी पुरुषने बाह्यपदार्थोकी उपेक्षाके बलसे, अपना दिलमे किसी भी परको न बसानेके उपायसे अपने आपमे ऐसा परमविश्राम पाया है कि जिससे अपने आपके सहज सत्यस्वरूपका अनुभव हो गया है। तो अब वह उसके विपरीत किसीके बहकावेमे आकर अपने स्वरूपकी श्रद्धा नही छोड सकता। ज्ञानी जीव तो ऐसा दृढ रहता है, पर अज्ञानी व्यामोही जीव अपने आपके स्वरूपकी बात भी क्या जाने ? कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुके कुछ थोडेसे चमत्कारोको देखकर वहाँ ही एकदम भक्ति बन जाती है। ज्ञानी पुरुष अपनी उस ज्ञाननिधिको इस तरह गुप्तरूपसे निरख-निरखकर तृप्त रहता है, जैसे किसी दरिद्र पुरुषको कही निधि मिल जाय तो उसे एकान्तमे ले जाकर निरख-निरखकर खुश रहता है। सबके बीच तो रखना नही, क्योकि उसे कोई लूट सकता है, तो वह एकान्तमे जाकर अपनी निधि निरखकर तृप्त रहता है। ज्ञानी जीव अपने उस ज्ञानको गुणको उन्नतिको लोगोको यो नही बताते कि बता देनेसे फिर गुण हल्के हो जायेंगे, ओछे बन जायेगे, क्योकि जब अपने मुखसे कह दिया तो यहाँ उन गुणोका बोझ न रह सकेगा। तो ज्ञानी पुरुष उस ज्ञाननिधिको या गुणविकासको बाहर नही दिखाना चाहता। वह तो अपने उपयोगको अपने आपमे रख करके वही तृप्त रहा करता है। जब कि मोही जीव गुण न हो तो भी अपने मुखसे गुण बखानते रहते है और दूसरोके दोष निरखते रहते है। यह वृत्ति ज्ञानी पुरुषकी नही होती। उसे तो एक काम पडा हुआ है किसी भी प्रकार इन बाह्य उपद्रवोमे, शरीरबन्धनसे, कर्मबन्धनसे, विकल्पबन्धनसे मुक्त हो जाऊँ, और अपने आपके स्वरूपमे रमकर सन्तुष्ट हो जाऊँ। उसे बाहरकी विडम्बनाये नही सुहाती।

सद्दृष्टिका स्थितिकरण, वात्सल्य व प्रभावन--ज्ञानी पुरुषकी यही भावना रहती है कि मै अपने धर्ममे ही सदा स्थिर रहू। चूँकि जहाँ रागद्वेप उठाने पडते है फिर भी उसका यही प्रयत्न रहता है कि मैं इनसे हटकर अपने आपकी इस ज्ञानानुभूतिमे ही तृप्त रहू। और, किसी दूसरे धर्मात्माको विचलित होते देखता है तो उसे उपदेश देकर या अन्य जिस किसी भी प्रकार हो उसको धर्ममे स्थित करता है। अज्ञानी पुरुषोके धर्मात्माओमे वात्सल्य नही होता। अज्ञानीको वात्सल्य उनमे होता है जिनमे मोह है। घरके बच्चोपर, स्त्री आदिक पर चाहे सारा धन खर्च हो जाय, चाहे जान भी देनी पडे तो सदा तैयार रहते है लेकिन धर्म पर या धर्मात्मापर कोई विपदा आये तो उसमे साथी नही बन सकते है। उन धर्मात्माजनो पर खर्च करेगे भी तो थोडासा मनबहलावाके ढगसे। ज्ञानी पुरुष धर्मात्माओंके प्रति निष्कपट वात्सल्य रखते है। उनका वात्सल्य धर्मात्माजनोसे घरके बच्चोमे भी अधिक

रहता है। वैसे भी आप देखे—घरके बच्चे लोग इसके हितमे क्या कारण बन सकते है? और धर्मात्माजन इसके हितमे कारण बनते है? इसी लिए धर्मात्मापुरुषोको निरपेक्ष बन्धु कहा गया है, किन्तु घरके लोग तो खुदगर्ज बन्धु है। अर्थात् जिनसे कुछ लाभ हो सकता है उनको तो यह मोही जीव गैर मानता है और जिनसे कुछ लाभ नही, जिनके पीछे अपनी सारी जिन्दगी लगा देते है, जीवनभर बडे-बडे कष्ट सहते है, उनको अपना मानते है, पर धर्म और धर्मात्माओके प्रसगमे इसको वात्सल्य नही उमड़ता। ये अज्ञानियोके दोष है। अज्ञानी जन धर्मकी प्रभावनाको नही चाहते। न अपनेमे धर्मकी बढ़वारी चाहते हैं, न दूसरो मे धर्मकी बढवारी चाहते है। और प्रभावना करेगे तो दोषोकी। लेकिन ज्ञानी पुरुष सत्य धर्मकी प्रभावना करते है, उपदेशसे, ज्ञानसे, आचरणसे, सर्वप्रकारसे धर्मकी प्रसिद्धि करते है। तो सम्यग्दर्शन होना यह श्रावकका मूल धर्म है। अन्त पद्धतिमे ये १२ भेद बताये जा रहे है, उनमे प्रथम भेद सम्यग्दर्शनकी शुद्धि होना बताया है।

द्वितीय श्रावक—श्रावकका दूसरा भेद है पहिली प्रतिमा। ११ प्रतिमाये और उससे पहिले सम्यक्त्वका होना यो बारह भेद श्रावकके बताये गए है। उसमे पहिला प्रकार तो बताया जा चुका है। दूसरा है दर्शन प्रतिमाका धारी श्रावक। यह मद्य, मास, मधु, आदि जो स्थूल दोष है उनका त्यागी होता है, ५ उदम्बरफल व अन्य अभक्ष्योका इनका परिहार किये रहता है, कदमूलकी चीजे नही खाता, चमडेमे रखी हुई चीजोको भी नही खाता। पहिली प्रतिमाधारी श्रावक भी दार्शनिक है, उसका भोजन भी व्रतियोकी तरह शुद्ध होता है, व्रतग्रहण नही किया इतनी ही कमी है। मगर सम्यग्दर्शनके होनेपर प्रवृत्ति व्रतियोकी भाँति हो जाती है। उससे भी यह परीक्षा हो जाती कि इस मनुष्यका सम्यक्त्वके साथ कितना सम्बन्ध है? यह मनुष्यकी बात कही जा रही है। तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टि हो उसमे तो बाह्य आचारमे कुछ कमी रह जायेगी, किन्तु मनुष्य सम्यग्दृष्टि हो तो उसकी वृत्ति शुद्ध होगी, क्योकि उसका इतना विशिष्ट मन है, इतना विशिष्ट सामर्थ्य है कि अपनी विशुद्धिको निभा सकता है। तो श्रावकका दूसरा भेद है पहिली प्रतिमाका धारण करना।

तृतीय श्रावक—तीसरा प्रकार श्रावक है द्वितीय प्रतिमाधारी श्रावक। ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षाव्रत, ऐसे बारह प्रकारके व्रत होते है। मोटी हिसाका त्याग, याने स्थावर जीवोकी हिसासे बचत गृहस्थोको नही होती, उद्यमी, विरोधी हिसाये भी गृहस्थोसे होती है, मगर सकल्पी हिसाका त्याग कर देता है। गृहस्थ लोग पूर्णसत्य नही बोल सकते क्योकि आरम्भ परिग्रह, व्यापार आदिकके कार्योमे पूर्णतया सचाईपर टिकता नही है। तथा व्यापार आदिक कार्योमे सत्य बोले भी तो उसे भी परमार्थत असत्य कहा गया है, क्योकि वह आत्माकी बात नही है। और, भी कई प्रसग ऐसे होते है जिनमे असत्य बोलना

पडता है, पर गृहस्थोको चाहिए कि स्थूल असत्यका त्याग हो। चोरीका त्याग हो, अणु ब्रह्मचर्यका पालन हो याने अपने स्त्री अथवा पतिके सिवाय अन्यत्र सम्बध न रखना। पाँचवाँ व्रत है परिग्रहका परिमाण करे, इन ५ अणुव्रतोको जो धारण करे वह तृतीय श्रावक कहलाता है। इस अणुव्रतकी रक्षाके लिए ३ गुण व्रत धारण करता है। मै जन्मपर्यन्त इतनी दूरसे अधिक न जाऊँगा, इतनी दूरका व्यापार न करूँगा, यो आजन्म मर्यादाका निभाना दिग्व्रत है। उसमे भी दो दो चार चार दिनका नियम लेकर और भी इधर उधर आना जाना कम कर लेना देशव्रत है। बिना प्रयोजन किए जाने वाले कार्योको अनर्थदण्ड कहते है, जो उनका त्यागी होता है यह व्रत प्रतिमाधारी श्रावक। जैसे तोता, कुत्ता, बिल्ली, कबूतर आदिक पालना, यह भी उसके लिए वर्जित है, कुलीन पुरुषोको ये भी चीजे न पाना चाहिए। इन तोता, मैना आदिकके पालनेसे फायदा कुछ नही मिलता। इन जीवोको व्यर्थ कष्ट देना है। अगर आजीविकामे या धर्म वृद्धिके कार्योमे कुछ फायदा मिलता हो तो बताओ। कुछ फायदा नही मिलता। ऐसे व्यर्थके कार्य ज्ञानी पुरुष नही करते। उसीके साथ-साथ और भी अनेक बाते है। जैसे—बिना प्रयोजन बहुतसा जल बखेरना, बिना प्रयोजन पेडोकी टहनियाँ तोडना आदि। ऐसी अनर्थकी बाते ज्ञानी पुरुष नही किया करते। इन अणुव्रतोकी और गुणव्रतोकी रक्षाके अभ्यासके लिए चार शिक्षाव्रतोका पालन करना होता है। तीनो समय सामायिक करना। सामायिकमे विचार क्या चलता है? वहाँ तो आत्मतत्त्वके चिन्तनका विचार चलता है। और, उसी आत्मतत्त्वका चितन बढानेके लिए जाप करना, पाठ करना, बारह भावनाये भाना आदिक जो जो भी कार्य सामायिकमे किए जाते है उन सबका लक्ष्य है निर्विकल्प ज्ञानस्वभावमय अपने आत्मतत्त्वका चितन बनाना। प्रोषधोपवास करना, याने ७ दिनमे एक दिन ऐसा अभ्यास रखना है कि जहाँ खाने तकका विकल्प न करे और धर्मध्यानमे बहुतसा समय गुजारे। यह श्रावक भोगोपभोगका परिमाण करता है, खाने पीने की, आरामकी चीजोका नियम कर लेना, मै इतनी ही चीज खाऊँगा, इतने ही आरामके साधन रखूँगा यो भोगोपभोगपरिमाण होता है। अतिथि सम्विभाग व्रत—मुनि, क्षुल्लक, ऐलक आदिक पात्रोको भोजन कराकर फिर भोजन करना, ऐसी मनमे धारणा कर लेना कि मै तो अतिथि को भोजन देकर खुद भोजन करूँगा, यदि कदाचित अतिथि न मिले तो भी उसकी भावना कर लेना यह है श्रावकका अतिथि सम्विभाग व्रत। तृतीय प्रकारके श्रावकका यह द्वादश व्रतका नियम हो जाता है।

चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम श्रावक—सामायिक प्रतिमाका पालक चौथा श्रावक है। निरतिचार सामायिक करनेका व्रत होता है इस चतुर्थ प्रतिमाधारी श्रावक का। प्रोषधोपवास अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करना यह है पचम श्रावकका व्रत। छठा

है ५ वी प्रतिमाधारी श्रावक । जहाँ सचित्त जल, फल, धान्य आदिकका त्याग हो जाता है। उसमे दयाका विशेष गचार हो जाता है । देखिये—यद्यपि परिस्थितिवश यह श्रावक जल गर्म करेगा फिर भी उसके अन्दर दयाकी इतनी विशेषता है कि उसके अन्दर पाये जाने वाले जीवोके प्रति वह दयाका भाव रखता है । वह सचित्तको अचित्त इसलिए करता है कि उसकी म्याद बढ जाय और कामोत्तेजकता न रहे तो वह इतना दयालु हो गया है कि वह सदोप चीजको जिसमे एकेन्द्रियका भी घात है उसे भक्षण नही कर सकता । ७ वां श्रावक है छठी प्रतिमाधारी श्रावक । वह रात्रिमे किसी भी प्रकारका न भोजन करता है, न कराता है, न करने की अनुमोदना करता है । और वह दिन पूर्ण ब्रह्मचर्य रखता है, ८ वाँ श्रावक है सप्तम प्रतिमाधारी । इस सप्तम प्रतिमामे पूर्ण ब्रह्मचर्यका नियम रहता है । मैथुनका पूर्णरूपेण नव कोटिसे त्याग होता है । ९ वाँ श्रावक है अष्टम प्रतिमाधारी । वह आरम्भका त्यागी होता है । घरमे किए जाने वाले आरम्भ परिग्रह व्यापार आदिके कार्योको त्याग देता है । हाँ यदि वह सर्विस किए हुए हो तो वह पेन्सन लेता रहेगा, किन्तु नई कमाई कुछ न करेगा । यदि पहलेका कमाया हुआ धन न रहे, पेन्सन भी न मिले तो उसे कही ऐसा भाव नही होता है कि वह फिर कमाईका कार्य कर सके । वह तो आगे प्रतिमामे बढ जायेगा, क्षुल्लक अथवा ऐलक हो जायेगा है । यह है ९ वाँ श्रावक ।

दसवां, ग्यारहवां व बारहवां श्रावक—दसवा श्रावक है ९ वा प्रतिमाधारी । जहा पर आवश्यक वस्त्रके अलावा समस्त परिग्रहोका त्याग हो गया वह है परिग्रहत्यागप्रतिमाधारी । यह घर द्वार, धन, धान्य आदिक सब कुछ त्याग देता है । बच्चे लोग अगर कहे कि अब तो तुम्हारा यहाँ कुछ नही रहा । तुम यहासे जावो तो वह यह न कहेगा कि हम नही जाते यह तो मेरा घर है । वह तो उठकर वहाँसे चला जायेगा । तो परिग्रहके त्यागकी बात क्यो जरूरी है किसी कल्याणार्थीको कि जितनी बाधा आ रही है आत्मउन्नतिमे वह परिग्रह के सगसे आ रही है, और परिग्रहका प्रसग एक तो होता है आवश्यक प्रसगमे और एक होता है अनावश्यक प्रसगमे । तो आज लोग अनावश्यक धनसचयके प्रसगमे लग गए, और क्यो लगे ? पर्यायबुद्धिसे । देहको माना कि यह मैं हू । ये लोग समझ जाये कि यह भी एक खास आदमी है । कितना अज्ञान अधेरेमे बढ गए । जिसके पास जितना धन है वह आवश्यकतासे कई गुना अधिक मिला है लेकिन सतोष नही होता । और, कल्पना करलो कि आज जितना धन है उससे चौथाई ही धन होता तो क्या जीवित न रहते ? जीवित रहनेके लिए कितना धन आवश्यक है सो सोच लीजिए । अधिक तो है ही, मगर तृष्णा ऐसी लगी हुई है कि जो धन है पासमे उसका भी सुख नही ले पाते । दु खी रहते है । तो यह ९ वी प्रतिमाधारी श्रावक समस्त प्रकारके परिग्रहोका त्याग कर देता हैं, सिर्फ थोडेसे कपडे पास

मे रहते है। ११ वाँ श्रावक है दसम प्रतिमाधारी। वह अनुमतित्यागी होता है। ९ वी प्रतिमा तक तो वह अनुमति भी देता था पर १० वी प्रतिमामे अनुमतिका भी त्याग है। समय पर जो भी बुला ले जाय, भोजन करा दे, पर वह किसीको अनुमति नही दे सकता। बारहवा श्रावक है ११ वी प्रतिमाधारी। जो उद्दिष्टका त्यागी है, वह बिना दी हुई कोई चीज ग्रहण नही करता। हा यद्यपि कोई रोज अशुद्ध खाता हो, विधिपूर्वक न खाता हो, और एक दिन भी वह सब घरके लिए शुद्ध भोजन बनाये तो उसमे से ये क्षुल्लक ऐलक आदि दूसरेको ग्रहण कर लेते है और अगर वे समझ जायें कि इसने तो यहाँ सिर्फ मेरे लिए भोजन बनाया है, बाकी सभी लोगोके लिए दूसरी जगह चूल्हा जलेगा, तो ऐसे बने हुए आहारको वे साधुजन नही ग्रहण करते है। इस तरह श्रावकके बारह भेद है। इन बारह प्रकारके श्रावकोका धर्म सर्वज्ञदेवने बताया है। अब इनमे से जो प्रथम भेद है सम्यग्दर्शनका उस सम्यग्दर्शनके बारेमे विशेष विवरण करेंगे। सम्यक्त्वकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है, उसका क्या साधन है ? कैसे जीवको सम्यग्दर्शन होता है ? सम्यग्दर्शनके बारेमें कुछ विशेष विवरण किया जायेगा, क्योकि सर्व धर्मोका मूल सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व नही है तो व्रत, तपश्चरण, सयम आदि बाहरमे कल्पना कर ली जाय, किन्तु अन्त जिस प्रकार से धर्मका लाभ होना चाहिए, कर्मक्षय होना चाहिए वह कुछ भी नही बन सकता। अत अब सम्यग्दर्शनका वर्णन करेंगे।

चदुगदि-भव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाण-पज्जत्तो।
ससार-तडे णियदो णाणी पावेइ सम्मत्त ॥३०७॥

कल्याणक सम्यक्त्वका निर्देश—इस जीवका कल्याण करने वाला भाव सम्यग्दर्शन है। जीव आकुलता पाते है अपने आपके स्वरूपका सही श्रद्धान पाये बिना। जब अपने आपका पता नही है कि मै सबसे निराला स्वत ज्ञानस्वरूप और आनन्दमय हू, मै अपने आपमे अपना ही परिणमन कर पाता हू, किसी अन्य वस्तुसे मेरा सम्बध नही है, मै स्वय आनन्दमय हू। मेरेको बाहरमे करने योग्य काम कुछ नही है, बल्कि विकल्प भी करना योग्य नही है, ऐसी स्थितिमे यह आत्मा स्वयं कल्याणस्वरूप है, जब इस तत्त्वका पता नही रहता जीवको तो बाहरी मायाजालोमे इसका उपयोग फसा है और यह इसीसे दु खी होता है। जैसे स्वप्नमे यह देख रहे है कि यह सिह आया, यह हाथी आया, यह मगर आया, उसने खाया, ऐसी बाते जब स्वप्नमे देखते है तो कुछ न होनेपर भी वह बडा दु खी है, इसी प्रकार मोहमे इस जीवका बाहर कुछ न होनेपर भी विकल्पके कारण ये दु खी रहा करते है। वह दु.ख मिटे ऐसा उपाय कोई बनाये तो सच्ची बुद्धिमानी इसमे है, इसीको कहते है सम्यग्दर्शन। जैसा आत्माका सहज सत्य स्वरूप है उस रूपमे अपनेको मान लेना कि मै तो यह

हू। यह है सम्यक्का दर्शन।

विपरीताभिनिवेशरहित होनेसे सम्यक्त्वकी कल्याणरूपता—देखिये– जितने भी सुख दुःख है वे अपने आपको कुछ माननेके कारण है। जैसे घर गृहस्थीमे जब लडके प्रतिकूल चलते है, या बडे खर्चीले हो जाते है तो पिता बडी हैरानीमे पड जाता है। तो वह हैरानी मे क्यो पडता? उसने मान रखा कि मैं इसका पिता हू और मुझे यह सब करना है। तो भीतरमे जो मै बाप हू ऐसी बुद्धि बनी है उस बुद्धिके कारण उस तरहकी तरग उठ गयी जिससे कि वह दुःखी रहा करता है। तो हर स्थितियोमे आप यही पाइयेगा कि जो कुछ हमे सुख दुःख होते है वे हमारे ज्ञानकल्पनाके आधारपर होते है। तो जब जीव अपनेको इस तरह मानता होगा कि मै तो निर्विकल्प निस्तरग ज्ञानमात्र शुद्ध ज्ञानस्वरूप आनन्दमय स्वभाव हू, मै कृतकृत्य हू, मुझे बाहरमे कुछ करना ही नही है। यह जो कुछ किया जा रहा है वह कषायोकी प्रेरणासे किया जा रहा है। ये कषाये तो मेरे लिए दुःख रूप है। मै तो अपने सत्य ज्ञानस्वरूपको लखूँगा। अगर ऐसा सत्य आग्रह कर लिया तो उसे जगतमे फिर क्या क्लेश? भले ही सभी लोग माने कि इसकी तो कोई इज्जत नही, कोई इसे ज्यादह मानता नही, तो इन बातोमे क्या रखा? कोई भी जगतमे ऐसा उपाय नही है कि सभी लोग मुझे मान सके, सभी लोग मुझे अच्छा कह सके। और, कुछ करनेकी जरूरत भी क्या है? सभी लोग प्रतिकूल रहे तो मेरा क्या बिगाड है और सभी लोग अनुकूल बन जाये तो वे मेरा क्या सुधार कर देगे? मेरा सुख दुःख, मेरी शान्ति अशान्ति तो मेरे ज्ञानभावकी परिणति पर निर्भर है। तो इन सब बातोसे उपेक्षा करके एक इस प्रकाशमे प्रयत्न करना चाहिए कि मै अपनेका जैसा ज्ञानानन्दस्वरूप हू, अनुभव कर लूं। इसीको कहते है सम्यग्दर्शन। तो सम्यग्दर्शनको कौन जीव प्राप्त करता है, इसका वर्णन इस गाथामे किया जा रहा है।

नरकगति व तिर्यञ्चगतिमें सम्यक्त्वकी पात्रता—सम्यक्त्वको चारो गतिके भव्य जीव उत्पन्न कर सकते है, नारकी भी सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकते, जो घोर दुःखमे पडे हुए है, जिनकी बडी तीव्र वेदनाये है, उनमे रहने वाले नारकी भी सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर लेते है। भला बतलाओ कि बाहरमे तो दुःख भोग रहा है और भीतरमे सम्यक्त्वकी वासना प्रतीति होनेसे अन्तरङ्गमे तृप्त रहता है। कैसी कला है कि इतने कठिन शारीरिक क्लेश और भीतरमे इतना अद्भुत आनन्द उन नारकियोमे कि जिस आनन्दको मिथ्यादृष्टि चक्री भी नही पा सकता है। तो सम्यक्त्वकी बहुत बडी महिमा है। सम्यक्त्वको नारकी जीव भी उत्पन्न कर सकते है, पशु पक्षी भी उत्पन्न कर सकते है। जो बोल नही सकते, जो दूसरोको अपने भाव नही बता सकते, जो दूसरोकी भाषा भी नही समझ सकते, यदि कोई साधु उपदेश दे रहा हो उन पशु पक्षियोको तो साधुकी मुद्रा, आकार प्रकारको देखकर वे

सब समझ जाते है, मगर उन भाषाओको न समझ सकेगे। फिर भी उन पशुपक्षियोमे इतनी विशेष योग्यता हो सकती है कि वे सम्यक्त्व उत्पन्न कर ले। जिस समय श्रीरामचन्द्र जी ने बनमे आहार दिया था मुनिराजको और जटायुने अनुमोदना की थी, उसकी उस अनुमोदनासे ही उस जटायुका जीवन सफल हो गया था। अनेक दृष्टान्त ऐसे आते है कि जहाँ पशु पक्षियोको सम्यक्त्व उत्पन्न हो गया। वह हाथी जो भरतके जमानेमे था उसे अपने कोई सस्कारसे बोध उत्पन्न हुआ तो सर्व प्रकारके भोजनका परित्याग कर दिया था, और एक शुद्ध आत्मतत्त्वके स्मरणमे उसने अपना उपयोग लगाया था। उसने समाधिकरण किया। ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते है कि बदर, नेवला, सूकर, सर्प आदिक बहुतसे पञ्चेन्द्रिय जीव सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेते है। तो ऐसा अनुपम सम्यग्दर्शन कि जिससे संसारके समस्त दु ख टल जाते है ऐसे सम्यग्दर्शनको तिर्यञ्च भी प्राप्त कर सकते है।

मनुष्यगति व देवगतिमें सम्यक्त्वकी पात्रता—अब मनुष्योकी बात देखलो, इनके लिए तो सम्यक्त्व प्राप्त कर लेना बडी आसान चीज होना चाहिये। सच्चा ज्ञान पाना, अपने आत्माकी सच्ची सुध ग्रहण कर लेना मनुष्योके लिए कितनी आसान चीज है। उन पशु-पक्षियोकी अपेक्षा हम आपका कैसा पुण्योदय मिला है, कैसी सुविधायें मिली है, पर इन रागद्वेषके साधनोमे रहकर यह जीव भूल जाता है। तो मनुष्यपर बडी जिम्मेदारी है। इस समय वह ऐसा भी प्रयत्न कर सकता है कि सदाके लिए ससारके सकट समाप्त कर दे। और ऐसा भी प्रयत्न कर सकता है कि संसारमे बहुत काल तक रुले, निगोद और एकेन्द्रिय मे भी जन्म धारण कर ले। तो यहाँ अपनी बडी जिम्मेदारी समझकर विवेकपूर्वक चलनेका यहाँ काम है। देवगतिके जीव भी सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकते है। देवगतिके जीव ससारी जीव कहलाते है। इनका शरीर दिव्य है, वैक्रियक शरीर है, इन्हे कमाना नही पडता, किसी प्रकारके असि मसि आदिक कर्म नही करने पडते। हजारो वर्षोमे भूख लगती, कठमे अमृत झर जाता है, उससे भूखकी शान्ति हो जाती है और अनेक पखवारोमे श्वास लेते है। श्वास लेना भी तो एक दु खका कारण है। कितने पुण्यवान् जीव है वे, लेकिन उस पुण्य क्रीडामे, देवियोकी क्रीडामे रमते रहते है, वे भी प्राय सम्यक्त्व नही प्राप्त कर पाते। उनमे ऐसी योग्यता अवश्य है कि जब वे समवशरणमे जाते है, रास्तेमे किसी साधुसतका उपदेश मिल जाता है या देवद्धिदर्शन होता है या अन्य योग्य साधन मिलते है तो वे सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेते है। उनमे योग्यता अवश्य है सम्यक्त्व उत्पन्न करनेकी और अनेको देव सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेते है।

चातुर्गतिक भव्य संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, जागृत, जीवके सम्यक्त्व लाभकी पात्रता— सम्यक्त्व चारो गतिके जीव उत्पन्न कर सकते है, पर वे सज्ञी होने चाहिएँ। तिर्यञ्चोमे जो

जीव संज्ञी है, मन वाले है वे ही सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते है, संज्ञीके साथ-साथ विशुद्ध परिणाम वाला भी होना चाहिए। तीव्र कषायमे खोटी लेश्यामे सम्यक्त्व उत्पन्न नही होता और, वह जागृत होना चाहिए। स्वप्नमे भी सम्यक्त्व है लेकिन एक बात समझ लेना चाहिए कि भले ही सोते हुएमे सम्यग्दर्शन उत्पन्न न हो मगर जिस जीवको सम्यग्दर्शन हो गया है वह सोते हुएमे भी स्वका अनुभव कर सकता है। इतनी वडी महिमा है उस अनुभव की। जैसे किसीको स्वप्नमे बाहरी पदार्थ दिखते है ऐसे ही ज्ञानी पुरुष स्वप्नमे आत्मस्वरूप को तकता है। सोते हुएमे सम्यक्त्व उत्पन्न नही होता, तो जागृत अवस्थामे ही सम्यग्दर्शन हो सकता है। जो पर्याप्त हो उसीके ही सम्यग्दर्शन हो सकता। जीव दो प्रकारके होते है– पर्याप्त और अपर्याप्त। जो अपर्याप्त है वे पैदा होकर तुरन्त मर जाते है, उनका शरीर भी पूर्ण नही वन पाता और मरण कर जाते है, याने उत्पन्न होते है दो एक सेकेण्डमे मर जाये ऐसे अपर्याप्त जीव सम्यग्दर्शनको उत्पन्न नही कर सकते। जो पर्याप्त होगा वही सम्यग्दर्शनको उत्पन्न करेगा। अब अपनी बात सोच लीजिए कि हम सैनी है, विशुद्ध परिणाम वाले भी है, जागृत अवस्था है, पर्याप्त है, फिर क्यो न ऐसा उद्यम करे कि सम्यक्त्व उत्पन्न कर ले। ये रागद्वेषके समागम प्राप्त होते है, मोह ममताके भाव बहुत जागृत होते है, पर ये मेरे आत्माके मित्र नही, हितकारी नही, किन्तु अनिष्टके ही कारण बन रहे हैं। जिनसे भी प्रीति जोड रहे हो वे हमारे अनर्थके ही कारण बनेंगे, हितके नही। लेकिन ये मोही जीव जिन जिनमे मोह होता उनमे ही आसक्त रहते है। उनसे पृथक् अपने को अनुभव नही कर सकते। तो ऐसा जीव सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है।

निकटसंसारीके सम्यक्त्वका लाभ— एक बात और साथमे समझना चाहिए कि जिनका ससार-तट निकट आया है वे सम्यग्दर्शनको उत्पन्न करते है। संसार कबसे चला है ? इसकी कोई आदि नही है, इसी कारण बताया है कि यह ससार अनादिकालसे चला आया, कितने ही जन्म मरण किए पर जिनका अन्त नही। तो ऐसे अनादि अनन्त जन्म मरण करते हुए यदि आज एक ऐसा मनुष्यभव मिला है कि जहाँ हम अपने आत्माकी सावधानी बना सकते है तो इसका सदुपयोग क्यो नही कर लिया जाता ? जब जैनशासन मिला, इतना पवित्र धर्म प्राप्त हुआ, कुलीन हुए, फिर भी अपने हितकी बात न बनायी जा सकती हो तो यह कितनी खेदकी बात है ? इसको बताया है कि जीवने अनन्त पुद्गल परिवर्तन किये। एक पुद्गल परिवर्तनका बहुत लम्बा काल होता है। एक पुद्गल परिवर्तनका यह अर्थ समझिये कि जैसे किसी जीवने कोई परमाणु ग्रहण किया शरीररूप अथवा कर्मरूप। अब वह परमाणु नवीन है, दूसरे समयमे फिर ग्रहण किया तो नया ही ग्रहण करे, तीसरे समयमे फिर ग्रहण करे तो नया ही ग्रहण करे। ऐसे अनन्त बार नवीन-नवीन परमाणु ग्रहण हो जाये

तब एक बार ग्रहण किया हुआ भी ग्रहण कर ले, फिर अनन्त बार अग्रहीत ग्रहण हो जाय, तब एक बार फिर ग्रहीतको ग्रहण करे, इस तरह होते-होते जब अनन्त बार ग्रहीत ग्रहण हो जाय तो एक मिश्रको ग्रहण करे याने इसमे अनगिनते वर्ष हो जाते है। कितने अनन्त कि जो अवधिज्ञानके विषयसे परे है। यो अनन्त बार मिश्र ग्रहण कर ले यो सभी पूर्ण हो जाय इतने अनगिनते वर्षोका नाम है अर्द्धपुद्गल परिवर्तन। तो जब अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल शेष रहता है संसारमे रहनेका तब वहाँ सम्यग्दर्शनकी पात्रता होती है। इतनी सब बाते प्राप्त हो तो जीवको सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यग्दर्शनका अर्थ—सम्यग्दर्शनका प्राय सभी जगह वर्णन है, और अपने-अपने सिद्धान्तके अनुसार किसी न किसी रूपमे किया गया है। मगर यह शब्द स्वयं अपना सही स्वरूप बता देता है। सम्यग्दर्शनमे सम्यक् शब्द पडा है, सम्यक् मायने जो अच्छा है। अच्छा कौन है? जो निरपेक्ष हो और किसीके साथ न फसा हो, जो किसीके साथ न मिला हो, प्योर हो, केवल हो, उसका दर्शन हो वही सम्यग्दर्शन कहलाता है। जब चौकी पर कूडा पड़ जाता है तो उसे कहते है कि यह मलिन हो गया। अब उसकी मलिनता दूर करनेके लिए यह उपाय करते है कि कूडा बिल्कुल हट जाय, केवल चौकी रह जाय, तो केवल रह जानेका नाम ही सम्यक्पना कहलाता है। तो मैं आत्मा केवल क्या हू। खाली मैं ही मैं क्या हू, इस प्रकारके कैवल्यका दर्शन करनेका नाम है सम्यग्दर्शन। तो जिस कालमे सम्यक्-दर्शन होता है, बाहरी पदार्थोकी उलझी दृष्टि सब खतम हो जाती है, केवल अपने स्वरूपका उपयोग रहता है, उस समय इसको जो आनन्द प्राप्त होता है, या इसकी जो अपनी अलौकिक स्थिति होती है उसकी तुलनामे तीन लोकका वैभव भी न कुछ चीज है। यह तीन लोकका वैभव आखिर डेला पत्थर ही तो है, बाह्यपदार्थ ही तो है। उससे मेरे आत्माका कौनसा आनन्द आ जायगा? तो समस्त तीन लोकके वैभव भी मिलकर या भूत भविष्यके समस्त संसारी जीव जितना सुख भोगते है वे सारे सुख भी उस तुलनाको प्राप्त नही कर सकते। ऐसा वह सम्यग्दर्शन कैसे प्रकट होता है, किस प्रकारका प्रकट होता है, इसका वर्णन करते है।

सत्तण्हं पयडीण उवसमदो होदि उवसमं सम्मं।
खयदो य होदि खइयं केवलि-मूले मणूसस्स ॥३०८॥

जीवके साथ कर्मोका बन्धन—जीवके साथ अनेक कर्म प्रकृतियाँ लगी हुई है और ये प्रकृत्या लग गयी है और उन कर्मोकी स्थितियाँ भी होती है। यदि इस मुझ जीवके साथ कोई मुझसे विपरीत विजातीय चीज न लगी हो तो हम नाना तरहके विषम परिणमन नही कर सकते। जैसे पानी अपने आप स्वभावसे शीतल है, पर उसके गरम किए जानेपर थोड़ा

गरम, अधिक गरम, उससे भी अधिक, ये जो विषमताये है वे यह सिद्ध करती है कि इसके साथ कोई गर्म चीज, इसके स्वभावके विरुद्ध चीज लगी हुई है, इसी तरह जीवमे क्रोध, मान, माया, लोभ आदिककी नाना परिणतियाँ दिखती है और वे कषाये भी अपनी सीमामे नाना प्रकारके भेद वाली है।

इतनी विचित्र परिणतियाँ जो जीवमे चलती है उनसे ही यह सिद्ध है कि इस जीवके साथ कोई विजातीय चीज लगी है तब इसके नाना परिणमन हो रहे है। विजातीय चीज भी बहुत सूक्ष्म होना चाहिए, क्योकि जीव अमूर्त है, इस अमूर्तके साथ जो भी विजातीयका बन्धन होगा वह सूक्ष्म बन्धन होगा, ऐसा सूक्ष्म किन्तु मूर्तिक कोई विजातीय परपदार्थ लगा है जिसको कर्म नामसे कहते है। कर्मकी बात सभी लोग स्वीकार करते है कि जीवके साथ कर्म लगे है। जैसे कर्म है वैसे सुख दु ख भोगने पडते है, मगर वे कर्म क्या चीज है इसका स्पष्ट अर्थ जैनशासनमे मिलता है। कर्म एक सूक्ष्मवर्गणाये है, और वे इतनी सूक्ष्म है कि पहाड, बज्र आदिकसे नही टकरा सकते, पर वे है मूर्तिक। वे ऐसी ही जातिके है और वे जीवके साथ ससार अवस्थामे सदा रहते है। जब जीव कषाय करता है, विकल्प करता है तो ये ही कर्मवर्गणाये कर्मरूप बन जाती है। और, जब वे कर्मरूप बने तो उसी समय उनमे वह सब व्यवहार हो जाता है कि इतने दिनो तक जीवमे रहेगे और इस तरह तरहसे बनेगे और उनके उदयके समय जीव स्वय ऐसा फल प्राप्त किया करेगा। ये सब व्यवस्थाये तुरन्त बन जाती है।

१४८ कर्मप्रकृतियोंमें सम्यक्त्वघातक सात प्रकृतियाँ—कर्मप्रकृतियाँ १४८ है। जिनका भिन्न-भिन्न काम है। कुछ कर्मप्रकृतियोके उदयसे शरीरमे रचनाये होती है। कुछ कर्मप्रकृतियोके उदयसे ज्ञानका आवरण होता है। तो जैसे जैसे वह आवरण हटता है वैसे वैसे इसका ज्ञान बढता है। कुछ कर्मप्रकृतियोके कारण इस जीवको शरीरमे रुके रहना पडता है। कुछ प्रकृतियोके उदयसे जीव ऊँच नीच कुलमे उत्पन्न होते है, कुछ प्रकृतियोके उदयसे सासारिक सुख दु ख हुआ करते है, यह बेसुध हो जाय, उल्टा चले, खोटे मार्गमे चले, ये सब बाते इन कर्मप्रकृतियोके उदयमे हुआ करती है। तो उन १४८ प्रकृतियोमे से ७ प्रकृतियाँ ऐसी है कि जो जीवके सम्यग्दर्शनको नही होने देती। उनका नाम है अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति। अनन्तानुबंधी कषाय उसे कहते है जो बहुत काल तक जीवके साथ सस्कार बनाये रखे। जैसे—ऐसा क्रोध जग जाय कि मै तो इससे बदला लेकर ही रहूगा, चाहे जितना समय लग जाय। यहाँ तक कि वह क्रोधका सस्कार दूसरे भवमे भी जाय, उसे कहते है अनन्तानुबधी क्रोध।

सर्पोके बारेमे यह बात प्रसिद्ध है कि कोई मनुष्य यदि सर्पको छेड दे तो वह ऐसा क्रोधका संस्कार बना लेता है कि १२ वर्ष तक भी उस पुरुषको ढूँढकर वह डसता है। तो देखिये—तिर्यञ्चोमे भी ऐसा अनन्तानुबंधी क्रोध होता है। इनमे भी समझ है, इनमे भी कषायकी तीव्रता है। इटावाकी एक घटना है कि किसीने कुछ लड्डू लाकर हाथीके महावतको दिया और कह दिया कि लो ये लड्डू, इस हाथीको खिला देना। सो उस महावतने हाथीको न खिलाकर स्वयं ही खा डाले व रख लिये, तो उस हाथीको इतना क्रोध आया कि अपनी सूंढमे महावतको लपेटकर भीतोमे पटक पटक कर मार डाला। तो इन तिर्यञ्चोमे भी ये तीव्र कषाये चलती है। जो क्रोध ऐसा हो कि भविष्यमें भी अपना संस्कार बनाये ऐसे क्रोध को कहते है—अनन्तानुबंधी क्रोध। इसी प्रकार अनन्तानुबधी मान, माया, लोभ आदि कषाये भी होती है। कहो ऐसी मान कषाय जग जाय कि जिसका संस्कार अगले भवमे भी जाय, कहो ऐसी मायाचारी की जाय कि जिसका संस्कार बहुत काल तक चले, अथवा कहो इस तरहका लोभमयी (लालचमयी) सस्कार बन जाय कि जो संस्कार बहुत काल तक चले, ये सब अनन्तातुबधी कषाये है। इन कषायोमे रहते संते इस जीवको अपने आत्माकी सुध नही हो सकती। इसी प्रकार मिथ्यात्व—जो विपरीत परिणाम करा दे, सम्यक् मिथ्यात्व, जो मिथ्या, सम्यक् (मिलवा) परिणाम करा दे, और सम्यक् प्रकृति—जो सम्यग्दर्शनका दूषण—बना दे, ऐसी है ये तीन प्रकृतियाँ। यो सात प्रकृतियॉ सम्यक्त्वका घात करती है। इन ७ प्रकृतियोके उपशमसे उपशम सम्यक्त्व होता है, मायने ७ प्रकृतियॉ दब गईं, थोडी देरको सम्यग्दर्शन हो गया। प्रकृतियॉ उखडेगी तो सम्यग्दर्शन मिट जायगा। ७ प्रकृतियोसे क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है। ये ७ प्रकृतियाँ न रहे तो शुद्ध सम्यग्दर्शन सदा रहेगा। इस सम्यक्त्वकी चर्चा अब आगे चलेगी।

उपशमसम्यक्त्वका लाभ—यह जीव अनादिकालसे कर्मबन्धनसे बंधा हुआ है। तो कर्मके उदयसे इस जीवकी कलुपताये अनादिसे चली आ रही है, ऐसी स्थितिमे इन ७ प्रकृतियोका उपशम कैसे हो सकता है? इसके उत्तरमे काललब्धि आदिक कारणको ही बताया जा सकता है। प्रथम तो जब जीवका ससार कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल शेप रहता है तब सम्यक्त्वकी पात्रता होती है। यह एक काललब्धि है और अगर अर्द्धपुद्गल परिवर्तन से अधिज काल है, जीवका ससारमे रहनेका तो उसके प्रथमोपशम सम्यक्त्व नही बन सकता है। दूसरी काललब्धि यह है कि जब कर्मोमे उत्कृष्ट स्थिति होती है या जघन्य स्थिति होती है तब औपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न नही होता। उत्कृष्ट स्थितिमे तो योग्यता नही। जघन्य स्थिति बहुत ऊँचे साधुजनोके होती, वहाँ औपशमिककी बात ही क्या है? तो औपशमिक सम्यक्त्व कब होता है कि जब अंत कोडाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिके कर्म बँधते हैं तब वहाँ

प्रथमोपशम सम्यक्त्व होनेकी योग्यता है।

एक सागर बहुत बडा काल है और उसका प्रमाण उपमासे जाना जाता है। एक दो हजार कोशका लम्बा चौडा गड्ढा हो और उसमे कोमल रोमके छोटे-छोटे टुकडे, जिनका कि दूसरा टुकडा न हो सके, भर दिए जाये, और उसमे ऊपरसे हाथी फिरा दिये जाये जिससे कि वे सभी रोम दब जाये। फिर प्रत्येक १०० वर्षमे एक रोम निकाला जाय तो सारे रोम निकालनेमे जितना समय लगे उसका नाम है व्यवहारपल्य। उससे असंख्यात गुना होता है उद्धारपल्य, उससे असख्यात गुना होता है अद्धापल्य और एक करोड अद्धापल्य मे एक करोड अद्धापल्लका गुणा करनेसे जो समय आयेगा उसका नाम है एक कोडाकोडी अद्धापल्य, ऐसे १० कोडाकोडी अद्धापल्यका नाम है एक सागर ऐसे एक कोडाकोडी सागरकी स्थिति बँधे तब जीवमे सम्यक्त्व उत्पन्न होनेकी योग्यता होती है। फिर वहाँ प्रायोग्यलब्धि बने, फिर और कम स्थिति बँधे, ऐसे जब ३४ बधापसरण हो जाते है तब वहाँ करण-लब्धि प्राप्त होती है और उपशमसम्यक्त्वकी योग्यता बनती है। करणलब्धिके मायने इतने ऊंचे परिणाम कि जो कभी नही हुए और एक विशिष्ट कालके लिए हो रहे है अध करण, अपूर्वकरण, अनवृत्तिकरण। तो अध करणका जब अंतिम समय आता है तो चारो गतियोके कोई भी जीव अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्व, इन ७ प्रकृतियोका उपशम करके प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है।

औपशमिक सम्यक्त्व व क्षायिक सम्सक्त्यका निर्देश—सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमे निमित्त कारण तो होता है कर्मका उपशम आदि और बाह्य कारण होते है अनेक, जैसे जिनबिम्बका दर्शन, साधुवोका सत्संग, वेदनाका अनुभव आदि। ऐसे बाह्य कारण मिले और अन्तरङ्ग कारण सम्यक्त्वघात सात प्रकृतियोका उपशम प्राप्त हो तो उपशमसम्यक्त्व प्राप्त होता है, क्षय हो तो क्षायिक सम्यक्त्व व क्षयोपशम हो तो क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है, उपशम सम्यक्त्वमे ये कर्म बिल्कुल दब जाते है। तो यो समझिये कि जैसे तैलमे नीचे गदगी बैठ जाय तो तैल ऊपरसे पूरा निर्मल होता है लेकिन उसकी गदगी शीशीमे नीचे बैठ जाती है। अगर उस शीशीको हिला दिया जाय तो वह सारा तैल उस कीचडसे फिर मलिन बन जाता है, इसी प्रकार जीवकी ये ७ कर्मप्रकृतिया दबी है तो उस समय सम्यग्दर्शन है, निर्मल है, लेकिन वे उखड़ जाये तो सम्यक्त्व मलिन ही नही बल्कि मिट भी जायेगा। लेकिन क्षायिक सम्यक्त्वमे ७ प्रकृतियोका क्षय होता है, अत यह सम्यक्त्व कभी नही मिटता है। जैसे शीशीमे तैलकी गंदगी नीचे बैठी है तो तैलका साफ भाग निकालकर दूसरी शीशीमे रख लिया जाय तो फिर उस साफ तैलके गदा होनेकी सम्भावना नही है, इसी प्रकार जहाँ कर्म है ही नहीं, उनका क्षय हो गया तो उनका क्षायिक सम्यग्दर्शन सदाके लिए

निर्मल रहता है और क्षयोपशम सम्यक्त्वमे होता यही है कि उन ७ प्रकृतियोंमेंसे कुछ प्रकृतियोका उदयाभावी क्षय है। कुछका उपशम है और कुछका उदय है, तो ऐसी स्थितिमे वह क्षयोपशम सम्यक्त्व कुछ मलिन रहता है, मगर सम्यक्त्व है। जैसे वही शीशीमे रखा हुआ तैल थोडासा हिलानेपर कुछ मलिन रहता है, कुछ निर्मल भी रहता है इसी प्रकार क्षयोपशम सम्यक्त्व भी कुछ मलिन रहता है। सम्यक्त्व ३ प्रकारके होते है। इस सम्यक्त्व के समयमे जब कि वह उत्पन्न होता है, प्रतिसमय गुण श्रेणी निर्जरा होती है, कर्म कई गुना खिरते रहते है और वहाँ इतने कर्म खिर जाते है कि अनन्त ससार नही रहता। उन खिरने वाले कर्मोके प्रमाणकी बात देखी जाय तो इतने कर्म खिरेंगे कि आगे खिरनेके लिए थोडे से कर्म शेष रह जाते है। इस मनुष्यमे तीन प्रकारके सम्यक्त्व प्राप्त करने की योग्यता है। वैसे चारो गतियोमे उपशम सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व तो होता ही है पर क्षायिक सम्यक्त्व को मनुष्य ही उत्पन्न कर सकता है। भले ही हम आप आज कल नही उत्पन्न कर सकते, लेकिन यह योग्यता मनुष्योमे ही बतायी गयी है। केवली भगवान श्रुतकेवली निकट हो तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्वसे क्षायिक सम्यक्त्व बनता है। इस तरह इन ७ प्रकृतियोके उपशम और क्षयोपशम होनेसे औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व होता है यह यहाँ बताया गया है। अब क्षायोपशमिक सम्यक्त्य किस तरह होता है, उसका निरूपण करते है।

अणउदयादो छण्हं सजाइ-रूवेण उदयमाणाणं।
सम्मत्त-कम्म-उदये खयउवसमिय हवे सम्मं ॥३०९॥

क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकी संभूति—सम्यक्त्वका घात करने वाली ७ प्रकृतियाँ घातियाँ कर्मकी है और इनमे दो तरहके कर्म होते है—सर्वघातीस्पर्धक, देशघातीस्पर्धक। जो समस्त सम्यक्त्वको नष्ट कर दे वह सर्वघाती है और जो सम्यक्त्वको तो न नष्ट करे किन्तु उनमे दोष पैदा कर दे, थोडा घात करे उसे देशघाती कहते है, तो सर्वघाती स्पर्धकका यदि उदयाभावी क्षय हो अर्थात् उदयमे आये इसमे ही तत्काल बदल जाय, उसका प्रभाव नही आ सके और आगामी जो उदयमे आ सकता है, उनका उपशम हो और देशघातीका उदय हो ऐसी स्थितिमे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। अनन्तानुबंधीका वहा विसंयोजन होता है, याने अन्य-अन्य रूपसे वह उदयमे आता है। इस कारण सम्यक्त्वका घात नही होता और सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे उसमे चल, मलिन, अगाढ दोष उत्पन्न होता है। यो क्षयोपशमकी स्थिति होनेपर जीवके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है, अब उपशम सम्यक्त्व रहता है अन्तर्मुहुर्त। यो समझिये कि ४-५ सेकेण्ड रहता है और क्षायिक सम्यक्त्व सदा काल रहता है, जबसे हुआ तबसे सदा रहेगा और सिद्ध हो गए वहा भी क्षायिक सम्यक्त्व

रहेगा। लेकिन संसार अवस्थामे कुछ अधिक ३३ सागर पर्यन्त ही वह रह सकता, उसके बाद उसका निर्वाण हो जायेगा। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व ६६ सागर काल तक रह जाता है। यो सबसे उत्कृष्ट सम्यक्त्व तो है क्षायिक सम्यक्त्व और वर्तमान निर्मलता की दृष्टिसे उपशम भी है मगर उपशम सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है, क्षायिक सम्यक्त्व कभी नष्ट नही होता। यो ये सम्यक्त्व इस जीवने अनेक बार पाये और मिट गए। पर क्षायिक सम्यक्त्व होनेके बाद फिर कभी मिटता नही है। तो अब बतलाते है कि ऐसी कौन-कौन सी चीजे है जिन्हे जीवने अनेक बार प्राप्त की, पर क्षायिक सम्यक्त्व चारित्र पाये बिना इस जीवका संसारसे उद्धार नही हो सका।

गिण्हदि मुचदि जीवो वे सम्मत्ते असंख-वाराओ।
पढम-कसाय-विणास देस-वय कुणदि उक्कस ॥३१०॥

उपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, विसंयोजन, देशव्रतका असंख्यातों बार ग्रहण व त्याग—उपशम सम्यक्त्व और क्षयोपशम सम्यक्त्वको इस जीवने असख्याते बार ग्रहण किया और छोडा। इसी प्रकार अनन्तानुबधी कषायका विसयोजन भी इस जीवने असख्यात बार किया और छोडा। और, देश, सयम अणुव्रत, श्रावकके व्रत ये भी असख्याते बार इस जीवने प्राप्त किये। भव्य जीव इन चारोको अधिकाधिक पल्यके असख्यातवे बार ग्रहण करता और छोडता। पल्यका असख्याते बार अनगिनते बार है, लेकिन इसके बादमे वह जीव क्षायिक सम्यक्त्व व क्षायिक चारित्र प्राप्त करके मुक्त हो जाता है। हा क्षायिक सम्यक्त्व अवश्य ऐसा है कि उसे यदि कोई प्राप्त कर ले तो फिर अधिकसे अधिक ३ भव वह और धारण कर सकेगा। और, कोई कारणवश यदि ३ भवमे मुक्त न हो सके तो चौथे भवमे मुक्त हो ही जायगा। यो क्षायिक सम्यक्त्व होनेपर यह जीव चार भवसे अधिक नही रह सकता ससारमे, और शेप चीजोको प्राप्त करके यह ससारमे रहता भी है। अब यह बतलाते है कि सम्यग्दर्शनमे श्रद्धान इस जीवको किस प्रकारसे होता है?

जो तच्चमणेयत णियमा सद्दहद्दि सत्तभगेहि।
लोयाण पण्ह-वसदो ववहार-पवत्तणट्ठ च ॥३११॥

तत्त्वकी अनेकान्तमयता—जो लोगोके प्रश्नके वशसे व्यवहार चलानेके लिए सप्त-भङ्गीके द्वारा अनेकान्तरूप तत्त्वका श्रद्धान करते है वे साधु सम्यग्दृष्टि कहलाते है। पदार्थ कैसे है? जैसे जीव नित्य है तो एक दृष्टि ऐसी आती है कि जीव अनित्य है। जीव चूंकि सदा रहता है, उसका कभी विनाश नही होता इस कारण नित्य है, किन्तु उसमे परिण-तिया प्रति क्षण नवीन रहती है। तो जो परिणति हुई वह आगे नही रहती, इस कारण वह अनित्य है। तो जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टिसे अनित्य है और क्रमसे दोनो

दृष्टियोसे नित्य अनित्य है। एक साथ कहा जाय तो कहा नही जा सकता इसलिए अवक्तव्य है, और अवक्तव्य होनेपर भी नित्य समझमे आता है। उत्पादव्यय समझमे आने पर भी, अवक्तव्य होनेपर भी, नित्य अनित्य दोनो तरह विदित होते है।

यों ७ भङ्ग होते है किसीका जवाब देनेमे, तो इस तरह अनेकान्त रूपसे जो की तत्त्व श्रद्धा करता है उसको कहते है शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव। जैसे पहिले जीवको ही सिद्ध करे कि है या नही तो सप्तभंगी विधिसे सिद्ध होता है कि जीव है। क्या है? उसमे अपना द्रव्य है। अपना द्रव्य है, अपना क्षेत्र है, अपना काल है, अपना भाव है। तो अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे जीव है और परमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे जीव नही है, अर्थात् जीव पररूप नही है। किसी भी पदार्थकी सत्ता सिद्ध इसी तरह होती है। यह चौकी चौकीके रूपसे है और यह चौकी भीत पत्थर आदिकके रूपसे नही है। अब इन दो वातोमे अगर एक न मानी जाय तो दोनो खतम हो जायेगी। जैसे चौकी अपने चौकीके रूपसे है, यह न माना जाय तो चौकी क्या रहेगी? चौकी पत्थर भीत आदिकके रूपसे नही है, अगर यह न माने तो अर्थ होगा कि पत्थर भीतके रूपसे है, तब चौकी क्या रहेगी? तो किसी भी पदार्थका अस्तित्व इसी प्रकार सिद्ध होता कि वह अपने स्वरूपसे है और परस्वरूपसे नही है। तो ये दो भङ्ग हो गए। अपने स्वरूपसे अस्तित्व परस्वरूपसे नास्तित्व—इन दोनोको क्रमसे बोल करके कहा जाय तो इसमे दोनो धर्म सिद्ध होते है, और दोनोको एक साथ नही कह सकते, इस कारण अवक्तव्य सिद्ध होता है। तो जब ये चार भङ्ग हो गए तो शेषके तीन भङ्ग भी यहाँ लग जाया करते है। तो यो पदार्थ अनेकान्त स्वरूप है।

एकान्ताग्रहमे व्यवहार व मोक्षमार्गकी असिद्धि—अनेक दार्शनिकोने जो अपना-अपना दर्शन वनाया है वह एकान्त कुछ पकडकर ही वनाया गया है। जैसे जीव सदा रहता है या प्रतिक्षण मिटता रहता है? एक ऐसा प्रश्न हुआ तो किन्ही दार्शनिकोने तो यह कहा कि जीव सदा रहता है वहीका वही। उसमे कुछ भी परिवर्तन नही होता, तो किसी दार्शनिकने यह कहा कि जीव तो क्षण-क्षणमे नया-नया होता है। जैसे क्रोध किया, अव क्रोधके बाद यह क्रोधी तो रहता नही, दूसरी कषायमे आ गया, तो इस दार्शनिकने यह मान लिया कि जो क्रोध करने वाला जीव था वह दूसरा था, अब मान करने वाला जीव दूसरा हो गया। लेकिन स्याद्वादी यह निर्णय देता है कि जीव तो वही है, पर परिणति बदल गयी। तो द्रव्यदृष्टिसे जीव नित्य है और पर्यायदृष्टिसे जीव अनित्य है। स्याद्वादी यदि न माने तो लोगोका व्यवहार भी नही वन सकता। यह लेनदेन जो चल रहा है वह स्याद्वादके बलपर ही तो चल रहा है। जिसको उधार दिया उससे हम दुबारा कब मांग सकते? जब इतना निर्णय हो कि यह वही मनुष्य है जिसे हमने उधार दिया था। जव उसकी नित्यता ज्ञात

हो तब ही तो लेनदेनका व्यवहार चलेगा और यदि वह ऐसा नित्य हो कि जरा भी परिणमन उसमे नही है तब भी व्यवहार क्या चलेगा ?

व्यवहारकी प्रवृत्ति स्याद्वादके बलपर ही हो सकती, मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति भी स्याद्वादके ढगसे होती है । मै हू, सदा रहूगा और मेरेमे प्रति समय कोई न कोई अवस्था रहेगी । तब हमे मुक्त होनेका उद्यम करना चाहिए क्योकि मै सदा तो रहूगा, मिटूँगा तो नही । और हमारी कोई न कोई अवस्था रहेगी । तो संसारकी चारों गतियोकी अवस्था बनाये रहे उसमे तो हमारी बरबादी है, अतः हमको ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिए कि इन चारो गतियोका यह जन्म मरण छूटे । यह अभिलाषा कब हुई ? जब हमने यह जाना कि मैं कथंचित नित्य हू और कथञ्चित अनित्य हू । यदि सदा एकसा ही रहने वाला हू तो मोक्ष पानेकी क्या जरूरत ? और यदि मै क्षण-क्षणमें नया-नया ही बन रहा हूँ तो मोक्ष पानेकी क्या जरूरत ? जब एक शरीरमे जुदे-जुदे आत्मा होगे तो पाप करेगा कोई दूसरा आत्मा और उसका फल भोगेगा कोई दूसरा आत्मा । पर ऐसा होता नही । जैसे एकका किया हुआ पाप दूसरा नही भोगता, इसी प्रकार एक देहमे जो अनेक आत्मा उत्पन्न हो रहे, जैसा कि बौद्धजन मानते है, तो एकने किया पाप, दूसरा कोई भोगे । और, जब भोग न सके तो किसीको माननेकी जरूरत ही क्या है ? यदि सर्वथा नित्य माने तो मोक्ष धर्म नही बनता और सर्वथा अनित्य माने तो भी मोक्ष नही बनता । जब नित्यानित्यात्मक है पदार्थमे जीव, तब ही मोक्षमार्गमे और धर्ममे कदम चल सकती है ।

जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादि णव-विह अत्थ ।
सुद-णाणेण णएहि य सो सद्दिट्ठी हवे सुद्धो ॥३१२॥

सम्यग्दृष्टिकी तत्त्वविषयक यथार्थ मान्यता—सम्यग्दृष्टि जीव आदरपूर्वक जीव अजीव आदिक ९ प्रकारके अर्थोको श्रुतज्ञान और नयोंको यथार्थ जानता है, उसको कहते है शुद्ध सम्यग्दृष्टि । जीव, अजीव, आश्रव, बध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप, ये ९ प्रकार के पदार्थ माने गए है । जीव किसे कहते ? जहाँ चेतना हो । जीव स्वय सत् है, वह अपने आप चैतन्यस्वरूप है । और, अपने ही स्वभावके कारण अपनेमे अपनी परिणति बनाता रहता है । सर्व पदार्थोसे निराला है । अपने आपको भी देखिये—इसी तरह मै जीव सर्व पदार्थोसे निराला ज्ञानस्वरूप हू और अपनेमे अपना उत्पादव्यय करता रहता हू । मेरा अन्य किसी पदार्थसे कोई सम्बध नही है, इस तरह जीव तत्त्वकी श्रद्धा करना सो सम्यग्दर्शन है । जीवके साथ ससारमे अनादि परम्परासे कर्मका बन्धन लगा हुआ है । वे कर्म अचेतन है लेकिन वे स्वय अपने आपमे स्वतंत्र सत् है, उन कर्मोका परिणमन उनमे ही होता है । उनकी परिणति मुझमे नही होती । मेरा कर्ममे अत्यन्ताभाव है । कर्मका मुझमे अत्यन्ता-

भाव है। केवल निमित्तनैमित्तिक भावसे ऐसा हो रहा है कि कर्मका उदय होनेपर मुझमे रागादिक भाव होते और रागादिक भाव होनेपर कर्ममे कर्मत्वका बन्धन होता है। तो यो बन्धन ला गया है पर वस्तुत कर्मका परिणमन कर्ममे है, मेरा परिणमन मुझमे है। यो कर्मकी सब बातोको समझना यह कर्मकी सच्ची श्रद्धा है। आश्रव—जब जीव राग भाव करता है तो उसका निमित्त पाकर कर्ममे कर्मपना आ जाता है, यही आश्रव है और उन कर्मोमे स्थित हो जाता है। कि यह इतने वर्षो तक कर्म बना रहेगा, यह बध कहलाता है। जब जीवका मोह उपशान्त होता है, ज्ञान वैराग्यमे जीव चलता है तो कर्मोका बन्धन रुक जाता है, यही संवर है और पहिले बँधे हुए कर्म झड जाते है, यह उसकी निर्जरा है और सवरपूर्वक निर्जरा होते होते कभी कर्म बिल्कुल निकल जाते है आत्मासे, यही उसका मोक्ष है। अब रहे पुण्य और पाप, ये आश्रवके भेद है। जो कर्म बधे है उनमे कुछ तो होते पुण्य कर्म, कुछ होते पापकर्म। पुण्यके उदयमे इन्द्रिय सुखकी सुविधा मिलती है, पापके उदयमे असुविधाये मिलती है, लेकिन ज्ञानी पुरुष जानता है कि न तो पुण्यसे मेरा निस्तारा होगा और न पापसे। पुण्य पापसे रहित केवल ज्ञानस्वरूप मैं अपने आपका अनुभव करूँ तो इस अनुभवके द्वारा ही मेरा ससारसे निस्तारा हो सकता है।

जो ण य कुव्वदि गव्व पुत्त-कलत्ताइ-सव्व-अत्थेसु।
उवसम-भावे भावदि अप्पाण मुणदि तिण-मत्त ॥३१३॥

ज्ञानी पुरुषकी वास्तविक अमीरी—जो पुरुष पुत्र कलत्र आदिक सर्व पदार्थोमे घमड नही करता है और अपनेको उपशम भावमे भाता है व वर्तमान व्यक्तरूप अपने को तृणवत् मानता है, वह पुरुष सम्यग्दृष्टि है। वही इन बाह्य सब पदार्थोको तृणवत् सारहीन मान सकता है। जिसने सर्व पदार्थोसे निराला अपने आपमे सहज ज्ञानमात्र अपने आपकी प्रतीति की है और जिसकी यह धुन बनी है कि यह मै इस निज स्वरूपमे समा जाऊँ। मेरा ज्ञान इस ज्ञानस्वभावको ही जाना करे, यही एक मात्र आवश्यक है यह जानकर जिसकी धुन अपने आपमे बन गयी है वह पुरुष जगतके वैभवोका क्या मूल्य करेगा ? आत्माका कल्याण पानेके लिए आनन्द इसी बातमे है, यही कुञ्जी जिसको प्राप्त हो गयी है वह अपने अन्दर तृप्त रहता है और अपनेको अमीर अनुभव करता है। जिसे कुछ न चाहिए हो वही तो अमीर कहलाता है। वैभवके रहने पर वैभवके कारण अगर अमीर बताया जाय तो इसको कोई सिद्ध नही कर सकता। इसकी परिभाषा नही बनाई जा सकती कि अमीर कौन है ? लखपति अमीर जँचता है हजारपतियोको, करोडपति अमीर जचता है लखपतियोको, सभी लोग अपनेसे अधिक धनिकोको देखकर अपनेको गरीब अनुभव करते है। अमीर तो वह है जिसको कुछ न चाहिए हो। इस परिभाषामे से आप अमीरपनेका निश्चय कर सकते है। जिस जीवको

दुनियामे परमाणुमात्र भी बाह्यसंग न चाहिए, जिसने सारभूत अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव किया है और जा ा है कि यही मेरा सर्वस्व है और यह अनुभवा कि इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ न चाहिए, वास्तवमे अमीर वह है । जो लोगोको निरखकर लोगोसे अपने बडप्पन की आशा रखते हो या मै इन लोगोमें कुछ अच्छा कहलाऊँ ऐसी भावना रखते हो तो उनके तो मिथ्या अज्ञानका अंधकार बना हुआ है । रही यह बात कि जरूरत माफिक चाहिए यह सब कि जहाँ रहते है उस बीच हमारी सही पोजीशन रहे, इसकी आवश्यकता तो है। तो जो पुरुष अपने मोक्षमार्गमे चल रहा हैं उसके इतना पुण्य अवश्य होता है कि लौकिक पोजीशन भी उसके यथायोग्य बनी रहती है । उसके लिए अलगसे कुछ उद्यम नही करना होता है । कोई उद्यम करके धनार्जन नही कर पाता । उदय हो तो उसका साधन बनता है, तो वास्तविक अमीर वह है जो संसारमे कुछ भी पदार्थ चाहता नही ।

ज्ञानस्वरूपका आदर करने वालोंका स्पष्ट प्रतिबोध——भीतरमे जिसकी यह धुन है कि मेरा ज्ञानस्वरूप मेरे ज्ञानस्वरूपमे समा जाय बस इसीमे ही पूर्ण आनन्द है । कोई यदि यह कहे कि इस तरहकी स्थिति बनायेगे तो मरण हो जायेगा । यह शल्यकी बात नही, इस स्थितिमे मरण भी हो जाने दे इसीमें आनन्द है ? कोई यो शका करेगा कि खुद खुदमे समा गया तो फिर बाह्यका कुछ ध्यान ही न रहेगा । फिर तो घर विगडेगा, तो रहने दो, बिगडने दो, बिगडता कुछ नही है, तुम्हारा तो भला हो जायेगा, आनन्द हो जायेगा । किसी भी क्षण यदि यह अपने स्वरूपमे समा जाय और इसको बाहरमे कुछ भी पता रहे तो इस का बिगाड नही है, किन्तु उद्धार ही है । तो ऐसा जानकर जो सम्यग्दृष्टि जीव बाह्य कलत्र पुत्र मित्रादिकमे किसी प्रकारका गर्व नही करता, मेरे इतने बच्चे है, ऐसा घर है, ऐसा धन वैभव है, ऐसी पोजीशन है । अरे ये सब तृण मात्र चीजे है, किसका गर्व है ? जिसको जो मिल गया, मिल गया, उदय है, मगर सारभूत कुछ नही है । बडीसे बडी पोजीशन जिनको मिल जाय वहा भी हित और सार नही मिलता है । तो जो बाह्यपदार्थोको असार जानकर उनमे गर्व नही करता वह पुरष सम्यग्दृष्टि है । शत्रु मित्र सभीमे समान परिणाम रहता है । वह शान्त भावकी भावना रखता है, शुद्ध परिणाम रूपसे परिणमता है और अपने प्राप्त पोजीशनको तृणवत् मानता है । गर्वहीन पुरुषका यह लक्षण है कि वह अपने मायामयरूपको तृण मात्र समझता है, जिसे कहते है कि न कुछ । अपनेको न कुछ मानने का अर्थ यह है कि इस पर्यायको वह न कुछ मानता है । ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवके बाह्यपदार्थों से परम उपेक्षा रहती है, मै अकिञ्चन हू इस प्रकारकी भावना रहती है । मेरा बाहरमे कही कुछ नही है, मै केवल मै ही हू इस प्रकारका उसका स्पष्ट प्रतिवोध रहता है ।

नही रखता, किसी भी बाह्य तत्त्वको अपना परमात्मा नही मानता, ऐसी दृढ प्रतीति वाले जीवको शरीर वेदनासे भी कोई विगाड नही होता ।

अपने निरापदस्वरूपको निरखने वालेके विगाड़की असंभवता:—वताया यहाँ यह जा रहा है कि ज्ञानी जीव अपने निरापद स्वरूपको निरख रहा है । इस कारण सवको हेय समझता है । लोग सोचते है कि अभी कुछ थोडा और जिन्दा रह जावे, अभी इतना काम और करनेको पडा है घर, दूकान, परिवार समाज आदिका, तो ऐसा सोचने वाला व्यक्ति अभी मोहमे है । अभी मैंने धर्म नही कर पाया, अभी मैने ज्ञानार्जन नही किया, धर्मको अच्छी तरह नही कर पाया, मुझे अभी जीवनकी जरूरत है, ऐसा सोचने वाला व्यक्ति यद्यपि उतना मोही नही है, किन्तु उसका भी यह मोहका ही प्रलाप है । जो उद्यत है, तैयार है, पुरुपार्थी है, मोक्षमार्गके सुभट है, उनका तो यह निर्णय है कि मेरा कारण इसी समय आ जाय तो आ जाय, कोई फिक्र नही है । यह तो वडी अच्छी वात है कि हम सावधान है और हमारी दृष्टि इस निजस्वरूपमे जा रही है, हमे उस धुनका आनन्द मिला है । ऐसी स्थितिमे किसी का मरण हो तो उसका विगाड क्या ? रही यह वात कि जिस सम्पर्कमे रह रहे है वह विछुड जायगा, तो बिछुडा हुआ तो अभी भी है । अव उनका क्या होगा, ऐसी शका न रखना, क्योकि सभी जीवोका अपना-अपना पुण्य पृथक पृथक है । बडे घरानेके बच्चे बडे लाडप्यार से पाले जाते है फिर भी बडे दुर्बल रहते है और भिखारियोके बच्चे जो मिट्टीके ढलो पर लोटते है वे खूव हृष्ट पुष्ट रहते है, तो सबका अपने-अपने ढगमे उदय न्यारा-न्यारा है । किसी बालकको अगर कोई जगलमे फेंक दे, पर उसका उदय अनुकूल है तो देवता उसकी रक्षा करते है । ऐसे अनेक उदारण पुराणोमे मिले है और एक उदाहरण तो अभी कुछ ही वर्षो पहिलेका है जब कि भारत देश छोटे-छोटे राज्योमे विभक्त था । बुन्देलखण्डमे एक राजमाता राज्य करती थी उनके अपने पतिके मर जानेके बाद तो तभी उस राजमातापर किसी मुगल ने आक्रमण कर दिया । उनसे मुकावला करनेके लिए वह राजमाता युद्धके लिए निकल पडी, पर उन दिनो उसके पेटमे गर्भ था, बच्चा उत्पन्न होनेके दिन थे, उस युद्धस्थलमे ही उसका पेटदर्द शुरू हो गया, अब राजमाता सोचने लगी कि बच्चा यदि यहाँ पैदा होता है तो हत्यारो द्वारा यह मार डाला जायगा, इसलिए युद्धस्थलको छोडकर वह बाहरकी ओर भागी । रास्तेमे ही वच्चा पैदा हो गया, उसे एक झाडीमे फैंककर वह राजमाता कही दूर निकल गई । ७ दिनके बाद वह राजमाता लौटकर आती है तो अपने बच्चेको खूब हृष्ट पुष्ट खेलता हुआ पाती है । हुआ क्या था कि जिस जगह वह वच्चा फिक गया था उसीके ठीक सामने ऊपर एक मधुमक्खियोका छत्ता लगा हुआ था । सो शहदकी एक-एक बूंद उस वच्चे के मुखमे प्रवेश कर रही थी । उसीसे वच्चा पुष्ट रहा । तो देखिये कैसा उसका उदय था ?

सबका उदय न्यारा-न्यारा है। तो किसकी फिक्र करना ? अगर किसीके पापका उदय है तो कितना ही आप उसे सुखसुविधायें प्रदान करें पर वह ज्योका त्यो दुखिया रहेगा।

ज्ञानीकी दृष्टिमें अमीरी और गरीबी—सम्यग्दृष्टि पुरुष तो ऐसा अनुभव करता है कि यहाँ मेरे पर तो कोई भार नही है, मै तो एक अमूर्त ज्ञानमात्र हू, इस मुझपर किसी परसे कोई विपदा नही आती। ऐसा निरापद ज्ञानमात्र अपने आपको निरखता है। यहाँ हम आप इतना साहस नही बनाते है कि यहा किसी भी पडोसी, देशवासी, मित्रजन आदिसे अपने बडप्पनकी चाह न रहे। यह हिम्मत नही जगती कि सर्वसे उपेक्षा करके अपने आपके स्वरूपमे समा सकते है। चाहे सारा जहान प्रशसा करे तो उससे इस जीवको लाभ क्या मिलता, अथवा सारा जहान इस जीवकी निन्दा करे तो भी इसका बिगाड क्या होता ? जिसने अपने उस ज्ञानानन्दस्वरूपका अनुभव किया है वह अमीर है और जिनकी दृष्टि बाहर ही बाहर डोल रही है वे गरीब है। बाहरमे उनको कैसी ही स्थिति मिली हो, वे गरीब है। ज्ञानी पुरुष जानता है कि कैसा ये मोही प्राणी इन विषयोमे आसक्त हो रहे है। खुद खुदमे है, विषय विषयमे है, किसीसे कुछ सम्बध नही है पर अपने आपके भीतर न समाकर बाहरमे कुछ आशा बना करके ये मोही प्राणी दुखी हो रहे है। आरम्भ परिग्रहके कार्योमे लगे हुए ये जीव कितना दुखी है। ये दूकान, ये कारखाने, ये बडे-बडे वैभव जो मिले है ये इस जीवके क्या लगते है ? इस जीवको समझने वाला यहाँ है कौन ? यह अज्ञानी प्राणी परवस्तुओकी आशा कर करके अपनेमे रीता बन गया। यह अपने ज्ञानानन्दस्वरूपकी सुध नही रख रहा। तो बाहरमे इतना आरम्भ परिग्रहमे वृत्ति रखना यह तो मोहका विलास है। लोग तो बडे आदमियोको (धनिकोको) देखकर यह विचार बनाते है कि ऐसे ही ठाठ, ऐसी ही अमीरी हमे भी मिले, पर सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष इन ठाठबाटोको देखकर उनपर दया कर रहा है कि ये बेचारे कितने दुखी है ? अपने आपके स्वरूपसे बाहर इनका ज्ञान दौड रहा है, अहो इन बेचारोकी बडी दयनीय स्थिति है। तो देखिये——ज्ञान और अज्ञानकी धारामे ज्ञानी और अज्ञानीमे कितना अन्तर है ? ज्ञानी पुरुष इन सब बाह्य प्रसगोको हेय समझता है।

उत्तम गुण-गहण रओ उत्तम-साहूण विणय सजुत्तो।
साहम्मिय-अणुराई सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥३१५॥

ज्ञानी पुरुषकी दृष्टि और वृत्ति—जो उत्तम गुणोके ग्रहणमे रत है, उत्तम साधुवोके विनयसे संयुक्त है, साधर्मी जनोमे जो अनुराग रखते है वही सत्यदृष्टि वाले उत्कृष्ट पुरुष कहलाते है। श्रम भी क्या करना है ? वीतरागता, शुद्ध ज्ञानप्रकाश, जिनका सम्बध समस्त सदाचारसे है, ऐसे उत्तम गुणोके ग्रहणकी ही जिनकी धुन बन गई है ऐसे वे पुरुष उत्तम मुनि

नही रखता, किसी भी बाह्य तत्त्वको अपना परमात्मा नही मानता, ऐसी दृढ प्रतीति वाले जीवको शरीर वेदनासे भी कोई विगाड नही होता ।

अपने निरापदस्वरूपको निरखने वालेके बिगाड़की असंभवता:—बताया यहाँ यह जा रहा है कि ज्ञानी जीव अपने निरापद स्वरूपको निरख रहा है । इस कारण सबको हेय समझता है । लोग सोचते है कि अभी कुछ थोडा और जिन्दा रह जावे, अभी इतना काम और करनेको पडा है घर, दूकान, परिवार समाज आदिका, तो ऐसा सोचने वाला व्यक्ति अभी मोहमे है । अभी मैंने धर्म नही कर पाया, अभी मैने ज्ञानार्जन नही किया, धर्मको अच्छी तरह नही कर पाया, मुझे अभी जीवनकी जरूरत है, ऐसा सोचने वाला व्यक्ति यद्यपि उतना मोही नही है, किन्तु उसका भी यह मोहका ही प्रलाप है । जो उद्यत है, तैयार है, पुरुषार्थी है, मोक्षमार्गके सुभट है, उनका तो यह निर्णय है कि मेरा कारण इसी समय आ जाय तो आ जाय, कोई फिक्र नही है । यह तो बडी अच्छी बात है कि हम सावधान है और हमारी दृष्टि इस निजस्वरूपमे जा रही है, हमे उस धुनका आनन्द मिला है । ऐसी स्थितिमे किसीका मरण हो तो उसका बिगाड क्या ? रही यह बात कि जिस सम्पर्कमे रह रहे है वह बिछुड जायगा, तो बिछुडा हुआ तो अभी भी है । अब उनका क्या होगा, ऐसी शका न रखना, क्योकि सभी जीवोका अपना-अपना पुण्य पृथक पृथक है । बडे घरानेके बच्चे बडे लाडप्यारसे पाले जाते है फिर भी बडे दुर्बल रहते है और भिखारियोके बच्चे जो मिट्टीके डलो पर लोटते है वे खूब हृष्ट पुष्ट रहते है, तो सबका अपने-अपने ढगमे उदय न्यारा-न्यारा है । किसी बालकको अगर कोई जगलमे फेंक दे, पर उसका उदय अनुकूल है तो देवता उसकी रक्षा करते है । ऐसे अनेक उदारण पुराणोमे मिले है और एक उदाहरण तो अभी कुछ ही वर्षो पहिलेका है जब कि भारत देश छोटे-छोटे राज्योमे विभक्त था । बुन्देलखण्डमे एक राजमाता राज्य करती थी उनके अपने पतिके मर जानेके बाद तो तभी उस राजमातापर किसी मुगलने आक्रमण कर दिया । उससे मुकाबला करनेके लिए वह राजमाता युद्धके लिए निकल पडी, पर उन दिनो उसके पेटमे गर्भ था, बच्चा उत्पन्न होनेके दिन थे, उस युद्धस्थलमे ही उसका पेटदर्द शुरू हो गया, अब राजमाता सोचने लगी कि बच्चा यदि यहाँ पैदा होता है तो हत्यारो द्वारा यह मार डाला जायगा, इसलिए युद्धस्थलको छोडकर वह बाहरकी ओर भागी । रास्तेमे ही बच्चा पैदा हो गया, उसे एक झाडीमे फैंककर वह राजमाता कही दूर निकल गई । ७ दिनके बाद वह राजमाता लौटकर आती है तो अपने बच्चेको खूब हृष्ट पुष्ट खेलता हुआ पाती है । हुआ क्या था कि जिस जगह वह बच्चा फिक गया था उसीके ठीक सामने ऊपर एक मधुमक्खियोका छत्ता लगा हुआ था । सो शहदकी एक-एक बूंद उस बच्चेके मुखमे प्रवेश कर रही थी । उसीसे बच्चा पुष्ट रहा । तो देखिये कैसा उसका उदय था ?

सबका उदय न्यारा-न्यारा है । तो किसकी फिक्र करना ? अगर किसीके पापका उदय है तो कितना ही आप उसे सुखसुविधायें प्रदान करें पर वह ज्योका त्यों दुखिया रहेगा ।

ज्ञानीकी दृष्टिमें अमीरी और गरीबी—सम्यग्दृष्टि पुरुष तो ऐसा अनुभव करता है कि यहाँ मेरे पर तो कोई भार नही है, मै तो एक अमूर्त ज्ञानमात्र हू, इस मुझपर किसी परसे कोई विपदा नही आती । ऐसा निरापद ज्ञानमात्र अपने आपको निरखता है । यहाँ हम आप इतना साहस नही बनाते है कि यहा किसी भी पडोसी, देशवासी, मित्रजन आदिसे अपने बडप्पनकी चाह न रहे । यह हिम्मत नही जगती कि सर्वसे उपेक्षा करके अपने आपके स्वरूपमे समा सकते है । चाहे सारा जहान प्रशंसा करे तो उससे इस जीवको लाभ क्या मिलता, अथवा सारा जहान इस जीवकी निन्दा करे तो भी इसका बिगाड क्या होता ? जिसने अपने उस ज्ञानानन्दस्वरूपका अनुभव किया है वह अमीर है और जिनकी दृष्टि बाहर ही बाहर डोल रही है वे गरीब है । बाहरमे उनको कैसी ही स्थिति मिली हो, वे गरीब है । *ज्ञानी पुरुष जानता है कि कैसा ये मोही प्राणी इन विषयोमे आसक्त हो रहे है ।* खुद खुदमे है, विषय विषयमे है, किसीसे कुछ सम्बंध नही है पर अपने आपके भीतर न समाकर बाहरमे कुछ आशा बना करके ये मोही प्राणी दुखी हो रहे है । आरम्भ परिग्रहके कार्योमे लगे हुए ये जीव कितना दुखी है । ये दूकान, ये कारखाने, ये बडे-बडे वैभव जो मिले है ये इस जीवके क्या लगते है ? इस जीवको समझने वाला यहाँ है कौन ? यह अज्ञानी प्राणी परवस्तुओकी आशा कर करके अपनेमे रीता बन गया । यह अपने ज्ञानानन्दस्वरूपकी सुध नही रख रहा । तो बाहरमे इतना आरम्भ परिग्रहमे वृत्ति रखना यह तो मोहका विलास है । लोग तो बडे आदमियोको (धनिकोको) देखकर यह विचार बनाते है कि ऐसे ही ठाठ, ऐसी ही अमीरी हमे भी मिले, पर सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष इन ठाठबाटोको देखकर उनपर दया कर रहा है कि ये बेचारे कितने दुखी है ? अपने आपके स्वरूपसे बाहर इनका ज्ञान दौड रहा है, अहो इन बेचारोकी बडी दयनीय स्थिति है । तो देखिये—ज्ञान और अज्ञानकी धारामे ज्ञानी और अज्ञानीमे कितना अन्तर है ? ज्ञानी पुरुष इन सब बाह्य प्रसगोको हेय समझता है ।

उत्तम गुण-गहण रओ उत्तम-साहूण विणय सजुत्तो ।
साहम्मिय-अणुराई सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥३१५॥

ज्ञानी पुरुषकी दृष्टि और वृत्ति—जो उत्तम गुणोके ग्रहणमे रत है, उत्तम साधुवोके विनयसे संयुक्त है, साधर्मी जनोमे जो अनुराग रखते है वही सत्यदृष्टि वाले उत्कृष्ट पुरुष कहलाते है । श्रम भी क्या करना है ? वीतरागता, शुद्ध ज्ञानप्रकाश, जिनका सम्बध समस्त सदाचारसे है, ऐसे उत्तम गुणोके ग्रहणकी ही जिनकी धुन बन गई है ऐसे वे पुरुष उत्तम मुनि

श्रावक आदिकके जो गुण है उनमे रुचि रखते है, इसी कारण वे साधर्मी जीवोमे विनयपूर्वक रहते हुए उनकी सेवा करते है। जिनको साधुके गुणोपर दृष्टि होगी, भक्ति उनके ही जगेगी, साधुवोकी वास्तविक सेवा वे ही कर सकेगे और अपने आपमे गुणोको वे ही बढा सकेगे जिनको दूसरेके गुण भी उत्तम दिख रहे है और अपने आपका स्वरूप भी नजरमे आ रहा है। ऐसे पुरुष सम्यग्दृष्टि होते है। सम्यग्दृष्टिके ये बाह्य चिन्ह बताये जा रहे है।

अज्ञानियोंकी दयनीय स्थिति—वे पुरुष तो दयनीय स्थितिके है जो मानते है कि ये मेरे बच्चे है, यह मेरी स्त्री है, इनके लिए मेरा तन, मन, धन, वचन सर्वस्व है, बाकी जीव तो गैर है, ऐसा जिनका भाव बना है वे तो गरीब हीन दयापात्र पुरुष है, वे बडी विपदामे पडे हुए है, वे ससारके भँवरमे डूब रहे है, उनको कोई प्रकाश प्राप्त नही हो रहा है। उनका जीना भी मरना है, उनके जीवनसे उनको क्या लाभ ? उनके जीवनसे दूसरोको क्या लाभ ? जो इतने मोही है, जो घरके लोग है वे ही जिनको सब कुछ नजर आते है, और जगतके जीव गैर नजर आते है। इस जीवपर अनादि वासनासे ऐसा मोह पडा हुआ है कि जिसके कारण इसको सन्मार्ग प्राप्त नही होता। उस प्रसगको धिक्कार है जिसकी यह द्वैतबुद्धि भीतरसे उत्पन्न होती है और कभी भी यह भावना नही बना पाता कि जैसे अन्य जीव सब गैर है इसी प्रकार घरमे बसने वाले जीव भी गैर है, मुझसे निराले है। यदि घरके परिवार जनोकी भाँति दूसरे पर भी प्रेम नही उमडाया जा सकता है तो इस ओरसे भी समानताका भाव लेवे कि जैसे जीवके जीव गैर है उसी प्रकार ये घरके जीव भी गैर है, गैर माने तो सबको और अपने स्वरूपके समान माने तो सबको। जो पुरुष इन जीवोमे इतना भेद डाल देते है कि ये ही मेरे सब कुछ है, इनके लिए ही मेरा जीवन है वे पुरुष दयनीय है, दीन है, हीन है, ससारी है, जन्म मरणकी परम्परा करने वाले है। ऐसी दयनीय दशा धनिकोकी प्राय करके हो जाती है, क्योकि जहाँ राग है प्रसंग है वहाँ ही यह मोह पुष्ट होता है। यह नियमकी बात तो नही कह रहे लेकिन ये बाह्यप्रसग ऐसे ही है कि अनेक अवगुणोको हृदयमे बसा दे, गरीब भी है और वे भी उपयोग ऐसा रखते है तृष्णा करते है तो वे भी धनिकोकी तरह ही दयनीय है।

यथार्थ द्रष्टाकी सम्पन्नता—जो अपनेको ज्ञानानन्दस्वरूप अनुभवता है और यह निर्णय किए हुए है कि इस मुझ आत्मारामको बाह्यपदार्थकी किसीकी आवश्यकता नही है। मै अपने आपमे ही निरन्तर रत रहू, उसीमे तृप्त रहूँ, ऐसा जिसकी कामना है वही पुरुष उत्कृष्ट है, सम्यग्दृष्टि है। जो साधर्मी जनोमे अनुराग रखते है, जैनधर्मके आराधक पुरुषोमे जिनका वात्सल्य है वे पुरुष सम्यग्दृष्टि है। जिनधर्मके मायने जो रागद्वेष रहित भगवानने तत्त्व बताया है उस तत्त्वकी ओर जो लगे है वे कहलाते है जैनधर्मके आराधक।

केवल जैनकुलमे उत्पन्न होनेसे वे जैनधर्मके आराधक न कहलाने लगेंगे। अथवा जो जैन मजहबमे पैदा नही हुए वे जैनधर्मके आराधक न बन सकेंगे, यह भी नियम न होगा। जिनकी वस्तुस्वरूपके यथार्थ दर्शनसे प्रीति है, ज्ञान और वैराग्यमे जिनका उमग है वही पुरुष जैन धर्मका आराधक है। ज्ञानी पुरुष अपने आपको ज्ञानानन्दवैभवसे सम्पन्न अनुभव करता है इसी कारण वह अमीर है, और जिनको आत्मस्वरूपकी सुध नही है वे चाहे चक्री भी हो जाये, वे चाहे कितना ही कुछ वैभव प्राप्त कर ले फिर भी दयनीय है, गरीव हैं, क्योकि उन्हे सतोष मिल ही नही सकता।

देह-मिलिय पि जीव णिय-णाण-गुणेण मुणादि जो भिण्ण।
जीव मिलिय पि देहं कचुव-सरिस वियाणेइ ॥११६॥

देहमिलित भी जीवका निजज्ञानगुणसे भिन्नरूपतया बोध—जो भव्य जीव देहसे मिले हुए भी अपने आत्माको भेदविज्ञानके द्वारा भिन्न जानता हैं वह जीव सम्यग्दृष्टि है। यह जीव अनादिसे अब तक शरीरमे बधा हुआ चला आया है। शरीर ५ प्रकारके कहे हैं—औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण। तैजस और कार्माणसे तो सदा बँधा हुआ यह जीव आया, किसी भी क्षण इनसे अलग न हो सका। जैसे जब मनुष्यका मरण होता है तो उसका देह यही रह जाता है, मगर जीवके साथ तैजस और कार्माण शरीर जाता है तो मरनेपर यह जीव अकेला जाता हो सो नही। तैजस व कार्माण शरीर वहाँ भी रहता है रास्तेमे और जहाँ जन्म लेता है वहाँ फिर नया शरीर मिलता है। तो शरीर यो दो प्रकारके कह लीजिये—सूक्ष्म और स्थूल। तो इस प्रसगमे सूक्ष्म शरीर तो समझिये तैजस और कार्माण और स्थूल शरीर हुए ये औदारिक, वैक्रियक, आहारक। आहारक भी सूक्ष्म है, पर इससे भी सूक्ष्म तैजस कार्माण है तो यह जीव देहके मिला हुआ सदा रहता है जब तक इसकी मुक्ति न हो, पर औदारिक आदिक शरीरोसे कभी मिला हुआ रहता है। कभी उसे छोड देता है, पर निग्रह गति पूर्ण होनेपर दूसरा शरीर अवश्य मिल जाता है। तो यहाँ इस देहमे मिले हुए जीवको भी भेदविज्ञानसे यो जानना है कि शरीर न्यारा है, मै न्यारा हू। भेदकी पहिचान लक्षणसे होती है। तो शरीरका लक्षण जुदा है और मुझ आत्मा का लक्षण जुदा है। शरीर अचेतन है, जानने समझने वाला नही है। जीव चेतन है, यह जानता और समझता है।

जीवकी देहसे भिन्नताके सम्बन्धमें शंका व समाधान—कुछ लोग ऐसी आशका कर सकते है कि जीव न तो कभी दीखा और न उसका कोई स्पष्ट लक्षण मिला तो जीव क्या है उनकी मान्यतामे ? ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, ये शरीर है, ये पेच पुर्जा सब इकट्ठे मिल गए तो इसमे फिर कोई जानने देखने वाली ताकत उत्पन्न हो गयी, और वे दृष्टान्त दे

सकते है कि जैसे घडीके पेच पुर्जे न्यारे-न्यारे रखे है तो नही चलते है और जब उन्हे फिट कर देते है तो वह चलने लगते है। ऐसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि ये अलग अलग रह रहे तो इनमे जानने वाला नही बनता और इकट्ठे हो जाये, फिट बैठ जाये तो जानने की बात बनने लगती है। ऐसा कहने पर इस जीवतत्त्वके निषेधकी आशका कर सकते है, लेकिन जब लक्षणोपर विचार करते है तो यह आशका युक्त नही बैठती। भले ही घडीके पेच पुर्जे मिल गए तो घडी चलने लगी, तो जो वहा चलना है वह पेच पुर्जोकी ही तो क्रिया है। सो पेच पुर्जे जिस रूपमे है उसी रूपकी क्रिया बनेगी। पर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये तो जानने देखने वाले नही है। तो इनके मेलसे विजातीय बात कैसे बन जायेगी ? जिसमे जो धर्म है उससे वह ही धर्म प्रकट हो सकता है। तो जानन देखनहार कोई तत्त्व इस शरीरसे पृथक् है। जिसमे सुख दु खकी बुद्धि होती है, अनेक वितर्क विचार उठते है, ऐसा यह जीव इस शरीरसे निराला है।

देहसे भिन्न जीवके परिज्ञानमें सम्पन्नता—तो औदारिक शरीरसे सयुक्त हुये भी आत्माको अपने ज्ञान गुणके बलसे जो भिन्न जानता है वह सही दृष्टि वाला है। जीवका गुण है ज्ञानदर्शन और शरीरका धर्म है रूप, रस, गध, स्पर्श। तो यो स्व और परका भेद ज्ञान कराने वाले ज्ञानगुणके द्वारा जो जीवको पृथक् रूप समझता है वह सम्यग्दृष्टि है। दूसरी निरख यो चलती है ज्ञानी की कि यह शरीर इस प्रकार है जैसे कि किसी पुरुषका कोट कुर्ता वगैरह। कोट कमीज आदिकमें, पैन्ट आदिकमे पूरा पुरुष समाया है, लेकिन पैंट कोट आदि भिन्न चीजे है और वह पुरुष भिन्न चीज है, यह दृष्टान्त प्रसिद्ध दृष्टान्त है, जिसे कोई मना नही कर सकता। कपडा अलग है, पुरुष अलग है। इसी प्रकार इस शरीरमे जो जीव रह रहा है तो शरीर कोट आदिककी तरह जीवसे निराला है और यह जीव (पुरुष) देहसे निराला है। तो जो जीवसे मिले हुए शरीरको कोट कमीजकी तरह जानता है कि जैसे सफेद पीला हरा आदिक किसी रगका वस्त्र पहिन लिया तो वह वस्त्र ही तो हरा, पीला है, पुरुष हरा पीला नही हो जाता, इसी प्रकार जीवके आश्रित जो शरीर है उसमे जो रूप रग आदिक है वे शरीरके है, जीवके नही हो जाते। तो यो जो शरीरसे निराला जीवको जानता है वह सम्यग्दृष्टि है। सतोष, आनन्द, अनाकुलता आदि भी इसी कलामे प्राप्त होते है। जब अपने आपको ज्ञानस्वरूप अनुभव किया, मै ज्ञानमात्र हूँ, परिपूर्ण हूँ, सम्पन्न हू, स्वरक्षित हूँ, अमर हूँ, निरापद हूँ, मुझमे किसी दूसरी चीजका प्रदेश नही, जब इस विचार पर दृढ रहता है कोई पुरुष, तो उसके अनेक सकट दूर हो जाते है, और जिनको अपने आत्माका बोध नही है वे ससारकी किसी भी स्थितिमे पहुच जाये वे तृप्त, सतुष्ट, अनाकुल नही हो सकते।

णिज्जिय दोप देव सव्व-जिवाणं दयावर धम्म ।
वज्जिय गंथ च गुरु जो मण्णदि सो हु सद्दिट्ठी ॥३१७॥

परमात्मदेवमें क्षुधा तृषा दोषकी अनुपपत्ति—जो पुरष देव, धर्म और गुरुको जैसा उनका स्वरूप है उस ही स्वरूपको मानता है वही समीचीन दृष्टि वाला है। देव तो निर्दोप हुआ करते है। दोष १८ प्रकारके बताये गए है, जो संसारी जीवोमे पाये जाते है वे अठा-रहो प्रकारके दोष जहाँ पर न हो वे भगवान कहलाते है। वे १८ प्रकारके दोप कौन कौन से है, उनका नाम सुनते हुए यह भी विवेचन करते जाना चाहिए कि हाँ ऐसा कौन हो सकता है ? पहिला दोष है क्षुधा। जिसके भूख लगती हो वह भगवान कैसे ? बहुतसे लोग भगवानके चरित्रमे अनेक घटनाये बताते है कि इसने अमुकके बेर खाये, इस भगवानने अमुकका भोजन किया। भले ही पूर्व अवस्थामे आहार किया है, लेकिन जबसे परत्मापन प्रकट हो जाता है तबसे उनका आहार नही होता। भूख उनके नही होती। भूख भी तो वेदना है। यदि क्षुधा लगे तो इसके मायने यह है कि प्रभुको पीडा हुई। जिसमे पीडा हो वह हम ससारियोसे विलक्षण कैसे हो सकता है ? तो जिसमे क्षुधा दोष पाया जाया वह देव नही है। अर्थात् पूज्यनीय, आदर्श, उपासनीय देव नही है। दूसरा दोष है तृषा। प्यासका दोष भी पीडा करने वाला दोष है, क्षुधा और तृषामे इतना अन्तर है कि क्षुधा तो बीचकी पीडा है और प्यास छोटीसे छोटी और बडीसे बडी पीडा है। यो समझिये कि हल्की भूख हो तो उसमे वेदनाको सह सकते है, तेज भूख हो तो वह भी प्यासके मुकाबलेमे वेदना सही जा सकती है। क्षुधाके यदि दो नम्बर है तो तृषाके चार नम्बर है। प्यास तो मद, मदतर और तीव्र, तीव्रतर होती है पर भूखके दो ही प्रकार है—हल्की भूख और तेज भूख। इस प्रकार भूखके तो दो दर्जे है और प्यामके चार दर्जे है। ऐसी भूख और प्यासकी वेदनाये जिसमे लगी हो वह प्रभु कैसे कहा जा सकता है ?

परमात्मदेवके भय, द्वेष, राग, मोहकी अनुपपत्ति—तीसरा दोष है भय। जिन देवो के चरित्रमे भयकी बात बतायी जाती है कि अमुक देवता डरा और डर कर दूसरेके पास पहुंचा। उसने उसकी रक्षा की। तो ऐसा भगवान जीव परमात्मा नही कहा जा सकता। प्रभु ज्ञानमात्र आनन्दमय होते है। यदि वे शरीरसहित हो तो भी उनका दिव्य शरीर परकी वाधासे रहित, और शरीररहित परमात्मा है सिद्ध प्रभु तो वे भी निर्वाध है। तो जो देव है, परमात्मा है उसके भय नही हो सकता। चौथा दोष है द्वेष। जिस जीवमे द्वेष भाव जगता है वह परमात्मा नही हो सकता। विरोध हो, द्वेष हो, बैर हो, ऐसी कलुषताये जिसके परि-णाममे आये उसे देव कहा जा सकता है क्या ? जो लोग देवकी घटनाये बताते है कि अमुक देवताने अमुकका संहार किया तो द्वेष भाव होनेके कारण उनको प्रभु न कहा जा सकेगा।

५ वाँ दोष है राग। जिसके चरित्रमे राग भरी बाते हो, भगवान है, भगवती है और दोनो पति पत्नी साथ-साथ रहते है, वार्तालाप होता है और यहाँ तक बता डालते है कि उनके बच्चे भी होते है तो परमात्माके स्त्री हो और बच्चे हो यह बात सम्भव नही है। जो लोग भक्ति भी करते और देवका स्वरूप भी यो मानते वे अज्ञान अधेरेमे पडे है, जो अपने ही समान रागी द्वेषी देवताओको मानते है। कहते तो है ऐसा लोग कि भगवती फते करे लेकिन भगवतीका अर्थ तो भगवानकी परिणतियोसे है असलमे। जो भगवानकी विशुद्ध परिणति है वह विजय करे, अर्थ तो यह है, लेकिन जिसने भगवानके चरित्र ही ऐसे गढ रखे हो—उनका विवाह होता है, स्त्री होती है, वे दोनो साथ रहते है, तो ऐसा मानने वाले लोग उस तत्त्व तक कहाँ पहुचेगे ? वे तो सीधा किसी स्त्रीको ही भगवती मानेगे। तो जो रागद्वेषसे रहित है वही पुरुष देव (प्रभु) कहा जा सकता है। छठा दोष है मोह। मोहका अर्थ है अज्ञान, बेसुधी। जैसे गृहस्थ लोग घर गृहस्थीमे स्त्रीमे मोह रखते है, बेसुध रहते है इसी तरह कुछ लोग देवताओका ऐसा चरित्र गढ देते है कि वे भगवान अपनी पत्नीके साथ रहते है, मोह करते है ·· वे पुरुष अज्ञान अधेरेमे है, उन्होने देवका स्वरूप ठीक समझा नही। देवका स्वरूप समझनेके लिए खुद अपने आपमे कुछ निर्मलता जगानी होगी, क्योकि समझने वाला जब खुद निर्मल होगा, उसका उपयोग विशुद्ध होगा तो उसमे भगवानके स्वरूपकी झाँकी आवेगी। तो जो पुरुष खुद ज्ञानबलके द्वारा बाह्यपदार्थोकी उपेक्षा करके अपने आपमे विश्राम लेता है उसको खुदसे ही उत्तर प्राप्त होता है अनुभवके रूपमे कि भगवान ऐसा ज्ञानमात्र और अनाकुल स्वरूप होता है।

परमात्मदेवकी चिन्तारहितता—७ वाँ दोष है चिंता करना। चिंता तो चितासे भी बढकर बतायी गई है, अर्थात् जैसे कोई पुरुष मरे, चितापर जाय तो उसके सम्बधमे जैसे दूसरे लोग कुछ दुःखकी कल्पना कर सकते है—वहाँ क्या दुःख है, किन्तु चिन्तामे निरन्तर कठिनसे कठिन दुःख है। भला सब जीव निराले है, यह आत्मा अकेला है, अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही पुण्य पाप करता है और अकेला ही फल भोगता है। इसका किसी दूसरेसे कोई सम्बध नही है, लेकिन मोही जीवने किसी स्त्रीको, पुत्रको मान रखा कि ये मेरे है, घरके दो चार व्यक्तियोमे अपना उपयोग लगा देनेसे उसने अपना कितना महान घात किया है, अपने ज्ञान गुणपर प्रहार किया है और उससे फिर नाना चिंताये आ जाया करती है। जिस पुरुषको अपने एकत्वसे प्रीति है उसपर चिंताये सवार नही होती। जो अपनेको अकेला ज्ञानमात्र निरखता है उस पर चिंताओका क्या अवकाश ? भगवान समाधिके बलसे पूर्ण विशुद्ध होते है और अपने ज्ञानस्वरूपके अनुभवमे निरन्तर रहते है इस कारण वे चितासे सर्वथा रहित है।

परमात्मदेवमें जराकी अनुपपत्ति—८ वॉ दोष है बुढापा। बुढापाको महारोगमे गिना गया है। जहॉ इन्द्रियॉ शिथिल हो जाती, शरीर शिथिल हो गया, जठराग्नि भी मद हो जाती है, अनेक रोग उखड पडते है, कोई उनको पूछने वाला भी नही होता है बेकारसा जानकर। जहॉ बाहरी भी अनेक वेदनायें है। ऐसी जरा जिसके पायी जाय उसे क्या देव कह सकते है ? कुछ लोग किसी देवताका रूप वृद्धके रूपमे मानते है। उस तरहका चेहरा दिखाते है और कहते है कि यह अमुक देव है। तो जिसके बुढापा हो वह देव नही हो सकता। यदि कोई बूढा मुनि भी केवलज्ञान प्राप्त कर ले तो केवलज्ञान प्राप्त होनेके बाद वह बूढा न रहेगा। उसका शरीर युवकके समान पूर्ण पुष्ट और कातिमान हो जायगा। यह केवलज्ञानका अतिशय है। किसी पुरुषके पैर आदिकमे यदि किसी प्रकारका रोग हो, और समाधिके बलसे वह परमात्मा हो जाय तो किसी भी तरहका रोग टेढ मेढ, ये कुछ नही रह सकते। जो लोग अरहंत परमात्माके दर्शन करे और उन्हे वे दिखे टेढे मेढे, रोगी, तो वहॉ उस प्रभुके प्रति भक्ति कहॉ जगेगी ? उनका परमौदारिक दिव्य देह होता है, जहॉ धातु उप-धातु मलिनता आदिकसे रहित स्फटिक मणिकी तरह विशुद्ध शरीर हो जाता है। एक यह अतिशय बताया गया है अरहत प्रभुका कि उनके शरीरकी छाया नही पडती। क्यो पडे छाया ? जब उनका शरीर स्फटिक मणिकी तरह निर्मल हो गया, तो यहॉ भी देख लो—कोई शुद्ध कॉच हो तो धूपमे रखे जानेपर उसकी छाया जमीनमे नही पडती। हॉ अगर छाया पडती है तो समझ लीजिए कि अभी वह कॉच पूर्ण विशुद्ध नही है, कही न कही उसमे मल अवश्य लगा है। फिर भगवानका परमौदारिक दिव्य देह स्फटिक मणिकी तरह पूर्ण स्वच्छ है, इसी कारण उनके देहकी छाया नही पडती। तो जिनका देह जरासे रहित है वे प्रभु सशरीर परमात्मा है, और सिद्ध भगवानके शरीर ही नही है तो जरा आदिकका कोई अवकाश ही नही है।

परमात्मदेवमें रोग व मरणदोषका अभाव—९ वॉ दोष है रोग। शरीरमे रोग करोडो प्रकारके बताये गए है। रोम रोममे अनेक दोष पाये जाते है, केवलज्ञान होनेसे पहिले कोई शरीर ऐसा न मिलेगा मनुष्योका जो समस्त रोगोसे रहित हो, चाहे वह कितना ही पुष्ट बलवान हो। बहुतसे रोग नही है इसलिए कह देते है कि यह मनुष्य निरोग है, लेकिन कोई भी औदारिक देह ऐसा नही है कि जिसमे कोई न कोई रोग न पाया जाय। जहॉ रोग हो वह देव नही कहा जा सकता। १० वॉ दोष है मृत्यु। देवका मरण नही होता। मरण नाम है उसका जिसके बाद जन्म लेना पडता है। सशरीर परमात्मा देहसे छूट जाता है तो आयुका क्षय तो होता है, उसका इस दृष्टिसे मरण नाम भी कहा है, लेकिन वह है पडितपंडितमरण। तो आयुका वियोग हुआ इस दृष्टिसे मरण

नाम रख दिया, लेकिन वास्तवमे मरण उसीका ही नाम है कि जिसके बाद शरीरमे जन्म लेना पडता है। भगवानकी मृत्यु नही है और इसी कारण भगवानके जन्म भी नही है। सर्व कर्म जहाँ छूट गए, फिर अन्य शरीरमें जानेकी बात ही नही रहती। कुछ लोग मानते है कि भगवानका अवतार होता है। पर अवतार शब्दका अर्थ है– उतारना, गिरना, हल्की स्थितिमे आना। अवतार कोई आदर्श अर्थ नही रखता है, लेकिन लोग अवतारको बडी ऊँची निगाहसे देखते है कि यह भगवानका अवतार है। भला भगवानको क्या कष्ट था जो कि जन्म लेने आये ? जो जन्म लेने आये वह देव नही है। ज्ञान और आनन्द ही प्रभुका स्वरूप है। इस मर्मको जो नही समझते है वे मनगढत कथाये गढते है और अधेरेमे ही पड़े रहते है। ज्ञानप्रकाश उन्हे प्राप्त नही होता।

परमात्मदेवमें स्वेद, खेद, मद, रति, विस्मय, जन्म, निद्रा विषादका अभाव—— ११ वाँ दोष है पसेव आना। शरीरमे जब पसीना आता है तो कितना म्लान हृदय हो जाता है। अशुचि, मलिनता, दुर्गन्ध, न सुहाये, ये सब गदगियाँ आ जाती है। सशरीर परमात्माके शरीर तो होता है, पर वह दिव्य शरीर होना है वहाँ पसेवका कोई काम नही है। १२ वाँ दोष है खेद। प्रभुके खेद नही होता। किसी भी समय किसी शकामे आ जाये, वियोग हो जाय, घबडा जाये, यह बात प्रभुमे नही हो सकती। जिसकी ये घटनाये बतायी जाती हो वह प्रभु नही माना जा सकता। १३ वाँ दोप है मद घमड। प्रभु तो विशुद्ध ज्ञाता द्रष्टा निराकुल परमआनन्दमय अवस्था वाले होते है। उनके अभिमान नही होता। घमड तो वहाँ आये जिसमे कभी कुछ थोडी सी चीज पा ली हो, किन्तु जिनका विशालरूप है, विशाल सम्पन्नता है, परिपूर्णता है उनको मद कहाँसे आयेगा ? कषाय ही नही है, उस प्रकारके कर्म ही नही है, विशुद्ध ज्ञानानुभूति प्रकट है वहाँ घमड नही ठहर सकता। १४ वाँ दोष है रति। रति प्रवृत्तिसे सम्बन्ध रखती है। जहा रति की जा रही हो, प्रवृत्ति की जाती हो वहा देवत्व नही माना जाता है। १५ वा दोष है विस्मय (आश्चर्य)। जहा सकलज्ञान उत्पन्न होता है, तीन लोकके समस्त पदार्थोको स्पष्ट जानते है उनको आश्चर्य किस बात पर हो ? आश्चर्य तो वहा होता है जो पहिले जानता नही है और कुछ अद्भुत बात जानने मे आये, आकस्मिक बात जानने मे आये। जो चीज थी नहीं और सामने उपस्थित हो वहा ही आश्चर्य उत्पन्न होता है, पर प्रभुके ज्ञानमे तो जो पर्याय अनादिकाल से है, अनन्तकाल तक है, जो कुछ भी है, तीन लोक तीन कालके पदार्थ वे सब प्रतिभात हुए है। उन्हे आश्चर्यका अवकाश नही होता। १६ वा दोप है जन्मका। भगवानको जन्म भी नही लेना पडता। १७ वा दोप बताया गया है निद्रा याने नीदका आना। कुछ लोग कहते है कि भगवान सो जाते है। अरे जो सो जाये वह तो वेसुध हो गया। जब कमजोरी

होती है, थकान होती है तभी तो सोया जाता है। सोना कोई गुणकी चीज नही है। भगवानमे यह निद्राका दोष नही पाया जाता। १८ वा दोष है विषाद। रंज और दु:खका अनुभव करना विषाद है। इन १८ प्रकारके दोषोसे जो रहित हो वही भगवान कहा जा सकता है।

परमात्मदेवकी निर्दोषता व गुणसम्पन्नता—जो पुरुष देव, शास्त्र, गुरुका सत्यरूपमें श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि जीव है। देव तो होता है निर्दोष, जिसमे दोष जरा भी न हो और गुण पूरे प्रकट हो गए हो उसीका नाम देव है, उत्कृष्ट आत्मा। परमात्माका भी अर्थ यह है कि जो परम आत्मा हो सो परमात्मा। परमके मायने उत्कृष्ट। जो आत्मा उत्कृष्ट हो गया है उसका नाम परमात्मा है। परमात्मा शब्दसे ही अनेक बाते स्पष्ट हो जाती है। वह आत्मा उत्कृष्ट है, इसके मायने यह है कि वह कोई अनुत्कृष्ट सदोष अधूरे गुण वाला था। वही जीव अब निर्दोष और गुणसम्पन्न हो गया। इससे यह सिद्ध होता है कि जो परमात्मा है वे भी कभी कर्मोसे लिप्त थे और कर्मोंको काट करके भगवान हुए है। परम आत्मा परमका अर्थ है जिसमे अपना लक्षण उत्कृष्ट प्रकट हो गया है। परा मा लक्ष्मी यत्र स परम। जिसमे उत्कृष्ट लक्ष्मी प्रकट हुई है उसे परम कहते है। अर्थात् वह गुणसम्पन्न है,गुणोसे पूरा वही हो सकता है जिसमे दोष न रहा हो। ऐसे परमात्मामे जो दो तीन शब्द (पर मा आत्मा) लिखे है, वे शब्द बहुतसी बातोको ध्वनित करते है। जो निर्दोष हो, गुणसम्पन्न हो उसे परमात्मा कहते है। हम सदोष है और गुणोमे अधूरे है यही हम स्वभावमे परिपूर्ण है और पुरुषार्थ करे तो हमारे दोष भी सब समाप्त हो सकते है तथा गुण पूरे प्रकट हो सकते हैं।

अन्तस्तत्त्वके समाधानसे मानवजीवनकी सफलता—आज मनुष्यजीवन पाया तो इस जीवनमे एक ही उद्देश्य बनाये कि मै अपने आपके स्वरूपका दर्शन करता रहू जिससे कि दोष सब खतम हो जाये और हमारे गुण यथार्थ रूपमे प्रवृत्त हो जाये। इसमे ही शान्ति मिलेगी। यही हमारा उत्कृष्ट काम होगा। इसके अतिरिक्त अन्य काम चाहे किसी प्रकार बने, बिगडे परिणमें, उसमे कुछ भी हर्ष विषाद न करें। मै तो एक ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हूँ, मुझे किसी परसे मतलब क्या है। आज अनेक लोग प्रीतिपूर्वक व्यवहार करते है, कदाचित वे सबके सब नाराज हो जाये तो उससे मेरा कुछ बिगाड नही है। किसी भी जीवसे मेरे आत्मामे कोई गुण प्रकट नही होता। मै अपने आपको अपनी दृष्टिमे लिए रहू तो मै ही स्वय समृद्धिशाली बन जाता हूँ। यो तो सारा जहान चाहे मेरी निन्दा करे, पर उससे मेरा कुछ भी बिगाड नही होता। जो भी अनिष्ट बाते है उन सबका भी मै स्वागत करता हू, पर मेरेमे बसे हुए परमात्माके स्वरूपका दर्शन बना रहे, यही एक सच्चा पुरुषार्थ है कि

जिसके बलसे हमारा कल्याण हो सकता है। तो जब कोई जीव अपने आपके स्वरूपका निश्चय करके यहाँ ही रमता है, तृप्त रहता है वह जीव कर्मोके बन्धनसे छूटता है और परमात्मा बन जाता है।

आत्माका उत्कृष्ट पद—लोग चाहते है कि मैं कोई ऊँचासे ऊँचा बन जाऊँ, मगर यह तो निर्णय करे कि ससारमे ऊँची कौनसी चीज है ? क्या धनिक बन जाना अथवा कुछ देशोका प्रधान (राष्ट्रपति) बन जाना ये कोई सर्वोत्कृष्ट बाते है ? अरे जरा भीतरमे इसका निर्णय तो करो। ये तो सब बाहरी बाते है। देव भी मरकर एकेन्द्रिय बन जाता है। राजा भी मरकर कीडा मकौडा बन जाता है। यहाँका बडा होना कोई बडप्पनकी चीज नही है। ऊँची चीज तो है अपने आपमे वह निर्दोपता प्रकट हो जाय कि जिसके बाद कभी निम्नदशा न हो। यह मोहजाल, यह लोगोका परिचय, ये तो सब व्यामोहकी बाते है। इनमे कोई बडप्पनकी बात नही है। इन बाहरी बातोका ख्याल छोडकर अपने आपमे बसे हुए परमात्मस्वरूपको देखो, इस ही उपायसे निर्दोपता प्रकट हो सकती है। जो निर्दोष है, सर्वगुणसम्पन्न है उसे परमात्मा कहते है। ऐसे परमात्मासे नेह लगाना, उसके प्रति भक्ति उमडना यह सबसे बडा भारी आत्माका शृङ्गार है, शोभा है। इस ही भक्ति उपासनाके बलपर यह जीव आनन्दमग्न होता रहता है। जिसको अपने आपके अनुभवकी बात प्रकट हुई है उसको ऐसी धुन बनती है कि सर्व वैभवको त्याग दें, सर्व परपदार्थोकी उपेक्षा करके निर्ग्रन्थ दिगम्बर बनवासी हो जाये। ये सासारिक सुख कोई सुख नही है। ये तो साक्षात् दु खरूप है। यहाँके जिन कार्योमे मौज माना जाता है उन कार्योके करनेमे भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनो कालोमे दुख भरा रहता है। सभी लोग जानते है कि इस सासारिक वैभवके उपार्जनमे पहिले कितना कष्ट होता है, वर्तमानमे उसकी रक्षा करनेमे कष्ट होता है और बादमे उसका वियोग होनेपर कष्ट होता है। तो फिर ऐसी विभूतिमे क्या लगाव रखना ?

ज्ञानीका निर्णय और साहस—ज्ञानीके तो यह निर्णय रहता कि उदयानुसार जो आता है आये, जाता है जाये। हर स्थितियोमे हम अपनी व्यवस्था बना लेगे। मुझे ऐसी लाज नही है कि कोई लोग ऐसा सोचने लगेगे कि देखो यह अभी तक तो ऐसी ठाठसे रहते थे और अब ऐसी गिरी स्थितिमे रह रहे है। ज्ञानी पुरुषके ऐसा साहस रहता है। ज्ञानी पुरुप किसी भी स्थितिमे हर्प विपाद नही मानता। वह तो आत्मदर्शन, आत्म आराधनाके कामको सबसे अच्छा समझता है। यहाँ की चीजे तो सब उदयाधीन है—देखिये बडे बडे साधु सतोपर बडे-बडे उपसर्ग आये, पापोदय वहा भी नही छूटता है। सिंह भख रहा है, शिरपर अगीठी जलाई जा रही है, स्यालिनी भख रही है, आदि—ऐसे कठिन उपसर्ग सहन करने पर भी वे साधु आत्माराधनामे ही रत रहते है। वे उपसर्ग उनका कुछ भी विगाड

कर सकनेमे समर्थ नही होते। वे उन उपसर्गोको समतासे सहन करके कर्मोकी निर्जरा करके केवलज्ञानी हुए। तो यहाँ बाहरी प्रसंग कैसे ही आयें उनकी जरा भी चिंता मत रखो, चित्तमे ऐसा निर्णय रखो कि जैसी भी स्थिति सामने आ जायेगी उसीमे अपनी व्यवस्था बना लेगे। यहाकी स्थितियोमें रंच भी दुख न मानकर अपने अन्दरमे ऐसा अन्त पुरुषार्थ करना है कि जिससे संसारका आवागमन छूट जाय।

धर्मपालनकी दिशा--जो पुरुष परिपूर्ण गुणसम्पन्न आत्माको ही भगवान (परमात्मा) मानता है वह सम्यग्दृष्टि है। लोग तो धर्मके सम्बन्धमे नाना कल्पनाये बनाते है। धर्म करना तो सभी चाहते है, मगर कितनी विडम्बना बन गई है कि कोई लोग तो पेड, नदी, पर्वत आदिकको देवता मानकर पूज बैठते है। बहुतसे लोग तो अनेक पशुओको भी पूजते है। यों कैसी कैसी विडम्बनाये धर्मके नामपर बन गयी। और, ये हमारे देवता मास खायेगे, ऐसी श्रद्धा रखकर जीवोकी हत्या करते है, और खुद मासको देव देवी आदि का प्रसाद समझकर भक्षण करते है। तो यह धर्म कहाँ हुआ? यह तो अधर्म हुआ। लोग धर्मके नामपर रागद्वेष, विषयकषाय आदिके अनेक कार्य करते है। धर्मके सम्बधमे लोगोकी यह कितनी उल्टी श्रद्धा है। यदि धर्मका सक्षेपमे लक्षण जानना है तो यो जान लीजिए कि मेरा जो सहजस्वरूप है ज्ञानज्योति प्रतिभासमात्र, उस प्रतिभासस्वरूप अपने आपमे उपयोग रखना बस यही है धर्मपालन। अब जो इस आत्माके धर्ममे आये नही है, या जिनको इसका अभ्यास नही है, उनका काम कैसे बने? धर्म करनेके उपाय लोकव्यवहारमे नाना प्रकारके बताये गए है—पू ा करना, स्वाध्याय करना, सत्सगमे रहना, तप करना, त्याग करना आदिक। कोई पुरष इन अनेक बातोको तो करे, रहे इन्ही विकल्पोमे, पर यह पता न हो कि मुझे ये काम किसलिए करना है, इन कार्योके किये जानेका उद्देश्य क्या है, तो समझो कि उसने धर्मपालन नही किया। ये सब बाते इसीलिए है कि मै अपने उस निराकुल निर्विकल्प प्रतिभास स्वरूपको जानूँ और वहाँ ही ज्ञान लगाकर, दृष्टि लगाकर तृप्त रहूँ, निराकुल रहूँ, इतनी बात पानेके लिए हम पूजन, सत्संग, स्वाध्याय आदि करते है, इस प्रयोजनको हमे कभी न भूलना चाहिए।

धर्मपालनके प्रयोजनकी पूरकतामें ही धर्मपालनकी वास्तविकता—आत्मदर्शनके प्रयोजनको (लक्ष्यको) दृष्टिमे रखते हुए व्यावहारिक धर्म कार्योमे लगे तब तो ठीक है अन्यथा वह एक विडम्बना मात्र रहेगी। जैसे एक कथानकमे बताते है कि किसी सेठने प्रीतिभोज किया तो उसने यह सोचकर कि लोग हमारी ही पातलमे खा जाते है और उसीमे छेद कर जाते है, दाँत खोदनेके लिए सीक निकालकर। सो खानेके साथ-साथ एक एक सीक भी चार-चार अंगुलकी परोसवा दिया। अब सेठ तो गुजर गया। जब उस सेठके लड़कोने पंगत

किया तो उन्होने सोचा कि हम तो पिताजीसे चौगुनी बढिया पगत करेंगे, सो पिताने तो बनवायी थी दो प्रकारकी मिठाइयाँ, लडकोने ८ प्रकारकी मिठाइयाँ बनवायी, पिताने ४ अगुल की सीक परोसी थी तो लडकोने एक एक बिलस्तकी लकडियाँ परोसी। जब उन लडकोके लडकोने पगत की तो उन्होने सोचा कि हम तो अपने पितासे भी चौगुनी अच्छी पगत करेंगे। सो अनेक प्रकारकी मिठाइयाँ बनवायी और साथ ही डेढ डेढ हाथका एक एक डडा भी परोसवाया। भला देखिये— उस सीकको साथमे परोसनेका प्रयोजन न जानकर डेढ डेढ हाथका डडा परोसनेकी नौबत वहाँ आ गई। तो ऐसे ही समझ लीजिए कि बिना प्रयोजन को ध्यानमे रखे रूढिवश जो धार्मिक क्रियाये की जा रही है वे सब दिल बहलावा मात्र रह जाती है। उन धार्मिक क्रियाओको करके जो फायदा लूटा जाना था वह नही लूटा जा सकता। तो जितने क्षण हम आपके उस निर्दोष परिपूर्ण गुणसम्पन्न आत्मस्वभावकी ओर दृष्टि आती है उतने समय तो समझिये कर्म कट रहे है, धर्मपालन हो रहा है और इसे छोडकर जो बाहरी बातोमे जलूस, शोभा, सजावट आदिकमे लगे रहते है, लक्ष्यका पता नही है तो ऐसी स्थितिमे जैसे और और काम किए वैसे ही यह भी काम हो गया। तो यह लक्ष्य दृढ रहना चाहिए कि मुझे इस जीवनमे करने लायक काम केवल एक ही है दूसरा कुछ नही। वह काम है अपने आत्माके ज्ञानस्वरूपको जानू, उसे ही दृष्टिमे लिए रहू और उसमे ही तृप्त रहा करूँ, इसके अतिरिक्त अन्य जो भी काम करने पडते है वे करने तो पडते है, पर उनका करना योग्य नही है। करने योग्य काम तो एक यह आत्म आराधना ही है।

आत्मधर्म—जो मेरे आत्माका स्वभाव है वही मेरा धर्म है। आत्माका स्वभाव है केवलज्ञाता दृष्टा रहना, रागद्वेपसे रहित रहना। ऐसा बन सके तो समझिये कि हम धर्म कर रहे। उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, आदिक १० प्रकारके जो धर्म बताये गए है वे धर्म है। यदि हमारी क्षमा आदिकरूप परिणति बनती है तो हम धर्म पालन कर रहे है। धर्म है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। आत्माके ज्ञानानन्दस्वरूपका विश्वास होना, उसीको उपयोगमे लेना और उसही रूप प्रवर्तन करना। यदि यह बात मुझमे बन रही है तो धर्मपालन हो रहा है। धर्म है दया। दूसरे जीवोको दुखी देखकर दयाका भाव आता है, दयाका भाव तब आता है जब कि दूसरेकी तरह अपनेको समझा जा रहा हो और अपने समान दूसरेको भी समझा जा रहा हो। जैसे जाडेमे ठिठुरने वाले किसी पुरुषकी काँपती हुई आवाजको आप सुनते है तो आपको उस समय जाडेके दुखका अनुभव होता है, आपके अन्दर जाडेका दुख उत्पन्न होता है तो आपको दया आती है कि इसे कोई कपडा दे देना चाहिए, ऐसे ही जब आप किसी भूखे पुरुषको देखते है तो उस समय आपको भूखकी

वेदनाका अनुभव होता है तभी उसपर दया उत्पन्न होती है और आप उसे रोटी देते है। तो दूसरे जीवो पर दया करनेमे भी खुदका सम्बन्ध बना। और अपने आपमें दया उत्पन्न हुई कि हमको पाप न करना चाहिए, नही तो इसमे मेरे परमात्मस्वरूपका घात है। मुझे मिथ्यात्वमे, मिथ्याज्ञानमे, मिथ्या आचरणमें नही रहना चाहिए, क्योकि उसमे मेरे ही ब्रह्म स्वरूपका घात है। तो यो जो अपनी दया कर रहा है, परकी दया कर रहा है वह धर्म-पालन कर रहा है। धर्म वही है जहा दया बसी हो, और अपने आपके स्वरूपका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण पडा हो, इसके अलावा जो अन्य प्रकारकी प्रवृत्तियाँ है वे अधर्म है। बलि करना, सरागी देवोकी उपासना करना आदि ये तो अधर्मकी बातें है।

निर्ग्रन्थ गुरुमें ज्ञानीकी आस्था—सम्यग्दृष्टि जीव वह है जो निर्दोष और परिपूर्ण गुणसम्पन्न आत्माको देव मानता है और दयामयी धर्मको धर्म समझता है और निर्ग्रन्थजनो को अपना गुरु मानता है। ग्रन्थ (परिग्रह) २४ प्रकारके होते है, १४ अन्तरङ्ग परिग्रह और १० बाह्य परिग्रह। इस जीवकी बरबादी परिग्रहके संगमे है। यदि ज्ञानबलसे परिग्रहका भीतरमे लगाव त्याग दे तो उसे ज्ञानप्रकाश मिलेगा और अपना कल्याणमार्ग मिलेगा। मिथ्यात्वभाव रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, हँसना, रोना, शोक करना अथवा वियोग करना आदि ये सब अन्तरङ्ग परिग्रह है। इन परिग्रहोमे जो लगा हुआ है जीव उसको प्रभुस्वरूप नही सुहाता। सिद्ध परमेष्ठी अथवा गुरु महाराज इन भीतरी परिग्रहोके लगावसे पृथक् है और बाह्यमे धन, धान्य, क्षेत्र, वस्त्रादिक किसी भी प्रकारका परिग्रह नही है, केवल एक शरीरमात्र उनका परिग्रह है, सो उसे भी वे अपनाते नही है, अतएव वह भी परिग्रह नही है। ऐसे परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ गुरु कहलाते है, ऐसा जो श्रद्धान करते है वे सम्यग्दृष्टि कहलाते है। देव, शास्त्र, गुरुकी यथार्थ श्रद्धा जिसे नही है वह धर्ममार्गमे बढ नही सकता है।

आत्मदर्शीके आकुलताका अभाव—सबसे पहिले विश्वास निर्मल बनाना है। किसी के बहकावेमे न आये कि फलाने देवकी उपासना करनेसे धन मिलेगा, सुख साधन मिलेगे। अरे ज्ञानी पुरुष तो संसारकी सुख सुविधाओको चाहता ही नही है। सासारिक सुख मिले चाहे न मिले, हमारा गुजारा हर स्थितियोमे चल जायेगा। जब कभी शरीरमे फोड़ा फुंसी होती है और उसे कोई फोडता है, आपरेशन करता है तो भीतरमे पहिले अपना ऐसा कडा दिल बनाना पडता है कि फोडने दो इन्हे, यह तो मेरे भलेके लिए है, ऐसा ही साहस करके यहाँ भी हर स्थितियोमे रहना है। अपने ज्ञान और दिलकी वृत्तिसे ही सब सारा अन्तर हो जाता है। कोई पुरुष इस बात पर दृढ हो जाय कि यहाँ पर जो कुछ होता हो होने दो, मै तो शरीरसे निराला ज्ञानस्वरूप यह आत्मा यह सामने हू, यही मै हूँ। इस अमूर्त आत्मा

मे कोई कुछ प्रवेश नही कर सकता। यो देहसे निराले ज्ञानमात्र आत्माकी ओर दृष्टि रखे कोई तो उसे बाहरी बातोसे कोई आपत्ति आयेगी क्या ? जब कोई पुरुष अपने ज्ञानभावमे दृढ नही रहता है तो वह स्वयं अपनी कल्पनासे विपदायें मान लेता है। हम अपनेमे व्यर्थ की कल्पनाये न बनाये और अजर, अमर, सरल जो मेरा ज्ञानस्वरूप है बस उसकी ही प्रीति रखे तो फिर यहा कोई दु ख नही है। ज्ञानी जीव अपने आत्मस्वरूपमे और देव, शास्त्र, गुरुके निर्णयमे इतना नि शक है कि उसको कोई कितना ही बहकाये, मगर वह श्रद्धासे विचलित नही हो सकता। रेवती रानीको अभव्यसेन ने कितना चमत्कार दिखाया, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिक बन गया तिस पर भी उनकी उपासना उसने नही किया। यहाँ तक कि तीर्थंकरका झूठा समवशरण तक दिखाया फिर भी उस रेवतीरानीने समझ लिया कि २४ तीर्थंकर तो हो चुके यह २५ वाँ तीर्थंकर कहासे आ गया ? यह तो मायाजाल प्रतीत हो रहा है, सो उसने उसकी भी पूजा उपासना नही किया। तो यो श्रद्धान रहता है ज्ञानी पुरुषका कि न उसके अपने आत्मस्वरूपमे गल्ती है और न देव, शास्त्र, गुरुके स्वरूपके निर्णयमे गल्ती है।

दोस-सहिय पि देव जीव-हिंसाइ-सजुद धम्म।
गथासत्तं च गुरु जो मण्णदि सो हु कुदिठी ॥३१८॥

कुदृष्टिके सदोष देवकी आराधना--जो जीव दोपसहित आत्माको तो देव मानता है, जीव हिसा आदिकसे सहितको धर्म मानता है और परिग्रहोमे आसक्तको गुरु मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। जिसकी दृष्टि खोटी हो उसे कुदृष्टि कहते है। वस्तुका जिस प्रकार स्वरूप नही है या जो पर्याय जिस रूप नही है उसको उस रूपसे समझना यह ही उसकी विपरीत दृष्टि है। जिन पुरुषोमे क्षुधा तृषा रागद्वेष भय मोहादिक १८ दोप पाये जाते है उनको देव मानना अथवा कुछ दोष नही है, ऐसा स्वीकार करके भी कुछ दोषोको मानना ऐसे दोषसे सयुक्त पुरुपको देव नही कह सकते। जो दोषसहित पुरषको देव मानते है वे सम्यग्दृष्टि नही है। जैसे अनेक लोगोकी कल्पनाये है कि भगवानके साथ उनकी स्त्री व उनके बच्चे आदि भी होते है, वे भगवान घरमे भी रहते है, लोगोसे बाते भी किया करते है और जहा चाहे चोरी से दूध दही भी खा आये, किसी भी प्रकार अपनेको कौतूहल बताये, तो यह उनकी विपरीत दृष्टि है। इसी प्रकार जीव हिसा आदिक प्रवृत्तियोसे सहित प्रवृत्तियोको धर्म माने सो भी मिथ्यात्व है। अनेक पुरष अनेक प्रकारके यज्ञोकी कल्पनाये करते है। बकरा, घोडा, गाय, हाथी आदिककी बलि करके अनेक प्रकारके यज्ञ मानते है। उनमे उन जीवोकी बलि किया करते है। और मानते है कि हमने धर्म किया। कितना महान अज्ञान अधेरा है कि धर्म तो अपने भगवान आत्ममे विराजमान शुद्ध तत्त्व है जिसकी दृष्टि करना धर्मपालन है, उसे तो

जानते नही है और अपने ही जीवोके समान चैतन्यस्वरूप वाले इन पशु पक्षी आदिक पर्यायों मे आये हुएको होम देते है, बलि कर देते है। यह महान मोहका विलास है। कुछ लोग देवी देवमें, पितर आदिककी श्रद्धा किया करते है, श्राद्ध मानते है। हम अमुक देव देवीको भेट चढाये या अमुक नदीको भेट दें तो वह भेट दी हुई चीज हमारे पिताके पास पहुंच जायगी। या जो चीज हम इन पण्डोको दे दे वह चीज हमारे पिताके पास पहुच जायगी, ऐसी मिथ्या कल्पना करते है और ऐसी प्रवृत्ति करते है वह भी मिथ्यात्व है। भला जब वह बाप जीवित था तब तो सुखसे पानी तक भी नही दे सके और मरनेके बाद उनके पास गाय, पलग, वस्त्र आदि पहुंचा रहे है तो यह कितनी मूढता है? तो जो जीव हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदिकसे भरी हुई, परिग्रहोकी आसक्ति वाली प्रवृत्तियोको धर्म मानते है वे मिथ्यादृष्टि जीव है।

कुदेवत्वका आशय व उसकी आराधनाका दुष्परिणाम—लोग अनेक घटनाओमे यह कल्पना भी कर डालते है कि देखो भगवान होकर भी यह झूठ बोलना पडा, तो ऐसा झूठ बोलना भी धर्म है। भगवान होकर भी उन्होने चोरी की तो इस तरहके चोरी करनेमे क्या पाप है? अथवा भगवान होकर भी अनेक स्त्रियोमे, गोपियोमे, परस्त्रियोमे रमे तो परस्त्री-रमण क्या पाप है? तो कुदेवकी घटनाकी बात कह कह कर अपने आपमे पापकी वासना बनाते है वह सब अधर्म है। यद्यपि वस्तु दृष्टिसे वह कुदेव नही है। जिसे लोगोने कुदेव रूपसे मान डाला है वह कुदेव नही है। वह तो जो है सो है। जैसी उनकी स्थिति थी, लेकिन यहाके लोग उनको देव मानते है बस यह कुदेवपना सिद्ध होता है। जैसे जो भी अपने जमानेमे ऐसे पुरुष हुए है, जिन्होने शख, चक्र, गदा आदिक शस्त्रोको लिया था, जिन्होने मानी हुई राधा गोपी आदिकको अङ्गीकार किया था, तो वे तो जो थे सो ही है। वे अपने समयके एक पुण्य वाले पुरुष थे। उन्होने क्या किया, यह बात भी आज लोग स्पष्ट नही समझ पाते है, पर उनके सम्बन्धमे उन्हे रागी द्वेषी बताकर फिर उन्हे देव माने तो यह कुदेवपने की बात आती है। तो इससे यह सिद्ध होता है कि कुदेवपनेकी सिद्धि भगवान के अभिप्रायके कारण है। वह तो जो है सो है। देव है तो देव है, देव नही है तो नही है। कुदेवपनेकी क्या बात? यदि कोई भगवान हो गया तो भगवान है और न हो सका केवलज्ञानी तो ससारी है, अब कुदेवपनेकी बात उनमे नही है, लेकिन जो जीव रागी द्वेषीको भी देव मानते हो तब कहना पडता है कि वह तो कुदेव है। जैसे यहा भी महावीर भगवान वीतराग सर्वज्ञ है, जो है सो है, लेकिन कोई भक्त पुरुष ऐसी भक्ति करे और ऐसा स्वरूप जाने कि यह महावीर किसीको पुत्र देते है, धन देते है, मुकदमा जिताते है तो अब उस भक्तकी दृष्टिने उन्हे कुदेव बना डाला। पर क्या वे कुदेव है? या तो कोई देव है या देव

नही है। कुपनेकी बात वस्तुमे नही डटी है या वह पुरुष जो रागी द्वेषी है और अपनेको यह सिद्ध करे कि देव हो या दुनियामे यह बात फैले कि मैं देव हू तब भी उन्हे कह सकते कि वे कुदेव है। कुदेवपने की बात तो बना करके हुआ करती है, वस्तुमे नही है।

कुगुरुकी आराधनाका मिथ्यात्व—जो जीव रागी द्वेषी पुरुषको कुदेव मानते, जीव हिंसा आदिक प्रवृत्तियोसे सहित आचारको धर्म मानते वे पुरुष मिथ्यादृष्टि है, इसी प्रकार जो पुरुष परिग्रहमे तो आसक्त है, खेत रखे है, मकान बनाये हैं, बैल, घोडा, हाथी आदिक रखे है, गद्दियाँ है, जायदाद है, स्त्री पुत्रादिक है, जैसा कि अनेक लोग अभी भी यह ख्याल करते है कि बहुतसे ऋषि जगलोमे रहते थे, उनके पत्नी होती थी, बच्चे बच्चियाँ होती थी फिर भी ऋषि कहलाते थे। तो ऐसे ये सारे ख्याल मिथ्या है, जो परिग्रहमे आसक्त पुरुषको गुरु मानते है वे मिथ्यादृष्टि है। देव वही हो सकता है जो निर्दोष हो, धर्म वही हो सकता है जिसमे स्वपर दया बसी हो, गुरु वही हो सकता है जो परिग्रहसे रहित विशुद्ध हो, इसके अतिरिक्त अन्यको देव, धर्म, गुरु माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

ण य को वि देदि लच्छी ण को वि जीवस्स कुणदि उवयार।
उवयार अवयार कम्मं पि सुहासुह कुणदि ॥३१९॥

अन्यके द्वारा अन्य जीवका उपकार लक्ष्मी वितरण आदि किये जानेकी अशक्यता—कोई पुरुष ऐसा मानते है कि देव लक्ष्मीको देते है और लक्ष्मीपति, याने लक्ष्मी नामकी कोई स्त्री है, उनके वे पति है। ये लक्ष्मीपति देव है, ऐसी मुद्रा बनाकर उनकी भक्ति करते है कि ये उपकार करते है, तो ऐसा ख्याल भी मिथ्या है। कोई भी देव अन्य कोई भी लक्ष्मी को नही देता है। कोई भी पुरुष जीवका उपकार नही करता है। उपकार और अपकार तो शुभ अशुभ कर्मके उदयसे हुआ करते है। अनेक प्रकारके लोगोने नाम रख रखे है देवके—हरि, हिरण्यगर्भ, गजानन, मूषकवाहन, अथवा बहुतसे आजके परिकल्पित नाम—व्यतर, काली, चण्डी, क्षेत्रपाल, आदिक। ज्योतिषी देवोके नामपर लोग देवताकी कल्पना करते है, सूर्य, चन्द्र, गृह आदिक ये कोई भी स्वर्ण, रत्न, धन धान्य आदि लक्ष्मीको नही देते है, यदि कोई देव लक्ष्मीको देने लगे तो फिर लोग व्यापार क्यो करे ? सभी लोग एक ही काममे लग जाये, बैठे रहे, आराधना करे, देव उन्हे लक्ष्मी दे जाये पर ऐसा हो नही सकता है। और कदाचित ऐसा हो भी जाय तो यो समझना चाहिए कि कोई व्यतर आदिक सहाय बन गया उस लक्ष्मी प्राप्तिमे तो जैसे ये मनुष्यजन लक्ष्मी प्राप्तिमे निमित्त हो जाते है वैसे ही वे भी हो गए, पर कब हुए ? जब स्वकीय पुण्यका उदय हो। तो अपने ही शुभ कर्मोका उदय उसमे निमित्त हुआ, अन्य कोई निमित्त नही हुआ।

वैभवलाभमें पुण्यकर्मका निमित्तत्व—एक बार किसी राजाने अपने मत्रीसे एक

बहुत बढिया घोडा लानेको कहा। मंत्रीको एक नगरके किसी सेठका घोडा बहुत अच्छा दीखा। मंत्रीने सेठसे राजाके लिए घोडेकी माँग की, तो सेठ बडा खुश हुआ कि चलो अच्छी बात है जो हमारी कोई चीज राजाके काम तो आयी। सो वह स्वयं उस घोडेको लेकर मंत्रीके साथ गया। राजाको सेठने घोडा भेट किया। राजा सेठपर बहुत प्रसन्न हुआ और कहा—ऐ सेठ जी तुमसे हमे बडा स्नेह है। जब कभी तुम्हारे दिनोका फेर हो तो हमारी याद अवश्य करना। समयकी बात—कुछ ही वर्षोमे वह सेठ दरिद्र हो गया, उसी राजाके पास जाकर निवेदन किया, अपना हाल कह सुनाया, तो राजाने उस सेठको एक मकान दिलवा दिया और खर्चके लिए कुछ बकरियाँ दे दी। और कह दिया कि अपना समाचार प्रत्येक दो तीन दिन बादमे देते रहना। सो सेठ राजाके पास प्रत्येक दो तीन दिन बाद जाता और यह रिपोर्ट देता कि आज तो इतनी बकरियाँ कम हो गई अथवा आज इतनी बकरियाँ बढ गई। थोडे दिन बादमे जब बकरियोकी संख्या बढने लगी तो राजाने कहा ऐ सेठ अब तू जितना चाहे रुपया हमसे लेकर कोई व्यापार चालू कर दे। क्यो ? इसलिए कि अब तेरा पुण्य का उदय चल रहा है। अब जिस व्यापारको तू करेगा बस फायदा ही फायदा होगा। तो सेठ बोला—जब हमारे पुण्यका उदय आ गया तब तो हमे आपसे कुछ भी न चाहिए, हम स्वयं ही कुछ थोडा बहुत उद्यम करके आगे बढ जायेगे। तो जब शुभ कर्मोका उदय होता है तो साधारण बाते भी निमित्त हो जाती है और जब पापका उदय होता है तो कितने ही पुण्य समागम प्राप्त हो सब विघट जाते है।

जीवके अपकारमें पापकर्मका निमित्तत्व—देखिये—अकृतपुण्य बालकको राजाने निकाल दिया, और उस पुत्रके स्नेहसे उसकी माता भी उसके साथ गई और साथमे बहुतसी मोहरे ले गई। अनाजकी गाडिया भी भरवा ले गई। लेकिन पापोदयके कारण वे मोहरे रास्तेमे आग बन गईं और गाड़ियोका अनाज छेदोसे निकल-निकलकर रास्तेमे बिखरता गया। कुछ न रहा। तो जिसका उदय अनुकूल नही है उसकी कोई कितनी ही परवाह करे, मगर कुछ भी कार्यकारी न होगी।

लोग धनसचय इस कारण कर रहे है कि हमारे ये पुत्र पुत्री उत्तरदायी रहेगे. अधिकारी रहेगे, ये सुखसे रहेगे। तो उनका यह ख्याल गलत है कि हमारे कमानेसे धन बढेगा और उस धनके ब्याजसे ही या किरायेसे ही अपना गुजारा कर लेंगे, अरे पता नही, पापका उदय आये कि वह मूल धन कहाँसे निकल जाय ? अथवा वह सब जायदाद न जाने कहासे खतम हो जाय ? वर्तमानमे अपनी सम्हाल नही कर रहे, परदृष्टिमे बढ रहे तो वर्तमानमें जो अपना घात कर रहे है उनकी प्रवृत्ति दूसरोको सुखदायी क्या हो सकेगी ? जो लोग यह बुद्धि करते है कि कोई देव देवी लक्ष्मी आदिकका वितरण कर देगा वह पुरुष मिथ्यादृष्टि

है। कोई भी देव लक्ष्मी आदिकका वितरण नही करता, यह तो शुभ अशुभ कर्मके उदयसे प्राप्त होता है।

उपकार अपकारमें कर्मका मात्र निमित्तत्व--अब शुभ अशुभ कर्मोकी भी बात सुनो-ये कर्म भी कोई अलग से स्वतत्र प्रभु नही है, किन्तु खुद ही ने जो कुछ अपने भावसे कमाया है बस उस ही भावके कारण जो कर्म बँध जाते है, उन्हे ही पुण्य और पापकर्म कहते है। तो अपने द्वारा पूर्वमे उपार्जित जो शुभ अथवा अशुभ भाव है उनके होनेके कारण जो पुण्य कर्म और पापकर्मका बध हुआ उसके उदयमे इस जीवको स्वय ऐसे समागम प्राप्त होते है कि जिससे जीव सुखी अथवा दु खी होता है। तो यो सीधा कह लीजिए कि शुभ अशुभ कर्म जीवको सुख दु ख करते है, किन्तु अन्य कोई देवी देवता इस जीवका सुख दु ख लक्ष्मी आदिकको नही करते। तब उन कुदेवो और रागी देवोकी ओर दृष्टि क्यो देना ? भक्ति उपासना क्यो करना ? अब कोई यह भी शका कर सकता है कि फिर वीतराग सर्वज्ञदेवकी भी उपासना क्यो करना ? वे भी तो कुछ नही दे सकते ? तो उसका उत्तर यह है कि जो ज्ञानी भक्त है वे वीतराग सर्वज्ञदेवकी भक्ति उनसे कुछ चाहनेके लिए नही करते किन्तु अपने स्वरूपकी आराधना करके लिए वीतराग सर्वज्ञदेवके गुणोमे दृष्टि करते है। हमारा स्वरूप राग द्वेपरहित ज्ञाताद्रष्टा रहनेका है और यह बात प्रकट रूपसे वीतराग सर्वज्ञदेवमे हो गई है तो उन गुणोका चितन हम अपना मोक्षमार्ग बनानेके लिए करते है। तो आत्मलाभके लिए देव, शास्त्र, गुरुकी आराधना है, किन्तु सासारिक लाभकी सिद्धि उनकी आराधनासे न होगी। और होती है तब तो इस प्रकार होती है कि देव, शास्त्र, गुरुकी आराधनाके भावमे जो कर्म बँधते है वे प्राय पुण्य रूप बधते है और जब उस पुण्यके उदयमे सुख आदिककी प्राप्ति होती है, सो अर्थ यह हुआ कि अपने ही भावोके द्वारा अपना भविष्य बनाया जाता है।

भत्तीए पुज्जमाणो विंतर-देवो वि देदि जदि लच्छी।
तो किं धम्मे कीरदि एवं चिंतेइ सद्दिट्ठी ॥३२०॥

भक्तिसे पूजे गये भी देवी देवों द्वारा उपकारका अभाव--अब यहाँ सम्यग्दृष्टि पुरुष का चितन बता रहे है कि ज्ञानी पुरुष इस प्रकारका चितन करता है कि देखिये--यदि भक्ति से पूजा गया कोई व्यन्तर देव लक्ष्मीको दे देता है ऐसा स्वीकार किया जाय तब फिर लोग धर्मको क्यो करे ? एक ही काम करे और धर्मकी ही बात क्या ? व्यापार आदिकको भी क्यो करे ? वे तो एक उस देवकी आराधनामे ही लग जाये। विनयसे पूजे गए ये व्यन्तर आदिक देव यदि लक्ष्मीको दे दे तब फिर धर्म करनेकी प्रवृत्ति नही रहनी चाहिए। लोग धनके आकाक्षी है, तो ठीक है, चाहते है कि किसी तरह धनकी प्राप्ति हो और इस धनके लोभमे न्याय अन्य कुछ नही गिनते। किसी देवतासे धन माँगा तो इसका अर्थ हो गया कि

उस अन्याय करनेमे भी देव मदद करे। लोग देवताकी पूजा करते है उनकी बोल कबूल किया करते है तो उनके धर्मका अग यह ही मात्र रहा कि किसी न किसी देवताको पूजना। तो यो समझिये कि जैसे उन देवी देवताओकी पूजा बहानेके रूपसे कुछ लालच दिया जा रहा और उनका अपना काम बनाया जा रहा, लेकिन ऐसा नही होता। ज्ञानी पुरुष जानता है कि कोई देवता न कुछ दे सकता और न कुछ ले सकता। वह तो धन सम्पदा आदिकको क्षणभगुर जानता और पुण्य पापके अनुकूल समागम प्राप्त होते है ऐसा निर्णय किए रहता है। यह लक्ष्मी चचल है, आज है कल नही है, आज जीवित है, कल मरण हो गया तो लक्ष्मी यही पडी रहती है अथवा जीवित अवस्थामे ही सब लक्ष्मी एकदम नष्ट हो सकती है, तो लक्ष्मीके लालचमे ज्ञानी पुरुष नही आते। उसे क्षणभंगुर समझ रहे है और थोडे बहुत धनकी आवश्यकता होती है सो साधारण गृहस्थीके नातेसे उद्यम करते रहते है।

ज्ञानियों द्वारा आत्महितके उद्देश्यसे वीतराग सर्वज्ञदेवका आराधन—ज्ञानी जन सासारिक देवी देवताओकी मान्यतामे नही आते, वे तो आत्महितकी भावनासे वीतराग सर्वज्ञ-देवका आश्रय लेते है। मेरा कल्याण हो, मेरी बरवादी इन विषयकषायोके अनुसार है। हे प्रभो! मिथ्यात्व और विषयकषायकी वासना मेरी दूर हो, इसमे ही मेरा कल्याण है। तो जिसने यह वासना दूर करली है और अपने शुद्ध आनन्दमे मग्न रहा करता है, ऐसे वीतराग सर्वज्ञदेवकी भक्तिमे यह ज्ञानी पुरुष रहता है। उन्हे वह अपना आदर्श मानता है। जो बात मुझे चाहिए वह बात जिसने प्राप्त कर ली वह उनको आदर्श समझ करके उनकी उपासना मे रहता है, उनसे मोक्ष भी नही चाहता यह ज्ञानी पुरुष कि वे मुझे मोक्ष दे दे। उसकी तो आदर्शरूपमे पूजा हो रही है। जब ज्ञानी पुरुष तत्त्वचिन्तन करता है, आत्मानुभूति करता है और अपने आपमे अपने आपको निरखकर तृप्त बना रहता है। तो भगवान अरहत सिद्ध वीतराग सर्वज्ञदेवके गुणोकी दृष्टि करना वही वास्तविक पूजा है। किसी कविने यह कहा है कि देखिये चन्द्रबल तभी तक है, तारोका और भूमिका बल है, और तभी तक समस्त इष्ट कार्य सिद्ध होते है, तभी तक मत्र तंत्रकी महिमा है, तभी तक पौरुष काम करता है जब तक पुण्यका उदय है। पुण्यका क्षय होनेपर ये समागम बिगड़ जाया करते है। ज्ञानी जीव इस पुण्य पाप फलको भली भाँति समझता है, वह इसके लिए देवी देवताओकी पूजा नही करता।

जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णाद जिणेण णियदं जम्म वा अहव मरण वा ॥३२१॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
को सक्कदि वारेदु इंदो वा अह जिणिदो वा ॥३२२॥

होनीकी अविनार्यताका विचार—सम्यग्दृष्टि जीव इस प्रकारका विचार रखता है कि जो बात जिस जीवके जिस देशमे जिस प्रकारसे जिस समयमे जो होनी है, जिनेन्द्र भगवान द्वारा ज्ञात है, वह चाहे जन्ममरण सुख दुःख आदिक कोई भी परिणतिकी बात हो, जो होना है वह जिनेन्द्र द्वारा ज्ञात है और वह उस जीवके उस देशमे उस प्रकारसे उस कालमे होगा, उसका निवारण करनेके लिए इन्द्र अथवा जिनेन्द्र भी समर्थ नही है। इस विषयको एक मोटे रूपसे यो भी सोचे कि हमे यह नही मालूम कि कल ८ बजे क्या होगा, मगर यह तो निश्चित है कि कुछ तो होगा ही। जितने भी पदार्थ है उन सबका प्रति समय परिणमन होता है। अब हम नही जान रहे कि कल ८ बजे क्या होगा, किन्तु जो होगा वह होगा ही। अब इस सम्बधमे यह आशका लोग करने लगते है कि तब फिर कुछ कारण मिलाने की आवश्यकता क्या है ? जो होगा सो होगा, लेकिन यह जानना चाहिए कि जो होनेकी बात है वह जिस विधानसे होनेकी है उस ही विधानसे होगी। वहाँ कारण कलाप ऐसा ही जुटेगा और उन ही कारणोके बीच वह होनी बनेगी। कोई होनी जो कभी होती है फिर मिट जाती है, ऐसी होनी कारणके बिना कभी नही होती। जो बात बिना कारणके होगी वह सदा रहेगी। जो बात सदा नही रहती, समझना चाहिए कि उस बातमे कोई कारण था। कारणपूर्वक होने वाली बात सदा नही रहा करती है, और जो बिना कारणके होती है वह सदा रहा करती है। जैसे बिना कारणके वस्तुका स्वरूप बना है उसका ज्ञान स्वभाव है, यह बिना कारणके है, तो यह ज्ञानस्वभाव सदा रहेगा, पर हमने यह पुस्तक जाना, अमुक पदार्थको जाना ऐसा जो हमारा अलग-अलग जानना बन रहा है इसमे कारण है हमारा ज्ञानावरणका क्षयोपशम, इन्द्रियाँ हमारी पुष्ट हो, होसहवास है, अनेक कारण है इस कारण यह जानन मिटता रहता है। कोई चिता हो, दुःख हो, सुख हो, मौज हो, ये सब बाते कारणपूर्वक हो रही है, इस कारण ये सब मिट जाया करते है। इसी कारण सम्यग्दृष्टि जीव न सुखमे हर्ष मानता है, न दुःखमे विषाद करता है। ये तो सब मिट जाने वाली चीजे है। तो जो जब जहाँ जिस कारणपूर्वक होनी है वह वहाँ तब उस कारणपूर्वक होती ही है।

कल्याणकारी सरल अन्तर्बाह्य निर्णय—जिस गृहस्थको इन दो बातोका श्रद्धान होगा एक तो जो समागम मिला है वह नियमसे बिछुडेगा। दूसरी बात यह कि मेरा जब अस्तित्व है तो कभी मेरा विनाश नही हो सकता। ये दो बाते जब निर्णयमे आ गईं तब उस गृहस्थ को दुःख क्या रहा ? एक मनुष्य दुःख दो बातोका मानते है—एक तो कही मै नष्ट न हो जाऊँ, दूसरे कही ये प्राप्त पदार्थ छूट न जाये। सो पदार्थ हमसे छूटेगे ही और छूटेगे क्या ? इस समय भी पदार्थ हमसे छूटे हुए ही है। आप लोग यहा मदिरमे आये है तो घर, धन

आदि साथमे चिपक कर आये है क्या ? नही। तो सब आपसे दूर दूर ही है। आप उन सबसे निराले है। आपने उन परपदार्थो को मान लिया कि ये मेरे है तो यह आपकी कल्पना ही तो हुई। ऐसा माननेसे कही वे परपदार्थ आपके तो न बन जायेगे। कल्पना करने मात्रसे यदि परपदार्थ अपने बन जाये तब तो फिर आप भगवानसे भी बढकर है। भगवानका तो कोई परपदार्थ उनका बन नही सका और आपका बन गया तब तो फिर आप भगवानसे भी बडे हो गए (हँसी)। कोई परपदार्थ किसीका हो जाय ऐसा हो नही सकता। सभी पदार्थ स्वतत्र है, निराले है, और बडे-बडे छह खण्डके चक्रवर्ती छह खण्डका राज्य तजकर याने सारे भरत क्षेत्रका साम्राज्य छोड़कर जगलमे निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर रहते है, तो उनको छह खण्डके वैभवसे भी अधिक कोई अलौकिक सुख मिला है तभी तो उन्होने सारा राज वैभव छोडा। तो निर्जन बनमे अकेले रहकर भी उन्हे जो अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है तो वह किसका आनन्द है ? अपने ज्ञानस्वभावकी अनुभूतिका अनुपम आनन्द है। अपना आत्मा अपने आपकी दृष्टिमे आ जाय इसमे जो आनन्द भरा हुआ है उस आनन्दका अनन्तवॉ हिस्सा भी कही बाह्यपदार्थोके समागममे नही है।

सर्वस्वसार अमर ज्ञानस्वरूपके अनुभवमें असंख्यभवबद्धकर्मक्षपणकी क्षमता—असंख्याते या अनन्ते भवोके कर्म अब भी हम आपके साथ लगे है। यह न जाने कि पूर्वके एक भवके बाधे हुए कर्म ही हमारे साथ हैं। करोडो भवोके बाधे हुए कर्म भी अब तक हमारे साथ है। और, यो कह लीजिए कि किसी जीवके तो अनन्तभवोके बाधे हुए कर्म भी साथ लगे है। अनन्तभवोके मायने अनन्तानन्त नही, किन्तु जितने भवोको अवधिज्ञानसे न जान सके। अन्त तो है उनका पर जो अवधिज्ञानमे आये उससे भी परेकी बात है, उसे भी अनन्त कहते है। निगोद जीवके एक ही दिनमे कितने भव हो जाते है। जब एक श्वासमे १८ भव निगोदके बन गए तो एक मिनटमे करीब १३८० भव बन गए। एक घटामें ८२८०० हो गये। अब आप १ दिन रातके भव देख लीजिए कितने हो गए ? १९८७२०० और, कोई निगोद जीव यदि १०–२० वर्ष निगोदमे रहे तो कितने भव हो गए ? वहासे निकलकर मनुष्य हो गए तो उसके वे सब भवोके बाँधे हुए कर्म हम आप सभी जीवोके साथ है। इतने कर्मोको काट देना किस बलपर होता है ? जब आत्मा अपने आपमें अपने उस आत्माके शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूपको निहारता है और वही तृप्त रहता है, विलक्षण आनन्द का अनुभव करता है तो उस समय परभावोका लगाव छूट जानेके कारण असंख्याते अथवा नन्ते भवके बाधे हुए कर्म क्षण मात्रमे खिर जाते है। यह बात किसी सासारिक सुखमे रह कर नही की जा सकती है। तो आत्माके अनुभवका आनन्द अनुपम आनन्द होता है।

प्रकृत अन्तर्ज्ञाननिर्णयका प्रभाव—जिसने इतना भी अपने निर्णयमे रख लिया कि

तो उससे मेरा क्या बिगाड है ?

प्रकृत अन्तर्बाह्य निर्णयकी उपयोगिताका उपसंहार—मै ज्ञानस्वरूप हू, जिसका कभी विनाश नही होता। मैं अपने ज्ञानके निकट रहू तो यहाँ भी आनन्दमय हू, और जहाँ भी जाऊँगा, वहाँ भी मै अपने ज्ञानस्वरूपके निकट रहू तो वहाँ भी मै आनन्दमय रहूगा। और, जब अपने स्वरूपमे न रहकर बाहरी किसी पदार्थमे नेह लगा रहे है तो यहा भी हम आनन्दरूप नही है। चिता, शल्य, शोक आदिमे घबडाहट जरूर है। तो इतना तो है ही कि जैसे मछली जलसे बिछुड गयी, बाहर पडी है तो वह तडफ तो रही ही है, ऐसे ही यह उपयोग जब ज्ञानसमुद्रसे दूर पड गया, बाहरमे ज्ञानदृष्टि लगा दी तो यह उपयोग तो घबडायेगा ही। बाहरमे उपयोग लगा तो वहाँ नियमसे व्याकुलता ही मिलेगी। वहां शान्ति नही मिल सकती। तो जिस गृहस्थको यह निर्णय है वह यहा रहता हुआ भी सुखी है। एक तो यह निर्णय बनाना जरूरी है कि जो भी समागम मिला है वह नियमसे जल्दी ही बिछुडेगा। और दूसरा यह निर्णय बनाना होगा कि मैं आत्मा ज्ञानसर्वस्व हू। मेरे इस ज्ञानानन्द सर्वस्व आत्माका कभी विनाश नही होता। ये दो निर्णय तो अवश्य रखना ही चाहिए।

ज्ञानी पुरुषका होनीविषयक चिन्तन—अब ज्ञानी पुरुष बाह्य बातोमे यह विचार कर रहा है कि बाहरमे जो घटना होती है, जो परिणमन होता है वह जिस निमित्त सन्निधानमे जिस वातावरणमे जिस प्रकारसे होना है उस प्रकारसे होगा। उसे मेटनेके लिए न इन्द्र समर्थ है और न जिनेन्द्रदेव समर्थ है। प्रत्येक पर्यायका द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव नियत है अर्थात् प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्यमें परिणमता है, अपने ही प्रदेशसे परिणमता है और अपनी ही पर्यायसे परिणमता है, अपनी ही शक्तिमे परिणमता है और फिर ऐसे परिणमते हुए पदार्थका जो बाह्य वातावरण है याने जिस देशमे जिस समयमे जिस प्रकारसे जो बात होने वाली है वह होती है, उसे कोई टालनेमे समर्थ नही है। सर्वज्ञदेव सर्व अवस्थाओको जानते है। यहा पर एक केवल निश्चयदृष्टिसे ही निरखा तब तो वहा उसे यह ही दिखेगा कि इस द्रव्यमे इस द्रव्यकी परिणतिसे पर्यायें हो रही है, अन्यसे मतलब क्या है ? लेकिन जब युक्तिपूर्वक विचार करने बैठते है तब यह समझमे आता है कि जितनी भी विभाव परिणतिया है, उल्टी परिणतिया है, वस्तुके स्वभावके विरुद्ध परिणतिया है, वे परिणतिया वस्तुमे स्वभावत नही हुआ करती हैं। होती हैं वस्तुमे किन्तु वे अन्य निमित्त पाकर हुआ करती हैं, अन्यथा ये विभाव स्वभाव बन जायेगे। तो यह तो निश्चित है कि जितने भी रागादिक गुजरते है वे निमित्तसन्निधानमे गुजरते हैं। वे अनैमित्तिक परिणति नही है, लेकिन यहां भी यह विश्वास बनाना होगा कि कुछ भी निमित्त हो, किसी पदार्थकी परिणति किसी दूसरे निमित्तभूत पदार्थसे निकलकर नही आती। तो इसे सर्वज्ञदेव जानते है, अवधिज्ञानी जानते है।

हमे जो भी समागम प्राप्त है वे नियमसे शीघ्र ही बिछुड जायेगे। अब कोई चाहे त्याग करके छोडे और चाहे जीवित समयमे ही लुटेरे लूट ले जाये, अथवा मर जाये तो छूट जाये, समागम तो छूटेगे ही। द्वितीय बात यह है तब सच्चा ज्ञानप्रकाश बनाये कि मेरे आत्माका सर्वस्व धन मेरा ज्ञानस्वरूप है। मेरे ज्ञानस्वरूपके अलावा मेरा रच मात्र भी कुछ नही है ऐसा निर्णय बनाये और भीतर ही भीतर इसका बारम्बार विचार करे, इस भावनाको पुष्ट बनाये कि मेरा तो सब कुछ केवल ज्ञानस्वरूप है, इस ज्ञानस्वरूपके अलावा अन्य कुछ भी मेरा नही लगता। जो कुछ मिला है वह सब मुझसे निराला है। अब भी छूटा हुआ है और देशसे भी जल्दी छूट जायेगा। दूसरी बात यह निर्णयमे रखना है कि मेरा विनाश कभी नही होता। आज हम यहाँ है, यहाँसे मरण करके किसी दूसरी जगह पहुच गए तो इसमे मेरा क्या बिगाड ? बिगाड तो मोही जीव ही मानते है कि मैने यहाँ इतनी इज्जत बनाली, इतना परिचय कर लिया है, इतना धन सचित कर लिया है, हाय! यह सब छूटा जा रहा है। अरे यह सब तो तब भी असार था जब मान रहे थे कि मेरा कुछ है यहाँ। तब भी यह सब कुछ आपसे बाहर था, पर अपनी बरबादीका कारण बन रहा था। मेरा क्या बिगाड है ? छूट जाय तो छूट जाय। अपने आत्माके स्वरूपके अभ्यासका इतना धुनिया बन जाय कि सारा जहान भी अगर हमे पागल कहने लगे तो कहने दो, क्योकि दुनिया चिपकी जा रही है वैभव इज्जतसे। और, वैभव, इज्जत मेरी निगाहमे तृणवत् है, तुच्छ है। एक ज्ञानस्वरूप ही मेरा सर्वस्व धन है, यह मेरी दृष्टिमे रहे, उसहीमे मै निरन्तर लीन रहा करूँ। बस हे प्रभो! हमे एक यही आकाक्षा है। अगर बीमारी आ गई है, दिल धडक रहा है, हार्ट फैल जैसी नौबत भी आ रही हो तो ज्ञानी यह देख रहा है कि मेरा तो कुछ भी नही हो रहा। शरीर-शरीरमे है, मै ज्ञानस्वरूपमे पूराका पूरा हू, इस जीर्ण खराब शरीरमे न रहकर किसी नवीन पुष्ट शरीरमे पहुच जाऊँगा। और, मै तो यह भी नही चाहता कि किसी नवीन अच्छे शरीरमे पहुचूँ। कोई भी शरीर मुझे न मिले। मै केवल रह जाऊ जैसा मेरा खालिस स्वरूप है, ज्ञान और आनन्द अमूर्त स्वरूप, जिसमे रूप, रस, गधादिक नही है ऐसे ही मै अपने इस ज्ञानानन्द स्वरूपमे बस जाऊ, बस यही भावना है। शरीर मिलनेकी तो भावना है ही नही। तब क्या बिगाड है ? जो होता हो, होओ, छूट रहा है छूटे, मेरा कुछ नही छूटा। जो मेरा है वह मुझसे छूट नही सकता। जो मेरा नही है वह मुझमे मिल नही सकता। जितने पदार्थ है वे सब स्वरूपसिद्ध है, स्वतत्र है। किसी पदार्थका किसी अन्य पदार्थमे मेल नही होता। भले ही मिल जायें, जैसे आज दिख रहे है ये खम्भा भीत वगैरह मिले हुए है लेकिन यहाँ भी प्रत्येक परमाणुकी सत्ता न्यारी-न्यारी है। कोई किसीके स्वरूपमे मिल नही सकता। तब ऐसी स्थितिमे कोई चीज बिछुड जाय

तो उससे मेरा क्या विगाड है ?

प्रकृत अन्तर्बाह्य निर्णयकी उपयोगिताका उपसंहार—मै ज्ञानस्वरूप हू, जिसका कभी विनाश नही होता । मैं अपने ज्ञानके निकट रहू तो यहाँ भी आनन्दमय हू, और जहाँ भी जाऊँगा, वहाँ भी मै अपने ज्ञानस्वरूपके निकट रहू तो वहाँ भी मै आनन्दमय रहूगा । और, जब अपने स्वरूपमे न रहकर बाहरी किसी पदार्थमे नेह लगा रहे है तो यहा भी हम आनन्दरूप नही है । चिता, शल्य, शोक आदिमे घबडाहट जरूर है । तो इतना तो है ही कि जैसे मछली जलसे बिछुड गयी, बाहर पडी है तो वह तडफ तो रही ही है, ऐसे ही यह उपयोग जब ज्ञानसमुद्रसे दूर पड गया, बाहरमे ज्ञानदृष्टि लगा दी तो यह उपयोग तो घबडायेगा ही । बाहरमे उपयोग लगा तो वहाँ नियमसे व्याकुलता ही मिलेगी । वहा शान्ति नही मिल सकती । तो जिस गृहस्थको यह निर्णय है वह यहा रहता हुआ भी सुखी है । एक तो यह निर्णय बनाना जरूरी है कि जो भी समागम मिला है वह नियमसे जल्दी ही बिछुडेगा । और दूसरा यह निर्णय बना । होगा कि मै आत्मा ज्ञानसर्वस्व हू । मेरे इस ज्ञानानन्द सर्वस्व आत्माका कभी विनाश नही होता । ये दो निर्णय तो अवश्य रखना ही चाहिए ।

ज्ञानी पुरुषका होनीविषयक चिन्तन—अब ज्ञानी पुरुष बाह्य बातोमे यह विचार कर रहा है कि बाहरमे जो घटना होती है, जो परिणमन होता है वह जिस निमित्त सन्निधानमे जिस वातावरणमे जिस प्रकारसे होना है उस प्रकारसे होगा । उसे मेटनेके लिए न इन्द्र समर्थ है और न जिनेन्द्रदेव समर्थ है । प्रत्येक पर्यायका द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव नियत है अर्थात् प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्यमे परिणमता है, अपने ही प्रदेशसे परिणमता है और अपनी ही पर्यायसे परिणमता है, अपनी ही शक्तिमे परिणमता है और फिर ऐसे परिणमते हुए पदार्थका जो बाह्य वातावरण है याने जिस देशमे जिस समयमे जिस प्रकारसे जो बात होने वाली है वह होती है, उसे कोई टालनेमे समर्थ नही है । सर्वज्ञदेव सब अवस्थाओ को जानते है । यहा पर एक केवल निश्चयदृष्टिसे ही निरखा तब तो वहा उसे यह ही दिखेगा कि इस द्रव्यमे इस द्रव्यकी परिणतिसे पर्याये हो रही है, अन्यसे मतलब क्या है ? लेकिन जब युक्तिपूर्वक विचार करने बैठते है तब यह समझमे आता है कि जितनी भी विभाव परिणतिया है, उल्टी परिणतिया है, वस्तुके स्वभावके विरुद्ध परिणतियां है, वे परिणतियां वस्तुमे स्वभावत नही हुआ करती है । होती है वस्तुमे किन्तु वे अन्य निमित्त पाकर हुआ करती हैं, अन्यथा ये विभाव स्वभाव बन जायेगे । तो यह तो निश्चित है कि जितने भी रागादिक गुजरते है वे निमित्तसन्निधानमे गुजरते हैं । वे अनैमित्तिक परिणति नही हैं, लेकिन यहां भी यह विश्वास बनाना होगा कि कुछ भी निमित्त हो, किसी पदार्थकी परिणति किसी दूसरे निमित्तभूत पदार्थसे निकलकर नही आती । तो इसे सर्वज्ञदेव जानते है, अवधिज्ञानी जानते है ।

उनके जान लेनेसे यह तो निर्णय हो गया कि जो कुछ जब होना है, जिस समय होना है, जिस प्रकारसे होना है वह उस प्रकारसे होना है। इस बातको हिन्दी कवियोने एक दोहेमे बताया है कि "जो जो देखी वीतरागने सो सो होनी बीरा रे। अनहोनी नही होती कबहूँ, काहे होत अधीरा रे॥" हे मनुष्य ! तू अधीर क्यो होता है? तू यह समझता है कि हाय ! ऐसा हो गया, ऐसा न हो जाय, आदि इतनी अनेक कल्पनाये तू क्यो करता है ? देख बाह्य पदार्थोमे जब जो परिणमन होना है, होगा। इन बाह्य परिणमनोसे भी दूसरेमे कुछ आता नही है। तेरा परिणमन तुझमे है।। और, विभाव परिणमन निमित्तपूर्वक है, फिर भी वे सब तेरे ही परिणमन है। पूर्वपर्यायसयुक्त द्रव्य उत्तर पर्यायका उपादान कारण है। सो अपने ही भावोके द्वारा अपना ही अगला भाव बनता चला जाता है। अत अब अधीरता मत करो और इन बाहर पदार्थोका विकल्प त्यागकर अपने आपके सहज ज्ञानस्वरूपमे विश्राम करो। इसमे तेरी उन्नति है। बाह्य पदार्थोके विकल्प करनेसे तेरी उन्नति नही है।

ज्ञान व प्रशमके बलपर कर्मोका संहार—अहा ! आत्माके अनुभवमे जो आनन्द उत्पन्न होता है, समस्त बाह्यपदार्थोका राग छोडकर जो उपयोगको विश्राम मिलता है उस विश्राममे जो आनन्द उत्पन्न होता है उस आनन्दमे सामर्थ्य है कि असख्याते भवोके बांधे हुए कर्मोको नष्ट कर दे। एक कविने कहा है कि हे प्रभो ! बडे आश्चर्यकी बात है कि लोग तो शत्रुको तब नष्ट कर पाते है जब कि तेज क्रोध मन लाये, पर आपने तो अपने इन कर्म शत्रुवोका नाश करनेके लिए क्रोधके बजाय उत्कृष्ट शान्तिरूपी शस्त्रको अपनाया। सो बात सही है। ये कर्म शत्रु शान्तिके बलपर ही नष्ट हो सकते है, क्रोधके बलपर नही। तो जो अपने आपके स्वरूपको निहारता है उसमे ही पूज्यता है और वही सर्व कर्मोका नाश करनेमे समर्थ है, वह अपना उद्धार कर लेगा। और, जो पुरुष दूसरे-दूसरेकी ही बातको निहारता है और कुछ थोडा सा शुभ भाव बनाता है तो यो धुन बनाता कि दूसरे लोग धर्मात्मा बने, और लोग यह कहने लगे कि इनका धर्म बहुत अच्छा है। विद्वान बुलवाया, व्याख्यान दिलवाया, जलूस निकाला, इसलिए कि सभी लोग समझ जाये कि इनका धर्म बहुत अच्छा है, ये सभी लोग धर्मात्मा बन जाये, ऐसी जो कोई पुरुष धुन रखते है और खुद धर्मात्मा बन नही पाते है, खुद उस तत्त्वका अनुभव कर नही सकते है तो ऐसे यदि १०० आदमी हो इस विचारके कि ये ९९ आदमी इस धर्मको खूब समझ जाये तो यहा एकने भी धर्म नही समझा, और अगर कोई पुरुष खुद अपने धर्मको समझता है तो उसने समझा धर्मका रूप और तब सम्भव है कि दूसरेके दिल पर भी उसका सही प्रभाव बन जायगा कि दूसरे लोग भी धर्मका पालन करेगे। सो जो पुरुष इस तरहसे पहिचानते है कि जब जहा जैसा जो कुछ होना है वह होगा, उसे कोई मेटेगा नही, तब क्यो कुछ सोचकर अधीर होते

हो ? इसी विषयके निर्णयको अब इस गाथामे कह रहे है ।

एव जो णिच्छयदो जाणदि दव्वणि सव्व-पज्जाए ।
सो सद्दिट्ठी सुद्धो जो सकदि सो हु कुद्दिट्ठी ॥३२३॥

द्रव्य गुण पर्यायके निर्णयसे वस्तुस्वान्त्र्यकी दृष्टि—उक्त प्रकारसे जो अपना निर्णय रखता है, समस्त द्रव्योको समस्त पर्यायोको सही रूपमे जानता है वह तो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है, और जो इस प्रत्वमे शका करता है सो वह मिथ्यादृष्टि जीव है। द्रव्य ६ प्रकारके बताये गए है-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । द्रव्य ६ नही किन्तु अनन्त है, क्योकि जीव ही अनन्तानन्त है। पुद्गल उससे भी अनन्त गुने है। असंख्याते कालद्रव्य है, धर्म, अधर्म, आकाश ये एक एक है, किन्तु ये अनन्त पदार्थ ६ जातियोमे ही गर्भित हो जाते है। तो इन पदार्थो की फिर पर्यायें है। गुणोकी पर्याय, प्रदेशकी पर्याय, तो द्रव्य है, द्रव्यमे शक्तियां हैं। उन शक्तियोकी परिणतियां होती है। द्रव्य शाश्वत है, शक्ति भी हमेशा रहने वाली है और उनका जो परिणमन हो रहा है वह अनित्य है, नष्ट हो जाने वाला है। यो द्रव्य, गुण, पर्यायोका जो निर्णय रखता है वह है ज्ञानी, और जो इसमे शंका करता है वह है मिथ्यादृष्टि जीव। तो यही निरखना है कि प्रत्येक द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्य वाला है। वह अपनेमे अपनी नवीन परिणति बनाता है, पुरानी परिणति विलीन करता है, फिर भी सदा बना रहता है। अतएव किसी द्रव्यका किसी अन्य द्रव्यके साथ सम्बन्ध नही है। यो वस्तु की स्वतन्त्रताको जो निहारता है वह ज्ञानी जीव है।

जो ण विजाणदि तच्चं सो जिणवयणे करेदि सद्दहणं ।
ज जिणवरेहिं भणिय तं सव्वमहं समिच्छामि ॥३२४॥

किसी सूक्ष्म तत्त्वका अवोध होनेपर भी प्रयोजकतत्त्व श्रद्धा व जिनवचन श्रद्धासे सम्यक्त्वकी अवाधितता—जिसने अपनेको बाहरी पदार्थोसे अपना हित नही माना है, अपने स्वरूपसे बाहर अपनी दृष्टि जाय तो वह अपने अनर्थके लिए ही है, ऐसा जिसने निर्णय कर रखा है और इस निर्णयके बलपर अपने आपके सहजज्ञानस्वभावका अनुभव कर लिया है ऐसा कोई पुरुष किसी कठिन तत्त्वको न भी जान पाये तो भी उसका श्रद्धान रहता है कि जो जिनेन्द्रदेवने कहा है उस सबको मै मानता हू, वह सब समीचीन है। तत्त्वका स्वरूप और नाना प्रकारके धर्मोका वर्णन एक बड़े विस्तार वाला विषय है। दर्शनशास्त्रमे इसका इतना वर्णन किया गया है कि पढते-पढ़ते जीवन भी व्यतीत हो जाय तो भी नई-नई बाते मिलेगी। करणानुयोगमे जो तत्त्वोका वर्णन है वह भी अनेक स्थलोमे बहुत कठिन और सूक्ष्म है। यदि कोई जीव उन सब तत्त्वोको नही जान पाता तो क्या वह सम्यग्दर्शन नही

पा सकता ? उसीका उत्तर बताया गया है कि सम्यग्दृष्टि बहुत कठिन तत्त्वोंको भी नहीं जान पाये लेकिन वे जिनवचनमें श्रद्धान करते हैं कि प्रभु ने जो बताया है वह सब सत्य है। अब नरक और स्वर्गको यहाँ किसने देखा ? जैसे जा जाकर कुवा, बावडी आदि देख आते हे इस तरहसे स्वर्ग नरक भी देखे जाते हैं क्या ? लेकिन जिनको वीतराग धर्मकी अभिरुचिसे अपने आपके स्वरूपकी श्रद्धा हुई है, अटूट आनन्द पाया है, जिनको उस तत्त्वमे कोई विरोध नही जंचा हे उनका यह सब निर्णय है कि जो जिनवचनमें कहा गया है कैसा नरक हे, कैसा स्वर्ग हे, उनकी नाप, उनकी रचना आदि वह सब युक्तिसगत हे।

प्रयोजनभूत जीवादिक सप्ततत्त्वोंका श्रद्धान व जीव अजीवका निर्णय—जैसे विचार मैं रख रहा हू वैसा ही विचार दूसरेका मालूम पडे और मूल सहित मालूम पडे तो उस व्यक्तिमे रुचि हो जाती है, श्रद्धा हो जाती है कि यह बिलकुल साफ है और स्वहित चाहने वाला हे। तो जब जिनेन्द्र वचनमे जो कुछ तत्त्वकी बात कही गई है जीव, अजीव, आस्रव, बध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष, जब इन ७ तत्त्वोंके सम्बधमे बुद्धि लगाते है तो यह वर्णन हमको यथार्थ जचता है। बस इसकी श्रद्धा है। इसके बलपर सम्यक्त्वकी बात कही जाती है। इस कारण छहढालामे यह कहा है कि जीवादि--प्रयोजनभूत तत्त्व, मोक्षमार्गके प्रयोजन-भूत जीवादिक ७ तत्त्व हे। उनके बारेमे उल्टी श्रद्धा हो तो मिथ्यादर्शन है और समीचीन श्रद्धा हो तो सम्यग्दर्शन हे। जिसको अपना हित चाहिए उसको यह निर्णय करना होगा कि मै जीव हू, इस देहसे निराला, ज्ञानानन्दस्वरूपसे रचा गया समस्त बाह्यपदार्थोंके प्रवेशसे रहित निरापद यह मै जीव हू, पर इसके साथ कोई अजीव भी लगा हुआ है, तभी तो आज इतनी उल्टी परिणति हो रही है। किसी भी पदार्थमे जो उल्टा परिणमन होता है तो उससे उल्टी चीज साथमे लगी हो तब होती हे। जैसे पानी ठडा है, लेकिन जब कोई गर्म चीज साथमे लग जाय, जैसे आगपर बटलोही रख दी गई, तो झट पानी गर्म हो गया। तो जैसे ठडे पानीको गर्म करनेके लिए कोई उल्टी चीज साथमे होना चाहिए। ठीक ऐसी ही बात अपनी समझिये—जब मेरा स्वरूप जाननेका है और आनन्दमय रहनेका है तब ऐसा न हो तो कारण क्या कि कोई मेरे स्वभावसे विपरीत चीज साथमे लग गई है। अब वह विपरीत चीज क्या हे कि मैं जीव हू तो वह विरुद्ध चीज अजीव होना चाहिए। मै अमूर्त हू तो वह विरुद्ध चीज मूर्तिक होना चाहिए। ऐसे ही ये है कर्म। ज्ञानावरण आदिक ८ भेद वाले ये कर्म अजीव है और मूर्तिक है। तो जीवके साथ ये कर्म लगे हुए है बस ये अजीव है। अजीव तो शरीरादिक भी है, पर यहाँ ७ तत्त्वोके सम्बधमे कह रहे है तो चूँकि आस्रव, बध, सवर, निर्जरा, मोक्ष, इनके कथनमे कर्मकी बात आयगी तो यहाँ अजीवको देखना कर्म। यह मै ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हू और इसके साथ ये अज्ञान मूर्तिक कर्म लगे हुए है।

सुदृष्टिकी आस्रवबन्धविषयक निर्णय—ये कर्म मेरेमे, जीवमें शुरूसे नही पडे हुए है। अनादिसे परम्परासे तो पडे है, मगर जो कर्म जब बना उससे पहिले वह कर्म न था। तो ये कर्म आये हुए है और ये आते है रागद्वेष भावके कारण। इस मनुष्यको जरा-जरा सी बातोमे रागद्वेष करना अनुकूल जंच रहा है, सामर्थ्य है इसमे। पशुओ पर, पक्षियो पर, गरीबोपर इसका बल प्रयोग भी हो जाता है, और इसको रागद्वेष करना बडा आसान जॅच रहा है, लेकिन इसका कितना खोटा परिणाम है कि जन्ममरणका तॉता लग जायेगा, आकुलता हो जायेगी, अनेक कर्म बध जायेगे। बडे-बडे महापुरुषोने तीर्थकर चक्रवर्ती जैसे बडे समृद्धिशाली लोगोने सब कुछ त्यागकर यह पसंद किया था कि मै अपने इस ब्रह्मस्वरूप को देखूँ और यहा ही तृप्त रहूं, अब किसे जानें, क्या करना, कहा बोलना, बाहरकी सारी क्रियाये सारहीन है। वे अपने आपके स्वरूपमे रमकर तृप्त रहते हे। और यहा मुग्ध पुरुषो को रागद्वेष करना आसान सा जंच रहा है। जरा भी कंट्रोल नहीं है कि मै थोडा रागद्वेष मोह कम तो करूँ। क्यो स्वच्छन्दतासे ऐसे परपदार्थोमे बहूँ, इसके लिए इसकी बुद्धि नही जगती। मेरे ये रागद्वेष हो रहे है, ये ही कर्मके आस्रवके कारण है। इन भावोका निमित्त पाकर कार्माणवर्गणाये कर्मरूप बनती है, और, इसी भावकी सक्लेशकी तरतमतासे, उन कर्मोमे स्थिति बंध जाती है। यहा उन तत्त्वोका वर्णन किया जा रहा है कि जिनको ठीक-ठीक समझे बिना हम अपना हित नही कर सकते। एक क्षणके मोहकी गल्तीमे ७० कोडा कोडी सागर तककी स्थितिका कर्म बँध जाता है। एक सागर ही बहुत बडा है। जिसमे अनगिनते वर्ष समा जाते है, फिर ७० कोडा कोडी सागर कितना महान काल है? इतने समय तकके लिए एक क्षणकी गल्तीमे कर्म बॅध जाते है और जैसे ७० कोडा कोडी सागरका कर्म इस समय बांध लिया तो वह कर्म मान लीजिए ७०० वर्ष तक उदयमे न आयगा, लेकिन इसके बाद जब उसका उदय होना शुरू होगा तबसे लेकर ७०० वर्ष कम ७० कोडा कोडी सागर तक लगाकर उदयमे आता है। अब ध्यान करना है कि हम आप ससारी जीव आज कितनी विपत्तिमे फँसे हुए है। जैसे ये पतिगे रूपके लोभी होकर दीपकपर गिर जाते है और मर जाते है इसी तरह ये ससारी जीव रागद्वेष करके अपना इतना अनर्थ कर डालते है और फिर भी रागद्वेष न करे यह बुद्धि नही जगती। भगवानकी बात न सुहाये और भगवानकी भक्ति करे तो उसे भक्ति कैसे कही जा सकती है? भगवानका वचन है कि इस अपने आपमे सात तत्त्वोकी बातका निखार बना लीजिए। कर्म बँध गए, अब जब उनका उदयकाल आता है तब इस जीवको क्रोध, मान, माया, लोभ, जन्ममरण, आदि विचित्र बाते उत्पन्न होती रहती है। यह तो हुई ससारके जकडावकी चर्चा कि किस तरह हमारा संसार जकड़ाव बना हुआ है। अब सुनो मोक्षकी चर्चा।

सुदृष्टिका संवरनिर्जरा मोक्षादिविषयक निर्णय—कौनसा उपाय है वह कि जिस उपायमे हम इस बधनसे मुक्त हो जाये, सहज शाश्वत सत्य सुखी हो जाये। वह उपाय है संवर और निर्जरा। सम्वर कहते है कर्मके न आनेको। अब कार्माण वर्गणा कर्मरूप न बनें इसको कहते है सम्वर। जब जीव रागद्वेष मोहका त्याग करता है तो जितने अशोमे रागद्वेप छोड़ दिया है उतने अशोमे सवर तत्त्व प्रकट होता है। एक बात सोचिए कि मेरा जीव यदि आनन्दमय हो जाय तो इससे आगे आपको और क्या चाहिए ? मान लो दो चीजे मुकाबलेमे रखी है - एक ओर तो यह धन बढे, इज्जत बढे, परिवार बढे, बडे बडे आरामके साधन हो और एक ओर यह बात आये कि मै अपने ज्ञानानन्दस्वरूप इस निज परमात्मतत्त्वका दर्शन करूँ और इसके ही निकट अपना ज्ञान रख करके तृप्त रहू, यदि कोई कुछ ऐसी शका करने लगे कि देखो यदि हम अपने इस ज्ञानानन्दस्वरूपको जानकर वही तृप्त रहनेका उद्यम करता हू तो हमारी दूकान खराब हो जायगी। घरके बालबच्चे फिर बेकारसे हो जायेगे ? उन्हे पाले पोषेगा कौन ? और, हमारी इज्जत भी फिर कोई न करेगा। कौन हमे जानेगा ! तो यहाँ विचार करे कि यदि एक यह अपनी बात मिलती है कि मैं अपने ज्ञानानन्दस्वरूपमे बसकर विलीन हो जाता हू, तो यह तो सत्य आनन्दमय हो गया। उसको अब बाहरमे क्या पडी है ? चाहे जो बने, चाहे जो बिगडे, कही कुछ हो ? जैसे लोग कहावतमे कहते हैं कि लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा। कोई बलदेवा नामका दलाल था, वह किसानोका अनाज बेचनेकी दलाली करता था। सो एक दिन किसी किसानके अनाजकी दलाली की। तो जिसका अनाज बेचा उसने सोचा कि आज तो हमारा माल सस्ता चला गया, इस कारण वह बडा खेद मानने लगा, और जिसने वह अनाज खरीदा उसे यह ख्याल हुआ कि आज हमने तेज खरीद लिया। तो दोनो जगह अलग-अलग बैठे हुए दोनो व्यक्ति (अनाज बेचने वाला व खरीदने वाला) दुखी होते रहे। अब बलदेवा तो साथमे नास्ता रखे था, देर हो जानेसे काफी भूख भी लग गई थी, सो अपना कलेवा निकाला और एक पेडके नीचे बैठकर आरामसे कलेवा करने लगा यह कहते हुए कि लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा। तो यह तो एक लौकिक बात बतायी है। यहाँ परमार्थकी बात समझना है कि इन बाह्यपदार्थोका परिणमन हमारे आधीन नही है, कारणकूट और उपादानके अनुसार जिस पदार्थका, जिस जीवका जैसा परिणमन होना है, होगा। उसपर हमारा अधिकार भी नही और उससे मेरा कुछ होता भी नही। इसलिए बाहरमे कही कुछ हो सो हो। मै स्वामी भी नही और न बाहरी पदार्थोसे मेरेमे कुछ प्रभाव आता है। तब मै तो अपने इस ज्ञानानन्दस्वरूपको ही निरखूं और उसमे ही बस करके तृप्त होऊँ। एक ही निर्णय है ज्ञानी पुरुषका। यहाँ बताया जा रहा है कि कर्मोका सम्वर किस उपायसे होता है, वह उपाय है रागद्वेष मोहका त्याग। धर्म भी यही है कि इस

रागद्वेष मोह मलिन भावोका परिहार करे। अब शुद्धिके अनुसार सम्वर करता हुआ ज्ञानी इच्छाके अभावसे जो अपने विशुद्ध आत्मामे बढ रहा है वह उसका शुद्धोपयोग कर्मोकी निर्जरा का कारण बन रहा है। नये कर्म तो आये नही और पुराने बँधे हुए कर्मोकी निर्जरा हो जाय तो यही तो फल होगा कि किसी समय एक भी कर्म यहाँ न रहेंगे और मुक्ति प्राप्त होगी।

संवरनिर्जरामोक्षस्वरूपका दृष्टान्तपूर्वक प्रतिपादनोपसंहार—जैसे जिस नावमे छिद्र हो गया है, वह नाव किसी नदी या समुद्रमे चल रही है तो उस नावमे छिद्रके द्वारसे पानी आ रहा है। यह तो समझिये नावमे पानीका आस्रव और पानी उसमे आकर अगर ठहर गया है तो यह है नावमे पानीका बध और यदि मल्लाह चतुर है तो उस नावको डूबनेसे बचानेके लिए (मुक्ति देनेके लिए) यह उपाग करता है कि सबसे पहिले तो उसके छिद्रको वन्द करता है। उसे यह आकुलता नही होती कि इस पानीसे नाव डूब जायगी, वह तो उस पानीको निकालनेके बजाय उसमे नया पानी न आने देनेका उपाय करता है। उस छिद्रको बन्द कर दिया तो यह हुआ पानीका सम्वर और सम्वर जब बन चुका तो कटोरा आदिक जो उनके योग्य उपकरण है उनसे पानीको उलीचता है। फल यह होता कि नावमे पानी नही रहता और पानीके सकटसे नाव मुक्त हो जाती है। इसी प्रकार मिथ्यात्व रागद्वेष मोह विपयकषाय इन सब भावोके कारण कर्म आते है, यह है आस्रव, और जैसे यह क्रूरता, तीव्रता, कषाय बनी है उसके अनुसार ये कर्म यहाँ ठहर जाते है। यह है बन्धन, और राग-द्वेप मोह न करे, रागद्वेप मोहसे निराले केवल ज्ञानानन्दस्वरूप निज परमात्मतत्त्वका दर्शन करे तो इस उपायसे वे कर्म न आयेगे, यह है सम्वर। और, इन्ही कारणोसे पहिले आये हुए कर्म झड़ते जायेगे और इस उपायसे एकदम भी शेष कर्म झड जायेगे, यह हुई निर्जरा। तो जहाँ सवर पूर्ण है और निर्जरा भी हो चुकी। तव वहा समस्त कर्मोसे मुक्त होकर यह जीव भगवान होता है। तो इस प्रकार जिस जीवको सातों तत्त्वोके विषयमे श्रद्धान है और वह एकदम किसी गहन तत्त्वको न जान पाये, पर उस सब कथनके बारेमे वह ऐसा निर्णय रखता है कि जो प्रभुने कहा है उस सबको मै चाहता हू, अर्थात् वह सब समीचीन है। उसमे मुझे कुछ भी शंका नही है।

रयणाण महारयणं-सव्वं-जोयाण उत्तम जोयं।
रिद्धीण मह-रिद्धी सम्मत्त सव्व-सिद्धियरं ॥३२५॥

सम्यक्त्वकी महारत्नस्वरूपता—अब इस गाथामे सम्यक्त्वका माहात्म्य बता रहे है। यह सम्यक्त्व रत्नोमे महारत्न है। जितने रत्न लोग समझते है कि वडे कीमती है, जैसा कि दो दो रत्तीका भी मूल्य लोग लाख रुपया समझते है, ऐसे अमूल्य रत्न ये कुछ

भी मूल्य नही रखते है, उनसे भी अति अमुल्य महा रत्न यह सम्यक्त्व है। मोटे रूपसे भी देखिये—जैसे लोग कहते है कि रत्न, स्वर्ण बहुत अधिक भी जोड लिया तो उससे क्या? कही वह खानेके काम तो न आयेगा? खाने के काम तो अन्न ही आयेगा। यह एक लौकिक ऊपरी बात कह रहे है और भीतरी बात निरखें तो तीनो लोकका वैभव ढेर भी सामने हो जाय तो भी उससे इस आत्माको लाभ कुछ नही मिलता। इसे शान्ति मिले, इसको ज्ञानप्रकाश जगे यह बात तो उससे नही बनती, तो वह रत्न क्या रत्न है? महारत्न तो यह सम्यक्त्व है। जिसको चित्तमे सच्ची बातकी श्रद्धा हो जाने पर विशेष आदर है कि सबसे बडा धन है तो यही धन है कि मैं सर्व पदार्थो का तत्त्व रहस्य स्वरूप यथावत् समझ लूँ, इसमे जिसका आदर है वह पुरुष निकट भव्य है और ससारके सर्वसकटोसे निकट कालमे ही वह मुक्त हो सकता है। तो रत्नोमे महारत्न है यह सम्यक्त्व, क्योकि सम्यक्त्वके प्रभावसे इन्द्र और अहमिन्द्र आदिक बडे बडे पद प्राप्त होते है और इसलिए भी महत्त्व नही, किन्तु यह निर्वाण पदका देने वाला है, इसी कारण सम्यग्दर्शन सब रत्नोमे एक महान रत्न है। रत्न कहते है सार चीजको। पत्थरोका नाम रत्न नही है पर लोगोने पत्थरोको ही सार चीज समझा इसलिए उसका नाम रत्न पड गया। रत्नमे जो शब्दका अर्थ है वह तो यही है कि जो जिस जातिमे उत्कृष्ट है वह उस जातिमे रत्न है। यो मनुष्य-रत्न, स्त्रीरत्न, पुरुषरत्न, आदि सभी के साथ रत्न शब्द जोडा जाता है, तो वास्तवमे रत्न रत्न है, सारभूत चीज है तो वह है सम्यक्त्व। उस सम्यक्त्व महारत्नका आदर करना चाहिए और सम्यक्त्व लाभके लिए अगर अपना मन, मन, धन, वचन सर्वस्व भी अर्पित करना पडे तो सहर्ष न्योछावर करके एक इस सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेना चाहिये। सम्यक्त्व का लाभ इतना महान लाभ है कि जिसके प्राप्त कर लेने पर निकट कालमे ही ससारके समस्त सकट छूट जाते है।

सम्यक्त्वकी महायोगरूपता—पदार्थका अपने आपमे अपने आपहीके कारण स्वय जैसा स्वभाव है, स्वरूप है उसका दर्शन होना, निर्णयात्मक परिचय होना सो सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन रत्नोमे महारत्न है और यही सम्यग्दर्शन सर्व योगोमे उत्तम योग है। जितने भी ध्यान किए जाते है उन सब ध्यानोकी सफलता इस सम्यग्दर्शनके कारण है। सम्यक्त्व न हो तो अन्य ध्यानोका फिर कोई महत्व नही है। एक योगी था। उसको प्राणायामका बडा अभ्यास था, २४ घटे तक किसी भी जगह जमीनके गड्ढेमे बैठ जाय व उपर मिट्टी भर दिया जाय तो भी वह २४ घटे तक बिना श्वास लिए रह सकता था। तो उस योगीसे राजाने कहा कि तुम हमे २४ घटेकी समाधि करके दिखाओ फिर तुम जो चाहोगे सो इनाम देगे। उस राजाकी घुडसालमे एक बहुत बढिया काला घोडा था, उसे

उस योगीने पसंद कर लिया और सोच लिया कि यही घोडा हम इनाममे लेगे। सो वह योगी जमीनमे बने गड्ढेमे बैठ गया, ऊपरसे मिट्टीसे वह गड्ढा बंद कर दिया। जब २४ घंटे की समाधि पूरी करके वह योगी निकला तो योगी राजासे बोला— महाराज ! लाओ अपना काला घोडा। अब बताओ उस योगीने २४ घंटे तक किसका ध्यान किया था ? उसी घोडेका ही ध्यान किया था ना। तो जो लोग सासारिक सुखकी इच्छासे ध्यान करते हो, मंत्र तंत्रकी साधना करते हो तो उनका वह परिश्रम बेकारका है। सम्यक्त्व साथ हो तो ध्यान भी ध्यान कहलाता है। जिस पुरुषको अपने आपके निरालेपनका, ज्ञानानन्द स्वरूपका विश्वास है वह घरमे रहकर भी और व्यापार कार्यकाज करते हुए भी चूंकि उसे अपने आपके बारेमे यह विश्वास है कि मै इन सब झंझटोसे कार्योसे निराला केवलज्ञानस्वरूप हूँ। तो उस स्वरूपसे वहाँ भी यथायोग्य ध्यान कहा जा सकता है। तो योगोमे उत्तम योग यह सम्यक्त्व है। जितने भी धर्मादिक ध्यान है उनमे उत्तमध्यान योग्य-ध्यान यही सम्यक्त्व कहलाता है।

सम्यक्त्वकी ऋद्धिसिद्धिमयता——यह सम्यक्त्व समस्त ऋद्धियोमे उत्तम ऋद्धि है। ऋद्धिया अनेक प्रकारकी होती है। जैसे अपने शरीरको अणु बना ले, महान् बना ले, हल्का बना ले, वजनदार कर ले, अपना मनचाहा रूप बना ले। अनेक प्रकारके चमत्कारोको उत्पन्न करने वाली जो ऋद्धि है उनमे उत्तम ऋद्धि चाहे वह बुद्धिकी ऋद्धि हो, चाहे शरीर की ऋद्धि हो, सबमे महान ऋद्धि है यह सम्यक्त्व। सम्यक्त्व सर्व सिद्धियोका करने वाला है। चाहके न होनेमे सर्व वैभवोकी प्राप्ति हो जाती है। वह किस प्रकार ? एक पुरुष धनकी चाहमे रात दिन बसा हुआ रहता है तो उसकी यह चाह कभी पूर्ण यो नही हो पाती। यदि लाखो रुपयेका वैभव जुड गया तो उससे अधिक धनकी इच्छा है। तो वैभववान नही बन सकता। अपने आपको सन्तुष्ट कर लेना ही वैभववान है। जहा इच्छा दूर हुई, वहाँ उसके सर्व सिद्धि हो गई। ज्ञानी पुरुष जानता है कि इच्छा परिग्रह है और यह अज्ञानभाव है। इसका मेरे स्वरूपमे सम्बध नही है। मैं स्वभावत ज्ञानानन्दमय हू। मुझे समस्त बाह्यपदार्थो से क्या प्रयोजन ? जब किसीको किसी सासारिक वस्तुकी चाह न रहे तो समझो कि उसे सब कुछ प्राप्त हो गया। मेरा था वह आनन्द और मुझे वह प्राप्त हो गया।

सही ज्ञान व उसका प्रभाव—ज्ञानोमे सबसे बडा ज्ञान यही कहलाता है कि यह समझ मे आये कि यह पदार्थ अपनी सत्ता अलग रखता है और इस ही की सत्ताके कारण इसकी पर्याये इसमे उत्पन्न होती है, इसकी पर्याय इसीमे विलीन होती है व यही चीज सदाकाल रहती है। ऐसा ही स्वरूप सब पदार्थोका है। मै भी अपने आपमे अपनी बात बनाता हू, अपनी ही बात विलीन करता हू और यह मैं सदाकाल रहता हू। मै किसी दूसरेकी बात

उत्पन्न नही कर सकता। दूसरेकी अवस्थाको नही बिगाड सकता और दूसरेमे मै प्रवेश नही कर सकता, ऐसे सारे पदार्थ है। जब सभी पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य रखते है तो किसीका किसी दूसरेके साथ सम्बध नही है। अज्ञानसे बढकर और कोई विपत्ति नही है। ज्ञानसे बढकर और कोई सम्पत्ति नही। जीव जब भी सुखी हो सकेगा तो ज्ञान द्वारा सुखी हो सकेगा। अज्ञानके रहते हुए वह चक्रवर्ती भी हो जाय तो भी वह शान्त नही रह सकता। दर्शन पाठमे कहते है कि हे प्रभो ! जिनधर्मसे रहित होकर मै चक्रवर्ती भी नही होना चाहता। वस्तुस्वरूपके यथार्थ श्रद्धानसे रहित होकर ६ खण्डका वैभव भी पाले तो उसमे उसे कोई लाभ नही है और जिनधर्ममे मेरा हृदय वासित रहे अर्थात् वस्तु स्वरूपकी यथार्थ श्रद्धामे मेरा चित्त बना रहे और ऐसी स्थितिमे यदि मै किसीका दास भी बनू तो भी मै पसद करता हूँ। मै दास होना तो स्वीकार करता हूँ पर जैनधर्मसे रहित होकर मै चक्रवर्ती भी नही होना चाहता। सुख साम्राज्य अथवा शान्ति तो मेरे सम्यग्ज्ञानमे ही प्राप्त हो सकती है अन्यथा नही। किसी पुरुषको इष्टका वियोग हो गया। अब वह निरन्तर विह्वल है– हाय ! मेरा यह इष्ट गुजर गया। अब उसके दु खको मेटनेके लिए बहुतसे रिस्तेदार आते, समझाते, लेकिन उनका समझाना आगमे घी डालने की तरह हो जाता है। जैसे कोई घी डालकर आगको शान्त करना चाहे तो वह शान्त नही कर सकता, उससे आग और भी बढ जायेगी, इसी प्रकार रिस्तेदार लोग आते है तो उस मरे हुए व्यक्तिके गुण गाते है, उसकी याद बारबार दिलाते है तो उससे तो उस सुनने वालेका दु ख और भी अधिक बढता है। उस दु खी व्यक्तिके दु खको मेटनेमे समर्थ है सच्चा ज्ञान। जब वह यो समझ लेगा कि मेरा आत्मा निराला है, वह आत्मा निराला था। जगतके अनन्त जीवोमे से कोई एक जीव आ गया तो वह भी दूसरा ही था, वह भी मुझसे निराला था। अब वह अपने ही समयसे चला गया। तो उससे मेरा क्या सम्बन्ध था ? वह मेरा कुछ नही है। मेरा तो मात्र यह मै आत्मा हूँ, यही सर्वस्व ज्ञानधन मेरा है। जब इस तरह अपने आपमे अपना निर्णय बनाता है तो वह शान्त हो पाता है। तो किसने सुखी किया ? अपने ज्ञानने ही सुखी किया। हर स्थितियोमे जब हमारा ज्ञान सही होगा तो हम सुखी रहेगे। जहाँ ज्ञानमे विकार आया कि वहाँ दु ख आ जायेगा। तो सम्यक्त्व ही एक ऐसा महान वैभव है कि जिसमे सारी ऋद्धियाँ, सारे ध्यान है, यही महान रत्न है और सर्व सिद्धिको करने वाला है।

सम्मत्त-गुण-पहाणो देविद-णरिद-वदिओ होदि।
चत्त-वओ वि य पावदि सग्ग-सुह उत्तम विविह ॥३२६॥

जिस जीवमे सम्यक्त्व जगा है, वह जीव चाहे व्रत धारण किए हुए न हो तो भी

देवेन्द्र, नरेन्द्रके द्वारा वदनीय है और नाना प्रकारके उत्तम स्वर्गसुखको पा लेना है। सम्यग्दर्शन होनेपर आयु मनुष्यकी बँधेगी या देवायु ही बँधेगी। मनुष्य व तिर्यचके देवायु बधेगी, देव व नारकीके मनुष्यायु बँधेगी सम्यक्त्वके होनेपर। हाँ पहिले यदि कोई दूसरी आयु बँध गई है और बादमे सम्यग्दर्शन हुआ है तब तो उस गतिमे जाना होगा, मगर वहाँ भी कुछ अच्छे ही साधन मिलेंगे। अब अपनी बात देखिये—सम्यग्दर्शन होनेपर मनुष्यको यदि आयु बँधेगी तो देवकी ही बँधेगी। तो जो सम्यग्दृष्टि जीव है वह चाहे व्रती नहीं है तो भी उत्तम सुखको, स्वर्गादिके सुखको प्राप्त करता है।

सम्यक्त्वमें मूढ़ताओंका अभाव—सम्यग्दर्शनका निर्दोष होना यह एक बडी विभूति है। वहा कोई मूढता नही रहती। जैसे कि लोग कहते है कि फलानी नदीमे नहाओ, पाप धुल जायेगे, अमुक पहाडसे गिरो, पाप धुल जायेगे, या अमुक देवी देवताओंकी मान्यता करो, तुम्हारा कल्याण होगा। इन किन्ही भी मूढताओमे ज्ञानी पुरुष नही फंसता। उसका तो यह स्पष्ट निर्णय है कि मेरेमे जो होगा वह मेरेमे मेरेसे प्रकट होगा। कोई दूसरी बात दूसरी जगहसे नही आती। २५ प्रकारके जो सम्यक्त्वके दोष है उनसे जो दूर है वह सम्यग्दृष्टि देवेन्द्र और नरेन्द्रके द्वारा वन्दनीय होता है। अब मूढताओकी बात देखो—दुनियामे धर्मके नामपर कितनी तरहकी मूढताये है? सूर्यको अर्घ देना—यद्यपि यह भी कुछ रहस्य रखता है। प्रथम चक्रवर्तीने अपने महलकी छतपर खड़े होकर सूर्यविमानमे जो जिन चैत्यालय है दर्शन किया और उसको निरखकर उसने नमस्कार किया होगा। तब आचार्यने उस उसके प्रथम चक्रवर्तीको मना किया—यद्यपि हे चक्री तुम ठीक करते हो। तुम सूर्यविमानमे चैत्यालय के दर्शन करके नमस्कार करते हो, पर सारी दुनिया यह न समझ सकेगी। वह तो समझेगी कि यह जो चमक रहा है उसे अर्घ देते है। सम्भव है कि इसी बातकी प्रथा चली हो। किन्तु आज तो उस चैतन्यात्मक ज्ञानानदस्वरूप परमात्मतत्त्वका नाम लेकर कोई सूर्यको अर्घ नही देता, किन्तु चमक रहा जो विमान है उसे अर्घ चढाते है। कोई पुरुष संक्रान्तिके समयमे स्नान आदिकमे धर्म मानते है, कोई गाय आदिक पशुओको नमस्कार करते अथवा अनेक प्रकारके वृक्षोकी पूजा करते, नदी, सागर आदिकमे स्नान करते, कही फूलोका ढेर लगाते, ये सब बाते करते हुए धर्म मानते है। ये सब धर्मके सम्बधकी मूढ़ताये है। इन सब बातोका यदि कुछ विवेकपूर्वक विचार किया जाय तो किसी रहस्यकी बात मिलेगी। उस रहस्यको न जानकर तो वे धार्मिक क्रियाकाण्ड व्यर्थ है।

मूलपरिचयको छोड़कर लोककी गतानुगतिकता—जैसे एक कथानक है कि एक वार कोई सज्जन पुरुष (साधु पुरुष) फूल लिए जा रहा था। तो मार्गमे एक जगह किसी कुत्ता

आदिककी बीट पडी थी, तो उसने सोचा कि इस मार्गसे बहुतसे पुरुप जाते हैं और सभी लोग इस बीटको देखकर नाक सिकोडेंगे, तो उस पुरुपने उस बीटको उन फूलोसे ढाक दिया। अब दूसरे लोगोने देखा कि देखो इस साधुने बडे भक्तिभावसे इस जगह फूल चढाया है, यहाँ कोई देव रहता होगा, सो उन लोगोने भी उस जगह कुछ फूल लाकर चढा दिए। अब क्या था ? वहाँसे जो निकले सो ही उसे देवता समझकर फूल चढाये। वहा फूलोका बहुत बडा ढेर लग गया। जब बहुत बडा ढेर लग गया तो वहाके मुखिया (गाँवके प्रधान) के मनमे आया कि जरा वहाँ चलकर देखना चाहिए कि कौन देव है, कैसा देव है ? उस जगहके सारे फूलोको उठाया तो नीचे मिला किसी कुत्ता आदिकका विष्टा। तो कुछ घटनायें ऐसी होती है कि जो होती तो है किसी भलेके लिए मगर पीछे उसका रूप बदल जाता है। एक कथानक है कि किसी सेठकी लडकीका विवाह हो रहा था, सो उस समय उसके घर पली हुई बिल्ली घरके अन्दर इधर उधर आती जाती थी। बिल्लीका इधर उधर आना जाना ऐसे मौके पर लोग असगुन मानते हैं सो सेठने अपने नौकरको बुलाकर एक टिपारेमे उस बिल्लीको बन्द करवा दिया। इस दृश्यको उसके लडकोने भी देखा। खैर, सेठ तो थोडे दिनोमे मर गया, जब उन लडकोमे से किसी की लडकी की शादी होने लगी तो उस समय लडको को याद आया कि विवाहमे मुहूर्तके समय पिता जी ने एक बिल्ली पकड कर पिटारेके अन्दर बन्द कराया था सो लडकोने उस समय यही कहा कि ठहरो, अभी एक दस्तूर बाकी रह गया है। देखो हमारे यहाँका दस्तूर चला आया है कि विवाहके मुहूर्तके समय टिपारेके अन्दर बिल्ली बन्द की जाय, सो जब दो तीन घटोमे किसी तरह कोई बिल्ली पकडकर लायी गई, विवाहका निश्चित मुहूर्त भी निकल गया तब शादी हुई। अरे उस बिल्लीको पिटारेमे बन्द करनेका प्रयोजन क्या था ? इस बातको वे भूल गए, इसलिए यह विडम्बना बन गई। तो बहुतसी ऐसी लोकरूढिया है जो कि मूल रहस्यको (मौलिक बात को) न समझे जानेसे विडम्बनारूप बन गई। ज्ञानी जीव इन किन्ही भी मूढताकी बातोमे नहीं आता है। तो सम्यक्त्व होना और सम्यक्त्वके योग्य अपना व्यवहार होना, और भीतर मे उस स्वरूपका निश्चयस्वरूप रहना यह जीवके लिए कल्याणकारी चीज है।

सम्यग्दृष्टिके संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा व प्रशम गुण—सम्यक्त्व जिसके उत्पन्न हुआ है उस जीवके सवेगादिक ८ गुण उत्पन्न होते है—सवेग, धर्मके साधनोमे प्रेम होना, धर्मात्माजनोमे अनुराग होना, धर्मप्रेम। निर्वेद अर्थात् ससार, शरीर, भोगोसे वैराग्य। सम्यग्दृष्टि जीवकी ऐसी प्रवृत्ति होती है कि उसे धर्मभावमे तो अनुराग जगता है और सासारिक भोगोमे वैराग्य उत्पन्न होता है। क्योंकि वह जानता है कि सारभूत बात है तो अपने ज्ञान स्वभावका समझना और इस ज्ञानस्वभावमे अपना ज्ञान बनाये रहना, केवल यही सारभूत

बात है। इसके अतिरिक्त जितनी भी अन्य बातें है वे सब विडम्बनारूप है। अतएव उसका ज्ञानस्वभावमे प्रेम और बाकी बाह्यवस्तुओसे वैराग्य होता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने आपमे अपनी निन्दा किया करता है, क्योकि सम्यग्दर्शन होने पर भी जब तक आत्मकल्याण नही होता है, रागद्वेष चल रहे है तो वहाँ वह अपनी निन्दा करता है। मै रागी हू, द्वेषी हूँ, मेरेमे इतने अवगुण है, ये अवगुण मेरे दूर हो तब ही मै योग्य कहला सकता हूँ। उसे अपने अपराधकी अपने आपमें निन्दा बनी रहती है। और, समय-समय पर अपने गुरुजनोसे अपने दोषको प्रकट करता है, ज्ञानी दोषोका पछतावा करता है, हे प्रभो! मुझसे यह अपराध हुआ, मेरेमे अभी बहुत कमजोरी है, अपनी कमजोरीको, अपने अपराधको गुरुजनोके समक्ष कहता है। सम्यग्दृष्टि जीवमे एक प्रशम गुण उत्पन्न होता है। कोई जीव कैसा ही कुछ कह दे या कैसा ही अपराध करदे तो अपराध करने पर भी उससे बदला लेनेका भाव नही होता। ज्ञानी जीव तो उसके प्रति शान्तभाव ही रखता है। जैसे कि संसारीजन जरा सी भी प्रतिकूल बात होने पर इतनी कमर कसकर तैयार हो जाते है उसका बिगाड करने के लिए कि वह रात दिन बेचैन रहता है। पर सम्यग्दृष्टि जीव जानता है कि ससारमे यह जीव न जाने कौन किस गतिसे आकर यहा पैदा हो गया, थोडे ही दिनोमे न जाने कौन किस गतिको चला जायेगा। कोई जीव कैसा ही परिणमता है परिणमने दो, उसका परिणमन उसमे है, इन जीवोमे हम किसे अपना विरोधी समझे? क्यो व्यर्थमे किसीसे बदला लेनेका भाव करे? यो ज्ञानी जीव किसीको अपना विरोधी नही समझता है।

सम्यग्दृष्टिके भक्ति, दया, वात्सल्य गुण—ज्ञानीके देव, शास्त्र, गुरुके प्रति बडी उत्तम भक्ति रहती है। पूज्य है तो ये वीतराग सर्वज्ञदेव ही पूज्य है। यह धर्म जिसमे कि रागद्वेष मोह छोडनेका उपदेश किया गया है यही धर्म उपादेय है, निर्ग्रन्थ गुरु जिनके अन्तरङ्ग बहिरङ्ग किसी भी प्रकारका परिग्रह नही रहता है, ऐसे साधु पूज्य है। ज्ञानी पुरुष को उनके प्रति भक्ति जगती है, अपने प्रति और दूसरे जीवोके प्रति उसके दयाका भाव उत्पन्न होता है। किसी भी तडफते हुए पशुको देखकर जो यहाँ कुछ व्यग्रता होती है वह तब ही तो होती है जब यह भाव किया कि इस ही की तरह मै भी तो जीव हू। तो जो लोग दूसरे जीवोंके प्रति दया करते है उन्होने पहिले अपने आत्माको छू लिया है तभी तो दया होती है। तब दूसरे जीवोकी दया करना भी धर्म है और अपने आपकी दया तो उत्तम धर्म है ही, अर्थात् अपने को विषयकषायोसे मिथ्यात्वसे अज्ञानसे अलग हटाये रहना, यही है अपनी दया। तो सम्यग्दृष्टि जीव स्वदया और परदयाकी विशेषता रखता है, ज्ञानी जीवमे वात्सल्य गुण है, धर्मात्मा जनोसे निष्कपट प्रेम करता है। अभी विवेकपूर्वक देखा जाय तो गृहस्थजनोके उपकार जितना धर्मात्माजनोसे हो सकते है उतना पुत्र, मित्र, कुटुम्बीजन,

आदिककी बीट पडी थी, तो उसने सोचा कि इस मार्गसे बहुतसे पुरुष जाते है और सभी लोग इस बीटको देखकर नाक सिकोड़ेगे, तो उस पुरुषने उस बीटको उन फूलोसे ढाक दिया। अब दूसरे लोगोने देखा कि देखो इस साधुने बडे भक्तिभावसे इस जगह फूल चढाया है, यहाँ कोई देव रहता होगा, सो उन लोगोने भी उस जगह कुछ फूल लाकर चढा दिए। अब क्या था ? वहाँसे जो निकले सो ही उसे देवता समझकर फूल चढाये। वहा फूलोका बहुत बडा ढेर लग गया। जब बहुत बडा ढेर लग गया तो वहाके मुखिया (गाँवके प्रधान) के मनमे आया कि जरा वहाँ चलकर देखना चाहिए कि कौन देव है, कैसा देव है ? उस जगहके सारे फूलोको उठाया तो नीचे मिला किसी कुत्ता आदिकका विष्टा। तो कुछ घटनाये ऐसी होती है कि जो होती तो है किसी भलेके लिए मगर पीछे उसका रूप बदल जाता है। एक कथानक है कि किसी सेठकी लडकीका विवाह हो रहा था, सो उस समय उसके घर पली हुई बिल्ली घरके अन्दर इधर उधर आती जाती थी। बिल्लीका इधर उधर आना जाना ऐसे मौके पर लोग असगुन मानते है सो सेठने अपने नौकरको बुलाकर एक टिपारेमे उस बिल्लीको बन्द करवा दिया। इस दृश्यको उसके लडकोने भी देखा। खैर, सेठ तो थोडे दिनोमे मर गया, जब उन लडकोमे से किसी की लडकी की शादी होने लगी तो उस समय लडको को याद आया कि विवाहमे मुहूर्तके समय पिता जी ने एक बिल्ली पकड कर पिटारेके अन्दर वन्द कराया था सो लडकोने उस समय यही कहा कि ठहरो, अभी एक दस्तूर बाकी रह गया है। देखो हमारे यहाँका दस्तूर चला आया है कि विवाहके मुहूर्तके समय टिपारेके अन्दर बिल्ली बन्द की जाय, सो जब दो तीन घटोमे किसी तरह कोई बिल्ली पकडकर लायी गई, विवाहका निश्चित मुहूर्त भी निकल गया तब शादी हुई। अरे उस बिल्लीको पिटारेमे बन्द करनेका प्रयोजन क्या था ? इस बातको वे भूल गए, इसलिए यह विडम्बना बन गई। तो बहुतसी ऐसी लोकरूढिया है जो कि मूल रहस्यको (मौलिक बात को) न समझे जानेसे विडम्बनारूप बन गई। ज्ञानी जीव इन किन्ही भी मूढताकी बातोमे नही आता है। तो सम्यक्त्व होना और सम्यक्त्वके योग्य अपना व्यवहार होना, और भीतर में उस स्वरूपका निश्चयस्वरूप रहना यह जीवके लिए कल्याणकारी चीज है।

सम्यग्दृष्टिके संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा व प्रशम गुण—सम्यक्त्व जिसके उत्पन्न हुआ है उस जीवके सवेगादिक ८ गुण उत्पन्न होते है—सवेग, धर्मके साधनोमे प्रेम होना, धर्मात्माजनोमे अनुराग होना, धर्मप्रेम। निर्वेद अर्थात् ससार, शरीर, भोगोसे वैराग्य। सम्यग्दृष्टि जीवकी ऐसी प्रवृत्ति होती है कि उसे धर्मभावमे तो अनुराग जगता है और सासारिक भोगोमे वैराग्य उत्पन्न होता है। क्योकि वह जानता है कि सारभूत बात है तो अपने ज्ञान स्वभावका समझना और इस ज्ञानस्वभावमे अपना ज्ञान बनाये रहना, केवल यही सारभूत

बात है। इसके अतिरिक्त जितनी भी अन्य बाते है वे सब विडम्बनारूप है। अतएव उसका ज्ञानस्वभावमे प्रेम और बाकी बाह्यवस्तुओसे वैराग्य होता है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने आपमे अपनी निन्दा किया करता है, क्योकि सम्यग्दर्शन होने पर भी जब तक आत्मकल्याण नही होता है, रागद्वेष चल रहे है तो वहाँ वह अपनी निन्दा करता है। मै रागी हू, द्वेषी हूँ, मेरेमे इतने अवगुण है, ये अवगुण मेरे दूर हो तब ही मै योग्य कहला सकता हूँ। उसे अपने अपराधकी अपने आपमे निन्दा बनी रहती है। और, समय-समय पर अपने गुरुजनोसे अपने दोषको प्रकट करता है, ज्ञानी दोषोका पछतावा करता है, हे प्रभो! मुझसे यह अपराध हुआ, मेरेमे अभी बहुत कमजोरी है, अपनी कमजोरीको, अपने अपराधको गुरुजनोके समक्ष कहता है। सम्यग्दृष्टि जीवमे एक प्रशम गुण उत्पन्न होता है। कोई जीव कैसा ही कुछ कह दे या कैसा ही अपराध करदे तो अपराध करने पर भी उससे बदला लेनेका भाव नही होता। ज्ञानी जीव तो उसके प्रति शान्तभाव ही रखता है। जैसे कि संसारीजन जरा सी भी प्रतिकूल बात होने पर इतनी कमर कसकर तैयार हो जाते है उसका बिगाड करने के लिए कि वह रात दिन बेचैन रहता है। पर सम्यग्दृष्टि जीव जानता है कि संसारमे यह जीव न जाने कौन किस गतिसे आकर यहा पैदा हो गया, थोडे ही दिनोमे न जाने कौन किस गतिको चला जायेगा। कोई जीव कैसा ही परिणमता है परिणमने दो, उसका परिणमन उसमे है, इन जीवोमे हम किसे अपना विरोधी समझे? क्यो व्यर्थमे किसीसे बदला लेनेका भाव करे? यो ज्ञानी जीव किसीको अपना विरोधी नही समझता है।

सम्यग्दृष्टिके भक्ति, दया, वात्सल्य गुण—ज्ञानीके देव, शास्त्र, गुरुके प्रति बडी उत्तम भक्ति रहती है। पूज्य है तो ये वीतराग सर्वज्ञदेव ही पूज्य है। यह धर्म जिसमे कि रागद्वेष मोह छोडनेका उपदेश किया गया है यही धर्म उपादेय है, निर्ग्रन्थ गुरु जिनके अन्तरङ्ग बहिरङ्ग किसी भी प्रकारका परिग्रह नही रहता है, ऐसे साधु पूज्य है। ज्ञानी पुरुष को उनके प्रति भक्ति जगती है, अपने प्रति और दूसरे जीवोके प्रति उसके दयाका भाव उत्पन्न होता है। किसी भी तडफते हुए पशुको देखकर जो यहाँ कुछ व्यग्रता होती है वह तब ही तो होती है जब यह भाव किया कि इस ही की तरह मै भी तो जीव हू। तो जो लोग दूसरे जीवोके प्रति दया करते है उन्होने पहिले अपने आत्माको छू लिया है तभी तो दया होती है। तब दूसरे जीवोकी दया करना भी धर्म है और अपने आपकी दया तो उत्तम धर्म है ही, अर्थात् अपने को विषयकषायोसे मिथ्यात्वसे अज्ञानसे अलग हटाये रहना, यही है अपनी दया। तो सम्यग्दृष्टि जीव स्वदया और परदयाकी विशेषता रखता है, ज्ञानी जीवमे वात्सल्य गुण है, धर्मात्मा जनोसे निष्कपट प्रेम करता है। अभी विवेकपूर्वक देखा जाय तो गृहस्थजनोके उपकार जितना धर्मात्माजनोसे हो सकते है उतना पुत्र, मित्र, कुटुम्बीजन,

रिश्तेदार आदिसे नही हो सकते । मूढ पुरुषोके चित्तमे धर्मात्माके प्रति प्रीति न जगेगी, वह उन्हे गैर रूपसे ही समझेगा । ये मेरे घरके नही है, ये तो गैर है । कभी धर्मीकी भक्ति करते है तो रूढिवश उनका आदर किया जाता है । मेरे तो ये घरके लोग हैं और इन्हीके बलपर मेरा जीवन है और इसके लिए मेरा सर्वस्व है, पर ज्ञानी जीवको जितना अधिक लगाव धर्मात्माके प्रति होता है उतना अधिक लगाव कुटुम्बके प्रति नही होता, और अनेक उदाहरण भी देख लीजिए—जहाँ कही ज्ञान वैराग्यकी वार्ता मिल सकेगी वहा तो इसको शान्ति मिलेगी और जहा रागद्वेष मोह बढाने वाली ही घटनाये और बाते मिलेगी वहा इस जीवको शान्ति न मिलेगी । तब स्वय निर्णय कर लो कि धर्मात्मा जनोका सग मेरे लिए हितकारी है या कुटुम्ब आदिकका सग मेरे लिए हितकारी है । लाभ किससे मिलेगा ? तो ज्ञानी जीव तो धर्मात्मा जनोसे ही वात्सल्य रखते है ।

सम्यग्दृष्टिके अन्तःशान्तिरूपता--अनेक गुणोसे सम्पन्न वह सम्यग्दृष्टि जीव अपने आपमे जब चाहे आनन्द पाता रहता है । जब जरा गर्दन झुकायी देख लो, अपना देव अपने आपके अन्दर है । जिस समय बाह्यदृष्टिको बद करके अपने अन्तरङ्गकी दृष्टिसे देखेगे तो अपना भगवान, अपना वह कल्याणकारी देव अपने आपमे मिलेगा । जिसने अपने आपमे बसे हुए इस परमात्मदेवका दर्शन किया है वह पुरुप तो पवित्र है, और जो अपने आपके इस परमात्मदेवका परिचय नही कर सकता वह चाहे शरीरकी कितनी ही शुद्धि करे या अन्य प्रकारकी शुद्धि करे तो वह शुद्धि व सिद्धि नही है । चाहे अपवित्र हो, चाहे पवित्र हो, चाहे किसी स्थितिमे हो, जो अपने परमात्मतत्त्वका स्मरण करता है वह बाहरमे भी पवित्र है और अन्तरङ्गमे भी पवित्र है । शान्ति मिलेगी तो अपने आपके परमात्मस्वरूपके उपयोगमे ही मिलेगी । बाहरी पदार्थोको चित्तमे बसानेसे शान्ति न मिलेगी ।

॥ अनुप्रेक्षा प्रवचन षष्ठ भाग समाप्त ॥